एम० विन्टरनिटज

प्राचीन भारतीय साहित्य

प्रथम भाग

द्वितीय खण्ड

इतिहास पुराण और तन्त्र

मोतीलाल बनारसीदास

दिल्ली ; पटना ; वाराणसी

WINTERNITZ

प्राचीन भारतीय साहित्य

[इतिहास-काव्य, पुराण एवं तन्त्र-साहित्य का इतिहास]

प्रथम भाग, द्वितीय खंड

अनुवादक
डॉ० रामचन्द्र पाण्डेय
रीडर, बौद्ध अध्ययन विभाग,
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

मोतीलाल बनारसीदास
दिल्ली :: वाराणसी :: पटना

M. WINTERNITZ'S

INDISCHEN LITTERATUR

I. ii

[By arrangement with Koehler & Amelang (VOB), Leipzig.
Translated from the original German and
brought up-to-date]

Dr. RAMCHANDRA PANDEYA,
Vyākarṇācārya, M. A., Ph. D.
Reader, Department of Buddhist Studies.
University of Delhi

MOTILAL BANARSIDASS
DELHI :: VARANASI :: PATNA

अनुवादक का वक्तव्य

प्रो० विंटरनित्ज ने भारतीय साहित्य का इतिहास मूलतः जर्मन भाषा में लिखा था। उसके बाद भी उनका तद्विषयक शोध चलता ही रहा। स्फुट निबन्धों में उन्होंने इतिहास से संबद्ध अनेक नयी बातों का उद्घाटन किया। साथ ही अपने ग्रंथ के अंग्रेजी अनुवाद में भी उन्होंने अनेक ऐसी बातों का समावेश कराया जो मूल जर्मन में उपलब्ध नहीं थीं। यह सुविदित है कि उन्होंने स्वयं अंग्रेजी अनुवाद का पुनर्निरीक्षण किया था। उनके देहान्त के बाद अनेक विद्वानों ने नयी स्थापनाएँ कीं और प्राचीन ग्रंथों के अनेक नये संस्करण निकले—इनमें महाभारत का प्रथम सुसंपादित संस्करण तथा रामायण के कुछ काण्डों का संस्करण उल्लेखनीय हैं—तथा अनेक लुप्त ग्रंथ प्रथम बार प्रकाश में आए। प्रस्तुत अनुवाद में न केवल प्रो० विंटरनित्ज के उन कार्यों का यथासंभव समावेश करने का प्रयत्न किया गया है जो उन्होंने मूल जर्मन ग्रंथ के बाद किए थे बल्कि नयी सूचनाओं को भी यथास्थान देने का प्रयत्न किया गया है जिससे अनुवाद का मूल्य अन्य भारतीय साहित्य के इतिहासों से न्यून न होने पाए।

प्रस्तुत अनुवाद की भाषा के संबंध में मेरा निवेदन है कि 'शुद्ध' हिन्दी के पक्षधर इसे अपने कृपा-कटाक्ष से वंचित ही रहने दें। भाषा के संबंध में मेरा विचार 'अधिकतम लोगों की अधिकतम बोधगम्यता' के सिद्धान्त से प्रेरित है। यदि संस्कृत-निष्ठ भाषा का प्रयोग किया जाय तो, मैं समझता हूँ, हिन्दी में सरल बातें करना भी बहुधा दुरूह हो जाएगा। दुरूहता, चाहे वह मूल ग्रंथ में हो, चाहे अनुवाद में, शोभा-धायक नहीं होती। अनुवाद के संबंध में निरपवाद रूप से सारे अनुवादक यही कहते चले आए हैं कि अनुवाद मूल के भाव को ठीक-ठीक व्यक्त करे और अनुवाद में अस्पष्टता न आने पाए। यह आदर्श रूप में सही तो है पर कितने अनुवादक इस कसौटी पर खरे उतरेंगे ? कम-से-कम मैं तो इस आदर्श को अपने अनुवाद में नहीं उतार पाया हूँ। वक्ता के सूक्ष्म मनोगत भावों को उसके स्थूल शब्दों के आधार पर पकड़ पाना किसी 'सर्वज्ञ' के बूते की ही बात है। मैं तो अपने को इतने में ही कृत-कार्य समझूँगा कि मूल के स्थूल शब्दों को हिन्दी के स्थूल माध्यम में ढाल सकने में मेरे सामर्थ्य को सचेत पाठक लोग प्रमाणित कर दें।

पादटिप्पणियों में मैंने पुस्तकों आदि के नामों, उनके निर्देश-सूचक अंकों तथा लेखक के नामों को यथासंभव मूल रूप में रहने दिया है जिससे उन ग्रंथ आदि के ढूँढ़ने में पाठक को कठिनाई न हो। विदेशी नामों के उच्चारण में हिन्दीवालों में

ऐकमत्य नहीं है, हर लेखक अपनी वर्तनी अलग बनाता है। जैसे व्यक्ति के नाम का अनुवाद संभव नहीं है (यद्यपि चीनी, तिब्बती आदि भाषाओं में व्यक्ति-वाचक संज्ञाओं का भी अनुवाद कर दिया जाता है) वैसे ही ग्रंथों, लेखों आदि के शीर्षकों के अनुवाद भी उचित नहीं हैं। इसलिए अधिकतर पाद-टिप्पणियाँ रोमन लिपि में लिखी मिलेंगी और हिन्दी-भक्त लोग उनको अशोभन कहेंगे। पर मैं लाचार हूँ।

अनुवाद करते समय जर्मन भाषा की गुत्थियों को सुलझाने में आदरणीय डॉक्टर वासुदेव विश्वनाथ गोखले, दिल्ली विश्वविद्यालय में बौद्ध अध्ययन विभाग के प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, ने अमूल्य सहायता प्रदान की। डॉ० उदयभानु सिंह और डॉ० रामचन्द्र द्विवेदी, दिल्ली विश्वविद्यालय में क्रमशः हिन्दी और संस्कृत के प्राध्यापकों, ने समय-समय पर अपने सत्परामर्शों से मुझे कृतार्थ किया है। बंधुवर आचार्य विश्वनाथ त्रिपाठी, श्री आनन्दभैरव शाही एवं श्री शारदाशङ्कर द्विवेदी अनुवाद की प्रगति के बारे में निरन्तर उत्सुकता प्रकट करते हुए मुझे कार्य शीघ्र समाप्त करने को उकसाते रहे हैं। मेरे दो अनुज श्री मोहनचन्द्र और श्री कोसलचन्द्र ने सूची आदि बनाने में तत्परता से कार्य किया है। मेरी धर्मपत्नी श्रीमती विद्यावती ने तो इस अनुवाद के मेरु-दंड का कार्य किया है। रात या दिन जब भी मैं अनुवाद कार्य लेकर बैठता था तो वे भी मेरे साथ कागज कलम लेकर बैठ जाती थीं और इस प्रकार इस अनुवाद का तीन चौथाई से अधिक अंश उन्होंने ही लिपिबद्ध किया है। मोतीलाल बनारसीदास प्रकाशन संस्थान के संचालक लाला सुन्दरलालजी ने, तथा संस्थान से संबंधित अन्य लोगों ने अनुवाद कार्य हाथ में लेने के बाद एक दिन भी मुझे खाली न बैठने दिया। अनुवाद शीघ्र समाप्त हो गया, इसका श्रेय इन लोगों को है। छपाई की व्यवस्था करने में काशी की मुद्रण-संस्था ज्ञानमण्डल लिमिटेड ने पूरा सहयोग दिया। अतः ऊपर लिखित सभी व्यक्तियों का मैं कृतज्ञ हूँ। उन लोगों के प्रति आभार प्रकट करता हुआ मैं इस अनुवाद को उन्हीं लोगों को समर्पित करता हूँ।

दिल्ली विश्वविद्यालय,
दिल्ली
१ जून, १९६६

—रामचन्द्र पाण्डेय

विषय-सूची

लोकप्रिय इतिहास—काव्य और पुराण

भारत में इतिहास-काव्य का आरम्भ

हमने पहले देखा है कि भारत में वैदिक साहित्य में—ऋग्वेद के संवाद-सूक्तों तथा ब्राह्मण ग्रंथों के आख्यानों, इतिहासों और पुराणों में—ही इतिहास-काव्य के प्रारम्भिक चिह्न मिलने लगते हैं।[1] पुनश्च ब्राह्मण और कर्मकाण्ड-परक साहित्य से भी हमें पता चलता है कि इस प्रकार की वर्णनात्मक कविता का पाठ यज्ञों तथा घरेलू उत्सवों—जैसे धार्मिक कर्म का अंग था।

महान् अश्वमेध यज्ञ का आरम्भिक कर्म एक वर्ष तक चलता रहता था और देवताओं एवं वीरों की कथाओं का उसमें प्रतिदिन परायण होता था। हरेक दस दिनों पर आवर्तित होने वाले क्रम में कुछ देवताओं और वीरों की कथाएँ कही जाती थीं। एक ब्राह्मण और एक क्षत्रिय वीणा-वादक उपस्थित रहते थे और वे अपनी बनाई गाथाओं में यज्ञ करने वाले राजा की क्रमशः उदारता और वीरता की प्रशंसा किया करते थे। वीणावादक लोग वीणा बजाने के साथ ब्राह्मणों के राजा सोम या अन्य किसी वास्तविक राजा का गुणगान करते हुए सीमन्तोन्नयन संस्कार के समय उपस्थित रहते थे—यह संस्कार गर्भिणी स्त्री के गर्भ की वृद्धि के लिए गर्भ के चौथे महीने में सम्पन्न होता है। मृत्यु के बाद भी यह एक प्राचीन प्रथा थी कि शोक मनाने वाले घर के बाहर किसी छायादार स्थान में बैठते थे और इतिहास या पुराण का पाठ सुनाकर उनके मन को बहलाया जाता था और ढाढस बँधाया जाता था। कवि बाण ने भी अपने काल में अर्थात् ईसा की ७वीं शताब्दी में इस प्रथा के प्रचलन का उल्लेख किया है। इसी तरह मृत्यु या अन्य किसी भारी क्षति के बाद और अधिक दुर्भाग्य से बचने के लिए जब घरकी अग्नि को बाहर निकाल दिया जाता था और घर में दो अरणियों के घर्षण से नयी अग्नि उत्पन्न की जाती थी तब परिवार के लोग खामोश रात में आग को जिलाए रखते हुए भविष्य को मंगलमय बनाने वाले इतिहासों और

---

१. भारतीय लोग आख्यान इतिहास और पुराण शब्दों के प्रयोग में एकरूपता नहीं बरतते क्योंकि कभी तो वे उनका समान अर्थ में प्रयोग करते हैं पर कभी उनका अलग अलग वर्णनों के लिए प्रयोग होता है। इतिहास-काव्य महाभारत को इसकी भूमिका में इतिहास, पुराण और आख्यान तीनों बारी-बारी से कहा गया है। इन शब्दों के बारे में मि० Emil Sieg, Die Sagenstaffe des Ṛgveda und die indische Itihāsatadition, I, Stuttgart 1902, भूमिका।

पुराणों का तथा बड़ी लम्बी आयु प्राप्त करने वाले लोगों की जीवन-गाथाओं का श्रवण करते थे।[१]

आख्यान या इतिहास एकाकी ही नहीं होते थे, उनकी मालाएँ भी हुआ करती थीं। इस प्रकार की कम से कम एक माला सुपर्णाख्यान, जिसको सुपर्णाध्याय या सिर्फ सुपर्ण भी कहते हैं, हमारे सामने है।[२] यह परवर्ती वैदिक साहित्य से सम्बन्धित कृति है और इसका लेखक भाषा, स्वराघात तथा बाह्य आकार में ऋग्वेद के सूक्तों की भरसक नकल करता है जिससे यह कृति ऋग्वेद से सम्बन्धित मालूम पड़े। इसका काल बिलकुल अनिश्चित है पर छन्दों के आधार पर हम इसे करीब-करीब कठोपनिषद् जैसे छन्दोबद्ध उपनिषदों के काल में रख सकते हैं।[३] यह नागमाता कद्रू, पक्षिमाता विनता तथा गरुड़ की सर्पों से शत्रुता की कथाओं की एक माला है—ये कथाएँ वैदिक काल से ही चली आ रही हैं[४] और महाभारत के आस्तीकपर्व में काव्य के रूप में मिलती हैं।

१. शतपथ ब्रा०, XIII, 4, 3; शांखायन गृह्यसूत्र I, 22, 11 आ०; आश्वलायन गृह्यसूत्र I, 14, 6 आ०, IV, 6, 6; पारस्कर गृह्यसूत्र I, 15, 7 आ०; आपस्तम्बीय गृह्यसूत्र 14, 4 आ०। मि० A. Weber, Episches im vedischen Ritual (SBA 1891) तथा H. Lüders, ZDMG, Vol. 58, पृ० 707 आ० में। पुरुषमेध में आख्यानों का पाठ एक अंग था—दे० शांखायन श्रौतसूत्र 16. 11।

२. यह ग्रंथ बुरी दशा में हमारे सामने है। इसका पहला संस्करण E. Grube ने बर्लिन से १८७५ में प्रकाशित किया; नये सिरे से सम्पादित तथा जर्मन अनुवाद और टिप्पणियों से युक्त—J. Charpentier ने Die Suparṇasage शीर्षक से Uppsala से 1920 में (पृ० 190 आ०) प्रकाशित किया मि० J. v. Negelein, GGA, 1924, पृ० 65 आ० 67 आ० में। J. Hertel इस ग्रन्थ को R. Temple (WZKM 23, 1909, 273 आ०, 24, 1910, 117 आ० Indische Märchen, पृ० 344, 367 आ०) द्वारा वर्णित स्वांग की तरह की नाटकीय कविता मानते हैं। उन्होंने नाटक के रूप में इसका जर्मन अनुवाद किया है (Indische Märchen, Jena 1919, पृ० 344 आ०)। मि० Winternitz, Oestereichische, Monatsschrift für den Orient 41, 1915, पृ० 176 आ०, Oldenberg, Zur Geschichte der altindischen Prosa, पृ० 61 आ० तथा NGGW 1919, पृ० 79 आ०। इस सुपर्णाध्याय का ऋग्वेद के खिल अंश के सुपर्ण सूक्तों से, जिन्हे भी सुपर्णाध्याय कहते हैं, कोई सम्बन्ध नहीं है। (दे० Scheftelowitz, ZDMG 74, 1920, पृ० 203)।

३. Charpertier वही, 196 आ०। J. v. Negelein (वही, पृ० 196 आ०) Charpentier के निष्कर्षों पर संदेह करते हैं।

४. Charpentier, वही, पृ० 283 आ०; शतपथ ब्रा० III, 6, 2।

परवर्ती वैदिक ग्रन्थों में इतिहासों और पुराणों की गणना बहुधा वेदों और ज्ञान की अन्य शाखाओं के साथ होने लगी थी। इनके अध्ययन से माना जाता था कि देवता लोग प्रसन्न होते हैं। वास्तव में इतिहास-पुराण को पंचम वेद कहा गया।[१] अथर्ववेद के तुरत बाद इनकी गणना होती है और इस अथर्ववेद से इनका घनिष्ट सम्बन्ध भी माना गया है।[२] इस तथ्य ने यह निष्कर्ष निकालने में सहायता दी कि वैदिक संहिताओं की तरह इतिहासों और पुराणों की भी एक या अनेक संहिताएँ थीं जिनमें देवताओं के आख्यान, दैत्य, नागदेव, ऋषि तथा प्राचीन राजाओं की कथाएँ निबद्ध थीं। पर इसका कोई प्रमाण नहीं है कि वैदिक युग में ऐसी संहिताएँ वास्तव में थीं।[३] हमें केवल इतना मालूम है कि बहुत प्राचीन काल में ऐतिहासिक और पौराणिक लोग होते थे। साथ ही यह भी निश्चित है कि बुद्ध के काल में आख्यान, इतिहास, पुराण और गाथाओं का गद्य-पद्यात्मक अक्षय भाण्डार वर्तमान था जो सार्वजनिक साहित्यिक सम्पत्ति के रूप में बौद्धों, जैनों तथा इतिहास-काव्य के निर्माता कवियों का मानों उपजीव्य था।

---

१. जैसे छान्दोग्य उप०, VII, 1 आ० तथा 71 बौद्धों के सुत्तनिपात III, 7 (सेलसुत्त) में तीन वेदों और वेदाङ्गों के बाद 'पाँचवां' माना गया है। मि० A. Weber, वही और J. Dahlmann, Das Mahābhārata als Epos und Rechtsbunch, Berlin 1895, पृ० 281 आ०।

२. छान्दोग्य उप० III, 3, 4, के अनुसार अथर्ववेद के जादू-गान इतिहास-पुराण के साथ ही उसी तरह सम्बन्धित हैं जैसे ऋक् ऋग्वेद से, यजुष् यजुर्वेद से और साम सामवेद से। कौटिल्य अर्थशास्त्र पृ० 7 के अनुसार अथर्ववेद और इतिहासवेद 'त्रयी' के साथ मिलकर वेद कहलाते हैं। मि० M. Bloomfield, SBE, Vol. 42, पृ० XXXVI आ०।

३. 'इतिहासवेद' या 'इतिहास-पुराण' नाम का कोई ग्रन्थ था इस सिद्धान्त का प्रवर्तन किया K. F. Geldner ने, Vedische Studien I, पृ० 290 आ० में; E. Sieg ने Die Sagenstoffe des Ṛgveda und die indische Itihāsatradition I, पृ० 33 तथा ERE VII, 1914, 461 आ० में; J. Hertel ने WZKM 23, 1909, पृ० 295; 24, पृ० 420 में; R. Pischel ने KG 168 में; H. Oertel ने WZKM 24, पृ० 121 में; H. Jocobi ने SBA 1911, पृ० 269 में। पर कौटिल्य I, 5, पृ० 10 का एक प्रसंग, जिसे इन विद्वानों ने उद्धृत किया है, सिद्ध करता है कि इतिहास कोई एक ग्रन्थ नहीं है, यह साहित्यिक कृतियों का एक वर्ग है क्योंकि 'वेद' का भी अर्थ कोई ग्रन्थ नहीं होता, यह ज्ञान का एक प्रकार है। आयुर्वेद औषधि-शास्त्र है, गन्धर्ववेद संगीत है, ऋग्वेद, सामवेद आदि ग्रन्थों के एक-एक वर्ग हैं न कि स्वयं ग्रन्थ हैं। अतः इतिहास-वेद कोई खास पुस्तक नहीं है अपितु ज्ञान का एक प्रस्थान है जिसमें आख्यान, कथाएँ आदि निबद्ध हैं।

इतिहास और पुराणों के अलावा नाराशंसी गाथाएँ[1] भी देवताओं को प्रसन्नता देनेवाली कही गई हैं। एक ओर ये गाथाएँ ऋग्वेद की दान-स्तुतियों और अथर्ववेद के कुन्तापसूक्तों से सम्बद्ध हैं तो दूसरी ओर ये वीर इतिहास-काव्य के साक्षात् पूर्वरूप भी हैं—क्योंकि उनमें योद्धाओं और राजाओं के अद्भुत कर्म वर्णित हैं। शायद ये नाराशंसी गाथाएँ विस्तृत इतिहास-काव्यों अर्थात् वीर कविताओं तथा इतिहास-गान की मालाओं में परिणत हो गईं जिनका केन्द्र-विन्दु कोई एक वीर या कोई एक महान् घटना थी। क्योंकि महाभारत और रामायण जो दो राष्ट्रीय इतिहास-काव्य बच रहे हैं, वे इतिहास-कविता के एक लम्बे भूतकाल के अवशेषमात्र हैं। इन दो काव्यों के अस्तित्व में आने के बहुत पहले ही महाभारत के केन्द्रभूत, देशों के महायुद्ध के तथा रामायण के नायक राम के कार्यों के गीत गाए जाते रहे होंगे। यह नहीं सोचा जा सकता कि केवल कौरवों-पाण्डवों का युद्ध और राम के कार्य ही कविता के विषय रहे होंगे। अन्य राजघरानों के वीर और उनकी महान् घटनाओं के भी गीत अवश्य गाए जाते रहे होंगे। ये प्राचीन वीर-गीत, जिनके अस्तित्व को हमें मानना ही पड़ेगा, बिना अपनी छाप छोड़े लुप्त नहीं हुए होंगे। हमारे इन दो इतिहास-काव्यों में इनमें से कुछ के अंश और अवशेष सुरक्षित हैं।[2]

इस वीर-कविता के लेखक, गायक और रक्षक भाट थे जिन्हें सूत कहा जाता था। ये राजदरबारों में रहा करते थे और राजाओं के विरुद का बखान करने के लिए महोत्सवों के अवसर पर अपने गीत गाया या पढ़ा करते थे। वीरों के कर्तव अपनी आँखों से देखकर उन पर कविता रचने के निमित्त ये युद्धों में भी जाया करते थे। महाभारत में ही सूत संजय महाराज धृतराष्ट्र से युद्धभूमि की घटनाओं का वर्णन करता है। इन दरबारी गायकों की अलग जाति होती थी[3] जिसमें पीढ़ी-दर-पीढ़ी

---

१. शतपथ ब्रा० XI, 5, 6, 8; आश्वलायन गृह्यसूत्र III; 3। इन गीतों में ऐतिहासिक सत्य की अपेक्षा विरुदावली ही अधिक थी—यह बात वैदिक ग्रन्थों से ही प्रमाणित है क्योंकि वे ग्रन्थ इन गाथाओं को 'मिथ्या' बताते हैं (मैत्रायणी संहिता I, 11, 5; काठक 14, 5)।

२. मि० H. Jacobi, Uber ein verlorenes Heldengedicht der Sindhu-Sauvīra, Mèlanges Kern, Leide 1903, पृ० 53 आ० में।

३. मनुस्मृति (X, 11 और 17) के अनुसार सूत वर्णसंकर जाति है जो क्षत्रिय पिता द्वारा ब्राह्मणी में उत्पन्न होती है। मागध और सूत गायक जातियाँ हैं और मागध वैश्य पिता द्वारा क्षत्रिय स्त्री में उत्पन्न होता है। युद्ध में सूत लोग राजाओं के सारथि हुआ करते थे। मूलतः मागध लोग निश्चय ही मगध देश के भाट रहे होंगे और सूत भी शायद मगध से पूर्व के देश के मूल निवासी रहे होंगे। मि० F. E. Pargiter Ancient Indian Historical Tradition, लंडन 1922, पृ० 16। J. J. Meyer, Das Weib im

इतिहास-कविताएँ सुरक्षित चली आती थीं। शायद इतिहास-काव्य क्षत्रियों के साथ नजदीकी सम्बन्ध रखने वाले भाटों की मण्डली में ही उत्पन्न हुआ होगा। इनके अलावा घुमन्तू गायक भी होते थे जिन्हें कुशीलव कहते थे। ये गीतों को याद करके वाद्य के साथ[1] लोगों में गाया करते थे। इन्हीं के कारण जनता में वीर-गीतों का प्रचार हुआ। रामायण में वर्णित है (भले ही बाद के प्रक्षिप्त अंश में)[2] कि कैसे राम के दोनों पुत्र कुश और लव घुमन्तू गायकों की तरह घूमा करते थे और लोगों की सभाओं में कवि वाल्मीकि की कविताओं को रटकर गाया करते थे।

जिन महाभारत और रामायण को हम भारतीयों के लोकप्रिय इतिहास-काव्य के नाम से जानते हैं वे प्राचीन दरबारी गायकों और घुमन्तू भाटों द्वारा अपने वर्तमान रूप में नहीं गाए जाते रहे। महाकवियों या कम से कम उन चतुर संग्रहकर्ताओं द्वारा, जिनमें कविता की थोड़ी-बहुत प्रतिभा रही होगी, ये एकाकार रूप में सगृहीत नहीं किए गए। पर इनमें लगातार प्रक्षेपों और परिवर्तनों के कारण शताब्दियों के दौरान असमान मूल्य वाली कविताएँ एकत्र होती गईं। यद्यपि इन दोनों कृतियों के केन्द्र प्राचीन वीर-गीत हैं तथापि भक्ति-परक इतिहास-साहित्य इनमें इतना सम्मिलित कर दिया गया, लम्बी धार्मिक, नैतिक कविताओं को इसमें इतना अधिक घुसा दिया गया कि विशेषकर महाभारत का तो इतिहास-काव्यत्व ही प्रायः नष्ट हो गया।

महाभारत क्या है ?[3]

बड़े सीमित अर्थ में ही हम महाभारत को 'इतिहास' और 'काव्य' कह सकते

---

altindischen Epos Leipzig, 1915, पृ० 62 टिप्पणी में राजपुताना के आधुनिक भाटों को तुलना सूतों से करते हैं। आज के भाटों और अन्य गायकों के बारे में मि० R. C. Temple, The Legends of Panjab, Vol. I (1884) पृ० VIII, तथा A. Baines Ethnography (Grundriss II, 5, 1912) पृ० 85 आ०।

१. मि० A. Holtzmann, Das Mahābhārata I पृ० 54 आ०, 65 आ०। H. Jacobi, Das Rāmāyaṇa, पृ० 67।

२. I, 4।

३. महाभारत के विषय के बारे में सूचना के लिए सबसे अच्छी सहायता H. Jacobi, Mahābhārata, Inhalts—Angabe, Index und Konkordanz der Kalkuttaer und Bombayer Ausgaben, Bonn 1903 से मिल सकती है। महाभारत की समस्याओं के लिए विशेषतः दे० E.W. Hopkins, The Great Epic of India, Its Character and Origin, New York 1901। प्रचुर पर दुर्भाग्य से विशालकाय विषय-संग्रह A. Holtzmann, Das Mahābhārata und seine Teile

हैं। वास्तव में एक अर्थ में महाभारत एक काव्य-कृति है ही नहीं, यह अपने में पूरा साहित्य है।

में है। जो चार भागों में Kiel से 1892-95 में प्रकाशित हुआ। इस महाग्रंथ का मूल्य महाभारत के पुनर्निर्माण के बारे में इसके लेखक की अस्वीकार्य मान्यताओं के कारण काफी कम हो गया है। इस इतिहास काव्य को एक कृति के रूप में उत्पन्न मानने का दूसरा सिद्धान्त भी अस्वीकार्य है—इस सिद्धान्त को J. Dahlmann ने अपनी पुस्तकों "Das Mahābhārata als Epos und Rechtsbuch" बर्लिन 1895, "Genesis des Mahābhārata" बर्लिन 1899 तथा Die Sāṁkhya—Philosophie als Naturlehre und Erlösungslehre, nach dem Mahābhārata", बर्लिन 1902 में प्रतिपादित किया है। इनमें से पहली पुस्तक का काफी महत्त्व है क्योंकि इसने इस काव्य के अध्ययन को नया जीवन प्रदान किया है। इसने "Dahlmann-साहित्य" को जन्म दिया है। मि० H. Jacobi को GGA 1896, सं० 1 तथा 1899 सं० 11 में, A. Ludwig को Sitzungsker der Kgl. böhmischen Ges. der Wiss. el. f. Phil. Prague, 1896 में; C. H. Tawney को Asiatic Ouarterly Review 1896, पृ० 347 आ० में; J. Jolly को Ind. Ant. 25, 1896, 343 आ० में; A, Barth को Journal des savants, April, June तथा July 1897 और RHR, T. 45, 1902, पृ० 191 आ० (Oeuvres II, 393 आ.) में; M. Winternitz को JRAS, 1897, पृ० 713 आ० तथा WZKM, XIV 1900, पृ० 53 आ० में; E. W. Hopkins को American Journal of Philology, 1898, XIX, सं० 1 में; W. Cartellieri को WZKM, 13, 1899, पृ० 57 आ० में; J. Kirste को Ind Ant. 31, 1902, पृ० 5 आ० में। महाभारत के बारे में प्राचीनतर साहित्य (Holtzmann ने इसका संक्षेप दिया है, वही, IV, पृ० 165 आ० में) से निम्नलिखित विशेष ध्यान देने योग्य हैं :Monier Williams, Indian Wisdom, चतुर्थ संस्करण, लण्डन, 1893; Sören Sörensen, Om Mahābhārata's stilling i den Indiske literatur (लैटिन भाषा में संक्षेप के साथ), Capenhagen, 1893; A. Lüdwig Uber das Rāmāyaṇa und die Beziehungen desselben zum Mahābhārata (II Jahresbericht des wiss. Vereins f. Valkskunde und Linguistik in Prague 1894)। और भी दे० Hopkins, ERE, 1915, 325 आ० तथा H, Oldenberg Das Mahābhārata, seine Entstehung, Seine Inhalt, seine Form, Gottingen, 1922.

महाभारत[1] का अर्थ होता है भारत लोगों के युद्ध का महान् आख्यान। ऋग्वेद में भारत लोगों को योद्धा जाति कहा गया है और ब्राह्मणों में दुःष्यन्त और शकुन्तला के पुत्र भरत का हमें उल्लेख मिलता है जिस भरत को भारत राजवंश का पूर्व पुरुष माना गया है। इन भरत या भारत लोगों का निवास गंगा और यमुना के ऊपरी क्षेत्र में था। भरत वंश के वंशजों में कुरु नामक राजा का स्थान विशेष महत्व का है और कुरु के वंशज कौरव (कुरुइदिस) लोग इतने दिनों तक भारत जाति के शासक थे कि कुछ समय बाद भरत जाति का ही नाम कुरु या कौरव पड़ गया। उनकी भूमि को कुरुक्षेत्र कहा जाने लगा जिसका परिचय हमें यजुर्वेद तथा ब्राह्मण ग्रंथों से मिलता है।[2] कौरव राजवंश में एक पारिवारिक झगड़े के कारण घोर युद्ध हुआ—यह युद्ध सही माने में उभयपक्षघाती था जिसमें कौरवों की प्राचीन जाति तथा इसके साथ भारतों का वंश प्रायः एकदम नष्ट हो गया। इस रक्त-रंजित युद्ध को हमें संभवतः एक ऐतिहासिक घटना माननी पड़ेगी यद्यपि हमें केवल महाभारत में इसके बारे में सुनने को मिलता है—इसका वर्णन गीतों में हुआ था और किसी महाकवि ने, जिसका नाम आज विस्मृत हो चुका है, इन गीतों को कुरुक्षेत्र में लड़े गये महायुद्ध के वीर-काव्य के रूप में जोड़ा। इलियद और निबेलुंगेन गीत की तरह इस वीर-काव्य का भी मुख्य वर्ण्य विषय विनाशकारी भयंकर युद्ध की दुःखान्त घटना है। यही प्राचीन वीरकाव्य महाभारत का केन्द्रबिन्दु है।

शताब्दियों के दौरान इस केन्द्रबिन्दु के चारो ओर आपस में एकदम भिन्न प्रकार की कविताओं का विशाल समूह एकत्र हो गया। पहले इस वीर-काव्य में ऐसी अनेक कथाएँ जोड़ी गईं जिनका इस वीर काव्य से बहुधा आनुषंगिक सम्बन्ध था—इन कथाओं में वीरों के प्राचीन इतिहास का उल्लेख था या फिर इन वीरों की सब तरह की साहसिकताओं का उपस्थापन। परन्तु महाभारत के युद्ध का इनमें कोई उल्लेख न था। इसके बाद अन्य वीरकथाओं और वीरकथाओंकी मालाओं के अंशों को भी इस वीरकाव्य में स्थान मिला जिनमें आरम्भिक युग के प्रसिद्ध राजाओं और वीरों का उल्लेख था—यद्यपि कुरु-युद्ध के गीत के साथ इनका कुछ भी सम्बन्ध न था। इस प्राचीन चारण कविता का कितना अंश मूल कविता का ही प्रासंगिक कथा-भाग था और कितना बाद में जोड़ा गया इसका निश्चय शायद कभी नहीं किया जा सकेगा। हमारे पास इस विश्वास के लिए प्रमाण है कि प्राचीन युग में इनमें से बहुत-सी प्रासंगिक कथाओं का स्वतंत्र कविता के रूप में भाटों द्वारा पारायण किया

---

१. भारत का अर्थ होता है "भरतों का युद्ध" (भारतः संग्रामः, पाणिनि, IV 2, 56)। महाभारत में ही महाभारत युद्ध (XIV, 81, 8.), 'महान् भरत युद्ध' और महाभारताख्यानम् (I, 62, 39) अर्थात् भरत के युद्ध का महान् आख्यान का उल्लेख है। महाभारत का नाम इसी दूसरे शब्द का संक्षिप्त रूप है।

२. ऊपर दे० पृ० 196.

जाता था।[१] जो कुछ भी हो हमारा महाभारत न केवल भारतों के युद्ध की वीर-कविता है अपितु यह सारी प्राचीन भारत कविता का संग्रहस्थान भी है।

इसके अलावा यह और भी बहुत-कुछ है। हम जानते हैं कि प्राचीन भारत की साहित्यिक गतिविधि अधिकांश ब्राह्मणों के हाथ में थी और हमने देखा है कि उन्होंने किस प्रकार अथर्ववेद के प्राचीन जनप्रिय जादू-गीतों का ब्राह्मणीकरण किया और किस प्रकार ब्राह्मणों ने अपनी कर्मकाण्डी बुद्धि द्वारा उपनिषदों के दर्शन को जो सही में विजातीय और यहाँ तक कि उनके मत का विरोधी था अपने कर्मकाण्ड से संयुक्त कर लिया। जैसे-जैसे वीर-गीतों की लोकप्रियता बढ़ती गई वैसे-वैसे इस इतिहास-काव्य को हथिया लेने की ब्राह्मणों की उत्सुकता भी बढ़ती गयी। यह कविता जो वास्तव में अपने मूल में शुद्ध धर्मनिरपेक्ष कविता थी कैसे इन ब्राह्मणों के द्वारा उनकी धार्मिक कविताओं तथा उनके धर्म की सारी बातों और कर्मकाण्डी ज्ञान के साथ मिला ली गयी इसकी कला उनको आती थी। इस का परिणाम यह हुआ कि देवताओं की कथाएं, ब्राह्मणधर्म-मूलक वर्णन, तथा यहां तक कि ब्राह्मण दर्शन, आचार तथा ब्राह्मणों का विधि-शास्त्र यह सभी महाभारत में ले लिये गये। इस कर्मकाण्डी जाति ने अपने सिद्धान्तों के प्रचार के माध्यम के रूप में तथा इसके द्वारा अपने प्रभाव को दृढ़ करने और उसको स्थिर करने के उद्देश्य से इस लोक-प्रिय इतिहास-काव्य का स्वागत किया। इन लोगों ने ही इस इतिहास-काव्य में नाना प्रकार के इतिहास[२] संगृहीत किये—इन इतिहासों में ब्राह्मणों के पूर्वज प्राचीन प्रसिद्ध ऋषियों के आश्चर्यजनक कार्य वर्णित हैं—कैसे उन्होंने यज्ञ और तपस्या के बल से न केवल मनुष्यों अपितु देवताओं से भी अधिक शक्ति प्राप्त की और कैसे उनका अनादर हो जाने पर उनके शाप के प्रभाव से राजाओं, महापुरुषों और यहां तक कि देवराज इन्द्र का भी पतन हो जाता था।

इन सब के बावजूद महाभारत बहुत अधिक लोक-प्रचलित ग्रंथ था, जनता के एक बड़े भाग की और खास कर क्षत्रियों की योद्धा जाति की सम्पत्ति था इसलिए

---

१. मालूम होता है कि अलग-अलग भाटों ने अलग-अलग प्रकार की कविता पढ़ने में दक्षता हासिल की थी क्योंकि पतंजलि ने (पाणिनि IV, 2, 60) यावक्रितिक अर्थात् जो यवक्रीत की कथा जानते हैं यायातिक अर्थात् जो ययाति की कथा जानता है इत्यादि शब्दों की व्युत्पत्ति बतलाई है। दे० F. Lacote, Essai sur Guṇāḍhya et la Bṛhatkathā, Paris, 1908, पृ० 138 आ०।

२. इनमें से कुछ का स्रोत तो आज भी ढूँढ़ा जा सकता है। उदाहरण के लिए भंगास्वन पुरुष से स्त्री बन गया था। उसकी कथा महाभा० XIII, 12 में आती है और यही कथा बौधायन श्रौतसूत्र में मिलती हैं; दे० Winternitz और Caland WZKM 17, 1903, पृ० 292 आ० तथा *351* आ० में।

यह केवल ब्राह्मणों का या किसी एक वैदिक संप्रदाय का ग्रंथ न बन सका। महाभारत के विकास में वेद को जाननेवाले विद्वान् ब्राह्मणों ने उतना हिस्सा नहीं लिया इसीलिए हमें ब्राह्मण धर्म तथा यज्ञ विज्ञान का उन भागों में भी, जो निश्चित रूप से ब्राह्मणधर्म से प्रभावित थे, स्पष्ट रूप में उथला ज्ञान प्राप्त होता है। राज-पुरोहित लोग भी सूतों की तरह राजाओं के दरबार में रहा करते थे और इसी कारण से वे इतिहास काव्य के अधिक संपर्क में आये। ये ही कम पढ़े-लिखे पुरोहित बाद में शिव या विष्णु के समर्पित प्रसिद्ध मन्दिरों तथा तीर्थ स्थानों के पुजारी बने—इन पवित्र स्थानों से संबन्धित तथा विष्णु और शिव के चारों ओर बुनी कथाओं का साहित्यिक उद्भावन इन देवस्थानों का कार्य रहा। हम आगे चल कर देखेंगे कि यह मुख्य रूप से पुराणों में, पर महाभारत में भी संपन्न हुआ है इसीलिए पुराणों की शैली में महाभारत में भी अनेक स्थानीय पुराण-कथाएँ, विष्णु और शिव की पुराण-कथाएँ, पुराणों की तरह के सृष्टि-क्रम, भौगोलिक सूचियाँ तथा वंशावलियाँ मिलती हैं।

परन्तु कोई भी इतिहास-काव्य भारत के उन स्थानों पर अधिक विकसित हुआ दिखाई देता है जहाँ विष्णु को सर्वोच्च देवता के रूप में पूजने का प्रचलन था। इसी कारण से महाभारत के धार्मिक-नैतिक अंशों में यह देवता इतने प्रमुख रूप में सामने आता है कि कभी-कभी तो लगने लगता है कि यह ग्रंथ विष्णु की पूजा का प्रतिपादक कोई धार्मिक ग्रंथ है। यह सही है कि शिव सम्बन्धी पुराण कथाओं तथा शैव मत-परक संदर्भों से यह ग्रन्थ शून्य नहीं है परन्तु यह आसानी से मालूम हो जाता है कि ये सब बाद में जोड़े गये हैं। जब यह इतिहास-काव्य उन स्थानों पर भी प्रचारित किया गया जहाँ शिव की पूजा का स्थान था तब ये अंश इसमें जोड़े गये[1]।

भारत में कुछ दूसरे धार्मिक संप्रदाय भी थे जो प्राचीन काल में ही साहित्यिक कार्य में संलग्न थे और कुछ अंशों में तो वे साधारण जनता को अपनी ओर करने का ब्राह्मणों से भी अधिक प्रयत्न करते रहे। ये थे संप्रदायों तथा मठों के स्थापक तपस्वी, जंगलों में रहनेवाले योगी तथा भिक्षु जो बुद्ध कालीन भारत में भी संख्या में कम नहीं थे। इन लोगों की भी अपनी कविताएँ थीं, मुनियों की कथाएँ थीं, सूत्र थे जिनमें ये अपने त्याग और संसार से घृणा के सिद्धान्तों का, आत्म-बलिदान और प्राणिमात्र पर दया करने का उपदेश दिया करते थे—साथ ही इनकी अपनी दन्त-कथाएँ, परी-कथाएँ और आचार-परक कथाएँ भी थीं जो इन मुनियों के दर्शन तथा आचार के नियमों का उदाहरण उपस्थित करने के लिए गढ़ी गयी थीं। बहुत हद तक इन मुनियों की कविता का भी महाभारत में समावेश हुआ।

महाभारत इस हद तक एक इतिहास-काव्य की अपेक्षा सभी प्रकार के वर्णनात्मक साहित्य का संग्रह बन गया है कि गद्य खण्ड भी—ब्राह्मणों की कहानियाँ, नीति

१. दे० H. Jacobi को GGA 1892 पृ० 629 आ० में।

कथाएँ जिनमें से कुछ केवल गद्य में हैं और कुछ अंशतः गद्य में अंशतः पद्य में हैं—इस इतिहास-काव्य में संगृहीत कर लिये गये हैं।[१]

सबसे अधिक महत्व की इस साहित्यिक कृति में, साथ साथ भी और मिले जुले रूप में भी, हमें युद्धोचित वीरगीतों के साथ रक्तरंजित युद्धभूमि का अतिरंजित वर्णन मिलता है, कर्मकाण्डियों की पवित्र कविता के साथ दर्शन, धर्म और विधि के ऊपर लिखे प्रायः उबादेने वाले लेख भी मिलते हैं, और उच्च विचार और मनुष्यों तथा पशुओं के प्रति छलकते प्रेम से पूर्ण मुनियों की मृदु कविताएँ मिलती हैं।

यही कारण है कि खुद भारतीय लोग महाभारत को सर्वदा इतिहास तथा काव्य मानते हुए भी प्राचीनतम स्मृति पर आधारित अतएव पूर्ण प्रमाण भूत होने के कारण इसे आचार, विधि और दर्शन का शास्त्र भी कहते हैं और १५०० वर्षों से भी अधिक काल से इस ग्रन्थ का मनोरंजन के लिए उतना ही उपयोग होता रहा है जितना शिक्षा देने और उदात्तीकरण के लिए।

कम से कम १५०० वर्ष पहले[२] भी यह महाभारत उसी रूप में या उससे बहुत मिलते-जुलते रूप में वर्तमान था जिस रूप में यह हस्तलिखित पोथियों तथा संस्करणों में आज हमें प्राप्त होता है—ऐसी एक कृति के रूप में जो करीब-करीब आज के प्राप्त इतिहास-काव्य के जितनी ही बड़ी थी। आजके इतिहास-काव्य की तरह इस प्राचीन इतिहास-काव्य में भी प्रारम्भ में एक बड़ी भूमिका थी, इस काव्य की उत्पत्ति की कथा थी तथा धर्म और आचार के ग्रंथ के रूप में इसकी प्रशंसा की गई थी। यह १८ पर्वों में विभाजित था और परिशिष्ट (खिल) के रूप में १९ वें पर्व हरिवंश को भी इसमें समाविष्ट कर लिया गया था। इसकी पूरी श्लोक संख्या १००,००० थी। आज भी इस महाकाय ग्रन्थ को इसके तत्वों में भिन्नता होने के बावजूद भारतीय लोग अपने आप में पूर्ण[३] एक ग्रन्थ मानते हैं जिसके कर्ता परमादरणीय ऋषि कृष्ण द्वैपायन अथवा

---

१. पौष्य पर्व (महा भा० I, ३) में, वन पर्व के मार्कण्डेय पर्व में, तथा नारायणीय पर्व में। ये सारे अंश मूल इतिहास-काव्य के क्षेत्र से बाहर हैं। इसलिए मैं Oldenberg Zur Geschichte der altindischen paose पृ० 65 आ०; Das Mahābhārata पृ० 21 आ० की इस बात से बिलकुल असहमत हूँ कि मुझे भी इनमें इतिहास-काव्य का आरम्भिक रूप दिखाई देता है। दे० Hopkins, The Great Epic of India, पृ० 266 आ०; Winternitz, DLZ 1919 अंक 441

२. आगे देखिए महाभारत के काल तथा इतिहास वाला प्रकरण।

३. इसलिए भी इसको एक संहिता अर्थात् "एक (पूर्ण) संग्रह", "एक सुसंबद्ध ग्रन्थ" कहा गया गया है जैसे महाभा० I, 1, 21।

व्यास हैं। इन्हीं ऋषि को चारो वेदों का संकलयिता[1] तथा पुराणों का लेखक भी मानते हैं। इतिहास-कथा के अनुसार ये ऋषि न केवल महाभारत के नायकों के समकालीन ही थे ये उनके नजदीकी सम्बन्धी भी थे। कभी-कभी ये ऋषि इस इतिहास-काव्य की घटनाओं में भी भाग लेते दिखाई देते हैं। महाभारत में उनका इतिहास विस्तार से दिया गया है।

ये प्रसिद्ध ऋषि पराशर के पुत्र थे। एक दिन मछली के पेट से उत्पन्न और मछुओं के द्वारा पाली गयी एक लड़की सत्यवती से पराशर की भेंट ही गई—वे इसके सौन्दर्य से इतने आकर्षित हो गये कि उन्होंने इसके साथ सहवास करने की इच्छा प्रगट की। सत्यवती सहवास के लिए एक ही शर्त पर राजी हुई कि पुत्र उत्पन्न होने के बाद उसको उसका कन्यात्व वापस मिल जाए। महर्षि ने उसको वैसा ही होने का वरदान दिया और उनके वरदान से ही मछली की दुर्गन्ध के स्थान पर उस कन्या के शरीर से दिव्य सुगन्धि निकलने लगी। उसके साथ ऋषि के सहवास के तुरन्त बादही उसको जमुना के बीच स्थित एक द्वीप पर पुत्र उत्पन्न हुआ जिसका नाम द्वैपायन या 'द्वीप में उत्पन्न' रखा गया। यह पुत्र बड़ा हुआ और शीघ्र ही ऋषियों का व्रत लेलिया। अपनी माँ से विदा लेते समय द्वैपायन ने अपनी माँ से कहा कि आवश्यकता होने पर उसके स्मरण मात्र से वह किसी भी समय उपस्थित हो सकता है। सत्यवती फिर कन्या बन गई और कुरु-राज सन्तनु की पत्नी हुई और इनसे दो पुत्र उत्पन्न हुए—चित्रांगद और विचित्रवीर्य। सन्तनु और चित्रांगद की मृत्यु के बाद विचित्रवीर्य को राज्य का उत्तराधिकारी बनाया गया। यह कम अवस्था में ही सन्तानहीन मर गया पर इसकी दो पत्नियाँ बच रहीं। वंश का उच्छेद हो जाने के भय से सत्यवती ने अपने अवैध पुत्र द्वैपायन को बुलाने का निश्चय किया जिससे कि नियोग की वैधानिक प्रथा के अनुसार द्वैपायन अपने छोटे भाई की पत्नियों से वंश का उत्तराधिकारी उत्पन्न करा दें। यद्यपि द्वैपायन पहुँचे ऋषि और साधु थे परन्तु थे बहुत कुरूप। जटा और दाढ़ी के बाल बड़े घने थे, गोल काली आखें थीं, रंग के काले थे (शायद इसीलिए उनको कृष्ण द्वैपायन कहा जाता है) और उनके शरीर से दुर्गंध निकलती थी। इसी कारण से जब वे एक रानी के पास गये तो वह उन्हें देख भी न सकी और अपनी आँखें मूँद ली। इसका परिणाम यह हुआ कि इससे जो पुत्र उत्पन्न हुआ वह जन्मान्ध निकला। बाद में यही जन्मान्ध महाराज धृतराष्ट्र हुआ। इसके बाद ऋषि दूसरी रानी के पास गए तो वह उनको देखते ही पीली पड़ गई। इस कारण से उससे जो पुत्र उत्पन्न हुआ वह पीले रंग का हुआ और इसीलिए

---

१. **इसीलिए उनका नाम व्यास या वेदव्यास अर्थात् "विभाग करने वाला" "वेद का विभाग करने वाला" पड़ा। महाभारत में ही इस प्रकार उनके नाम की व्याख्या मिलती है (I. 63, 88: विव्यास वेदान् यस्मात् स तस्माद् व्यास इति स्मृतः I, 60, 5; 105, 13)।**

उसको पाण्डु कहा जाने लगा। यही पाण्डु इस इतिहास-काव्य के पांच मुख्य नायकों का पिता हुआ। एक बार फिर द्वैपायन पहली रानी के पास गये परन्तु तबतक वह रानी चतुर हो गयी थी और उसने अपनी जगह अपनी नौकरानी को ऋषि के पास भेजा। ऋषि को इस भेद का पता न चला और उस नौकरानी से जो पुत्र उन्होंने उत्पन्न किया उसका नाम विदुर पड़ा। इतिहास-काव्य में इस विदुर को धृतराष्ट्र और पांडु के पुत्रों के शुभेच्छु और चतुर मित्र के रूप में दिखलाया गया है[१]।

यही ऋषि कृष्ण द्वैपायन व्यास जिनको कथा में इतिहास-काव्य के नायकों का दादा[२] बनाया गया है आज भी भारतीयों के द्वारा संपूर्ण महाभारत के लेखक माने जाते हैं। महाभारत की भूमिका[३] बतलाती है कि अपने तीनों पुत्रों के मरने के बाद ही व्यास ने अपने बनाए काव्य का लोगों के सामने प्रकाशन किया। उन्होंने यह काव्य अपने शिष्य वैशम्पायन को बताया और वैशम्पायन ने राजा जनमेजय के नाग-यज्ञ के अवसर पर यज्ञ के बीच-बीच में इसका पारायण किया। इस अवसर पर लोमहर्षण के पुत्र सूत उग्रश्रवा ने इस काव्य को सुना और हमारा महाभारत उस स्थान पर प्रारम्भ होता है जब शौनक के १२ वर्षों तक चलने वाले यज्ञ में नैमिषारण्य में एकत्र ऋषियों ने सूत उग्रश्रवा से प्रार्थना की कि वैशम्पायन से जो महाभारत की कथा उन्होंने सुनी उसे वे सुनाएँ। सूत ने उनकी प्रार्थना मान ली और वैशम्पायन से सुनी कथा का पारायण करने के पहले उन्होंने जनमेजय के नागयज्ञ की कहानी सुनायी।

प्रायः सम्पूर्ण महाभारत प्रवचनों के रूप में लिखा गया है जो निश्चयरूप से इसकी प्राचीनता का प्रमाण है[४]। आरम्भ की कथा के प्रवक्ता उग्रश्रवा हैं और मूल काव्य में वैशम्पायन प्रवक्ता हैं। वैशम्पायन के वर्णन के बीच में अनेक लोगों के द्वारा कही गई अगणित कहानियाँ घुसाई गई हैं। कहानियों के भीतर कहानियों का घुसाना

---

१. महाभा० I, 63; 100 आ०।

२. नियोग की विधि के अनुसार व्यास धृतराष्ट्र और पांडु के केवल उत्पादक हैं, पिता नहीं। दोनों रानियों के स्वर्गीय पति को ही उनका पिता माना जाता है।

३. 1, 1, 95 आ०।

४. "इलियद में भी हम देख सकते हैं कि इस प्राचीन इतिहास-काव्य में बहुत अधिक संवाद हैं। केवल बाद के इतिहास काव्य में ही यह नाटकीय प्रभाव पृष्ठ-भूमि में चला गया है।...पर यह इतिहास-काव्य तभी पूर्णता प्राप्त करता है जब संवाद के साथ-साथ कथा का आकार भी छन्दोबद्ध रूप प्राप्त कर लेता है। अन्त में चल कर सारे संवादों को निकाल दिया जाता है और घटनाओं का वर्णन केवल छन्दों में रह जाता है।" Ernst Windisch, Māra und Buddha (Abhandl. der philolog.—histor. Klasse der K. sachsischen Ges. der Wiss Leipzig 1895), पृ० २२२ आ०। महाभारत अब भी उस "अन्तिम रूप" से बहुत दूर है।

भारतीय साहित्य की प्रिय पद्धति रही है। बहुत स्थानों पर वर्णनों तथा लोगों के प्रवचनों के पहले कोई भूमिका नहीं है—केवल गद्य में वैशम्पायन उवाच, युधिष्ठिर उवाच, द्रौपदी उवाच आदि से ये प्रारम्भ कर दिये गये हैं।

महाभारत की भूमिका में इसके कहे जाने वाले लेखक के बारे में दी गयी सूचना कितनी ही अविश्वसनीय क्यों न प्रतीत हो परन्तु फिर भी हमें कुछ ध्यान देने योग्य बातें मिलती हैं। हमें बतलाया गया है कि ऋषि व्यास ने अपनी कृति को संक्षेप में भी सुनाया और विस्तार से भी उपस्थित किया, अलग अलग प्रवक्ता ने तीन अलग अलग जगहों से काव्य का आरम्भ किया है और इसका विस्तार सर्वदा एक-जैसा नहीं रहा है। उग्रश्रवा कहते हैं कि उनके ज्ञान में यह काव्य ८८०० श्लोकों का है जब कि व्यास यह घोषित करते हैं कि उन्होंने भारतकाव्य की इस संहिता को २४००० श्लोकों में निबद्ध किया है और कहा है कि गौण कथाओं को निकाल कर कुशल पाठक इतने (२४००० श्लोकों) का पारायण करते हैं।" इसके तुरन्त बाद ही अविश्वसनीय ढंग से यह कहा गया है कि व्यास ने एक इतिहास काव्य ६० लाख श्लोकों में भी बनाया—३० लाख श्लोकों का काव्य देवताओं के लिए, १५ लाख श्लोकों का पितरों के लिए, १४ लाख श्लोकों का गन्धर्वों के लिए तथा १ लाख श्लोकों का मनुष्यों के लिए[१]। वास्तव में यह संख्या महाभारत के वर्तमान रूप की ओर संकेत करती है और इसका आज दूसरा नाम शतसाहस्री संहिता (१ लाख श्लोकों की संहिता) भी पड़ गया है। इन उल्लेखों से किसी को भी यह मालूम हो जाएगा कि इस कृति की एकरूपता में दृढ़ विश्वास के बावजूद खुद भारतीयों ने ही इस बात की याद को लिख रखा है कि मूल के अपेक्षाकृत छोटे काव्य से वर्तमान रूप तक इस महाभारत का विकास क्रमशः ही हुआ है।

महाभारत का भारतीयों के लिए क्या महत्व है इसका अतिशयोक्ति-पूर्ण वर्णन हमें महाभारत की भूमिका में ही मिलता है। उदाहरण के लिए वहां कहा गया है कि

"जैसे दही में मक्खन, आर्यों में ब्राह्मण, वेदों में आरण्यक, औषधियों में अमृत, जलाशयों में समुद्र, और चौपायों में गाय प्रधान है वैसे ही इतिहासों में महाभारत प्रधान है।"

"जिस किसी ने इस कथा को सुन लिया है उसको अन्य किसी कथा में आनन्द नहीं मिलेगा चाहे वह कथा कितनी ही अच्छी क्यों न हो; जैसे कोकिल[२] का गीत सुन लेनेवाले को कौवे की कठोर वाणी में आनन्द नहीं मिलता"

"इस सर्वश्रेष्ठ इतिहास से ही कवि लोग अपने विचार का निर्माण करते हैं जैसे पाँच भूतों से तीनों लोकों का निर्माण होता है।"

---

१. महाभा० I, 1, 51 आ०; 81; 101 आ०।

२. भारतीय कवियों के लिए कोकिल या भारतीय कक्कू का वही महत्व है जो नाइटिंगेल का हमारे लिए।

"जो कोई मढ़ी सीगों वाली सौ गाएँ विद्वान् और वेदज्ञ ब्राह्मण को दान में देकर जितना पुण्य प्राप्त करता है उतना ही पुण्य उस व्यक्ति को प्राप्त होता है जो भारत काव्य की पवित्र कथाओं को नित्य सुनता है।"

"यह इतिहास जय का काव्य है। जो राजा जय चाहता है यदि वह इसका श्रवण करे तो वह सारी पृथ्वी पर विजय प्राप्त कर लेगा और अपने शत्रुओं को जीत लेगा।"

"यह धर्म का पवित्र ग्रन्थ है, यह अर्थ का श्रेष्ठ ग्रन्थ है। अनन्त बुद्धि वाले व्यास ने इसे मोक्ष के ग्रंथ के रूप में भी लिखा[1]।"

"मन, वाणी और काय के सारे पाप उस व्यक्ति से तुरन्त दूर भाग जाते हैं जिसने इस काव्य का श्रवण कर लिया हो।"

"ऋषि कृष्ण द्वैपायन ने प्रतिदिन उठकर (उपासना और तपस्या करने के लिए) इस महाभारत नामक अद्भुत इतिहास का तीन वर्षों में प्रणयन किया। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के बारे में जो इस ग्रन्थ में मिलता है वह अन्यत्र भी मिल सकता है परन्तु जो यहाँ नहीं है वह विश्व में कहीं भी नहीं मिल सकता[2]।"

हम लोगों के लिए, जो विश्वासी हिन्दुओं की दृष्टि से नहीं अपितु साहित्य के आलोचक इतिहासकार की दृष्टि से महाभारत को देखते हैं, यह कला-कृति के अलावा बाकी सब कुछ है। जो कुछ भी हो हम इसे किसी एक लेखक या चतुर संग्रह कर्ता की कृति नहीं मान सकते। अपनी समग्रता में महाभारत एक साहित्यिक दैत्य है। आज तक किसी कलाकार के हाथों ने परस्पर विरोधी तत्वों को एक सुनियोजित काव्य के रूप में सिलाने का दुष्करप्राय कार्य सम्पादित करने का प्रयत्न नहीं किया। केवल कवित्वशून्य धर्माचार्य, टीकाकार और फूहड़ प्रतिलिपिकार ही परस्पर असम्बद्ध अंशों को, जो विभिन्न शताब्दियों से आये हैं, एक अनगढ़ संग्रह में इकट्ठे करने में सफल हुए। परन्तु कविता के इस जंगल में—जिसको विद्वानों ने अब आफ करने का प्रयत्न आरम्भ किया है—बहुत सी सच्ची और अच्छी कविताएँ उगी हैं, परन्तु वे सब जंगली झाड़ों में छिपी हैं। इस अनगढ़ संग्रह के भीतर से अमर काव्यात्मक कला तथा गुरु-गम्भीर ज्ञान के प्रसून चमकते हैं। महाभारत एक पूरे साहित्य का प्रतिनिधित्व करता

---

१. धर्म, "विधि और प्रचलन" अथवा "आचार", अर्थ-"उपयोगिता", "फायदे" "व्यावहारिक जीवन" और काम "ऐन्द्रिय उपभोग" ये जीवन के तीन उद्देश्य हैं। कुछ हद तक ये भारतीय आचार शास्त्रों के अनुसार सम्पूर्ण मानव जीवन के अस्तित्व के सर्वस्व तथा चरम उद्देश्य हैं। पर सारे प्रयत्नों का अंतिम लक्ष्य मोक्ष "मुक्ति" है जिसको पाने के लिए विभिन्न सम्प्रदायों और दार्शनिक प्रस्थानों ने विभिन्न मार्ग बतलाए हैं।

२. I. 1. 261 आ०; 2, 382 आ०; 393; 62, 20 आ०, 23, 25, 52 आ० अन्तिम श्लोक से मिलाइये बंगाली कहावत "महाभारत में जो नहीं है वह भारतवर्ष में नहीं मिल सकता।"

है न कि यह एक सुनियोजित ग्रन्थ है और इसमें अनेक और परस्पर भिन्न बातें एकत्र हैं। इस कारण किसी दूसरे ग्रन्थ की अपेक्षा महाभारत हमें भारतीय लोगों की आत्मा के गहन तल का अधिक अच्छा ज्ञान कराता है।

इस बात को महाभारत के विषयों तथा इसके अनेक सम्बन्धित भागों के निम्नलिखित सर्वेक्षण से दिखाया जा सकता है।[१]

महाभारत का मुख्य वर्ण्य-विषय

वर्षों पहले अडोल्फ होल्ट्ज़मान (सीनियर) ने "पहले पहल जर्मन कविता के प्रेमियों के लिए प्राचीन भारत के राष्ट्रीय इतिहास-काव्य का सार" उपस्थित करने का

१. संपूर्ण महाभारत का अंग्रेजी गद्यानुवाद किशोरीमोहन गांगुली ने किया और प्रतापचन्द्र राय (कलकत्ता 1884-1896) ने प्रकाशित किया तथा मन्मथनाथ दत्त (कलकत्ता 1895-1905) ने। एक सुंदर काव्यात्मक अनुवाद, अंशतः गद्य में अंशतः पद्य में, रमेशचन्द्र दत्त ने अपने "Mahābhārata, the Epic of Ancient India condensed into English Verse", London 1899 नामक ग्रन्थ में किया है। महाभारत के अंश John Muir के "Original Sanskrit Texts" (1858-1872) तथा "Metrical Translations from Sanskrit writers" (London. 1879) ग्रन्थों में तथा Monier Williams के "Indian Wisdom" चतुर्थ संस्करण लंदन 1893 में भी मिल सकते हैं। अठारह पर्वों का एक सारांश Monier Williams ने अपने ग्रन्थ Indian Epic Poetry, लंडन 1893 में दिया है; कथा के सूत्र तथा अंश J. C. Oman ने The Great Indian Epics, लन्डन 1899, पृ० 93 आ० में लिखे हैं। पहले 10 पर्वों का फ्रेन्च भाषा में अनुवाद H. Fauche, ने पेरिस से 1963-1970 में प्रकाशित कराया। बड़े अंशों का एक संग्रह Ph. E. Foucaux ने Le Mahābhārata, onze épisodes tirés de ce poéme épique, Paris, 1862 में दिया है। कई घटनाओं को P. E. Pavalini ने 1902 में इतालवी भाषा में अनूदित करके प्रकाशित किया है। जर्मन भाषा में भी F. Bopp (बर्लिन 1824) ने, कवि Friedrich Rückert (s. R. Boxberger "Rückert-Studien" 1878, पृ० 84-122 तथा "Rückert Nachlese" I. 270; II, 315 आ०) में, A. Holtzmann ने Indische Sagen, 1845-1847 (नया संस्करण–M. Winternitz, Jena, 1912 तथा 1921) में, J. Hertel ने Indische Märchen, Jena, 1919, अंक 10-14 में तथा W. Porzig ने "Indische Erzähler" (अंक 12 और 15, Leipzig 1923, 192 आ०) नामक ग्रन्थमाला में महाभारत के अंश प्रकाशित किए हैं। महाभारत के दार्शनिक अंशोंका जर्मन अनुवाद

साहसपूर्ण प्रयत्न किया[1]। उन्होंने निश्चय ही इस सही दृष्टिकोण से अपना कार्यारम्भ किया कि महाभारत एक भारतीय इतिहास-काव्य नहीं है अपितु यह केवल "प्राचीन भारतीय वीर-गीतों का भग्नावशेष है''जिनको काफी पुनः संस्करण, संवर्धन और विरूपकरण के बाद महाभारत में समाविष्ट किया गया है।" परन्तु ईर्ष्यास्पद आत्म-विश्वास के साथ वे अपने-आपको इस योग्य समझते थे कि वे प्राचीन मूल वीर-कविता को इस पुनः संस्कृत तथा विरूपीकृत अवशेष से निकालकर उसका उद्धार कर सकते हैं। उन्होंने सोचा कि परित्याग, संक्षेपीकरण और परिवर्तनों के द्वारा उन्होंने जर्मन छन्दों में एक भारतीय वीर-कविता की रचना की है जिसमें हमें प्राचीन काल में भारतीय भाटों द्वारा गाये जानेवाले वास्तविक महाभारत का अपेक्षाकृत अच्छा रूप मिलता है जितना कि शायद वर्तमान मूलग्रन्थ के शाब्दिक अनुवाद से नहीं मिल सकेगा। अपने स्वाभाविक अन्तर्ज्ञान तथा गहरी काव्यात्मक संवेदना के बल पर होल्ट्ज़मान प्रायः सही बातों तक पहुँच गए हैं परन्तु संस्कृत मूल से बिना किसी कारण वे इतने दूर हट गये कि उनकी कृति को हम केवल प्राचीन महाभारत का एक बिलकुल स्वतन्त्र रूप कह सकते हैं। परन्तु यह किसी भी तरह उस प्राचीन महाभारत का सही उपस्थापन नहीं कहा जा सकता। वास्तव में होल्ट्ज़मान ने एक असम्भव कार्य को सम्पादित करने का प्रयत्न किया। प्राचीन भारत के राष्ट्रीय इतिहास-काव्य का इसके मूल रूप में उद्धार करने का कोई भी प्रयत्न इतना यादृच्छिक होगा कि इसका मूल्य केवल वैयक्तिक ही रह जाएगा।

दूसरी ओर महाभारत के गीतों के विशाल समूह से तत्व का अंश, अर्थात् कौरवों और पाण्डवों के युद्ध का वर्णन जो किसी भी दशा में मूल इतिहास-काव्य का विषय रहा होगा, निकाल लेना अपेक्षाकृत सरल है। आगे यही किया जाएगा परन्तु यह आवश्यक होगा कि वह संक्षिप्त हो। हम महायुद्ध की कथा वर्णित करेंगे साथ ही जहाँ तक सम्भव होगा हम मुख्य नायकों का उल्लेख करनेवाली प्रमुख गौण कथाओं का भी वर्णन उपस्थित करेंगे। ऐसा करते समय हम मूल इतिहास-काव्य के बारे में उपस्थापित सन्देहास्पद प्रस्तुतियों पर विचार नहीं करेंगे अपितु जो कुछ मूल कथा से सम्बद्ध न होगा उस पर फिलहाल ध्यान न देते हुए आज के उपलब्ध महाभारत के पाठ का ही श्रद्धापूर्वक अनुसरण करेंगे।

कौरवों और पाण्डवों की उत्पत्ति

एक समय भरतों के देश में कुरु-वंश के सन्तनु नामक राजा राज्य करते

O. Strauss तथा P. Deussen ने Vier philosophische Texte des Mahābhāratam : सनत्सुजात पर्व, भगवद्गीता, मोक्षधर्म, अनुगीता, Leipzig 1906 में किया।

1. Indische Sagen, भाग २; Die Kuruinge, Karlsruhe 1846।

थे। मानवी-रूपधारिणी गंगादेवी[1] से इस राजा को भीष्म नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ और उसको राजा ने राजगद्दी का उत्तराधिकारी बनाया। एक दिन, जब कि बड़े होकर भीष्म योद्धाओं के सभी गुणों से विभूषित अप्रतिम वीर बन चुके थे, सन्तनु ने मछुओं की रूपवती कन्या सत्यवती को देखा, उस पर मोहित हो गए और उसको अपनी पत्नी बनाना चाहा। मछुओं का राजा जो सत्यवती का पिता था सत्यवती को देने के लिए उसी अवस्था में राजी हो सकता था जब कि उसकी कन्या से उत्पन्न पुत्र ही राजगद्दी का उत्तराधिकारी बने। परन्तु सन्तनु इसके लिए राजी न हो सकते थे यद्यपि वे अपनी प्रेयसी को छोड़ना भी न चाहते थे। भीष्म को शीघ्र ही यह मालूम हो गया कि उनके पिता बड़े उद्विग्न हैं और जब उनको उनकी उद्विग्नता के कारण का पता चला तो वे स्वयं अपने पिता की ओर से सत्यवती को मनाने मछुओं के राजा के पास गये। उन्होंने न केवल गद्दी के अपने अधिकार को छोड़ने की इच्छा ही व्यक्त की अपितु उन्होंने ब्रह्मचर्य का व्रत भी धारण कर लिया जिससे कि उनसे उत्पन्न पुत्र भी राज्य पर अपना अधिकार न जता सके। इस पर मछुए ने प्रसन्नता से अपनी कन्या उनके साथ कर दी। सन्तनु ने सत्यवती से विवाह कर लिया और उससे उनको चित्रांगद और विचित्रवीर्य नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए। इसके बाद जल्दी ही सन्तनु मर गए और युद्ध में एक गन्धर्व के हाथ युवक चित्रांगद भी मारा गया। इसके बाद परिवार में बड़ा होने के नाते भीष्म ने विचित्रवीर्य को राजा बनाया। विचित्रवीर्य छोटी अवस्था में निस्सन्तान मर गया पर उसकी दो पत्नियाँ थीं। सत्यवती ने विचित्रवीर्य की दो पत्नियों से नियोग की प्राचीन प्रथा के अनुसार उत्तराधिकारी उत्पन्न कराने की प्रार्थना भीष्म से की, जिससे वंश-परम्परा नष्ट न हो। परन्तु अपनी ब्रह्मचर्य की प्रतिज्ञा को याद करते हुए भीष्म ने घोषणा की कि भले ही सूर्य अपने प्रकाश को छोड़ दे, आग अपनी उष्णता त्याग दे, चन्द्रमा की किरणें शीतलता छोड़ दें, इन्द्र अपनी वीरता त्याग दें और धर्मराज[2] अपने न्याय से विमुख हो जाएँ पर वे कभी अपनी प्रतिज्ञा से पीछे नहीं हट सकते। तब सत्यवती को अपने नाजायज पुत्र व्यास की याद आयी और भीष्म की अनुमति से उन्होंने व्यास को बुलाकर वंश-परम्परा को आगे बढ़ाने को कहा। और, जैसा कि हमने पहले ही देखा, ऋषि व्यास ने धृतराष्ट्र, पांडु और विदुर को उत्पन्न किया। चूँकि धृतराष्ट्र जन्मान्ध थे इसलिए पांडु राजा बने। धृतराष्ट्र ने गान्धार की राजकुमारी गान्धारी से विवाह किया और उससे उनको सौ पुत्र उत्पन्न हुए जिनमें सबसे बड़े पुत्र का नाम दुर्योधन पड़ा। पाण्डु की दो पत्नियाँ थीं—पृथा या कुन्ती यादवों के राजा की पुत्री थी और माद्री शल्य की बहन मद्रराज की। कुन्ती से तीन पुत्र उत्पन्न हुए—युधिष्ठिर जो सबसे बड़े थे, अर्जुन और भीम जो उसी दिन पैदा हुए थे जिस दिन दुर्योधन। माद्री से नकुल और सहदेव इन जोड़ुवों का जन्म हुआ।

---

१. गंगा नदी की अधिष्ठात्री देवी।

२. मृत्यु तथा धर्म के देवता।

यहाँ इतिहास-काव्य में एक बड़ी ही अविश्वसनीय कहानी (जो मुश्किल से ही प्राचीन इतिहास काव्य का अंग रही होगी) वर्णित है जिसके अनुसार इतिहास-काव्य के ये पाँच प्रमुख नायक पाण्डु के द्वारा उत्पन्न नहीं अपितु पाण्डु के लिए उत्पन्न कराए गये माने गए हैं। पाण्डु ने मैथुन करते हुए मृग के जोड़े को मार दिया। वास्तव में वह मृग एक ऋषि था जो आनन्द करने के लिए मृग का रूप धारण किये था। उस ऋषि ने शाप दिया कि पाण्डु प्रेम का आनन्द लेते हुए ही मर जाएगा। इसलिए पाण्डु ने तपस्वी के रूप में रहने का तथा लैंगिक सुख का त्याग करने का निश्चय किया। वंशधर की कामना से कुन्ती ने अपने से पुत्र उत्पादन कराने के लिए देवताओं का स्मरण किया। धर्मराज ने उससे युधिष्ठिर को उत्पन्न किया, वायु ने शक्तिशाली भीम को और देवराज इन्द्र ने अर्जुन को। कुन्ती की प्रार्थना पर दो अश्विनी कुमारों ने माद्री के साथ सहवास किया जिससे नकुल और सहदेव ये जोड़ुवे पुत्र उत्पन्न हुए।

पाण्डव और कौरव-धृतराष्ट्र के दरबार में

इसके बाद जल्दी ही पाण्डु का देहावसान हो गया और अन्धे धृतराष्ट्र ने राज्य की बागडोर सम्भाली। पाण्डु के पाँचों पुत्र अपनी माँ कुन्ती के साथ (माद्री पाण्डु के साथ ही सती हो गई थी) धृतराष्ट्र के दरबार में, हस्तिनापुर चले गये और वहाँ उनके चचेरे भाइयों के साथ उनकी शिक्षा-दीक्षा हुई।

लड़कपन के खेलों में भी पाण्डु के पुत्र धृतराष्ट्र के पुत्रों से बीस पड़ते जिससे धृतराष्ट्र के पुत्र जलते थे। खास करके भीम शक्ति की अधिकता का परिचय देते थे और अदम्य शक्ति का बहुत बार प्रदर्शन किया जो धृतराष्ट्र के पुत्रों को बहुत बुरा लगता था। उदाहरण के लिए यदि लड़के पेड़ पर चढ़ते तो वे पेड़ को इस तरह हिला देते कि फलों के साथ उनके चचेरे भाई भी नीचे टपक पड़ते। इस कारण से दुर्योधन भीम से आंतरिक घृणा करने लगा और कई बार भीम को मारने का प्रयत्न किया पर सफल न हो सका। बच्चे बड़े होने लगे और धनुर्विद्या में पारंगत दो प्रसिद्ध ब्राह्मण कृप और द्रोण उन लड़कों को पढ़ाने के लिए रखे गये। उनके शिष्यों में धृतराष्ट्र और पाण्डु के पुत्रों के अतिरिक्त द्रोण का पुत्र अश्वत्थामा तथा एक सूत का पुत्र कर्ण भी था। जल्दी ही दुर्योधन और भीम गदा के युद्ध में, अश्वत्थामा मन्त्र-युद्ध की कला में, नकुल और सहदेव तलवार चलाने में तथा युधिष्ठिर रथ-युद्ध में द्रोण के सबसे अच्छे शिष्य बन गये। अर्जुन न केवल सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर ही थे अपितु वे हर माने में सबको पीछे छोड़ गए। इस कारण से धृतराष्ट्र के पुत्र उनसे बहुत अधिक जला करते थे।

जब राजकुमारों ने अपनी शिक्षा पूरी कर ली तो द्रोण ने एक प्रदर्शन का आयोजन किया जिसमें उनके शिष्य अपनी-अपनी कुशलता दिखाने वाले थे। यह एक भव्य और उल्लास पूर्ण सभा थी जिसमें राजा, रानियाँ और अनेक वीर उपस्थित थे। भीम और दुर्योधन ने गदा युद्ध का प्रदर्शन किया जो इतना मारक होने लगा कि

दोनो लड़ने वालों को अलग करना पड़ा। धनुष चलाने में अर्जुन की निपुणता की सब ने सराहना की। परन्तु कर्ण भी मंच पर आया और वे सारे कर्तब कर दिखाए जो अर्जुन ने दिखाए थे। इससे अर्जुन को बड़ा क्रोध आया। परन्तु दुर्योधन ने कर्ण को आनन्द से गले लगाया और अमर मित्रता का वचन दिया। कर्ण ने अर्जुन को द्वन्द्व युद्ध के लिए ललकारा परन्तु पाण्डवों ने सूत का पुत्र होने के कारण घृणा से कर्ण की हँसी उड़ायी।

युधिष्ठिर राजगद्दी के उत्तराधिकारी बने—उनके तथा उनके भाइयों के विरुद्ध कुचक्र (लाक्षा-गृह)

एक साल बीत जाने के बाद धृतराष्ट्र ने कुरु-वंश के सब से बड़े पुत्र युधिष्ठिर को राज्य का उत्तराधिकारी नियुक्त किया जो अपनी वीरता तथा अन्य सभी गुणों के कारण उस के योग्य थे। दूसरे पांडवों ने युद्ध विद्या में और भी निपुणता प्राप्त की और अपनी वीरता के भरोसे विजय-यात्रा पर भी निकले। जब धृतराष्ट्र को पांडवों के इन कार्यों का पता चला जिनसे पाण्डव दिन-प्रतिदिन शक्तिशाली होते जा रहे थे तो उसे अपने पुत्रों के भविष्य के बारे में कुछ चिन्ता होने लगी। इस कारण से जब दुर्योधन, उसके छोटे भाई दुश्शासन, उस के मित्र कर्ण तथा उस के मामा शकुनि ने मिल कर पाण्डवों के विरुद्ध एक षडयंत्र रचा तो उन्होंने पाया कि बूढ़ा राजा धृतराष्ट्र उनका सहायक है। उन्होंने धृतराष्ट्र को विवश किया कि वह पाण्डवों को किसी बहाने वारणावत भेज दे। वारणावत में दुर्योधन ने एक कुशल कारीगर को लाख और अन्य अति-जलनशील वस्तुओं का एक घर बनाने के लिए नियुक्त किया जिस में पाण्डवों को रहना था। रात में जब वे सब सो जाते तो उस घर में आग लगा दी जाती और उन सब का अन्त हो जाता। पर विदुर ने अलग में युधिष्ठिर से यह धोखा-पूर्ण योजना बता दी और इस कार्य के लिए विदुर ने एक म्लेच्छ भाषा का प्रयोग किया—म्लेच्छ भाषा यानी किसी अभारतीय जाति की भाषा जिसे दूसरे न समझ सकें। चूँकि पांडवों को भय था कि दुर्योधन वधिकों के हाथ उन्हें किसी दूसरी तरह मरवा डालेगा इसलिए संदेह उत्पन्न न होने के लिए पांडवों ने योजना का अनुगमन करने का नाटक रचा, वारणावत चले गए और लाख के घर में डेरा डाला। पर पहले से खोदे गए सुरंग के रास्ते वे जंगल में भाग गए, मकान में आग लगा दी गयी। उस में मकान बनाने वाले कारीगर के अलावा एक शूद्र स्त्री नशे में चूर अपने पाँच पुत्रों के साथ सोयी थी। सब को विश्वास हो गया था कि माता कुन्ती के साथ पांडव जल कर मर गये। जब धृतराष्ट्र के दरबार में उनकी और्ध्वदेहिक क्रिया सम्पन्न की जा रही थी उसी समय पांचो भाई अपनी मां के साथ गंगा के दूसरे पार जंगलों में भटक रहे थे। मध्य रात्रि में वे घने जंगल में थके भूखे और प्यासे पहुँचे। कुन्ती को प्यास लगी, भीम अपनी मां और चारो भाइयों को एक बरगद के वृक्ष के पास ले गये। उन से जब तक वे पानी ढूंढ़ न लाएं जब तक वहां रुकने को कहा। जल-पक्षियों के सहारे वे एक तालाब के पास

पहुँचे, वहाँ उन्होंने स्नान किया, पानी पीया और दूसरों को पानी पिलाने के उद्देश्य से उन्होंने अपने दुपट्टे को पानी से भर लिया। वे जल्दी ही वापिस लौटे पर देखा कि सभी पेड़ के नीचे सो गये हैं। इस प्रकार अपनी मां और भाइयों को सोता देख वे बड़े दुःख भरे शब्दों में उनके भाग्य पर रोने लगे।

हिडिम्बासुर और उसकी बहन

इस वट वृक्ष के पास एक भयानक नरभक्षी दैत्य हिडिम्बासुर रहा करता था। उसको मनुष्य के मांस की गंध लगी और ऊँचे वृक्ष पर चढ़ कर उसने इन सोते आदमियों को देखा। बहुत दिनों बाद इतना स्वादु भोजन मिलने की आशा से उसके मुंह में पानी आ गया और उसने अपनी बहन दैत्या हिडिम्बा से कहा कि वह वहाँ जाये और देखे कि वे कैसे आदमी हैं। इस के बाद वे दोनो मिल कर ताजे नरमांस और रक्त के भोजन का आनन्द लेंगे और बाद में आनन्द से नाचे-गायेंगे। दैत्या उनके पास पहुँची पर ज्यों ही उसने भीम को देखा त्यों ही उस के मन में बलिष्ठ युवा भीम के प्रति गहरा प्रेम उत्पन्न हो गया। इस कारण से उसने सुन्दर नारी का रूप धारण किया और मुस्कराते हुए भीम के पास गयी और बोली कि इस जंगल में उस का भाई नर-भक्षी राक्षस रहता है जिसने उसे भेजा है पर वह भीम से प्रेम करती है और भीम के अलावा किसी अन्य पुरुष को अपना पति नहीं बनाना चाहती। भीम उसका उपभोग करें तो वह उन को राक्षस से बचा देगी। भीम ने उत्तर दिया कि उन के मन में काम के प्रति समर्पण की तथा अपनी मां और भाइयों को आपत्ति में छोड़ देने की बात ही नहीं पैदा होती। हिडिम्बाने उत्तर दिया कि भीम अपने सम्बन्धियों को जैसे भी हो जगा दें तो वह उन सब को बचा देगी। भीम ने प्रत्युत्तर दिया कि जो कुछ भी हो वे अपनी मां और भाइयों को गहरी नींद से जगाने का स्वप्न में भी ख्याल नहीं कर सकते। राक्षस, यक्ष, गन्धर्व या और भी इसी तरह के दुष्ट से उन को जरा भी भय नहीं लगता और वे स्वयं उस नर-भक्षी को देख लेंगे। इसी समय हिडिम्ब यह सोचकर कि उसकी बहन को गये बहुत देर हो गई है स्वयं वहाँ उपस्थित हुआ और प्रेम में पागल हिडिम्बा को क्रोध से मारने चला। पर भीम ने उसका सामना किया और उस को लड़ने के लिए ललकारा। भयानक युद्ध के बाद, जिस के कारण भीम के भाई लोग जाग गये, भीम ने राक्षस को मार डाला। इस के बाद जब भीम हिडिम्बा की ओर लपके तो युधिष्ठिर ने उनको नारी को मारने से मना किया। उसकी सच्ची प्रार्थना पर भीमने स्वीकार किया कि जब तक उस को पुत्र उत्पन्न नहीं हो जाता तब तक वे उसके पास रहेंगे। युधिष्ठिर ने यह व्यवस्था दी कि सारे दिन तो भीम हिडिम्बा के साथ रहें पर किसी भी हालत में वे हर रोज सूर्यास्त के पहले लौट आएं। इस पर हिडिम्बा भीम के साथ हवा में उड़ कर मनोहर पर्वत पर गयी और वहां वे प्रेम के आनन्द का तब तक उपभोग करते रहे जब तक उस दैत्या को गर्भ न रह गया। इस गर्भ से एक पुत्र उत्पन्न हुआ जो आगे चल कर एक शक्तिशाली

राक्षस बना। उसका नाम घटोत्कच पड़ा और बाद में महाभारत के युद्ध में उसने पांडवों की बड़ी सहायता थी।

बकासुर और ब्राह्मण-परिवार

तपस्वियों का वेष बनाकर पांडव लोग अनेक साहसपूर्ण कार्य करते हुए जंगल-से-जंगल घूमते रहते और अंत में वे एकचक्रा नगर में पहुँचे। बिना किसी के द्वारा पहचाने वे एक ब्राह्मण परिवार के साथ टिक गये। दिन में वे भोजन के लिए भिक्षा माँगा करते और शाम को भिक्षा घर लाते। तब कुन्ती सारे भोजन का दो भाग करती एक भाग भीम के लिए और दूसरा भाग बाकी सबके लिए। एक रोज कुन्ती भीम के साथ अकेले घर पर थी। जिस ब्राह्मण का उन्होंने आतिथ्य स्वीकार किया था उसके घर के भीतर से रोने-चिल्लाने की आवाज आ रही थी। पहले उन्होंने सुना कि ब्राह्मण मनुष्य के भाग्य पर रो रहा है और कह रहा है कि कितना अच्छा होता कि वह अपने सारे परिवार के साथ मर जाता क्यों कि वह अपनी प्रतिव्रता पत्नी, प्रिय पुत्री या प्रिय पुत्र को कभी छोड़ नहीं सकता। पर जब उसे अकेले ही मरना पड़ रहा है तो वह उन अपने प्रिय बांधवों को निश्चय ही दुःख में छोड़ जाएगा। इसके बाद ब्राह्मणी ने कहना शुरू किया कि अपने बच्चों की रक्षा तथा वंश को चलाने के लिए ब्राह्मण जीवित रहे पर स्वयं मैंने एक पुत्र और एक पुत्री को पैदा करके अपने जीवन का उद्देश्य पूरा कर लिया है इसलिए मैं शान्ति से मर सकती हूँ। यदि ब्राह्मण मर जाएगा तो वह अकेली अपने दो बच्चों का पोषण नहीं कर सकेगी—न तो वह दुष्ट लोगों से अपनी पुत्री की रक्षा कर सकेगी और न तो अपने पुत्र को ब्राह्मणोचित शिक्षा दे सकेगी। वह तो दूसरा विवाह भी कर सकता है पर उसे स्वयं विधवा के रूप में दयनीय जीवन बिताना पड़ेगा। "जैसे फेंके हुए मांस के टुकड़े पर पक्षी लोग लोभ से टूट पड़ते हैं उसी प्रकार पति-विहीन नारी को भी लोग दूषित करने लगते हैं।" अतएव वह अपने प्राण दे देगी। अपने माता-पिता की बात सुनकर पुत्री ने यह सिद्ध करते हुए कहना शुरू किया कि परिवार के लिए केवल उसी का मरना श्रेयस्कर होगा। "क्या यह नहीं कहा गया है कि पुत्र अपनी आत्मा के समान है, पत्नी मित्र होती है परन्तु पुत्री दुःख का कारण है। अपने आप को इस दुःख से मुक्त करो। अतः मुझे अपना कर्तव्य पूरा करने दो।" जब कि ये तीनों इस प्रकार बात करते रहे और अन्त में रोने लगे तभी छोटा बच्चा अपनी आँखें फाड़ बारी-बारी से हरेक के पास गया और तुतली बोली में मुसकराते हुए बोला—"पिताजी मत रोइये, मां मत रोओ, बहन मत रोओ। और यह कहते हुए कि "मैं नर-भक्षी राक्षस को इससे मारने जा रहा हूँ" उस छोटे बच्चे ने धरती से एक घास उखाड़ ली। इस दुःखपूर्ण अवसर पर जब उन लोगों ने बच्चे की मीठी बोली सुनी तो उनका हृदय आनंद से भर गया। इसी समय पांडवों की माता कुन्ती ने घर के भीतर जाना और यह जानना कि क्या दुःख आ पड़ा है उचित समझा। तब कुन्ती को बतलाया गया कि एक नर-भक्षी बक नाम का राक्षस नगर के

पास रहता है और नगर-निवासियों को निश्चित समय पर उसको खुश रखने के लिए एक गाड़ी भर चावल, दो भैंसे और एक आदमी उपहार में देना पड़ता है। परिवारों को बारी से चुना जाता है और अब इस परिवार की बारी आयी है। कुन्ती ने ब्राह्मण को ढाढस बँधाया और यह सुझाया कि उसके पाँच पुत्रों में से एक राक्षस को उपहार देने जाय। परन्तु उस ब्राह्मण को यह मान्य नहीं था कि एक तो ब्राह्मण और तिस पर अतिथि उसके लिए अपना प्राण दे दे। इस पर कुन्ती ने ब्राह्मण को समझाया कि उसका पुत्र बड़ा वीर है पर यह बात किसी को बतलाई न जाय। वह राक्षस को निश्चय ही मार डालेगा। भीम अपनी माता के प्रस्ताव को कार्यान्वित करने के लिए तुरत तयार हो गये और दूसरे दिन राक्षस के भोजन के निमित्त खाने के सामान से भरी गाड़ी लेकर भीम जिस जंगल में राक्षस रहता था वहां गये। ज्यों ही भीम जंगल में पहुँचे उन्होंने राक्षस के खाने को खुद खाना शुरू कर दिया (इसका बड़ा हास्यपूर्ण वर्णन किया गया है) और तूफान की तरह राक्षस के आने पर भी वे विचलित न हुए। यद्यपि क्रुद्ध राक्षस दोनों हाथों से भीम के ऊपर मुक्के बरसाने लगा पर भीम शान्तिपूर्वक खाते रहे। सब कुछ खा लेने के बाद ही वे राक्षस के साथ लड़ने के लिए तयार हुए। वे दोनों जंगल के मजबूत-मजबूत पेड़ उखाड़ कर एक दूसरे पर फेंकने लगे। महान् युद्ध हुआ जिसका परिणाम यह रहा कि भीमने घुटने पर से राक्षस के दो टुकड़े कर दिए और बाकी बचे राक्षसों बक के सम्बन्धियों और प्रजाजनों से वचन लिया कि वे फिर कभी किसी आदमी को नहीं मारेंगे। फिर वे अपने भाइयों के पास वापस लौट आये। नगर में बड़ा आनंद मनाया गया पर पांडव लोग छिपे ही रहे।

द्रौपदी का स्वयंवर और विवाह

कुछ समय बाद पाण्डवों ने एकचक्रा को छोड़ने तथा पांचाल में जाने का निश्चय किया। पांचाल को जाते समय रास्ते में उन्होंने सुना कि पांचाल-राज द्रुपद अपनी पुत्री के लिए स्वयंवर[1] करनेवाले हैं। पाण्डवों ने उस उत्सव में सम्मिलित होने का निश्चय किया और ब्राह्मणों का वेष धरकर वे द्रुपद की राजधानी में पहुँचे। वहाँ वे छिपकर एक कुम्हार के घर में रहने लगे और ब्राह्मणों की तरह भिक्षा मांगकर अपना निर्वाह करने लगे। द्रुपद ने एक बहुत कठोर धनुष बनवाया और ऊपर

१. स्वयंवर मंगनी या विवाह का एक प्रकार है जिसमें राजा की कन्या (अपने पिता के द्वारा सादर आमंत्रित) एकत्र राजकुमारों और वीरों में से किसी एक के गले में माला डालकर स्वयं वरण करती है और तब विवाह हो जाता है। इतिहास-काव्य में यद्यपि स्वयंवर का बहुधा वर्णन मिलता है पर ब्राह्मणों के स्मृतिग्रन्थों में इसका बिलकुल उल्लेख नहीं है। यद्यपि इन ग्रन्थों में बड़े विस्तार से विवाह के अनेक प्रकारों का वर्णन किया गया है। दे० J. J. Meyer, Das Weib im altindischen Epos, पृ० 60 आ०।

आकाश में एक यन्त्र के सहारे उन्होंने एक लक्ष्य टंगवाया और घोषणा की कि जो वीर धनुष को नवाकर लक्ष्य का वेध करेगा वही स्वयंवर में उसकी पुत्री कृष्णा का पति वरण किया जाने का अधिकारी होगा। सारे देशों के राजकुमारों ने जिनमें कौरव अर्थात् दुर्योधन, उसके भाई और कर्ण भी थे, राजा द्रुपद के निमन्त्रण को स्वीकार किया और उस सजाए हुए सभास्थल पर एकत्र हुए जहाँ स्वयंवर होनेवाला था। अनेक ब्राह्मण भी दर्शक के रूप में आये जिनमें पांचों पाण्डव भी थे। कई दिनों तक उल्लासपूर्ण उत्सव चलता रहा तथा बाहर के राजागण तथा ब्राह्मणों ने अतिथि के रूप में भव्य आतिथ्य-सत्कार का आनन्द लिया। अन्त में सोलहवें दिन प्रचलित उत्सवों के साथ, सुसज्जित और सुभूषित सुन्दरी कृष्णा उत्सव स्थल पर हाथ में फूलों की माला लिये उपस्थित हुई। उसके भाई धृष्टद्युम्न ने तेज आवाज में घोषणा की—

"उपस्थित राजाओं! इस धनुष को और ऊँचे पर लटकते लक्ष्य को ध्यान से देखिए और घूसते हुए चक्र से पाँच चमकते बाणों को छोड़िए। सत्कुल में उत्पन्न जो भी दूर लटकते लक्ष्य को वेधेगा वह खड़ा हो जाए और द्रुपद की सुन्दरी सुता का जयलक्ष्मी के रूप में वरण करे।"

इसके बाद उसने दुर्योधन से प्रारम्भ करके सभी उपस्थित राजाओं के नाम अपनी बहन से बताए। वे सब राजा एक साथ कृष्णा की सुन्दरता पर मुग्ध हो गये, उनमें से हरेक दूसरे से ईर्ष्या करने लगा और प्रत्येक व्यक्ति उसको पाने की आशा करने लगा। बारी-बारी से हरेक ने धनुष को झुकाने की कोशिश की पर कोई भी सफल न हो सका। तब कर्ण सामने आया, उसने धनुष झुका दिया और लक्ष्य वेधने के लिए तयार ही था कि कृष्णा ने जोर से कहा कि मैं सूत का वरण नहीं करूँगी। एक क्रूर हँसी और सूर्य की ओर देखने के साथ कर्ण ने धनुष को नीचे फेंक दिया। शक्तिशाली राजा शिशुपाल, जरासन्ध और शल्य ने धनुष को झुकाने का निष्फल प्रयास किया। तब ब्राह्मणों के बीच से अर्जुन उठे। जो लोग इस राजसी युवक की सराहना करते थे उनकी करतल-ध्वनि तथा और जो लोग क्षत्रियों की श्रेणी में एक ब्राह्मण के आने के साहस पर क्रोध करने लगे उनके विरोध-वचनों के बीच वे धनुष के पास गये। पलक गिरते न गिरते धनुष को झुका दिया और लक्ष्य को मारकर गिरा दिया। जब कृष्णा ने देवतुल्य युवक को देखा तो उसने आनन्द से अर्जुन को माला दे दी और राजकुमारी को पीछे किए अर्जुन सभास्थल के बाहर आ गये। जब उपस्थित राजाओं ने देखा कि वास्तव में द्रुपद अपनी पुत्री एक ब्राह्मण को देना चाहते हैं तो उन्होंने इसे अपना अपमान समझा क्योंकि उनके मत में पति का स्वयंवर क्षत्रियों के लिए था ब्राह्मणों के लिए नहीं। उन्होंने द्रुपद को मारने का प्रयत्न किया पर अर्जुन और भीम उनकी सहायता के लिए दौड़ पड़े। भीम ने एक विशाल वृक्ष उखाड़ लिया और यमराज की तरह भयानक होकर खड़े हो गये। अर्जुन अपना धनुष चढ़ाकर उनकी बगल में खड़े हो गये। कर्ण अर्जुन के साथ और शल्य भीम के साथ लड़ने लगे। कठोर युद्ध के बाद कर्ण और शल्य ने

हार मान ली। राजाओं ने युद्ध बन्द कर दिया और अपने-अपने घर को वापस चले गये। परन्तु पाण्डव लोग कृष्णा के साथ अपने रास्ते चले और कुम्हार के घर की ओर मुड़े जहां कुन्ती उत्सुकता से उनकी प्रतीक्षा कर रही थी। अर्जुन ने अपनी माता और भाइयों के सामने यह घोषित किया कि वे द्रुपद की पुत्री कृष्णा से जिसको वे जीतकर लाये हैं अकेले विवाह नहीं करेंगे अपितु अपने परिवार की प्राचीन प्रथा के अनुसार कृष्णा पाँचों भाइयों की समान पत्नी होगी।

स्वयंवर में उपस्थित लोगों में यादवों के अधिपति तथा पाण्डवों के ममेरे भाई (क्योंकि कृष्ण के पिता वसुदेव कुन्ती के भाई थे) कृष्ण भी थे। पाण्डवों के छिपे होने पर भी सिर्फ उन्होंने पाण्डवों को पहचाना और इसलिए अपने भाई बलदेव के साथ उन्होंने पाण्डवों का पीछा किया, कुम्हार के घर पर पाण्डवों से मिले और उनको बतलाया कि वे पाण्डवों के सम्बन्धी हैं। इससे पाण्डवों को बड़ी प्रसन्नता हुई पर उनको लोग पहचान न लें इसलिए कृष्ण और बलदेव जल्दी ही वहां से चले गये।

वह वीर जिसने उसकी बहन को स्वयंवर में जीतकर अपनी पत्नी बनाया है वास्तव में कौन है यह जानने के लिए राजकुमार धृष्टद्युम्न ने भी पाण्डवों का छिपकर पीछा किया। उसने अपने-आपको कुम्हार के घर में छिपा लिया और देखा कि कैसे वे सब भाई घर लौटे और आदर से अपनी मां का अभिवादन किया, कैसे कुन्ती ने द्रौपदी[1] को भोजन बनाने तथा उसका वितरण करने के बारे में बताया, शाम के भोजन के बाद कैसे वे सब आराम करने लगे—सबसे छोटे भाई ने एक कुश की चटाई बिछाई जिस पर पाचों भाई अपना-अपना मृगचर्म बिछाकर क्रमशः लेट गये जब कि माता और द्रौपदी ने क्रमशः अपना-अपना बिस्तर उनके सिरहाने और पैर के नीचे बिछाया। उसने सुना कि कैसे सोने के पहले पांचों भाई अनेक प्रकार के अस्त्रों तथा युद्ध सम्बन्धी कार्यों के बारे में एक दूसरे का मनोरंजन करते हैं। इसके बाद धृष्टद्युम्न जल्दी से अपने पिता के पास लौट गया और पाण्डवों की बातों के आधार पर उसने अपने पिता से कहा कि जिनको हम ब्राह्मण समझते थे वे निश्चय ही क्षत्रिय हैं। इस बात पर राजा को अपार हर्ष हुआ। दूसरे दिन सुबह होते ही द्रुपद ने अपनी पुत्री के विवाह को उचित उत्सव के साथ मनाने के लिए पाण्डवों को महल में बुला भेजा। इस अवसर पर ही युधिष्ठिर ने द्रुपद को बतलाया कि वे पाण्डु के पुत्र हैं जिन्हें लोगों ने मरा समझ रखा है, इस बात पर द्रुपद बड़े प्रसन्न हुए क्योंकि उनकी सर्वदा से यह इच्छा थी वे अर्जुन को अपना दामाद बनायें। द्रुपद अपनी पुत्री का अर्जुन को कन्यादान देने ही जा रहे थे कि युधिष्ठिर से उनको यह सुनकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि कृष्णा पांचो भाइयों की समान पत्नी होगी। द्रुपद ने इसमें जो दोष सामने रखे उनका समाधान इस बात को बताकर कर दिया गया कि यह पाण्डवों के परिवार की प्राचीन प्रथा है। और फिर पवित्र अग्नि की साक्षी देकर पहले द्रौपदी का विवाह सबसे बड़े

१. कृष्णा को द्रौपदी अर्थात् 'द्रुपद की पुत्री' भी कहा जाता है।

भाई युधिष्ठिर से कर दिया गया और बाद में अवस्था के क्रम से बाकी चार भाइयों से।[1] कुन्ती ने अपनी पतोहू को आशीर्वाद दिया और कृष्ण ने नव-विवाहित लोगों के लिए बहुत से बहुमूल्य विवाहोपहार भेजे।

---

१. इतिहास-काव्य में पांच पतियों के साथ विवाह की प्रथा का उल्लेख निस्संदेह पुराण-कथा का प्राचीन अंग है क्योंकि बहुपतित्व अथवा समूह-विवाह, जिसका एक उदाहरण पाण्डवों का विवाह है, आज भी भारत के कुछ स्थानों में प्रचलित है। पर प्राचीन भारत में इस प्रथा को कदापि वैधानिक नहीं माना गया है। ब्राह्मणों की दृष्टि से तो यह एकदम विपरीत है। जब द्रुपद कहते हैं (I, 197, 27) : एक पुरुष की अनेक पत्नियाँ होती हैं, पर यह कभी नहीं सुना गया है कि एक स्त्री के अनेक पति होते हैं" तो वे भारत की सामान्य धारणा को अभिव्यक्त करते हैं। इसके बावजूद जब इतिहासकाव्य के पांच प्रमुख नायकों की एक ही पत्नी होती है तो इससे सिद्ध होता है कि प्राचीन इतिहास-काव्य तथा सारी पुराण कथा के साथ यह बात इतने अविभाज्य रूप में मिल गयी थी कि बाद में भी जब महाभारत अधिकाधिक ब्राह्मण-धर्म की विशेषताओं से युक्त होने लगा और धर्म ग्रन्थ बन गया तब भी इस बहुपतित्व की बात को महाभारत से निकालने की कल्पना नहीं की जा सकी। पांच पतियों के साथ विवाह को उचित बताने के लिए अनेक उलझनों भरी कहानियाँ भर जोड़ दी गईं। एक अवसर पर व्यास किसी कन्या की बेवकूफी से भरी एक कथा सुनाते हैं जिसमें पति न मिलने पर वह कन्या शिव से पति देने की प्रार्थना करती है। चूँकि उसने पांच बार 'मुझे एक पति दो' कहा था इसलिए शिव ने अगले जन्म में पांच पतियों का उसे वरदान दिया। यही कन्या कृष्णा के रूप में पैदा हुई और इसलिए पांचो पाण्डव उसके पति हुए। एक दूसरी कथा इससे अधिक अवि-विश्वसनीय नहीं है—कुम्हार के घर में भिक्षुक ब्राह्मणों के वेष में रहने वाले पांचो पाण्डव जब द्रौपदी को लेकर लौटे और अपनी मां से पुकार कर कहा कि वे 'भिक्षा' मांग कर ले आए हैं तो कुन्ती ने अपनी आदत के अनुसार बिना देखे ही कहा "सब मिलकर उसका उपभोग करो"। इसके बाद उन्होंने देखा कि यह 'भिक्षा' वास्तव में एक स्त्री है और वे बड़ी परेशान हुईं। पर मां के वचन को कैसे झूठा किया जा सकता था इसलिए पांचो भाइयों को मिलकर द्रौपदी का उपभोग करना पड़ा। व्यास ने द्रुपद को एक तीसरी कथा सुनायी। यह कथा "पांच इन्द्रों की कथा" (पंचेन्द्रोपाख्यानम्) है जो शैव कथा लगती है। यह बड़ी अविश्वसनीय और घपले की कथा है जिसके अनुसार शिव का अपमान करने के दण्ड के रूप में इन्द्र धरती पर पांच भागों में उत्पन्न हुए और लक्ष्मी या श्री का अवतार उनकी पत्नी होने वाली थी। पांचो पाण्डव एक इन्द्र के अवतार हैं, द्रौपदी लक्ष्मी का अवतार है इसलिए वास्तव में द्रौपदी का एक ही पति है। औचित्य सिद्ध करने के लिए दी गई इन तीनों कथाओं को परस्पर

पाण्डवों को उनका राज्य वापिस मिल गया

पाण्डव लोग अभी जीवित हैं और अर्जुन ने ही स्वयंवर में द्रौपदी को जीता है इसका समाचार शीघ्र ही फैल गया। दुर्योधन और उसके मित्र दुःखी होकर हस्तिनापुर लौटे और विवाह के कारण पाण्डवों को दो शक्तिशाली सहायक अर्थात् द्रुपद और पंचाल एवं कृष्ण और यादव मिल गये इससे उनका उत्साह मन्दा पड़ गया। दुर्योधन का विचार था कि वे लोग पाण्डवों से सावधान रहें और उसने यह सुझाया कि धोखे से पाण्डवों को समाप्त कर दिया जाय। दूसरी ओर कर्ण खुले युद्ध का पक्षपाती था। परन्तु विदुर और द्रोण के अनुमोदन के साथ भीष्म ने धृतराष्ट्र को सलाह दी कि राज्य को दो भागों में बांट कर एक भाग पाण्डवों को दे दिया जाय और उनके साथ शान्तिपूर्वक रहा जाय। इस प्रस्ताव को धृतराष्ट्र ने मान लिया और पाण्डवों के लिए राज्य का एक भाग अलग कर दिया और यह व्यवस्था की कि पाण्डव खाण्डवप्रस्थ के उजाड़ भूभाग में बसें। युधिष्ठिर ने इस प्रस्ताव को प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार कर लिया और पाण्डव लोग कृष्ण के साथ खाण्डवप्रस्थ चले गये। वहाँ अपने रहने के लिए एक नगर इन्द्रप्रस्थ (आधुनिक दिल्ली के पास) का तथा एक किले का निर्माण किया।

अर्जुन का वनवास और साहसपूर्ण कार्य

अपनी समान पत्नी के साथ पाण्डव लोग इन्द्रप्रस्थ में आनन्द और सन्तोष के साथ रहने लगे। आपस में ईर्ष्या न उत्पन्न होने देने के लिए उन्होंने एक समझौता कर रखा था (देवर्षि नारद के कहने पर) कि जब भी कोई भाई द्रौपदी के साथ एकान्त में रह रहा हो तो कोई दूसरा भाई वहां न जाय। यदि ऐसा किया गया तो एकान्त का भंग करने वाला भाई बारह वर्षों तक ब्रह्मचर्य के साथ वनवास करेगा। इस समझौते के कारण वे एक दूसरे के साथ शान्तिपूर्वक रहते रहे।

एक दिन कुछ डाकुओं ने किसी ब्राह्मण की गायें चुरा लीं इस पर वह ब्राह्मण दौड़ता हुआ और जोर जोर से अपनी प्रजा की रक्षा न करने के लिए राजा को कोसता हुआ महल में उपस्थित हुआ। अर्जुन तुरन्त उसकी सहायता के लिए तयार हो गये। परन्तु संयोगवश अर्जुन के अस्त्र-शस्त्र उस कमरे में टंगे थे जहाँ युधिष्ठिर द्रौपदी

अथवा मुख्य कथा से संगत बनाने का कोई प्रयत्न नहीं किया गया है। दूसरी आर बार बार और स्पष्ट रूप में इस बात पर जोर दिया गया है कि यह परिवार की प्राचीन प्रथा है—जो सामान्य भारतीय प्रथा नहीं अपितु पाण्डवों के परिवार की अपनी प्रथा है। बौद्ध और जैन कथाओं में द्रौपदी को केवल अर्जुन को नहीं अपितु पांचो पाण्डवों को एक साथ वरण करती हुई बताया गया है। आश्चर्य है कि कुछ यूरोपीय विद्वानों ने भी पांच पतियों के विवाह का पुराण-कल्पना, श्लेषकथा या प्रतीक के रूप में व्याख्यान और औचित्य सिद्ध करने का प्रयत्न किया है—इसको जातीय तथ्य के रूप में वे नहीं स्वीकार करते। (मि० मेरा "Notes on the Mahābhārata", JRAS, 1897, पृ० 733 आ०)।

के साथ एकान्त विहार कर रहे थे। अर्जुन पशोपेश में पड़ गये। क्या वे ब्राह्मण के प्रति अपने क्षत्रियोचित कतव्य से विमुख हो जांय अथवा अपनी समान पत्नी के बारे में बनाए नियम का उल्लंघन करें ? अंत में अर्जुन ने कमरे में प्रवेश कर के अस्त्र-शस्त्र लाने का निश्चय किया। उन्होंने डाकू का पीछा करके ब्राह्मण की गायें वापस दिला दीं। इस के बाद वे घर लौटे और युधिष्ठिर से कहा कि वे समझौते के अनुसार बारह वर्षों के लिए वनवास करने जा रहे हैं। यद्यपि युधिष्ठिर ने अर्जुन को रोकने की कोशिश की क्यों कि अर्जुन के व्यवहार से उन को कोई कष्ट नहीं हुआ था फिर भी अर्जुन इस सिद्धान्त को मान कर कि जो कुछ भी हो बात तो बात है वन को चले गये।

वन में उन्होंने बहुत से साहस के कार्य किए। एक बार वे गंगा में नहा कर तर्पण करने के बाद पानी से बाहर निकलने ही वाले थे कि नागराज की कन्या उलूपी उनको नागलोक में खींच ले गयी। उसने अर्जुन से बताया कि वह उन से प्रेम करती है और उनसे प्रार्थना की कि वे उसका उपभोग करें। अर्जुन ने उत्तर दिया कि वे वैसा नहीं कर सकते क्यों कि उन्होंने ब्रह्मचर्य का व्रत लिया है। पर नागकन्या ने प्रतिवाद किया कि यह व्रत केवल द्रौपदी के साथ लागू होता है और सही तो यह है कि क्षत्रिय होने के नाते दीनों की सहायता करना उनका कर्तव्य है। यदि उन्होंने उसकी प्रार्थना न मानी तो वह आत्म-हत्या कर लेगी—अतः वे उस को मरने से अवश्य बचाएं। उस के तर्कों पर अर्जुन विवश हो गये और "धर्म का ध्यान करते हुए" उन्होंने सुन्दरी उलूपी की प्रार्थना स्वीकार कर ली और उस के साथ एक रात बितायी।

एक बार घूमते हुए अर्जुन मणिपुर के राजा चित्रवाहन के पास पहुँचे और उसकी सुन्दरी कन्या चित्राङ्गदा पर मोहित हो गये। परन्तु वह एक पुत्रिका[1] थी और राजा ने अर्जुन को अपनी कन्या इसी शर्त पर देना स्वीकार किया कि उस से उत्पन्न पुत्र चित्रवाहन का पुत्र माना जाय। अर्जुन इस पर राजी हो गये और चित्राङ्गदा के साथ तीन साल तक मणिपुर[2] में रहे। उस को पुत्र उत्पन्न हो जाने के बाद उन्होंने उस से विदा ली और घूमते चल पड़े।

अनेक तीर्थ स्थानों में घूमते-घामते तथा अनेक साहसिक कार्य करते अर्जुन द्वारका जाकर कृष्ण से मिले जहां उनका बड़ा स्वागत हुआ। कुछ दिनों के बाद रैवतक पर्वत पर यादवों के दो कुलों वृष्णियों और अन्धकों ने एक बड़ा उत्सव मनाया। बड़े लोगों और नागरिकों ने नाच गाने के साथ बड़ा आनंद मनाया। कृष्ण के भाई

---

१. पुत्रिका वह कन्या है जिसका पुत्र उसके पति का नहीं माना जाता अपितु उसके पिता का माना जाता है। जब व्यक्ति को कोई पुत्र नहीं होता तो वह अपनी पुत्री को पुत्रिका नियुक्त कर सकता है जिससे उत्पन्न पुत्र उस कन्या के पिता का वंश चलाता है। अर्थात् उस पुत्र को पारिवारिक विधियों का पालन करना पड़ता है तथा वह दायभाग का अधिकारी होता है।

२. अब ब्रह्मचर्य व्रत की बात समाप्त हो जाती है।

बलदेव ने अपनी पत्नी रेवती के साथ शराब पी। वृष्णियों के राजा उग्रसेन अपनी हजार पत्नियों के साथ तथा अन्य राजा भी अपनी-अपनी स्त्रियों के साथ वहाँ उपस्थित हुए। इस अवसर पर अर्जुन की आँख कृष्ण की सुन्दरी बहन सुभद्रा से मिली और वे उसके प्रेम में फँस गये। उन्होंने कृष्ण से पूछा कि उन्हें सुभद्रा कैसे मिल सकती है इस पर कृष्ण ने उनको सलाह दी कि वे क्षत्रियों की तरह उसका बलपूर्वक अपहरण कर ले जांय क्योंकि स्वयंवर का कोई भरोसा नहीं[1] है। इस पर अर्जुन ने सुभद्रा का अपहरण करने की आज्ञा मांगने के लिए युधिष्ठिर को दूत भेजा। युधिष्ठिर ने अपनी सम्मति दे दे दी और अर्जुन अपने रथ पर युद्धोचित ढंग से सजकर निकले मानों कि वे शिकार खेलने जा रहे हों। सुभद्रा रैवतक पर घूम रही थी। वह द्वारका को लौटने ही वाली थी कि अर्जुन ने उसे पकड़ कर रथ पर बिठा लिया और इन्द्रप्रस्थ की ओर रथ हांक दिया। द्वारका में बड़ा हंगामा मचा। अर्जुन के अतिथ्य के नियमों का उल्लंघन करने पर नशे में चूर बलदेव बहुत बिगड़े। परन्तु कृष्ण ने यह कह कर कि अर्जुन ने उनका कोई अपमान नहीं किया है अपने संबन्धियों को शान्त किया। कृष्ण ने कहा कि इसके विपरीत अर्जुन ने यादवों को धन का इतना लोभी नहीं समझा कि वे अपनी लड़की को गाय की तरह बेचेंगे और अनिश्चित स्वयंवर में कोई अवसर नहीं लेना चाहते थे इसीलिए उनके सामने सुभद्रा का अपहरण करने के सिवा कोई दूसरा रास्ता नहीं था। विवाह के बारे में कोई बाधा नहीं है इसलिए वे अर्जुन को बुलाकर उनसे मैत्री कर लें। यही हुआ और अर्जुन का सुभद्रा के साथ विवाह हो गया। अर्जुन सुभद्रा के साथ आनंद मनाते हुए एक साल द्वारका में रहे। बारह वर्षों में से बाकी बच रहे समय को पुष्कर तीर्थ में बिताकर अर्जुन इन्द्रप्रस्थ लौट आये। द्रौपदी ने सुभद्रा के साथ विवाह करने के लिए अर्जुन को बुरा-भला कहा पर जब सुभद्रा ने अपने आप को द्रौपदी की दासी के रूप में स्वीकार किया तो द्रौपदी प्रसन्न हो गयी। इसके बाद द्रौपदी, सुभद्रा और कुन्ती एक साथ आनन्द से रहने लगे। सुभद्रा से अर्जुन को अभिमन्यु नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ जो अपने पिता और चाचा का बड़ा प्यारा था और द्रौपदी ने पांचों पांडवों के लिए एक-एक पुत्र उत्पन्न किये।

युधिष्ठिर सम्राट् बने

महाराज युधिष्ठिर न्याय तथा ईमानदारी के साथ अपने राज्य पर शासन करते रहे और उनका आदर करनेवाली प्रजा भी सुख-शांति से रहती थी। राजा के भाई लोग भी आनन्द-पूर्ण जीवन व्यतीत कर रहे थे। परन्तु अर्जुन कृष्ण की घनिष्ठ मित्रता का विशेष आनन्द उठाते रहे। एक बार जब वे दोनों मित्र जमुना के किनारे कुंज में वार्तालाप कर रहे थे (जहाँ वे अनेक सुन्दर स्त्रियों के साथ, जिनमें द्रौपदी और सुभद्रा भी थीं, एकान्त विहार का सच्चा आनन्द लूट रहे थे) उस समय अग्निदेव

१. **स्पष्ट है कि यादवों की जाति असंस्कृत ग्वालों की जाति थी जिसमें अपहरण के द्वारा विवाह वैधानिक माना जाता था।**

ब्राह्मण का वेष धारण कर उनके पास आये और खाण्डव वन को जला डालने में उनकी सहायता की याचना की। बात यह थी कि किसी महायज्ञ में दिये गये बहुत सारे हविष्य का भक्षण कर लेने के कारण अग्निदेव को अजीर्ण हो गया था, और ब्रह्मा ने अग्नि से कहा था कि यदि वे इस अजीर्ण से मुक्त होना चाहते हैं तो खाण्डव वन को जला डालें। परन्तु जब-जब अग्नि ने वन को जलाने का प्रयत्न किया तब-तब उस वन के जीवों ने आग बुझा दी। अर्जुन और कृष्ण को इसी बात को बचाना था। इस उद्देश्य से अग्नि उन दोनों के लिए कुछ दिव्य अस्त्र अपने साथ लाये थे। अर्जुन के लिए गाण्डीव धनुष, दो अक्षय तूणीर तथा एक भव्य रथ था जिसमें चाँदी के समान सफेद घोड़े जुते हुए थे और दूर से ही पहचान में आ जानेवाली वानर-ध्वजा लगी हुई थी तथा कृष्ण के लिए एक अमोघ चक्र और एक अप्रतीकार्य गदा थी। इन आयुधों के सहारे उन्होंने अग्नि की सहायता की और उन सभी प्राणियों को मार डाला जो जलते हुए वन से भाग निकलने का प्रयत्न करते थे। उन्होंने मय नामक एक दानव को ही जीवित छोड़ा जो देवताओं के बीच एक बहुत बड़ा कारीगर था।[1]

अपने जीवन-दान के धन्यवाद के रूप में मय दानव ने युधिष्ठिर के लिए एक अद्‌भुत महल का निर्माण किया जिसमें अनेक प्रकार की अद्‌भुत रचना की गयी थी। कुछ समय के बाद कृष्ण की सम्मति से युधिष्ठिर ने राजसूय यज्ञ करने का निश्चय किया। एक सम्राट् महाविजेता ही इस यज्ञ को करने का अधिकारी हो सकता था परन्तु चूँकि मगध का राजा जरासन्ध उस समय का सबसे शक्तिशाली राजा था इसलिए उसको समाप्त करना आवश्यक था। भीम ने द्वन्द्व युद्ध में उसको मार डाला। इसके बाद अर्जुन, भीम, नकुल और सहदेव क्रमशः उत्तर, पूर्व, दक्षिण और पश्चिम दिशाओं में दिग्विजय के लिए निकले जिसके बल पर युधिष्ठिर सम्राट् बन गये। इसके अनन्तर बड़े उत्साह के साथ राज्याभिषेक किया गया। अनेक राजा लोग जिनमें कौरव भी थे इस अवसर पर आमन्त्रित थे। यज्ञ की समाप्ति पर लोगों को सम्मान देने का प्रश्न उपस्थित हुआ तो भीष्म के सुझाव पर सर्वप्रथम कृष्ण का सम्मान करने का निश्चय हुआ। चेदिराज शिशुपाल ने इसका विरोध किया। एक झगड़ा उठ खड़ा हुआ जिसका अन्त कृष्ण के हाथों शिशुपाल के वध के साथ हुआ।

जब यज्ञ पूर्ण हो गया तो दूसरे देशों के राजा लोग बिदा हो गये। कृष्ण भी घर लौट गये। केवल दुर्योधन और उसका मामा शकुनि ही पाण्डवों के महल में कुछ दिनों के लिए ठहरे रहे। उस उत्कृष्ट महल को देखते समय दुर्योधन को अनेक परेशानियाँ हुईं। स्फटिकमय भूमि को देखकर उसे तालाब का भ्रम हो गया और वह नहाने के लिए अपने वस्त्र उतारने लगा। दूसरी ओर वह एक कृत्रिम बावली को सूखी जमीन समझ बैठा और एकाएक उसमें गोता खा गया जिस पर भीम और

---

१. यहाँ महाभारत का प्रथम भाग आदिपर्व समाप्त होता है।

अर्जुन जोर से हँस पड़े[१]। इस अपमानजनक हँसी से दुर्योधन को गहरी पीड़ा हुई क्योंकि वह तो पहले से ही ईर्ष्या से जला बैठा था। बड़ी गहरी ईर्ष्या और शत्रुता के साथ उसने अपने चचेरे भाइयों से विदा ली और हस्तिनापुर लौट गया।

जूए का खेल

दुर्योधन ने बड़े कड़े शब्दों में अपनी गाथा अपने मामा शकुनि से कह सुनायी उसने उससे कहा कि वह अपने शत्रुओं को इस तरह विजय मनाते देख अपमान नहीं सह सकता। यह भी कहा कि पाण्डवों को नीचा दिखाने का उसे और कोई रास्ता नहीं दिखाई पड़ता इसलिए वह आग में जलकर या विष खाकर या पानी में डूबकर आत्महत्या कर लेगा। इस पर शकुनि ने प्रस्ताव रखा कि एक जूए के खेल की व्यवस्था की जाय और उसमें युधिष्ठिर को बुलाया जाय। और जुए का चतुर खिलाड़ी शकुनि उस खेल में आसानी से युधिष्ठिर का सारा राज्य दुर्योधन के लिए जीत लेगा। वे तुरन्त इस योजना को कार्यान्वित करने की आज्ञा लेने के लिए बूढ़े राजा धृतराष्ट्र के पास गये। पहले तो धृतराष्ट्र ने अपनी कोई राय नहीं दी क्योंकि वे हर बात में अपने विद्वान् भाई विदुर की राय लेना चाहते थे पर जब दुर्योधन ने उन्हें बताया कि विदुर सर्वदा पाण्डवों का पक्ष लेते हैं तो बेचारे बूढ़े राजा ने उसकी बात मान ली और जुए का खेल खेलने की आज्ञा दे दी। उन्होंने युधिष्ठिर को खेल में सम्मिलित होने का निमन्त्रण देने के लिए विदुर को भेजा। विदुर ने राजा को सावधान किया और राजा से अपना यह भय नहीं छिपाया कि इस जुए के खेल से बड़ी विपत्ति आ पड़ेगी। धृतराष्ट्र को स्वयं भी इस बात का भय था पर उन्होंने यह सोचा कि जो भाग्य में बदा होगा वही होगा। इस पर जुए के खेल का निमन्त्रण देने के लिए विदुर सम्राट् युधिष्ठिर के दरबार में गये। युधिष्ठिर ने भी भाग्य की दुर्जेय शक्ति की बात कही और न चाहते हुए भी निमन्त्रण को स्वीकार कर लिया। अपने भाई, द्रौपदी तथा परिवार की अन्य स्त्रियों के साथ युधिष्ठिर ने हस्तिनापुर को प्रस्थान किया। धृतराष्ट्र के महल में इन अतिथियों का उनके सम्बन्धियों द्वारा प्रसन्नतापूर्वक बड़े सम्मान के साथ स्वागत किया गया।

दूसरे दिन सुबह युधिष्ठिर और उनके भाई जूआ-घर गये जहाँ कौरव लोग

---

१. युधिष्ठिर के अद्भुत महल में दुर्योधन के कारनामें हमें शेबा की रानी की कथा याद दिला देते हैं। सोलोमन के महल में शीशे की जमीन को वह पानी का तालाब समझती है और अपने पैरों को उघाड़ लेती है। मि० कुरान, 27, 30; W. Hertz Gesammelte Abhandlungen, (1905), पृ० 427; Grierson, JRAS, 1913, 684 आ० (Nebuchadnezzar द्वारा बनाए गए नये Babylon के आश्चर्यों की कथाएं भी इसी प्रकार की हैं। दे० A. Wesselofsky को Archiv für slavische Philologie II, 310 आ०, 321।

पहले से ही एकत्र थे। शकुनि ने युधिष्ठिर को खेलने का आह्वान किया—युधिष्ठिर ने कुछ दाँव पर लगाया और हार गये। एक के बाद एक युधिष्ठिर अपना सारा खजाना, सारा सुवर्ण और रत्नों का कोष, अपना राजकीय रथ, अपने दास और दासियां, हाथी, रथ, घोड़े दाँव पर लगाते गये और हर बार हारते गये। तब विदुर धृतराष्ट्र की ओर मुड़े और उनको सलाह दी कि वे अपने पुत्र दुर्योधन से अलग हो जांय क्योंकि दुर्योधन सारे परिवार का सत्यानाश करने पर तुला हुआ है और खेल को रोक दें। इस पर दुर्योधन विदुर के विरुद्ध बड़े कठोर वचन बोलने लगा। उसने विदुर को धोखेबाज बताया और कहा कि वह एक जहरीला सांप है जिसे कौरवों ने अपनी गोद में पाला क्यों कि वह शत्रुओं के हित के अलावा और कुछ नहीं बोलता। विदुर का धृतराष्ट्र की ओर मुड़ना व्यर्थ ही हुआ। शकुनि ने तिरस्कार पूर्वक युधिष्ठिर से पूछा कि दांव पर लगाने के लिए उन के पास और भी कुछ है। इस समय युधिष्ठिर जुआ खेलने की अदम्य इच्छा से बेताब हो रहे थे और उन्होंने अपना सर्वस्व दांव पर लगा दिया–अपने बैल और सारे पशु, अपना नगर, अपनी जमीन और अपना सारा राज्य—पर वे सब-कुछ हार गये। इस के बाद राजकुमारों को, फिर भाई नकुल और सहदेव को भी दांव पर लगाया और हार गये। शकुनि के उकसाने पर वे अर्जुन और भीम को भी दांव पर लगा कर हार गये। अन्त में उन्होंने अपने आप को ही दांव पर लगा दिया पर विजय शकुनि की ही हुई। शकुनि तिरस्कार से बोला कि युधिष्ठिर ने अपने आप को दांव पर लगा कर अच्छा नहीं किया क्योंकि अभी भी पांचाल राजकुमारी द्रौपदी के रूप में एक खजाना उनके पास दांव पर लगाने के लिए बचा हुआ है। उपस्थित सारे बूढ़े लोगों[1]—भीष्म, द्रोण, कृप और विदुर के मन में भय उत्पन्न करते हुए युधिष्ठिर ने घोषणा कर दी कि वे सुन्दरी द्रौपदी को दांव पर लगा देंगे। चारो ओर व्याप्त घबराहट के वातावरण के बीच पासा फेंका गया और फिर भी शकुनि को ही विजय मिली।

हंसते हुए दुर्योधन ने विदुर से द्रौपदी को लाने के लिए कहा जिस से वह कमरे में झाड़ू लगाये और दासियों के बीच में रहे। विदुर ने उसे चेतावनी दी और उसे सावधान किया कि उसका आचरण कौरवों के पतन का कारण होगा। उन्होंने कहा कि वास्तव में तो द्रौपदी दासी ही नहीं क्यों कि युधिष्ठिर ने उसको तब दांव पर लगाया जब उनका अपने आप पर अधिकार नहीं रहा। तब दुर्योधन ने द्रौपदी को लाने के लिए एक सूत को भेजा। द्रौपदी ने उस सूत को यह पूछ लाने के लिए वापस भेज दिया कि युधिष्ठिर ने पहले अपने आप को दांव पर लगाया या द्रौपदी को। दुर्योधन ने कहला भेजा कि द्रौपदी को जुए के स्थान पर आना ही पड़ेगा और स्वयं उपस्थित

---

१. यह बहुत ही ध्यान देने योग्य बात है कि इन निष्पक्ष और भले लोगों ने इस बात को बड़ी शांति से स्वीकार कर लिया कि युधिष्ठिर अपने भाइयों और स्वयं अपने को दाँव पर हार गए हैं ; पर उनको यह बहुत अजीब लगा कि युधिष्ठिर अपनी समान पत्नी को भी दाँव पर लगाएँ।

होकर यह प्रश्न पूछना होगा। जब द्रौपदी ने इस से इनकार कर दिया और दूत को बिना अपना काम किये हर बार वापस लौटना पड़ा तब दुर्योधन ने अपने भाई दुश्शासन से कहा कि वह जाकर द्रौपदी को बलपूर्वक ले आये। दुश्शासन अन्तःपुर में गया और प्रतिरोध करती द्रौपदी के केश पकड़ कर उसे जुए के स्थान पर घसीट लाया। वह अस्वस्थ थी और इस लिए उसने थोड़े से ही कपड़े पहन रखे थे। वह बहुत रोयी-चिल्लायी पर किसी ने उसका पक्ष नहीं लिया—भीष्म और द्रोण ने भी नहीं और उसने निराशा से पाण्डवों की तरफ देखा। अपने धन और राज्य के चले जाने पर भी उनको उतना दुःख नहीं हुआ जितना लज्जा और क्रोध से भरी द्रौपदी की इस दृष्टि पर। भीम अब अपने को अधिक न रोक सके। उन्होंने द्रौपदी को दांव पर लगाने के लिए युधिष्ठिर को खरी-खोटी सुनायी और उन पर हाथ लगाने ही चले थे[1] कि अर्जुन ने उनको सावधान किया कि युधिष्ठिर को सर्वदा बड़ा मानना चाहिए और उनका आदर करना चाहिए। दुर्योधन के एक छोटे भाई विकर्ण ने उपस्थित लोगों से द्रौपदी के प्रश्न का उत्तर देने के लिए कहा कि क्या उसे दांव पर लगाना न्याय-संगत है। चूँकि सब लोग चुप्पी साधे रहे इसलिए उसने अपने आप इस प्रश्न का उत्तर नकारात्मक दिया। पर कर्ण ने उत्तर देते हुए कहा कि चूँकि कौरवों ने सब कुछ जीत लिया है इसलिए पाण्डवों की पत्नी भी कौरवों की सम्पत्ति हो गयी। उसने यह भी जोड़ दिया कि पाण्डवों और द्रौपदी के सारे वस्त्र उतार लेने चाहिए क्यों कि कौरवों ने उनके वस्त्र भी जीत लिए हैं। पाण्डवों ने अपने ऊपरी वस्त्र उतार दिये और कर्ण के इशारे पर दुश्शासन द्रौपदी के वस्त्र खींचने चला। पर द्रौपदी ने भगवान् विष्णु के अवतार कृष्ण की प्रार्थना की और उनकी कृपा से दुश्शासन के बार-बार प्रयत्न करने पर भी उसके वस्त्र उसके शरीर पर बने रहे[2]। इस अवसर पर भीम ने एक भयानक प्रतिज्ञा की घोषणा की :

---

१. भीम ने कहा कि मैं युधिष्ठिर की दोनों भुजाओं को आग में जला दूँगा और उन्होंने सहदेव से इस के लिए आग लाने को कहा (II. 68, 6; 10). J. J. Meyer ("Das weib im altindischen Epos") इस का दूसरी तरह अनुवाद करते हैं जिस के अनुसार इसका अर्थ है कि भीम अपनी भुजाओं को ही जला डालना चाहते हैं और Meyer इसको "बदला लेने तथा विकत्थन की विशिष्ट भारतीय पद्धति" कहते हैं जो "प्रायोपवेश" (किसी सत्य को मनवाने के लिए अनशन कर के मर जाने की धमकी) से मिलती-जुलती है। नीलकण्ठ की टीका (ते तव पुर इति शेषः) इस व्याख्या का समर्थन करती है। यदि इस का साधारण अर्थ भी मान लिया जाय तो भी भीम की धमकी विचित्र लगती है।

२. दक्षिण भारतीय हस्तलिखित पोथियां ही नहीं बल्कि भास का कहा जाने वाला "दूत-वाक्य" नामक नाटक भी इस बात को सम्भव बनाता है कि वस्त्र की अद्भुत घटना बहुत बाद में जोड़ी गई है। दे० Winternitz को Festsch-

"सारे विश्व के क्षत्रियों मेरी प्रतिज्ञा सुनो—यह ऐसी प्रतिज्ञा है जिसे आजतक किसी मनुष्य ने नहीं की थी और न कोई मनुष्य कभी करेगा। यदि मैं युद्ध में भारतों के इस कुल-कलंकी दुष्ट मूर्ख की छाती फाड़ कर उसका खून न पीऊँ—यदि इस प्रतिज्ञा का पालन न करूँ तो मुझे अपने पितरों का लोक न मिले।"

इन भयानक शब्दों को सुनकर सारे योद्धाओं और वीरों को भय व्याप गया। विदुर निष्फल ही उपस्थित लोगों को उनके इस कर्तव्य की याद दिलाते रहे कि वे द्रौपदी को कौरवों ने जीत लिया है या नहीं इस वैधानिक प्रश्न का निर्णय करें। द्रौपदी व्यर्थ में रोती-चिल्लाती रही और अपने संबंधियों से उसके प्रश्न का उत्तर देने की प्रार्थना करती रही। धर्मज्ञ धर्मात्मा भीष्म भी इसके अलावा कुछ न कह सके कि न्याय का सवाल पेंचीदा है और इस दुनिया में शक्ति ही न्याय है। युधिष्ठिर धर्म की मूर्ति हैं इसलिए वही इस प्रश्न का निर्णय करें। दुर्योधन ने भी घृणा-पूर्वक युधिष्ठिर से द्रौपदी विजित हो गई या नहीं इस प्रश्न पर अपना मत व्यक्त करने को कहा। चूँकि युधिष्ठिर अन्य-मनस्क बैठे थे इसलिए उन्होंने कोई उत्तर नहीं दिया इसलिए दुर्योधन का हौसला यहां तक बढ़ गया कि उसने द्रौपदी के सामने ही अपनी बांयीं जांघ खोल दी—यह पांण्डवों के लिए एक ऐसा बड़ा अपमान था जिसकी उन्होंने कल्पना भी न की थी। इस पर भीम ने फिर भयंकर शब्द कहे "भीम को कभी भी सद्‌गति न मिले यदि वह तुम्हारी इस जांघ को युद्ध में चूर-चूर न कर दे।"

जब कि इस तरह विवाद चलता रहा उस समय धृतराष्ट्र के घर में सियारों का रोना तथा इसी प्रकार के अपशकुन भरे शब्द सुनाई पड़ने लगे। इनसे भयभीत होकर बूढ़े धृतराष्ट्र ने अन्त में यह अनुभव किया अब उसे बीच-बिचाव करना चाहिए। उसने दुर्योधन की भर्त्सना की और द्रौपदी को सांत्वना देते हुए कहा कि वह इच्छानुसार कुछ वर मांगे। उसने अपने पति युधिष्ठिर को छोड़ दिये जाने की कामना की। धृतराष्ट्र ने दूसरा वर भी मांगने को कहा तो उसने बाकी के चारों पांडवों की स्वतन्त्रता की कामना की। जब धृतराष्ट्र ने तीसरा वर मांगने को कहा तो द्रौपदी ने कहा कि उसे अब कुछ नहीं चाहिए क्योंकि ज्योंही पाण्डव लोग स्वतन्त्र हो जायेंगे वे सब जो चाहिए उसे जीतकर ले लेंगे। कर्ण ने मजाक के स्वर में कहा कि द्रौपदी एक नाव है जिसमें पाण्डव लोग खतरे से बचकर निकल गये। भीम क्रोध से पागल हो रहे थे और सोच रहे थे कि क्यों न कौरवों को उसी जगह मार डाला जाय। अर्जुन ने उन्हें शान्त किया और युधिष्ठिर ने युद्ध करने का निषेध किया। राजा धृतराष्ट्र ने युधिष्ठिर को उनका राज्य वापस कर दिया और बीती बात को भूल जाने के लिए कहा। इस प्रकार वे अपेक्षाकृत शान्त मन से इन्द्रप्रस्थ लौटे।

---

rift Kuhn, पृ० 211 आ० में। Oldenberg ("Das Mahābhārata, पृ० 45 आ०) जुए के दृश्य के वर्णन में पूर्वकालीन और परकालीन अंश को अलग अलग करने का प्रयत्न करते हैं।

दूसरी बार जुए का खेल और पाण्डवों का वन-वास

पाण्डवों के विदा होते ही दुर्योधन, दुश्शासन और शकुनि ने बूढ़े राजा को पकड़ा और उसको बताया कि बुरी तरह अपमानित हो जाने के कारण पाण्डवों से उन्हें कितना भय है और राजा को दूसरी बार जुआ खेलने की आज्ञा देने को विवश कर दिया। इस बार जुए में हारने वाले को बारह वर्षों का वनवास और तेरहवें वर्ष कहीं छिप कर अज्ञातवास करने की शर्त थी—चौदहवें वर्ष ही वह लौट सकता था। तेरहवें वर्ष के अज्ञातवास के बीच यदि पहचान लिया गया तो उसे फिर से बारह वर्ष वनवास में बिताने होंगे। राजा की पत्नी गान्धारी ने धृतराष्ट्र को बहुत समझाया कि वह अपने दुष्ट पुत्र दुर्योधन से सम्बन्ध त्याग दे जिससे कि वह कौरवों के पतन का दोषी न कहलाए—पर सब व्यर्थ रहा। धृतराष्ट्र अन्धा था, उसने आज्ञा दे दी। दूत भेजा गया जो घर वापस लौटते पाण्डवों से रास्ते में ही मिला। भाग्य से संचालित युधिष्ठिर ने दुबारा जुआ खेलने के निमंत्रण को मान लिया। वे सब फिर लौट आए, फिर से खेल शुरू हुआ और फिर हार होने लगी। अब उन सबको तेरह वर्षों के लिए वनवास को जाना पड़ा।

मृगचर्म पहनकर पाण्डव लोग वन जाने की तयारी करने लगे। दुर्योधन और दुश्शासन अपनी जीत पर फूले नहीं समाये और उनका मजाक उड़ाने लगे। पर भीम ने उनको भयानक धमकी दी। जैसे दुर्योधन ने तीक्ष्ण वचनों से उनके हृदय को छेदा है उसी तरह भीम भी दुर्योधन के हृदय को युद्ध में बींध देगा। और एक बार फिर उन्होंने दुश्शासन का खून पीने की प्रतिज्ञा की। अर्जुन ने कर्ण को, सहदेव ने शकुनि को और नकुल ने धृतराष्ट्र के बाकी पुत्रों को मार डालने की प्रतिज्ञा की। पर युधिष्ठिर ने धृतराष्ट्र, भीष्म और दूसरे कौरवों से तथा पंडित और महात्मा विदुर से सबसे अधिक प्रेम के साथ बिदा ली। पाण्डवों की माता कुंती विदुर के घर में रह गयीं पर द्रौपदी पाण्डवों के साथ वनवास को चली गयी। उसका अपनी सास से विदा लेना बड़ा करुणाजनक है। आंखों में आंसू भरे कुन्ती ने अपने पुत्रों को वन जाते हुए देखा परन्तु धर्मात्मा युधिष्ठिर को छोड़ बाकी सबने चौदहवें वर्ष कौरवों से खूनी बदला लेने की प्रतिज्ञा की। अपशकुनों और देवदूत नारद ने धृतराष्ट्र को आगाह किया कि उसके वंश का अन्त होने वाला है। धृतराष्ट्र जुए के खेल तथा वनवास की आज्ञा देने के लिए बहुत पश्चात्ताप करने लगा[१]।

पाण्डवों का बारह वर्षों का वनवास-जीवन[२]

हस्तिनापुर के बहुत से नागरिक पाण्डवों के साथ वन को गये। अपने घर लौट जाने के लिए उनको राजी करने में युधिष्ठिर को कुछ परेशानी भी उठानी पड़ी। कुछ

१. यहाँ महाभारत का दूसरा भाग सभापर्व समाप्त होता है।

२. इस परिच्छेद में विशाल तृतीय भाग वनपर्व की संक्षिप्त कथा है।

ब्राह्मण तो उनके साथ काफी दिनों तक रहे। उनको भोजन देने के लिए उन्होंने तपस्या की और सूर्य भगवान् की उपासना की जिससे सूर्य ने प्रसन्न होकर उनको एक ताँबे की बटुली दी जो इच्छा-मात्र से भर जाती थी। वे इसी बटुली के सहारे उन ब्राह्मणों को भोजन कराते रहे। इसके बाद वे उत्तर की ओर काम्यक वन की ओर बढ़े। भीम ने बकासुर के भाई और हिडिम्ब के मित्र नरभक्षी किर्मीर नामक राक्षस का वध किया जो इस वन में रहता था।

इसी बीच धृतराष्ट्र की विदुर के साथ बातचीत हुई। विदुर ने राजा को सलाह दी कि वे पाण्डवों को वनवास से वापिस बुलाकार उनके साथ सन्धि कर लें। धृतराष्ट्र विदुर के ऊपर बड़ा नाराज हुआ कि वे सदा पाण्डवों का पक्ष लेते हैं और तिरस्कार पूर्वक विदुर से कह दिया कि उनकी जहां इच्छा हो वहां चले जांय। विदुर काम्यकवन में पाण्डवों के पास चले गये और उनसे जो कुछ हुआ था कह सुनाया। बूढ़े राजा को अपने इस कुकृत्य पर पश्चात्ताप हुआ और उसने सारथि संजय को अपने भाई विदुर को वापस बुला लाने के लिए भेजा। विदुर शीघ्र ही लौट आये और दोनो भाइयों में पूरा मेल हो गया।

जब पाण्डवों के मित्रों और सम्बन्धियों ने उनके वनवास की बात सुनी तो वे उनसे मिलने वन में गये। उनसे सबसे पहले मिलने वालों में कृष्ण भी थे। जुए के खेल के समय वे एक लड़ाई में व्यस्त थे इसलिए अपने मित्रों के साथ वे उपस्थित न रह सके। यदि वे उस समय उपस्थित रहे होते तो निश्चय ही खेल न होने देते। जब कृष्ण ने दुर्योधन के साथ युद्ध करने और युधिष्ठिर को फिर से राज्य पर बैठाने की बात कही तो युधिष्ठिर इससे सहमत न हुए यद्यपि द्रौपदी ने बड़े दुःखपूर्ण शब्दों में कौरवों ने जो उसका अपमान किया था उसकी शिकायत की। बाद में भी द्रौपदी और भीम ने बार बार युधिष्ठिर से तयार होने और बलपूर्वक राज्य प्राप्त करने की प्रार्थना की। हर बार युधिष्ठिर ने यही कहा कि वे अपनी प्रतिज्ञा पर अटल रहेंगे और बारह वर्ष वन में ही बितायेंगे। भीम ने युधिष्ठिर की पौरुषहीनता को बुरा बतलाते हुए कहा कि क्षत्रिय का पहला धर्म युद्ध करना है और जो तेरह महीनें वन में बीत चुके हैं उन्हीं को युधिष्ठिर तेरह वर्ष मान लें या फिर बाद में वे अपनी प्रतिज्ञा तोड़ने का प्रायश्चित्त कर लें। इस पर युधिष्ठिर ने दोष दिखाते हुए कहा कि भीष्म, द्रोण, कृप और कर्ण के रूप में दुर्योधन के पास शक्तिशाली और अजेय योद्धा लोग हैं। इसी समय फिर एक बार बूढ़े ऋषि व्यास उपस्थित हुए और उन्होंने युधिष्ठिर को एक मन्त्र दिया जिसके द्वारा अर्जुन देवताओं से दिव्य अस्त्र प्राप्त करेंगे और उनकी सहायता से पाण्डवों को कौरवों पर विजय प्राप्त करने में सफलता मिलेगी। इसके बाद जल्दी ही युधिष्ठिर ने अर्जुन को दिव्य अस्त्र प्राप्त करने के लिए इन्द्र के पास भेजा। अर्जुन हिमालय में घूमते रहे और तपस्वी-वेषधारी इन्द्र से मिले। इन्द्र ने अर्जुन को शिव के पास भेजा क्योंकि पहले शिव से अस्त्रों को अर्जुन को देने की आज्ञा मिलनी चाहिए। अर्जुन ने घोर तपस्या की जिस पर शिव एक किरात के रूप में अर्जुन के सामने प्रगट हुए। उस बनावटी किरात

के साथ अर्जुन का तबतक भयानक युद्ध होता रहा जबतक उस किरात ने अपने को भगवान् शिव के रूप में प्रगट नहीं किया और अजेय अस्त्र अर्जुन को प्रदान न किये। लोकपाल यम, वरुण और कुबेर भी आये और उन्होंने भी अपने अपने अस्त्र अर्जुन को दिये। इन्द्र का सारथि मातलि उन्हें इन्द्रपुरी ले गया जहां उन्हें और भी अस्त्र प्राप्त हुए। पांच वर्षों तक वे इन्द्र के भवन में आनन्द पूर्वक रहे। इन्द्र की आज्ञा से एक गन्धर्व ने उन्हें नाचना और गाना भी सिखाया।

इस बीच बाकी के पाण्डव वन में जंगली जानवरों का शिकार कर तथा फल और मूल के द्वारा अपना भोजन चलाते रहे। अर्जुन इतने दिन अनुपस्थित थे इसलिए वे उनके बारे में बड़े चिन्तित थे। यद्यपि लोमश ऋषि ने, जो अभी इन्द्रपुरी से लौटे थे, उनके पास आकर उनको ढाढस बंधाते हुए कहा कि अर्जुन इन्द्र के साथ सकुशल रह रहे हैं पर पाण्डवों को इससे सन्तोष नहीं हुआ और वे अर्जुन को ढूँढ़ने की तयारी करने लगे। वे गंधमादन पर्वत पर घूमते रहे जहां उनको भयानक अंधड़ तथा गर्जन और बिजली की चमक से बड़ा भय हुआ। भय और थकावट से द्रौपदी बेहोश हो गयी। तब भीम ने राक्षसी हिडिम्बा से उत्पन्न अपने पुत्र घटोत्कच का स्मरण किया और वह राक्षस तुरन्त वहां उपस्थित हो गया। उसने द्रौपदी को अपनी पीठ पर बैठा लिया। उसके साथ जो और राक्षस आये थे उन्होंने पाण्डवों को अपनी पीठ पर बैठाया और वे सब कैलास के पास गंगा के किनारे स्थित एक आश्रम में ले जाये गये जहाँ पाण्डवों ने एक विशाल बदरी वृक्ष के नीचे आराम किया।

चूंकि द्रौपदी को एक बार दिव्य कमल के फूल की इच्छा हुई इसलिए भीम ने पर्वती जंगल को छान डाला जिससे जंगली जानवरों को बड़ा भय हो गया क्योंकि उन्होंने एक जंगली हाथी से दूसरी हाथी को मार डाला, एक सिंह से दूसरे सिंह को मार गिराया या फिर वे सिर्फ अपने मुक्के से ही जानवरों को मारने लगे। यहां उनकी मुठभेड़ वानरराज हनुमान् से हुई जिन्होंने भीम का रास्ता रोक लिया और आगे बढ़ने से रोका क्योंकि वहां केवल देवता लोग ही जा सकते थे। भीम ने उन्हें बताया कि वे कौन हैं और उनसे रास्ते में से हट जाने को कहा। वानरराज नहीं हिले। उन्होंने बहाना किया कि वे बीमार हैं और यदि भीम को आगे जाना है तो वे उनकी पूंछ हटा कर चले जांय। वानरराज की पूंछ को हटाने का भीम का प्रयत्न व्यर्थ रहा। इस पर वानरराज ने बताया कि वे हनुमान् हैं—जो रामायण में बहुत प्रसिद्ध हैं[१]। अपने भाई को देखकर भीम बहुत प्रसन्न हुये क्योंकि वे दोनों वायु के पुत्र थे। भीम ने उनके साथ बात-चीत की। अन्त में हनुमान् ने भीम को कुबेर के बागीचे का रास्ता बताया पर उनको वहां फूल न तोड़ने के लिए सावधान कर दिया। इसके बाद प्रेम-पूर्वक दोनों बिदा हुये। भीम जल्दी ही कुबेर के बागीचे और कमल के उस तालाब

---

१. भीम हनुमान् के बारे में ऐसा कहते हैं, महाभा॰ III, 147, 11। यहाँ हनुमान् रामायण से एक छोटा उद्धरण भी देते हैं।

पर पहुंच गये जहां दिव्य कमल खिलते थे। वहां राक्षसों ने उन्हें रोका और कमल तोड़ने से मना किया और उन्हें बताया कि जो कुछ भी हो उन्हें पहले कुबेर की आज्ञा ले लेनी चाहिए। भीम ने उत्तर दिया कि क्षत्रिय किसी की आज्ञा नहीं मांगता उसे जो चाहिए वह ले लेता है। भीम ने राक्षसों से लड़कर उन्हें मार भगाया और फूल तोड़ लिया।

राक्षसों के साथ लड़ाइयां लड़ते हुये पांचवां साल आ गया जब कि अर्जुन को स्वर्ग से लौटना था। चारो भाई उनसे मिलने कैलास पर्वत पर गये। भीम ने कुबेर के बागीचे की रखवाली करने वाले यक्षों और राक्षसों से फिर लड़ाई की और उनमें से बहुतों को मार डाला। इनमें एक मणिमत् नाम का व्यक्ति भी था। जिसने अगस्त्य ऋषि के सिर पर थूक दिंया था जिससे ऋषि ने कुबेर को शाप दे दिया था। भीम के इस कार्य से कुबेर शाप-मुक्त हो गये और इसलिए वे राक्षसों के मारे जाने से क्रुद्ध नहीं हुए। इसके विपरीत उन्होंने भीम और उनके भाइयों का बड़ा स्वागत किया।

उस चमकते कैलास पर्वत पर अर्जुन से उनकी भेंट हुई जो मातलि के द्वारा हांके जानेवाले इन्द्र के रथ पर बैठकर वहां आये थे। हार्दिक स्वागत के बाद अर्जुन ने उन्हें अपने सारे अनुभवों और साहस भरे कार्यों की कहानी सुनाई। खास करके कैसे उन्होंने समुद्र के किनारे रहने वाले निवातकवच नामक राक्षसों तथा आकाश में उड़ने वाले नगर हिरण्यपुर के निवासियों से युद्ध कर विजय पायी इसका वर्णन किया।

कुबेर के आनन्द वन में रहते चार वर्ष ऐसे बीत गये जैसे कि मानों एक ही रात हो। पर सांसारिक बातों और युद्ध पर ध्यान देने के लिये पाण्डवों ने स्वर्ग-भूमि को छोड़ने का निश्चय किया। कैलास से उतर कर वे जमुना के किनारे के पर्वतों और जंगलों में चले गये।

यहां भीम को एक कष्टदायक अवसर का सामना करना पड़ा और युधिष्ठिर ने उनके प्राण बचाये। जंगल में घूमते हुए भीम ने एक विशालकाय अजगर देखा। वह उन पर तेजी से झपटा और उनको इतना कस कर लपेट लिया वे अपने को उससे छुड़ा नहीं पाये। उनके भाई युधिष्ठिर ने उनको इस विपत्ति में फंसा देखा। वह अजगर और कोई नहीं बल्कि प्रसिद्ध राजा नहुष थे जो अगस्त्य ऋषि के शाप से स्वर्ग से ढकेल दिये गये थे। उनको इस शाप से तब तक छुटकारा नहीं मिल सकता था जब तक कि उनको कोई ऐसा व्यक्ति न मिल जाय जो उनके सारे प्रश्नों का उत्तर दे दे। युधिष्ठिर ने उनके सारे दार्शनिक प्रश्नों का संतोषजनक उत्तर दिया जिस पर उस अजगर ने भीम को छोड़ दिया और अजगर की योनि से मुक्ति पा जाने पर नहुष स्वर्ग चले गये।

इसके बाद पाण्डव लोग काम्यकवन लौट गये। यहाँ फिर कृष्ण उनसे मिलने आये। उन्होंने द्रौपदी को उसके बच्चों का कुशल समाचार दिया और युधिष्ठिर को

कौरवों के विरुद्ध लड़ने के लिए तथा युद्ध की दूसरी तयारियों के लिए अपने मित्रों को तयार करने को उत्साहित किया। पहले की तरह युधिष्ठिर ने उन्हें विश्वास दिलाया कि वे अपने वचन पर दृढ़ रहेंगे। वे युद्ध के बारे में तब तक सोचना नहीं चाहेंगे जब तक तेरह वर्ष बीत नहीं जाते।

धर्मात्मा ब्राह्मण लोग भी पाण्डवों से मिलने जंगल में प्रायः आते रहे। एक ब्राह्मण पाण्डवों के पास से लौटकर धृतराष्ट्र के दरबार में गया और बतलाया कि पाण्डव लोगों और खासकर द्रौपदी को कितना जंगल के कष्टों का सामना करना पड़ता है। बूढ़ा राजा इस पर बड़ा दुखी होता है, पश्चात्ताप में डूब जाता है पर उसका पुत्र दुर्योधन इस पर बड़ा प्रसन्न हुआ और कर्ण तथा शकुनि के उकसाने पर जंगल में जाकर पाण्डवों से मिलने का निश्चय किया जिससे वह उनके कष्टों का मजाक उड़ा सके। धृतराष्ट्र के सामने वे बहाना करते हैं कि जंगल के पास स्थित गोचर भूमि में जाकर वे पशुओं को देखना चाहते हैं, उनकी गिनती करना चाहते हैं और नये पशुओं पर चिह्न लगाना चाहते हैं। बड़ी सेना के साथ वे गये, पशुओं का निरीक्षण किया और शिकार का आनन्द लेने लगे। पर जब वे पाण्डवों के निवास-स्थान की ओर चलने को उत्सुक हुए तो गन्धर्वों ने उन्हें रोक दिया। लड़ाई शुरू हो गयी और गन्धर्वों के राजा ने दुर्योधन को अपमान पूर्वक पकड़ लिया। कौरव लोग पाण्डवों की सहायता के लिए दौड़े और धर्मात्मा युधिष्ठिर ने इसको इनकार नहीं किया। कठोर युद्ध के बाद पाण्डवों ने दुर्योधन को गन्धर्वराज के बन्धन से छुड़ा लिया। लज्जा और निरादर के दुःख से भरा दुर्योधन आत्महत्या करने जा रहा था पर बड़ी मुश्किल से उसके मित्र उसको आत्महत्या की मानसिक स्थिति से विमुख करने में सफल हुए।

पाण्डवों को तंग करने की कर्ण ने एक नयी योजना बनायी। वह चारो दिशाओं में दिग्विजय करने के लिए निकल पड़ा जिससे दुर्योधन को सारी पृथ्वी का राज्य मिल जाय और वह भी राजसूय यज्ञ कर सके। जब दिग्विजय सफल हो गया तो एक महायज्ञ किया गया परन्तु चूंकि एक परिवार में एक ही बार राजसूय यज्ञ किया जा सकता था और युधिष्ठिर ने वह यज्ञ पहले ही कर लिया था इसलिए एक दूसरा यज्ञ किया गया जिसको वैष्णव यज्ञ कहते हैं। कहा जाता है कि यह यज्ञ सिर्फ विष्णु ने ही किया था। पाण्डवों को तंग करने के लिये दुर्योधन ने उन्हें इस महायज्ञ में निमंत्रित किया। युधिष्ठिर ने नम्रता-पूर्वक इसे अस्वीकार कर दिया पर भीम ने कहला भेजा कि तेरहवें वर्ष के बाद पाण्डव लोग युद्ध-यज्ञ में अपने क्रोध रूपी घी की आहुति कौरवों को देंगे।

वनवास के अंतिम वर्ष में पाण्डवों को एक बड़ी हानि का भय उत्पन्न हो गया। एक दिन जब सभी भाई शिकार के लिए गये थे घर में अकेली द्रौपदी को उधर से गुजरता सिंधुराज जयद्रथ चुरा ले चला। तुरत पाण्डवों ने उसका पीछा किया और अर्जुन और भीम ने उसे पकड़ कर अच्छी सबक दी। भीम तो उसे जान से मारने ही चले थे पर चूंकि वह धृतराष्ट्र का नाती था इसलिए युधिष्ठिर ने उसे प्राणदान दे दिया।

द्रौपदी के अप-हरण से पाण्डवों को बड़ा दुःख हुआ। यद्यपि जयद्रथ को सजा मिल चुकी थी पर फिर भी उनको अपमान का अनुभव हो रहा था। खासकर युधिष्ठिर प्रायः दुखी रहते थे, अपने आप को इस सारी विपत्ति का कारण होने के कारण युधिष्ठिर धिक्कारते थे और सबसे ज्यादे उन्हें द्रौपदी के दुर्भाग्य पर दुःख था। कौरवों में किसी से युधिष्ठिर को इतना भय नहीं था जितना कि कर्ण से जिसने कवच और कुण्डल धारण करके जन्म लिया था जिसके कारण वह अजेय था। कर्ण के भय से युधिष्ठिर को मुक्त करने के लिए इन्द्र ब्राह्मण का रूप धारण करके कर्ण के पास गये और कर्ण से उसका कवच और कुण्डल मांगा। कर्ण किसी ब्राह्मण को याचना करने पर इनकार नहीं कर सकता था इसलिए अपने चेहरे पर शिकन आये दिये विना ही अपने शरीर से काट कर कर्ण ने कवच और कुण्डल इन्द्र को दे दिये। प्रतिदान में इन्द्र ने कर्ण को एक अजेय शक्ति दी जिसको किसी बड़ी भारी विपत्ति में ही किसी एक शत्रु को मारने के लिए प्रयोग में लाया जा सकता था।

द्रौपदी के अपहरण से दुखी होकर पाण्डव लोग काम्यक वन से द्वैतवन चले गये। यहां उनको आखिरी बार जंगली जीवन की विपत्ति का सामना करना पड़ा। जंगल में घूमता एक मृग किसी ब्राह्मण की अरणि को अपनी सींगों में फंसा लिया और भाग गया। यज्ञ के लिए उस ब्राह्मण को अरणि की आवश्यकता थी इसलिए उसने पाण्डवों से उसे वापस ला देने की प्रार्थना की। उन्होंने मृग का पीछा किया पर उसे पकड़ नहीं सके और वह अन्त में दृष्टि से ओझल हो गया। उन्हें अपने दुर्भाग्य पर दुःख हुआ। विना जूतों के दौड़ने के कारण थक जाने से तथा प्यास से पीड़ित हो जाने के कारण उन्होंने पानी ढूंढ़ना शुरू किया। नकुल एक पेड़ पर चढ़े और दूर पर उन्हें एक तालाब दिखाई दिया। युधिष्ठिर के कहने पर वे उधर तूणीरों में पानी भर लाने गये। वे हंसों से घिरे स्वच्छ पानी वाले एक सुन्दर तालाब के किनारे पहुँचे। वे पानी पीने चले ही थे कि एक अदृश्य यक्ष ने आकाश से बोलते हुए कहा—"मित्र, जबरदस्ती मत करो, यह मेरी सम्पत्ति है, पहले मेरे प्रश्नों का उत्तर दे लो फिर पानी पीना और ले जाना।" इन शब्दों पर नकुल ने कोई ध्यान न दिया, पर पानी पीते ही निर्जीव होकर जमीन पर गिर पड़े। उनके गये बड़ी देर हो जाने के कारण सहदेव उन्हें ढूंढ़ने निकले पर उनकी भी वही गति हुई। युधिष्ठिर ने फिर अर्जुन को भेजा पर वे भी उसी हालत को प्राप्त हो गये और अन्त में भीम की वही गति हुई यद्यपि उन्होंने उस अदृश्य यक्ष से व्यर्थ में लड़ने का प्रयत्न किया। उन्होंने भी तालाब से पानी पीया और जमीन पर निर्जीव होकर पड़ गये। अशुभ की आशंका से अन्त में युधिष्ठिर स्वयं यह देखने के लिए वहां गये कि उनके भाइयों को क्या हो गया। भय से स्तम्भित युधिष्ठिर ने उन सबको मरा पड़ा देखा और रोने लगे—भाग्य की शिकायत करने लगे। जब वे तालाब के पास पहुंचे तो उन्होंने भी उस यक्ष की आवाज सुनी जो उनको प्रश्नों का उत्तर दिये विना पानी पीने को मना कर रही थी। युधिष्ठिर प्रश्नों का उत्तर देने के लिए तयार हो गये और प्रश्नों तथा उत्तरों का बड़ा मजेदार खेल शुरू हुआ जिसमें

प्राचीन वैदिक ब्रह्मोद्यों[1] की शैली में उपस्थापित कुछ गुत्थियों को छोड़कर प्रायः सारा भारतीय आचार शास्त्र दुहराया गया। यहां केवल कुछ उदाहरण उद्धृत किये जायेंगे :

यक्ष : "कौन सी चीज धरती से भी अधिक वजनी है ? कौन सी चीज आसमान से भी अधिक ऊंची है ? हवा से भी तेज कौन सी चीज है ? कौन सी चीज संख्या में घास से भी अधिक है ?"

युधिष्ठिर : "मां धरती से भी अधिक वजनी है। पिता आकाश से भी अधिक ऊंचा है। मन हवा से भी तेज है। विचार संख्या में घास से भी अधिक हैं।"

यक्ष : "यात्री का मित्र कौन है ? गृहस्थ का मित्र कौन है ? बीमार का कौन मित्र है ? मरते हुए व्यक्ति का कौन मित्र होता है ?"

युधिष्ठिर : "कारवां यात्री का मित्र है। पत्नी गृहस्थ का मित्र है। वैद्य बीमार का मित्र है। दान मरते व्यक्ति का मित्र है।"

यक्ष : "कौन सा शत्रु ऐसा है जिसे जीतना कठिन है ? कौन सा रोग कभी समाप्त नहीं होता है ? किस आदमी को भला और किसको बुरा कहते है ?"

युधिष्ठिर : "क्रोध ऐसा शत्रु है जिसे जीतना कठिन है। लोभ कभी समाप्त न होने वाला रोग है। जो सब प्राणियों के प्रति दयावान् है उसे भला और जिसे दया का पता नहीं है उसे बुरा कहते हैं।"

यक्ष : "राजा ! अज्ञान किसे कहते हैं ? घमण्ड क्या है ? आलस्य से क्या तात्पर्य है और दुःख क्या है ?"

युधिष्ठिर : "धर्म[2] को न जानना अज्ञान है. अपने प्रति अहंकार घमण्ड है। धर्म के बारे में निष्क्रिय होना आलस्य है और अज्ञान ही सच्चा दुःख है।"

यक्ष : "ऋषि लोग निष्ठा किसे कहते हैं ? किसे वीरता कहते हैं ? सर्वोत्तम स्नान क्या है ? दान क्या है ?"

युधिष्ठिर : "अपने कर्तव्य का पालन करने में दृढ़ता निष्ठा है। इन्द्रियों का दमन वीरता है। विचार के मलों से मुक्त होना सर्वोत्तम स्नान है पर सारे प्राणियों की रक्षा करने में ही दान निहित है।"

यक्ष : "महाराज मुझे बताइये कि ब्रह्मत्व किस बात में है—कुल में, आचरण में, वेदाध्ययन में या विद्वत्ता में ?"

युधिष्ठिर : "प्रिय यक्ष सुनो—ब्रह्मत्व न तो कुल पर आधारित है न वेदाध्ययन

---

१. दे० वैदिक साहित्य का प्रकरण। वहाँ वाजसनेयी संहिता XXIII, 45 आ० से उद्धृत प्रश्न यहाँ भी आते हैं।

२. संस्कृत शब्द 'धर्म' का समानार्थक कोई शब्द यूरोप की किसी भाषा में नहीं है। धर्म का अर्थ आचरण का आदर्श है जिसमें "विधि और परम्परा, नीति और धर्म, कर्तव्य और सद्गुण" का समावेश है। अतः एक रूपता के साथ इसका अनुवाद करना असम्भव है।

पर, न ही विद्वत्ता पर—यह केवल सदाचारपूर्ण जीवन पर आधारित है इसमें कोई सन्देह नहीं हो सकता। ब्रह्मण को बाकी बातों की अपेक्षा अपने जीवन को सुधारने पर ध्यान देना चाहिए। जब तक उसका सदाचारी जीवन अक्षुण्ण है वह स्वयं अक्षुण्ण है। यदि उसका सदाचारी जीवन नष्ट हो गया है तो वह स्वयं भी नष्ट हो जाता है। जो शास्त्रों को पढ़ते हैं, पढ़ाते हैं या उसका मनन करते हैं यदि वे काम से ग्रस्त हैं तो उन्हें मूर्ख ही कहना चाहिए। विद्वान् वही है जो अपना धर्म निभाता है। भले ही वह चारो वेदों को जाननेवाला हो पर यदि वह व्यक्ति दुराचारी है तो शूद्र से भी बुरा है। जो केवल यज्ञ करता है पर अपनी इन्द्रियों पर विजय पा ली है उसको ब्राह्मण कह सकते हैं।[1]

यक्ष युधिष्ठिर के उत्तरों से इतना प्रसन्न हुआ कि वह चारो में से किसी एक भाई को पुनर्जीवित करने लिए तयार हो गया। युधिष्ठिर को चुनना था कि चारो में से किस भाई को जीवित किया जाय। उन्होंने नकुल को चुना क्योंकि उनके पिता की दो पत्नियां थीं और यही उचित और सही था कि उनकी दूसरी पत्नी माद्री का भी एक पुत्र जीवित रहे। इस उत्तर से यक्ष इतना अधिक प्रसन्न हुआ कि उसने चारो भाइयों को पुनर्जीवित कर दिया। वास्तव में यह यक्ष कोई दूसरा व्यक्ति नहीं बल्कि युधिष्ठिर के पिता साक्षात् धर्मराज थे। अन्तर्धान होने के पहले उन्होंने पाण्डवों को एक और वरदान दिया कि पांडव लोग तेरहवें वर्ष के अज्ञातवास में पहचाने न जांय—वनवास के बारह वर्ष बीत चुके थे और प्रतिज्ञा के अनुसार उनको तेरहवां वर्ष लोगों में मिलकर छिपे तौर पर इस तरह बिताना था कि उन्हें कोई पहचान न सके।

राजा विराट के दरबार में पांडव[2]

पाण्डव लोगों ने मत्स्यराज विराट के दरबार में अपने अपने नाम बदल कर छिपे रूप में रहने का निश्चय किया। उन्होंने नगर के बाहर श्मशान-भूमि में अपने अस्त्र-शस्त्र एक पेड़ पर छिपाकर रख दिये और उस पेड़ पर एक मुर्दे को टांग दिया जिससे किसी व्यक्ति को उस पेड़ के पास जाने का साहस न हो। एक रखवाले ने उन्हें ऐसा करते देखा तो उससे उन्होंने कहा कि वे अपनी १८० साल की बुढ़िया माता की अपने परिवार में प्रचलित प्राचीन प्रथा के अनुसार और्ध्वदेहिक क्रिया कर रहे हैं। पहले युधिष्ठिर विराट के पास गये और अपने को बतलाया कि वे एक बहुत अच्छे जुए के खिलाड़ी हैं तो राजा ने उन्हे अपना साथी और सलाहकार बना लिया।

---

१. बौद्ध साहित्य में ब्राह्मण के लक्षण बहुधा मिलते हैं; दे० उदाहरण के लिए विनयपिटक, महावग्ग I. 2. 2. आ०; सुत्तनिपात, वासेट्ठसुत्त और मिलिंदपन्ह IV, 5, 26। जैन हेमविजय के 'कथारत्नाकर' सं० २१ (J. Hertel कृत जर्मन अनुवाद, भाग I, पृ० 58 आ०) में युधिष्ठिर और यक्ष की कथा का एक रूप मिलता है।

२. विराट के दरबार में घटी घटनाएं चौथे भाग विराटपर्व में वर्णित हैं।

बारी बारी से दूसरे लोग भी गये। भीम रसोइया बन गये। अर्जुन ने अपना नाम स्त्रियों जैसा बृहन्नला रखा, अपने को नपुंसक बताया और राजा की पुत्री उत्तरा को नाच सिखाने के लिए शिक्षक नियुक्त कर दिये गये। नकुल को घोड़ों की शिक्षा के लिए तथा सहदेव को पशुओं की देखभाल के लिए नियुक्ति मिल गई। द्रौपदी को रानी ने अपनी सेविका नियुक्त कर लिया।

पाण्डवों ने जल्दी ही विराट के दरबार में बड़ी ख्याति पा ली। खास करके भीम ने तो विश्व प्रसिद्ध मल्ल जीमूत को ब्रह्मा को प्रसन्न करने के लिए आयोजित एक मल्लयुद्ध में मार कर बहुत अधिक प्रसिद्धि पायी।

दूसरी ओर द्रौपदी को एक दुःखदायी प्रसंग का सामना करना पड़ा। राजा का साला और सेनापति कीचक इस सुन्दर सेविका के प्रेम में फंस गया और उसने द्रौपदी को अपने पास बुलाया। द्रौपदी ने रानी के द्वारा नियुक्त किये जाने के अवसर पर यह बतलाया था कि वह पांच गन्धर्वों की पत्नी है जो आवश्यकता पड़ने पर उसकी रक्षा करेंगे। कीचक को आनन्द देने की बात करते द्रौपदी उसे बहका कर मध्यरात्रि में नाचघर में ले गयी जहां भीम छिप कर उसकी बाट देख रहे थे और घमासान युद्ध के बाद उन्होंने उसको गला दबा कर मार डाला। इस पर द्रौपदी ने पहरेदारों को बुलाया और कहा कि एक गन्धर्व ने कीचक को मार डाला क्योंकि कीचक उसके पीछे पड़ा था। कीचक के बली सम्बन्धियों ने इस सेविका को कीचक के शव के साथ चिता पर जला देना चाहा पर फिर भीम उसकी सहायता को आये और गन्धर्व के वेश में उन्होंने १०५ सूतों (कीचक एक सूत था) को मार डाला और द्रौपदी को छुड़ा लिया। इसके बाद नागरिकों ने गन्धर्वों के कारण खतरनाक इस परिचारिका को हटा देने की मांग की और राजा ने उनकी मांग के अनुसार आज्ञा दे दी। पर द्रौपदी ने राजी से तेरह दिन और उसे रहने देने की प्रार्थना की। इसके बाद गंधर्व लोग उसे ले जायेंगे। क्योंकि तेरहवें वर्ष में सिर्फ तेरह दिन बच गये थे।

दुर्योधन ने अपने गुप्तचरों को पांडवों का पता लगाने भेजा पर निष्फल रहा। गुप्तचर केवल यह समाचार लाये कि गंधर्वों ने कीचक को मार डाला है। यह समाचार दुर्योधन के लिए अच्छा ही था क्यों मत्स्यराज्य उसका विरोधी था। त्रिगर्तों के राजा सुशर्मन् को कीचक ने बार बार दबाया था इसलिए त्रिगर्तों ने कौरवों से मिलकर संयुक्त रूप से मत्स्यराज्य पर चढ़ाई करने की तयारी की। ज्यों ही वनवास का तेरहवां वर्ष बीता तो यह समाचार मिला कि त्रिगर्तों ने देश पर चढ़ाई कर दी है और राजा विराट की गायें चुरा ले गये हैं। विराट ने युद्ध की तयारी की और युधिष्ठिर, भीम, नकुल और सहदेव को अस्त्रशस्त्र देकर त्रिगर्तों से लड़ने निकल पड़ा। घोर युद्ध हुआ। विराट को बन्दी बना लिया गया पर भीम ने उसे छुड़ा लिया। अन्त में त्रिगर्त लोग हार गये—इसका श्रेय पाण्डवों की सहायता को था जो अबतक पहचाने नहीं गये थे।

विराट त्रिगर्तों से लड़ ही रहे थे कि मत्स्यराज्य पर दूसरी ओर से कौरवों ने

आक्रमण कर दिया और बहुत सी गायें चुरा ले गये। गोपाल युवक राजकुमार उत्तर के पास पहुंचा जो नगर में ही रह गया था और प्रार्थना की कि वह कौरवों से युद्ध करने चले। उत्तर के पास कोई सारथि नहीं था। द्रौपदी ने राजकुमारी के माध्यम से उत्तर को विवश किया कि वह अर्जुन को सारथि कर ले। उसको कवच दिया गया और युद्ध के लिए निकल पड़े। जब उत्तर ने कौरवों की शक्तिशाली सेना देखी तो उसे बड़ा भय हुआ। वह रथ से कूद पड़ा और भागने लगा। पर अर्जुन ने उसके बाल पकड़ कर घसीट कर उसे रथ पर ला बिठाया और साहस दिलाने लगा। इसके बाद वे उस वृक्ष के पास रथ ले गये जहां अस्त्र-शस्त्र छिपा रखा था। अर्जुन ने अपने अस्त्र-शस्त्र ले लिए। जब उन्होंने अपने आप को प्रगट कर उत्तर को बताया कि वह शक्तिशाली वीर अर्जुन है तो उत्तर को फिर जोश आ गया। अब उत्तर अर्जुन का सारथि बना। अब घमासान युद्ध हुआ जिसमें अर्जुन ने कर्ण, भीष्म और कौरवों के अन्य वीरों से युद्ध किया और उन पर शानदार विजय पायी। यद्यपि कौरवों के मन में शंका थी कि अर्जुन ही उनके विरुद्ध लड़ रहा है पर वे उन्हें पहचान न सके।

विजय प्राप्त कर लेने के बाद अर्जुन ने अपने अस्त्र-शस्त्र फिर पेड़ पर रख दिये और नृत्य-शिक्षक बृहन्नला के रूप में उत्तर का रथ हांकते और उत्तर को यह समझाते कि वह उसका रहस्य किसी को बताकर उसे धोखा न दे नगर में लौट आये। इसी बीच विराट और पाण्डव लोग त्रिगर्तों को हराकर लौट आये थे। जब राजा ने यह सुना कि उनका पुत्र कौरवों से लड़ने गया है तो उनको चिन्ता होने लगी पर जल्दी ही उनको विजय का समाचार मिला। उत्तर का बड़ा विजय-स्वागत हुआ। उत्तर ने बताया कि उसने कौरवों पर विजय नहीं पायी अपितु एक सुन्दर युवक के रूप में एक देवता ने उसकी सहायता की। तीन दिनों के बाद तेरहवां वर्ष बीत गया। राजा के आश्चर्य का ठिकाना न रहा जब पांचों पाण्डव अपने असली रूप में सभा-भवन में उपस्थित हुए और अपना असली परिचय दिया। विराट बड़े प्रसन्न हुए और तुरत उन्होंने अपनी पुत्री का अर्जुन से विवाह करने के लिए तयार हो गये। पर अर्जुन ने उसे अपने लिये तो नहीं पर अपने पुत्र अभिमन्यु के लिए उसे स्वीकार किया क्योंकि वह उसको अपनी पुत्रवधू बनाकर यह दिखा देना चाहते थे कि यद्यपि वे पूरे साल भर उसके घनिष्ट सम्पर्क में रहे पर वह शुद्ध रही। बड़ी सजधज के साथ उत्तरा का विवाह अभिमन्यु से हो गया और बहुमूल्य उपहार लेकर बहुत से राजा लोग जिनमें द्रुपद और कृष्ण भी थे इस अवसर पर आये।

शान्ति की बातचीत और युद्ध की तयारी[1]

इस विवाह के अवसर पर पाण्डवों और उनके मित्रों ने मिलकर आपस में सलाह की कि कौरवों के साथ कैसा रुख अपनाना चाहिए। कृष्ण ने प्रस्ताव रखा कि

१. यहाँ पांचवें भाग उद्योगपर्व की कथा दी गयी है।

पाण्डवों को उनका आधा राज्य वापस कर देने की प्रार्थना को लेकर एक दूत दुर्योधन के पास भेजा जाय। एक लम्बी सलाह के बाद इसके अनुसार निश्चय किया गया कि राजा द्रुपद के बूढ़े राजपुरोहित को कौरवों के पास दूत बनाकर भेजा जाय।

परन्तु बातचीत शुरू होने के पहले ही पाण्डवों और कौरवों ने अपनी-अपनी ओर जितने सम्भव हो सकें उतने मित्र इकट्ठे करने शुरू कर दिये और दोनों पक्षों ने एक साथ कई शक्तिशाली राजाओं को अपनी ओर मिलाने का प्रयत्न आरम्भ कर दिया। इस प्रकार दुर्योधन ने कृष्ण को अपनी तरफ करना चाहा जिनको अब तक हम केवल पाण्डवों के एक घनिष्ट मित्र के रूप में जानते हैं। संयोग से कृष्ण के पास दुर्योधन उस समय पहुंचा जब वे सो रहे थे और अर्जुन दुर्योधन के तुरत बाद पहुंचे। जब कृष्ण जागे तो सबसे पहले उनकी आंख अर्जुन पर पड़ी। चूंकि दुर्योधन पहले आया था पर कृष्ण ने पहले अर्जुन को देखा इसलिए कृष्ण ने यह सोचा कि उनमें से किसी को इनकार करना ठीक नहीं है इसलिए उन्होंने कहा कि वे एक की अपनी सलाह से सहायता करेंगे और दूसरे की अपनी सेना देकर। दुर्योधन ने सेना लेना पसन्द किया और अर्जुन ने कृष्ण की सलाह। इस कारण से कृष्ण ने प्रतिज्ञा की कि वे युद्ध में लड़ेंगे नहीं बल्कि अर्जुन का सारथि बनकर केवल सलाहकार के रूप में पाण्डवों का साथ देंगे। मद्र देश के राजा शल्य कई वीरों को लेकर युधिष्ठिर की तरफ मिलने के लिए जा रहे थे। दुर्योधन ने उनको कौरवों की तरफ से लड़ने के लिए निमंत्रित किया। शल्य ने इसे मान लिया। फिर भी वे युधिष्ठिर से मिलने गये। जिस युधिष्ठिर को वैसे तो धर्म का अवतार बताया जाता है उसने शल्य के साथ एक नीचतापूर्ण धोखेबाजी की बात पक्की की। शल्य को कौरवों की तरफ से लड़ना था। पर कर्ण के सारथि के रूप में उसे अर्जुन और कर्ण के बीच युद्ध होते समय इस बुरी तरह रथ हांकना था कि कर्ण गिर पड़े।

दोनों पक्ष युद्ध की बात सोच ही रहे थे इसी बीच द्रुपद का राजपुरोहित दूत के रूप में राजा धृतराष्ट्र के पास आया और उनके सामने पाण्डवों की शान्ति की बात रखी। राजा ने उसका बड़े उचिस ढंग से स्वागत किया पर कोई निश्चित उत्तर न देते हुए यह कहा कि स्वयं अपने सारथि संजय को दूत के रूप में युधिष्ठिर के पास भेजेंगे। कुछ दिनों के बाद उन्होंने वैसा किया। पर संजय का संदेश सिर्फ इतना था कि धृतराष्ट्र शान्ति चाहते हैं पर पाण्डवों से कोई प्रस्ताव नहीं किया गया। इस पर युधिष्ठिर ने यह उत्तर भेजा कि या तो उन्हें इन्द्रप्रस्थ और आधा राज्य वापस मिल जाय या फिर लड़ाई शुरू हो। अपने सम्बन्धियों के बीच खून-खराबी रोकने के लिये वे यहां तक तयार हो गये कि यदि दुर्योधन उन्हे सिर्फ पांच गांव भी दे दे तो वे शान्ति से स्वीकार कर लेगें। संजय द्वारा लाये गये इस उत्तर पर कौरवों ने विचार किया। भीष्म द्रोण और विदुर ने दुर्योधन को झुकने और शान्ति करने के लिये मनवाने का व्यर्थ प्रयत्न किया। चूंकि धृतराष्ट्र ने अपने-आपको बिलकुल कमजोर और निर्बल बताया इसलिए बिना किसी परिणाम पर पहुंचे यह बात-चीत समाप्त हो गयी।

पाण्डव लोगों ने भी शान्ति के बारे में सलाह की और कृष्ण ने कहा कि वे स्वयं शान्ति-दूत के रूप में कौरवों के पास जाकर एक बार और प्रयत्न करने के लिए तयार हैं। पाण्डवों ने इसे आभार-पूर्वक मान लिया। अदम्य भीम ने भी शान्ति के पक्ष में इतने कोमल ढंग से बात कही कि मानो पर्वत हलके हो गये हैं और आग ठंढी हो गयी है। इससे कृष्ण को आश्चर्य हुआ। दूसरी ओर कुछ पाण्डव और खास कर पाण्डव की पत्नी द्रौपदी शान्ति की बात-चीत से ऊब गये थे और तुरत युद्ध की घोषणा कर देना उचित समझते थे। पर युधिष्ठिर शान्ति के सन्देश पर जोर देते रहे। उन्होंने बड़े कोमल शब्दों में अपनी मां कुन्ती की याद की और उन्होंने कृष्ण से प्रार्थना की कि वे उनके पास जायं और उनका कुशल-मंगल पूछें क्योंकि कुन्ती विदुर के पास कौरवों के दरबार में रहती थी।

रास्ते में लोगों की पूजा स्वीकार करते हुए कृष्ण कौरवों के पास पहुँचे। धृतराष्ट्र ने उनका शानदार स्वागत किया। पर उन्होंने विदुर का आतिथ्य स्वीकार किया। वे तुरत कुन्ती के पास गये और उनसे युधिष्ठिर का प्रणाम कहा। पाण्डवों की मां बड़े दुःखपूर्ण शब्दों में अपने पुत्रों से बिछुड़ने के ऊपर रोती रही पर सबसे ज्यादा दुःख उसे द्रौपदी के अपमान का था और उन्होंने युधिष्ठिर की कमजोरी को धिक्कारा। उन्होंने कहा कि वे जाकर उनके पुत्रों से कह दें कि वे अपने क्षत्रिय धर्म को न भूलें और अपने प्राणों की बाजी लगाने में न हिचकिचायें। उन्होंने कहा कि अब वह समय आ गया है जिस दिन के लिए एक क्षत्राणी पुत्र को जन्म देती है। दूसरे दिन कृष्ण कौरवों की सजाई हुई सभा में गये और शान्ति के लिए वक्तव्य दिया। धृतराष्ट्र ने कहा कि वह अपनी ओर से शान्ति से बढ़कर और किसी बात को नहीं चाहता पर अपने पुत्र दुर्योधन के विरुद्ध कुछ करने में असमर्थ है। इसपर कृष्ण ने अपनी शान्ति की बातें दुर्योधन से कहीं और भीष्म, द्रोण तथा विदुर ने जहां तक हो सका दुर्योधन को शान्ति की बात मानने को समझाया। पर दुर्योधन ने कहा कि वह पाण्डवों को सुई की नोंक के बराबर भी जमीन देने के लिए नहीं तयार है। जब वह गुस्से में सभा को छोड़ कर चला गया तो कृष्ण ने प्रस्ताव रखा कि कौरवों में जो भले लोग है वे दुर्योधन और उसके साथियों को बन्दी बनाकर पाण्डवों को सौंप दें। धृतराष्ट्र ने इसे नहीं माना पर उन्होंने अपनी पत्नी गान्धारी को बुला भेजा जिससे कि वह भी अपने हठी पुत्र को शान्ति की बात मान जाने के लिए प्रयत्न कर देखे। गांधारी वहां आई और उसने अपने पुत्र के पक्ष में होने के लिए बूढ़े राजा को खरी-खोटी सुनाई। पर दुर्योधन के लिए उसकी सीख वैसी ही व्यर्थ हुई जैसी कि दूसरों की। इसके विपरीत दुर्योधन और उसके साथियों ने कृष्ण को बन्दी बनाकर एक शक्तिशाली शत्रु से छुटकारा पाने की योजना बनाई। पर यह योजना छिपी न रह सकी और धृतराष्ट्र तथा विदुर ने दौत्य के नियमों के विपरीत बनाई गयी इस योजना के लिए दुर्योधन को बहुत धिक्कारा। शान्ति के पक्ष में भीष्म और द्रोण का बोलना भी व्यर्थ गया। इस तरह इसके बाद कृष्ण का शान्ति-दौत्य भी निष्फल हुआ समझना चाहिए।

चलने से पहले कृष्ण ने कर्ण से अकेले में बात-चीत की। लोग इस वीर को सूत का पुत्र समझते थे। कथा यों है कि वास्तव में कर्ण सूर्य देव के द्वारा कुन्ती से उस समय उत्पन्न हुआ था जब कुन्ती अविवाहिता कन्या थी और इसकी उत्पत्ति इस विचित्र ढंग से हुई थी कि कुन्ती का कन्यात्व अक्षुण्ण बना रहा। कर्ण की उत्पत्ति के बाद कुन्ती ने लोक-लाज से कर्ण को एक पानी के प्रभावसे रहित टोकरी में रख कर नदी में बहा दिया। एक सूत ने उसे पाया और उसे पाल-पोस कर बड़ा किया। इस तरह कर्ण पाण्डवों का बड़ा भाई था। कृष्ण ने यह बात कर्ण से बतायी और उसको राज्य पर अधिकार कर लेने के लिए उभारने का प्रयत्न किया और अपने छोटे भाई युधिष्ठिर को युवराज बना देने के लिए कहा क्योंकि पांडव लोग इसे स्वीकार कर लेते। अपने मित्र दुर्योधन के विपरीत इस षड्यन्त्र की बात सुनने को कर्ण तयार न हुआ और जब स्वयं सूर्य की सहमति के साथ कुन्ती ने भी इस प्रकार कर्ण को पाण्डवों के पक्ष में जाने का आग्रह किया तो कर्ण ने उसे कोरा-सा जवाब दे दिया। उसने कहा कि कुन्ती ने उसके साथ अच्छी मां का-सा कभी व्यवहार नहीं किया इसलिए अब वह अपने को कुन्ती का पुत्र नहीं मानना चाहता।

अपना उद्देश्य पूरा किये विना कृष्ण पाण्डवों के पास लौट आये और शान्ति स्थापित करने के सारे प्रयत्नों के व्यर्थ होने की बात उनको बता दी। जब कृष्ण ने यह कहा कि उनको बन्दी बनाने का प्रयत्न किया गया था तो बड़ा कोलाहल हुआ। दोनों पक्ष अब युद्ध की तयारी करने लगे। पाण्डवों ने राजा द्रुपद के पुत्र धृष्टद्युम्न को अपना पहला सेनानी चुना और कौरवों ने भीष्म को। युद्ध के लिए पद निर्धारित कर दिये गये और सारी व्यवस्था कर दी गयी। भीष्म ने दुर्योधन के सामने उनके पद के क्रम से सारे रथी लोगों के नाम गिनाये। उन्होंने कर्ण को सारे वीरों के अंत में रखा और इसलिए कर्ण का बड़ा अपमान हुआ। कर्ण ने प्रतिज्ञा की कि भीष्म के पतन के पहले वह युद्ध में भाग नहीं लेगा। इस के बाद भीष्म ने पांडवों के मुख्य योद्धाओं की गिनती की और घोषणा की कि शिखण्डी को छोड़ कर वे सब के साथ लड़ सकते हैं। शिखण्डी एक लड़की यानी द्रुपद की पुत्री के रूप में पैदा हुआ था और बाद में जब एक यक्ष ने उसके साथ अपना लिंग बदल लिया तो वह लड़का हो गया[१]। भीष्म फिर भी इसको लड़की ही मानते थे और वे एक लड़की के साथ नहीं लड़ सकते थे।

जब युद्ध की तयारी पूरी हो गयी तो एक जुआड़ी के पुत्र उलूक को कौरवों ने पांडवों के शिविर में अपमानजनक बातें कह कर युद्ध की घोषणा करने के लिए भेजा। पांडवों ने उसे कहीं अधिक अपमानजनक और ढिटाई के शब्दों को सुनाकर वापस भेज दिया। इस पर दोनो ओर की सेनाएँ कुरुक्षेत्र के मैदान की ओर चल पड़ीं।

---

१. परियों के कथा-साहित्य में लिंग-परिवर्तन की अन्य घटनाओं के लिए भी दे० Th. Benfey, "Das Pantschatantra" I. पृ० 41 आ०।

अठारह दिनों का महायुद्ध[1]

दोनों सेनाएं अपने अपने सहायकों के साथ विशाल कुरुक्षेत्र के मैदान के दो ओर डट गईं। पहचान के शब्द और संकेत निश्चित कर दिये गये जिस से मित्र और शत्रु का भेद मालूम किया जा सके। योद्धाओं ने आपस में कुछ नियम तै कर लिये। समान जाति के तथा एक जैसे अस्त्र-शस्त्र धारी योद्धा ही आपस में लड़ सकते थे, रथी रथी के साथ, हाथी पर चढ़ा योद्धा हाथी पर चढ़े दूसरे योद्धा के साथ, घुड़सवार घुड़सवार से तथा पदाति पदाति के साथ ही लड़ सकता था। अपने प्रतिपक्षी को बिना युद्ध के लिए ललकारे कोई लड़ नहीं सकता था। जिन्होंने आत्मसमर्पण कर दिया है या जो युद्ध के अयोग्य हैं और मैदान छोड़कर भाग रहे हैं उन्हें नहीं मारा जा सकता था। सारथि, सामान ढोने वाले, कवच ढोने वाले और भाटों को भी नहीं मारा जा सकता था।

युद्ध आरम्भ होने के पहले ऋषि व्यास आये और उन्होंने धृतराष्ट्र के सारथि संजय को दिव्य दृष्टि प्रदान की जिससे उनको युद्ध क्षेत्र में हुई सारी बातें मालूम हो सकती थीं। उन्होंने संजय को रक्षित कर दिया जिससे वे प्रतिदिन युद्ध का सारा समाचार बूढ़े राजा धृतराष्ट्र को दे सकें। इस के बाद का युद्ध का आंखों देखा सारा वर्णन संजय ने किया है जिससे वे वर्णन बहुत सजीव और यथार्थ हो उठे हैं[2]।

कौरवों और पाण्डवों के पितामह आदरणीय भीष्म ने युद्ध के पहले दस दिनों तक कौरवों की सेना का संचालन किया। बड़े उत्तेजक शब्दों में उन्होंने योद्धाओं को वीरतापूर्वक लड़ने का उत्साह दिलाया—"योद्धाओं! स्वर्ग का महा द्वार आज खुल गया है। इस द्वार से हो कर ब्रह्मा और इन्द्र के लोकों में पहुंचो। घर में रोग से मर जाना क्षत्रिय को शोभा नहीं देता। क्षत्रिय का सनातन कर्तव्य है युद्ध में प्राणों की आहुति देना[3]।" उत्साह के साथ चमकते कवचों तथा अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित दोनों सेनाएं युद्ध-भूमि में पहुंचीं और एक दूसरे के सामने खड़ी हो गयीं।

कान फाड़ देने वाले युद्ध-घोष और युद्ध-गीत ने लड़ाई शुरू होने की सूचना दी। कौरव पाण्डव एक दूसरे से भयानक रूप में भिड़ गये। उनको सम्बन्ध का ध्यान नहीं रहा। पिता ने पुत्र को नहीं समझा, भाई ने भाई को नहीं समझा, मामा ने

---

१. छठा भाग भीष्मपर्व यहां आरम्भ होता है और भीष्म के पतन के साथ समाप्त होता है।

२. इसी प्रकार Langobardian कवियों ने भी बहुधा इस कल्पना का सहारा लिया है कि "कोई स्काउट तैनात कर दिया जाता है और वह अपनी आंखों देखा हाल सुनाता है। कलाकार इस पद्धति के द्वारा दुरूह वर्णनों से छुटकारा पा जाता है और उसको दुहरा फायदा भी है—एक तो वह अपने को मुख्य घटना तक सीमित रखता है और दूसरे अपने श्रोताओं को अधिक-से-अधिक रोमांचित करता है।" (R. Koegel, Geschichte der deutschen Litteratur, I, 1, Strassburg 1894, पृ० 120).

३. VI. 17, 8 आ०।

भानजे को नहीं समझा। हाथियों ने भयानक विनाश किया। बड़ा खून-खराबा हुआ। कभी यह वीर कभी वह वीर युद्ध में जूझता दिखाई देता। कभी पांडवों की जीत होती, कभी कौरवों की। पर जब रात होने लगती तो लड़ने वाले आराम को चले जाते और फिर दूसरे दिन सुबह होते नये सिरे से सेना का व्यूह रचा जाता और फिर से लड़ाई शुरू हो जाती। बार बार भीष्म और अर्जुन की आपस में मुठभेड़ हुई और दोनों इतनी वीरता से लड़े कि देवता और दैत्य लोग भी उनकी लड़ाई आश्चर्य से देखते रहे। हर बार कौरवों का बुरा होता गया। दुर्योधन ने पांडवो से लड़ते समय उनके प्रति बहुत अधिक उदार होने के लिये भीष्म को बुरा-भला कहा और जब पाण्डवों का नुकसान होता तो कृष्ण सीधे-सीधे भीष्म के ऊपर बाण न चलाने के लिये अर्जुन को कोसते। दुर्योधन के बहुत से भाई युद्ध में मारे जा चुके। दुर्योधन ने फिर पाण्डवों के प्रति बहुत अधिक दया दिखाने के लिए भीष्म को दोषी बताया। या तो वे शत्रु को हराएं या फिर कर्ण को सेनापति बना दिया जाय। दुःख और क्रोध से अभिभूत हो कर भीष्म ने प्रतिज्ञा की कि दूसरे दिन एक शिखण्डी को, जो कि पहले लड़की था, छोड़कर वे निर्दयता पूर्वक सब के साथ लड़ेंगे। उन्होंने कहा कि ओ गान्धारी के पुत्र ! आराम से सो जा, कल मैं ऐसी वीरता दिखाऊंगा कि जब तक संसार रहेगा तब तक उसकी चर्चा होगी (६, ९९, २३)। युद्ध के नवें दिन वास्तव में पाण्डवों को बड़ी हानि उठानी पड़ी। शत्रु की सेना के बीच भीष्म यमराज की तरह विचरते रहे पर अर्जुन उनकी फिर भी पितामह[१] के रूप में श्रद्धा करते रहे और युद्ध में उनके प्रति काफी सरलता दिखाते रहे। जब कृष्ण ने यह देखा तो वे खुद भीष्म को मारने के लिये दौड़ पड़े। पर अर्जुन ने उन्हें बलपूर्वक पकड़ लिया और याद दिलाई कि उन्होंने प्रतिज्ञा की है। भीष्म के द्वारा इधर उधर भगाये गए पाण्डव-वीर रात होने पर अपने शिविर में वापस लौट आए।

पाण्डवों ने रात में युद्ध के बारे में सलाह की। चूंकि उन्हें मालूम था कि भीष्म शिखण्डी से नहीं लड़ेंगे इस लिए उन्होंने निश्चय किया[२] कि दूसरे दिन शिखण्डी

---

१. पांडु के पुत्र दादा भीष्म को 'पितामह' कहा करते थे।

२. प्राचीन कविता में शायद कृष्ण ने यह सलाह दी। वर्तमान महाभारत में इसका जो रूप मिलता है वह बिल्कुल निस्सार है। पांडु-पुत्र रात में भीष्म के पास जाते हैं और मूर्खों की तरह उन से पूछते हैं कि उनको मारने का सब से अच्छा उपाय क्या है। भीष्म स्वयं सलाह देते हैं कि वे शिखण्डी को उन के सामने कर दें और अर्जुन उसके पीछे से लड़ें। VI, 107 के आरम्भ में ऐसा ही वर्णित है, उसी के बीच में कुछ सुन्दर उक्तियाँ भी हैं जिन में अर्जुन बड़ी कोमल भावनाओं के साथ 'पितामह' के बारे में सोचते हैं जिन्होंने बचपन में उसे गोद में खिलाया है। उसी के अन्त में वही अर्जुन इस अन्यायपूर्ण ढंग से भीष्म को मारने की योजना ले कर सामने आते हैं—। दे० Ad. Holtzmann, "Das Mahābhārata," II, 172 आ०।

को युद्ध में आगे किया जाए और अर्जुन शिखण्डी के पीछे से छिप कर भीष्म पर बाण चलाएं। न चाहते हुए भी अर्जुन को यह धोखे की बात माननी पड़ी। उनको यह याद कर बड़ा दुःख और लज्जा होती थी कि जब वे छोटे थे उस समय भीष्म की गोद में खेला करते थे और उन्हें बाबा कह कर पुकारते थे। किसी तरह कृष्ण अर्जुन को यह मनवाने में सफल हुए कि केवल वे ही भीष्म को जीत सकते हैं और इस बली प्रतिपक्षी को मार कर ही वे अपना क्षत्रिय धर्म पूरा कर सकते हैं।

युद्ध के दसवें दिन सुबह हुई और पाण्डवों ने शिखण्डी को आगे किया और कौरव लोग भीष्म के नेतृत्व में आगे बढ़े। सारे दिन भीष्म के चारो ओर कौरवों और पाण्डवों की लड़ाई होती रही। दोनों ओर के हजारों हजार लोग धराशायी हुए। अन्त में शिखण्डी, जिसके पीछे अर्जुन छिपे हुए थे, भीष्म के सामने आने में सफल हुआ। भीष्म मुसकराते हुए शिखण्डी के बाण सहते रहे पर उन्होंने अपने को बचाने का प्रयत्न नहीं किया। कितनी भी तेज शिखण्डी भीष्म पर बाण चलाता पर उन बाणों से उन्हें बिलकुल भी पीड़ा नहीं होती थी। पर जल्दी ही शिखण्डी के पीछे से अर्जुन बाणों के ऊपर बाण की झड़ी उस आदरणीय वीर पर बरसाने लगे। भीष्म ने दुश्शासन कि ओर, जो उनकी बगल में लड़ रहा था, मुड़ कर कहा "ये बाण जो मेरे प्राणों को यमदूत की तरह एकदम नष्ट करते जा रहे हैं शिखण्डी के बाण नहीं हैं। ये बाण जो क्रुद्ध और चक्कर खाते विषधर सापों की तरह मेरे शरीर में घुस रहें शिखण्डी के बाण नहीं है, ये अर्जुन के द्वारा छोड़े गये हैं[१]।" एक बार वे फिर सावधान हुए और अर्जुन के ऊपर एक बाण फेंका पर अर्जुन ने बीच में ही उसके तीन टुकड़े कर दिये। तब भीष्म ने अपने को बचाने के लिए तलवार और ढाल ले ली पर अर्जुन ने उनकी ढाल के भी सैकड़ों टुकड़े कर दिए। इसके बाद युधिष्ठिर ने अपने सैनिकों को भीष्म के ऊपर आक्रमण करने की आज्ञा दी और उस अकेले खड़े वीर पर पाण्डव लोग चारों ओर से टूट पड़े और सूर्यास्त के पहले अगणित घावों से रक्त बहाते हुए भीष्म अपने रथ से सिर के बल नीचे गिर पड़े।[२] उनके शरीर में चारो

१. VI, 119,63 आ०।

२. एक मूर्खतापूर्ण (VI. 116) वर्णन में भीष्म युद्ध के बीच में ही युधिष्ठिर से बतलाते हैं कि वे जीवन से ऊब गये हैं। इस पर युधिष्ठिर अपने आदमियों को भीष्म से लड़ने के लिए साहस दिलाते हैं। यह प्रस्तुत (VI, 120, 58 आ०) वर्णन के उतना ही विपरीत है जितना कि एक बचकानी कहानी (VI, 120, 32 आ०) जिसमें बतलाया गया है कि भीष्म द्वारा किए गए मरण के निश्चय का अनुमोदन करने के लिए वसु और ऋषि गण उपस्थित होते हैं। ये बाद में जोड़े गए संक्षिप्त अंश हैं। इसके दो उद्देश्य हैं—पाण्डवों के कर्म को अच्छा दिखाना और भीष्म को देवतुल्य बताना। प्राचीन कविता में भीष्म केवल वीर योद्धा थे जिनको पाण्डवों ने कायरों की भांति हराया। पर VI, 116 की कथा भास द्वारा निर्मित "दूतघटोत्कच" (V. 19) में आती है।

ओर से इतने बाण बिंधे हुए थे कि गिरने पर उनका स्पर्श जमीन से नहीं हुआ, वे मानो बाणों की शय्या पर टिके रहे।

पाण्डवों को जितना आनन्द हुआ उतना ही असीम शोक कौरवों के शिविर में छा गया। इस वीर के सम्मान में, जो दोनों पक्षों का सगा सम्बन्धी था, युद्ध बन्द कर दिया गया। पाण्डव और कौरव श्रद्धा और दुःख से भरे उस मरते हुए वीर के चारो ओर खड़े हो गये। उन्होंने योद्धाओं का स्वागत किया और उनसे बात-चीत करने का प्रयत्न किया। उस मरते हुए व्यक्ति का सिर नीचे लटक रहा था। उन्होंने एक तकिया मांगी। लोग सुन्दर तकिया लेकर दौड़े। पर मुस्कराते हुए उन्होंने सबको अलग हटा दिया। तब अर्जुन ने अपने तरकस से तीन बाण निकाले और उन पर भीष्म का सिर टिका दिया।

भीष्म ने सन्तुष्ट हो कर कहा कि वे यही चाहते थे और ऐसी हीं शय्या वीर को शोभा देती है। मरते हुए वीर ने दुर्योधन को बड़े प्रभावशाली शब्दों में समझाते हुए कहा कि वह शान्ति की सन्धि कर ले। "मेरे बेटे! मेरी मृत्यु के बाद इस युद्ध का अन्त हो जाने दे"—उन्होंने कहा "पाण्डवों के साथ सन्धि कर ले।" पर जैसे मरणा-न्मुख रोगी दवा नहीं लेता उसी तरह दुर्योधन ने भीष्म की बुद्धिमानीपूर्ण सलाह नहीं मानी।

हठी पर उदार कर्ण भी उस मरते वीर के पास अपना आदर व्यक्त करने गया। धुंधली आंखों वाले बूढ़े उस सेनापति ने एक हाथ से कर्ण का आलिंगन किया और पाण्डवों से सन्धि कर लेने के लिए कहा। उसके लिए तो यह और भी उचित था क्योंकि कुन्ती का पुत्र होने के नाते पाण्डव उसके भाई हैं। पर कर्ण ने घोषित किया कि वह दुर्योधन के प्रति वफादार रहेगा और पाण्डवों के विरुद्ध लड़े जाते युद्ध में क्षत्रिय धर्म का पालन करेगा। उसने कहा कि वह बदल नहीं सकता। बात मानकर भीष्म ने उस महावीर को लड़ने की आज्ञा दे दी यद्यपि उनको बड़ा दुःख था कि शान्ति के उनके सारे प्रयत्न निष्फल रहे।[१]

---

१. प्राचीन कविता में भीष्म उतनी ही देर जीवित रहे होंगे जितनी देर में वे दुर्योधन और कर्ण से दो बातें कह सके होंगे। हमारा महाभारत एक विचित्र कथा बतलाता है कि सूर्य के दक्षिणायन में रहते भीष्म का पतन हुआ था पर उन्होंने अपनी मृत्यु को सूर्य के उत्तरायण होने तक के लिए रोक रखा। उप-निषद् कहते हैं कि ब्रह्मलोक में देवताओं के मार्ग से जाने वाले उत्तरायण में मरते हैं (छान्दोग्य उपनिषद्, V, 10, 1; बृहदारण्यक, VI, 2, 15)। इससे धर्माचार्यों ने यह नियम निकाला कि ब्रह्मसायुज्य की कामना करनेवाला योगी उत्तरायण में ही मरे। (भगवद्गीता इसीलिए कहती है—VIII, 24)। दार्शनिक शंकर (वेदान्त-सूत्र IV,2, 20 आ० पर) कहते हैं कि भीष्म ने मृत्यु के लिए उत्तरायण का काल चुना। इसलिए उस समय (ईसा की ८ वीं सदी में) भीष्म की कथा उसी रूप में प्रचलित थी जैसी आज के महाभारत में।

भीष्म का पतन हो गया इससे कर्ण युद्ध में भाग लेने लौट आया और उसकी सलाह से बूढ़े आचार्य द्रोण को सेनापति बनाया गया[१]। ग्यारहवें दिन से पद्रहवें दिन तक उनके संचालन में युद्ध चलता रहा।

युद्ध के तेरहवें दिन पाण्डवों के लिए एक बड़ी दुःखपूर्ण घटना घटी। अर्जुन का युवा परन्तु वीर पुत्र अभिमन्यु लड़ते हुए शत्रु की सेना में बहुत दूर तक साहस करके घुस गया, सिन्धु-राज जयद्रथ ने उसके रक्षकों को उससे दूर कर दिया और दुश्शासन के पुत्र ने उसको मार डाला। अर्जुन ने अपने पुत्र के मारने वाले अर्थात् जयद्रथ को मारकर बदला लेने की भीषण प्रतिज्ञा कर ली। इस लिए युद्ध के चौदहवें दिन की मुख्य घटना थी अर्जुन और जयद्रथ का युद्ध जो सारे दिन चलता रहा और अन्त में जयद्रथ मारा गया। जैसी अर्जुन ने प्रतिज्ञा की थी उसके अनुसार सूर्यास्त के पहले जयद्रथ का वध हुआ। उसी समय भीम ने कौरवों की सेना को ध्वस्त करके धृतराष्ट्र के कई पुत्रों को मार गिराया।

इस दिन और दिनों की तरह सूर्यास्त के बाद युद्ध बन्द नहीं हुआ। दोनों पक्षों के योद्धा इतने संलग्न थे कि उनके लिए अन्धकार के बावजूद अवकाश सह्य नहीं था। मशालों और बत्तियों के सहारे युद्ध चलता रहा। वीरों ने अलग-अलग अद्भुत कार्य किए। परन्तु पाण्डवों के लिए कर्ण असह्य हो रहा था और कर्ण से लड़ने के लिए राक्षस घटोत्कच को भेजा गया। यह भयानक राक्षस कौरवों की सेना का तबतक भयंकर विध्वंस करता रहा जबतक कर्ण ने उसे मार न डाला। गिरते हुए भी उस राक्षस घटोत्कच ने कौरवों की सेना के एक भाग को अपने शरीर के भार से दबाकर चूर-चूर कर दिया। भीम के पुत्र घटोत्कच के मरने पर पाण्डवों को बड़ा शोक हुआ पर कृष्ण बड़े प्रसन्न हुए क्योंकि इन्द्र के द्वारा दी गयी अमोघ शक्ति का कर्ण ने राक्षस के विरुद्ध प्रयोग कर दिया जिसे उसने अर्जुन[२] के लिए बचाकर रखा था। यही कृष्ण चाहते थे।

तब तक युद्ध चलता रहा जब तक दोनों पक्षों के लोग निद्रा से अभिभूत न हो गए। बड़ी कठिनाई से वीर लोगों ने अपने को जगा रखा। उनमें से बहुत से थके और ऊँघते वीर अपने हाथियों घोड़ों और रथों पर लेट गए और कुछ वीर तो नींद से अन्धे होकर चारों ओर चक्कर काटने लगे और इस तरह अपने ही मित्रों को मार डाला। वीर अर्जुन को दया आई और उन्होंने गम्भीर घोष में योद्धाओं को थोड़ा विश्राम कर लेने को कहा। शत्रुओं ने भी इसका प्रसन्नता से स्वागत किया और मनुष्यों तथा देवताओं ने इन शब्दों के लिए अर्जुन को आशीर्वाद दिया। युद्ध-भूमि के बीच में ही घोड़े, हाथी और योद्धा लोग लेट कर सो गये।

(नीचे कुछ श्लोकों का गद्यात्मक शब्दानुवाद दिया जा रहा है जिससे यहाँ

---

१. द्रोण के सेनापतित्व में लड़ा गया युद्ध सातवें भाग द्रोणपर्व का विषय है।

२. क्योंकि वह इसका एक बार ही प्रयोग कर सकता था।

वर्णित रात्रि के दृश्य का धुंधला-सा ही काव्यात्मक सौन्दर्य. का आभास हमें मिल सकेगा। कुछ स्थानों पर शैली हमें कालिदास की कविता की याद दिला देती है।[१])

"इसके बाद निद्रा के वशीभूत होकर महारथी लोग शान्त हो गए। कुछ लोग घोड़ों की पीठ पर, कुछ लोग रथों पर, दूसरे वीर अपनी हाथियों के कन्धों पर ही और बहुत से योद्धा जमीन पर पड़ गए। अपने शस्त्रों, गदा, तलवार, फरसे और भालों के साथ पूरी तरह शस्त्र-सज्जित वीर लोग कुछ यहां कुछ वहां पड़े हुए थे।··· जमीन पर पड़ी जोर-जोर से सांस लेती हाथियां ऐसी लग रही थीं मानों टीलों पर सांप फुफकार रहे हों।···यह अचेत पड़ी गहरी नींद में सोई सेना एक ऐसे अद्‌भुत चित्र की तरह लगती थी जिसे किसी चतुर चितेरे ने भित्ति पर चित्रित किया हो। तब एकाएक पूरब में अपनी सुनहरी किरणें बिखेरता सुन्दर चन्द्रमा उदित हुआ।··· पलक मारते ही सारी पृथ्वी प्रकाश से आप्लावित हो गयी और गहरा एवं अतल-स्पर्शी अंधेरा जल्दी भागने लगा। पर चमकती चांदनी में वीरों की यह सेना जाग गई जैसे शतदल कमल के फूलों का वन सूर्य की किरणों के स्पर्श से जाग उठा हो। जैसे चन्द्रमा का उदय होने पर समुद्र में ज्वार उठने लगता है वैसे ही यह सेना-समुद्र रात्रि के नक्षत्र का उदय होते ही उफनने लगा। पर महाराज! इसके बाद इन वीरों का संसार का विनाश करने वाला युद्ध फिर से आरम्भ हुआ जो वीर स्वर्ग में सबसे ऊंचा स्थान पाने की इच्छा रखते थे।[२]

उषाकाल तक यह खूनी युद्ध चलता रहा। युद्ध का पन्द्रहवां दिन आ पहुंचा। पूरब में सूर्य उदित हुआ और तब दोनों सेनाओं के वीर अपने-अपने घोड़ों, हाथियों और रथों से उतर पड़े। ऊपर सूर्य-देव की ओर देखते हुए उन्होंने हाथ जोड़ कर प्रातः की उपासना की। द्रोण के हाथों दो उत्कृष्ट वीर राजा द्रुपद और विराट मारे गये। पाण्डवों ने व्यर्थ में इस वीर द्रोण को मार डालने का प्रयत्न किया। गुरु द्रोण और अर्जुन के अद्‌भुत द्वन्द्व युद्ध का, जिसे देवता लोग भी आदर से देख रहे थे, कोई परिणाम न निकला क्योंकि अस्त्र की कुशलता में शिष्य गुरु से किसी भी बात में कम न था। तब कृष्ण ने एक नीच चाल सोची। उनके उकसाने पर भीम ने एक हाथी को मार डाला जिसका भी नाम अश्वत्थामा था और द्रोण के पास जाकर जोरसे चिल्लाये कि अश्वत्थामा मर गया—अश्वत्थामा नाम द्रोण के पुत्र का भी था। द्रोण भयभीत हो गए पर इस सूचना पर उन्हें विश्वास नहीं हुआ। पर युधिष्ठिर ने, जो अपनी सत्य-वादिता के लिए प्रसिद्ध थे, कृष्ण के दबाव डालने पर इस झूठ को दुहराया तो द्रोण को विश्वास करना पड़ा। दुःख से अभिभूत होकर द्रोण

---

१. अलंकृत कविता लिखने वाले किसी परवर्ती कवि के द्वारा जोड़े गए कुछ श्लोकों के अतिरिक्त भी।

२. VII, 185, 37 आ०।

ने अपने शस्त्र रख दिए और गहरे ध्यान में खो गए। इसी अवसर का द्रुपद के पुत्र धृष्टद्युम्न ने पचासी वर्ष के बूढ़े द्रोण का सिर काटने के लिए उपयोग किया। अर्जुन व्यर्थ में चिल्लाते रहे कि आदरणीय आचार्य को न मारा जाय। पर धृष्टद्युम्न ने अपना काम पूरा कर दिया और सेनापति के सिर को कौरवों के बीच फेंक दिया जिससे भयभीत होकर कौरवों की सेना भाग चली। इसके बाद ही अश्वत्थामा को उसके पिता की मृत्यु का समाचार मिल सका और उसने पांचालों और पांडवों से बदला लेने की प्रतिज्ञा की।

द्रोण के मर जाने पर कर्ण को कौरवों की सेना का सेनापति चुना गया पर कर्ण केवल दो दिनों तक ही सेना का संचालन कर सका।[1] युद्ध के सोलहवें दिन भीम और अश्वत्थामा, अर्जुन और कर्ण ने आश्चर्यजनक वीरता दिखाई पर कोई निर्णायक परिणाम न निकल सका। सत्रहवें दिन के सवेरे कर्ण ने मांग की कि मद्र के राजा शल्य को उसका सारथि बनाया जाय क्योंकि तभी वह अर्जुन का मुकाबला कर सकेगा, जिस अर्जुन का कृष्ण–जैसा चतुर सारथि है। पहले तो शल्य एक नीच जाति के व्यक्ति की सेवा करने को तयार नहीं थे पर अन्त में इस शर्त पर स्वीकार कर लिया कि वे कर्ण के सामने जो चाहें कहें। इस छूट का उन्होंने पूरा उपयोग किया। कर्ण का रथ हांकते हुए शल्य ने कर्ण को बड़ा बुरा-भला कहा। यह सही है कि इससे कर्ण हतोत्साह नहीं हुआ—उसने शल्य की प्रजा मद्र-देश-वासियों की बड़ी निन्दा की और कहा कि मद्र देश के लोग झूठे, दगाबाज, शराबी, दुराचारी और व्यभिचारी हैं। दूसरी तरफ शल्य ने कर्ण से कहा कि उसके राजवासी अंग लोग अपनी स्त्रियों और सन्तानों को बेचते हैं।[2] अन्त में दुर्योधन ने दोनों में शान्ति स्थापित कराई और वे युद्ध के लिए चल पड़े।

जब अर्जुन कर्ण से लड़ रहे थे उसी समय भीमसेन ने धृतराष्ट्र के पुत्रों के बीच संहार करते हुए उनमें से बहुतों को मार डाला। अपनी भारी गदा फेंककर दुश्शासन को उसके रथ से नीचे गिरा दिया, उसके ऊपर कूद पड़े और उसकी छाती को फाड़ कर उसका गर्म खून पीने लगे—जैसी कि उन्होंने एक बार प्रतिज्ञा की थी। इसे देखकर भयभीत हो शत्रु लोग पीछे हट गये। इस बीच कर्ण और अर्जुन पास आ गये और एक भयानक द्वन्द्व युद्ध शुरू हुआ जिसमें देवताओं ने भी भाग लिया—इन्द्र अर्जुन की तरफ से और सूर्य कर्ण की तरफ से। जैसे दो जंगली हाथी अपने दांतों से एक-दूसरे पर प्रहार करते हैं उसी तरह ये दो वीर एक-दूसरे पर बाणों की वर्षा करते रहे। अर्जुन कर्ण को जमीन पर उतारने का असफल प्रयत्न करते रहे। कर्ण के रथ का

---

१. यह युद्ध आठवें भाग कर्णपर्व का विषय है।

२. नृतत्त्व–विज्ञान तथा सभ्यता के इतिहास की दृष्टि से पूरा का पूरा अध्याय (VIII, 33-45) बहुत ही रोचक है।

एक पहिया जमीन में धंसने लगा।[1] कर्ण ने रथ को उभारने का प्रयत्न किया और युद्ध के नियमों के अनुसार अर्जुन से लड़ाई बन्द करने को कहा। पर कृष्ण ने अर्जुन को इस बात पर ध्यान न देने के लिए विवश कर दिया और अर्जुन ने, जो वीरता के आदर्श हैं, कर्ण को धोखे में उसी समय मार डाला जब कि वह अपने रथ को निकालने में लगा हुआ था। उस मरे वीर के शरीर से एक ज्योति निकली और मरने पर भी उसकी श्री बनी रही।

पाण्डवों में बड़ा आनन्द छा गया पर कौरव लोग भय से भागने लगे।

आगे लड़ने के लिए सेना को फिर से इकट्ठी करने और उत्साह दिलाने में दुर्योधन को कठिनाई से सफलता मिली। शल्य को युद्ध के अठारहवें दिन का सेनापति बनाया गया।[2] शल्य के साथ द्वन्द्व युद्ध के लिए युधिष्ठिर को चुना गया। लम्बी और भयानक लड़ाई के बाद करीब दोपहर के समय युधिष्ठिर ने शल्य को मार डाला। कौरव लोग भाग गये। केवल दुर्योधन और शकुनि अपनी थोड़ी-सी सेना के साथ सामना करते रहे। सहदेव ने शकुनि को मार डाला। अर्जुन और भीम ने भयानक मार-काट की। कौरवों की सारी सेना एकदम नष्ट हो गई।

दुर्योधन अकेले भाग कर एक तालाब में छिप गया। उसके अलावा केवल तीन ही वीर बचे थे—कृतवर्मा, कृप और अश्वत्थामा। सूर्यास्त हो गया था। कौरवों का शिविर खाली पड़ा था। पाण्डवों ने भगोड़े दुर्योधन को ढूंढ़ निकाला। युधिष्ठिर ने उसे द्वंद्व युद्ध के लिए ललकारा। दुर्योधन ने कहा कि वह दूसरे दिन सवेरे के पहले लड़ने में असमर्थ है और वह तालाब में इस लिए भाग आया है कि वह थक गया है, वह डर कर नहीं भागा है। पर युधिष्ठिर उसी समय लड़ाई लड़ने के लिये अड़े रहे और कहा कि दुर्योधन यदि पाण्डवों में से किसी एक को भी मार देगा तो राजा बना रहेगा। द्वंद्व युद्ध दुर्योधन और भीम के बीच होना था। कहा-सुनी के बाद गदा युद्ध शुरू हुआ। कृष्ण के भाई बलदेव, जिन्होंने युद्ध में भाग नहीं लिया था, बड़ी दूर से चल कर इस गदा–युद्ध को देखने आए थे। देवता लोग भी आश्चर्य-चकित हो सराहना करते हुए इस युद्ध को देख रहे थे। जैसे दो सांड अपनी सींगों से एक दूसरे पर प्रहार करते हैं उसी तरह ये दो वीर अपनी गदाएं एक दूसरे पर बरसाते

---

१. यद्यपि हम जानते हैं कि यह घटना शल्य की धोखेबाजी के कारण घटी पर यहां पर इसे इस ढंग से उपस्थित किया गया है कि मानों कर्ण द्वारा अपमानित किसी ब्राह्मण के शाप से ही ऐसा हुआ (VIII, 42, 41 और 90, 81)। अर्जुन-कर्ण युद्ध का पूरा वर्णन (VIII, 86-94) बहुत हद तक बाद में संवारा गया है। दे॰ Oldenberg, Das Mahābhārata, पृ॰ 50 आ॰ जहां उनका कहना है कि इसमें प्राचीन कविता का कुछ भी नहीं बचा है। अपितु प्राचीन विषय को लेकर एक नयी कविता बना दी गयी है।

२. इस दिन का युद्ध नवें भाग शल्यपर्व का विषय है।

रहे। खून से लथपथ दोनों वीर जूझते रहे। जैसे दो बिल्लियां एक मांस के टुकड़े के लिए एक दूसरे को नोचती हैं वैसे ही ये दोनों गदा से एक दूसरे को नोचते रहे। दोनों ने अद्‌भुत वीरता दिखाई, पर कोई निर्णय न हो सका। तब कृष्ण ने अर्जुन से कहा कि ईमानदारी की लड़ाई में भीम कभी धुर्योधन को नहीं हरा सकेंगे क्यों कि यद्यपि भीम अधिक बली योद्धा हैं फिर भी दुर्योधन उनसे जादे कुशल है। कृष्ण ने अर्जुन को भीम के वे शब्द याद दिलाए जो द्रौपदी के अपमान के समय भीमने दुर्योधन की जांघ तोड़ने की प्रतिज्ञा करते समय कहे थे। इस पर भीम को दिखा कर अर्जुन ने अपनी बाईं जांघ ठोंकी। भीम ने यह संकेत समझ लिया और जब दुर्योधन उनको मारने के लिए उनपर कूदने ही वाला था कि भीम ने उसकी जांघ तोड़ दी जिससे वह आँधी से उखड़े हुए वृक्ष के समान धरती पर गिर पड़ा। पर बलदेव, जो लड़ाई देख रहे थे, भीम पर बड़े क्रुद्ध हुए और उन्हें बेईमानी से लड़ने का दोषी ठहराया क्योंकि गदा-युद्ध में नाभि से नीचे मारना मना है। बड़ी कठिनाई से उनके भाई कृष्ण ने उनको भीम को दंड देने से रोका। कृष्ण अपने भाई को व्यर्थ में यह समझाने के लिए कुतर्क देते रहे कि भीमने ठीक किया है। ईमानदार बलदेव क्रोध में अपने रथ पर चढ़े और चले गए पर कहते गए कि संसार में भीम को सर्वदा बेईमान और दुर्योधन को ईमानदार योद्धा कहा जायगा।

इसके बाद धृतराष्ट्र और गांधारी को सान्त्वना देने और शान्त करने के लिए युधिष्ठिर ने कृष्ण को हस्तिनापुर भेजा और कृष्ण ने योग्यता-पूर्वक अपना काम किया। पाण्डवों ने एक नदी के किनारे अपने शिविर से बाहर रात बिताने का निश्चय किया।

ज्योंही अश्वत्थामा और उसके दो साथियों ने दुर्योधन की मृत्यु का समाचार सुना वे युद्ध के स्थान पर शीघ्र पहुंच गए और जांघों के टूट जाने के कारण पड़े हुए वीर के लिए रोने लगे। पर अश्वत्थामा ने प्रतिज्ञा की कि वह पांडवों का नाश कर डालेगा। इस पर मरते हुए दुर्योधन ने उसे सेना-पति बनाया यद्यपि यह स्पष्ट नहीं है कि किसका सेनापति बनाया क्योंकि कोई सेना बाकी नहीं बची थी।

पांडवों के शिविर में रात्रि को हत्याएँ[१]

कौरवोंके तीनों बचे हुए वीर दुर्योधन से विदा लेकर युद्धक्षेत्र से कुछ दूर एक पेड़ की छाया में रात बिताने चले गए। कृप और कृतवर्मा तो सो गये पर बदला लेने का क्रोध और इच्छा से अश्वत्थामा जाग रहा था। उसने देखा कि जिस पेड़ के नीचे वे आराम कर रहे हैं उसकी डालियों पर कुछ कौवे बसेरा ले रहे हैं। एकाएक रात में एक भयानक उल्लू आया और उन सोते कौवों को मार डाला[२]। इस दृश्य को देख कर उसके मन में बात आयी कि वह भी अपने शत्रुओं पर सोते में टूट पड़े और

---

१. यह दसवें भाग सौप्तिकपर्व का विषय है।

२. मि० इस दृश्य को Th. Benfey, Das Pantschatantra 1, पृ० 336 आ० से।

उन्हें मार डाले। उसने उन दो वीरों को जगाया और अपनी योजना बतायी। कृप ने उसे ऐसा न करने को कहा क्योंकि निहत्थे और सोते हुए लोगों पर आक्रमण करना अधर्म है। अश्वत्थामा ने व्यंग से उत्तर दिया कि बहुत पहले ही पाण्डवों ने धर्म के सेतु के सौ टुकड़े कर दिये हैं और अब उनको प्रतिशोध सहन करना ही होगा और कोई भी जीवित व्यक्ति अश्वत्थामा को अपनी इच्छा पूरी करने से रोक नहीं सकता। "मैं अपने पिता के हत्यारे पांचालों को रात में सोते समय मार डालूंगा भले ही मुझे इस दुष्कर्म के लिए कीट या पतंग की योनि में जन्म लेना पड़े।"[1] इस निश्चय के साथ वह अपने रथ पर चढ़ा और शत्रु के शिविर की ओर चल पड़ा। चोरों की तरह वह भीतर घुसा और वे दो वीर शिविर के द्वार पर पहरा देने लगे कि कोई यदि भागने लगे तो वे उसको मार डालें। वह धृष्टद्युम्न (जिसने उसके पिता को मारा था) के शिविर में घुसा, लात मार कर उसे जगाया और पशु की तरह उस का सिर मरोड़ कर उसे मार डाला। इस के बाद वह यम की तरह एक शिविर से दूसरे शिविर में, एक बिस्तर से दूसरे बिस्तरपर घूम कर एक एक कर के सारे सोते और ऊँघते हुए वीरों को जिन में द्रौपदी के पांच पुत्र और शिखण्डी भी था निर्दयता-पूर्वक मार डाला। मध्यरात्रि के पहले शत्रु के शिविर के सारे वीर मार डाले गये। हजारों लोग अपने खून में पड़े छटपटाते रहे। मांस-भक्षी रात्रिचर राक्षस और पिशाच झुण्ड के झुण्ड मरे हुओं के रक्त और मांस के भोजन के निमित्त शिविर पर टूट पड़े। जब सुबह हुई तो सारे शिविर पर मृत्यु की गहरी शान्ति छायी हुई थी।

वे तीनों वीर उस स्थान पर गए जहां दुर्योधन मरणासन्न पड़ा हुआ था और उन्होंने शत्रुओं की हत्या का समाचार उसे सुनाया। जब दुर्योधन ने इस समाचार को सुना तो प्रसन्न हो गया और अपने प्राण संतोष और सुख के साथ छोड़ दिए।

इस बीच धृष्टद्युम्न के सारथिने जो अकेले बच रहा था चुपके से पाण्डवों को यह भयानक समाचार बताया कि उन के और द्रुपद के पुत्रों को मार डाला गया है और सारी सेना नष्ट हो चुकी है। युधिष्ठिर बेहोश हो गये और उन के भाइयों ने उन को सहारा दिया। तब उन्होंने द्रौपदी को तथा परिवार की अन्य स्त्रियों को बुलवाया। वे शिविर में गये और वहां के दृश्य को देख कर करीब-करीब संज्ञा-शून्य हो गए। इस के बाद द्रौपदी गयी और अपने पुत्रों और भाइयों की हत्या के दुःख से अभिभूत हो कर उसने बड़े व्यंग भरे शब्दों में युधिष्ठिर को उन की महान् विजय के लिए बधाई दी। उस के मन में उतना ही दुःख था जितनी हत्यारे अश्वत्थामा के प्रति घृणा। उसने जब तक इस भयानक कृत्य का बदला नहीं ले लिया जाता जब तक के लिए अन्न-जल त्याग दिया।

मूल इतिहास-काव्य में कैसे अश्वत्थामा के इस कुकृत्य का बदला लिया गया और लिया भी गया या नहीं इसका पता हमारे वर्तमान महाभारत से नहीं चलता।

---

१. X, 5, 18-27।

इस का कारण प्रक्षेप और पुनः–संस्करण है। अस्पष्ट और न समझ में आने वाले ढंग से निम्नलिखित कथा मिलती है।

भीम ने अश्वत्थामा का पीछा किया और उस से लड़े पर वास्तव में उन को कष्ट ही उठाना पड़ा। जो कुछ भी हुआ पर वे उसे मार न सके। लेकिन अश्वत्थामा ने अपने सिर पर उत्पन्न मणि निकाल कर अपने-आप भीम को दे दी क्यों कि द्रौपदी उस मणि को चाहती थी। (पहले कभी इस विचित्र मणि की चर्चा नहीं आयी है।) अश्वत्थामा के पास एक अद्भुत अस्त्र था जिस का उसने कुरु-वंश के अन्तिम चिह्न तक को मिटा देने के लिए प्रयोग किया—यह अन्तिम चिह्न अर्जुन की पतोहू उत्तरा के गर्भ में था। इस कारण से उत्तरा ने मरे बच्चे को जन्म दिया बाद में कृष्ण ने उसे जिला दिया। यही जनमेजय का पिता परीक्षित कहलाया जिस जनमेजय के नागयज्ञ में कहा जाता है कि पहले-पहल महाभारत सुनाया गया। पर कृष्ण ने अश्वत्थामा को शाप दिया कि वह तीन हजार वर्षों तक सारी पृथ्वी पर अकेला घूमता रहे—अहासुएरस की तरह—लोग उससे दूर रहे और खून और विष्ठे की बदबू उस के शरीर से निकलती रहे और उस के सारे शरीर पर व्रण हों।

यह कहना कठिन है कि यह वर्णन प्राचीन काव्य में था। पर मरे लोगों के लिए रोने की कथा तो निश्चय ही उस का अंग थी।

मरे लोगों के लिए स्त्रियों का विलाप[1]

अन्धे और बूढ़े राजा धृतराष्ट्र के अकथनीय दुःख में संजय और विदुर व्यर्थ में सांत्वना देने का प्रयत्न करते रहे। बार बार वे अचेत हो जाते थे और अन्त में व्यास भी उन्हें सांत्वना देने आए। अब जैसे भी हो मरे लोगों का क्रिया-कर्म करना था इस लिए राजा ने अपनी पत्नी गांधारी तथा दरबार की अन्य स्त्रियों को बुला भेजा और वे जोर से रोती हुई नगर से निकल कर युद्ध-भूमि कि ओर चलीं। रास्ते में उनकी भेंट तीन बचे हुए कौरव वीरों से हुई जिन्होंने उन्हें बताया कि कैसे रात में शत्रुओं के शिविर में भयंकर उत्पात मचा। वे रुके नहीं बल्कि पाण्डवों के बदला लेने के भय से वे भाग गए। इसके बाद ही कृष्ण के साथ पांचों पाण्डव आए और रोने वालों की टोली में मिल गए। कुछ कठिनाई के बाद कृष्ण पाण्डवों तथा बूढ़े राजा-रानी के बीच में एक तरह का समझौता कराने में सफल हुए यद्यपि गान्धारी को भीम को क्षमा कर देना बड़ा कठिन था क्यों कि उसने गान्धारी के सौ पुत्रों में से एक को भी जीवित नहीं छोड़ा था। पर द्रौपदी के भी सारे पुत्र मर गए थे और समान दुःख के कारण समझौता हो गया था।

इसके बाद गान्धारी का विलाप आता है जो सारे इतिहास-काव्य के सब से सुन्दर अंशों में से है। यह एक उत्कृष्ट रुदन-कविता है और इस में युद्ध-भूमि का बड़ा विशद वर्णन मिलता है जो वेरेश्चागिन के चित्रों की याद दिलाता है। सारा दृश्य और

१. यह ग्यारहवें भाग स्त्री-पर्व का विषय है।

प्रभावशाली हो जाता है क्यों कि यहां कवि स्वयं कहानी नहीं कहता अपितु कौरवों की बूढ़ी मां जो कुछ अपनी आंखों से देखती है उसका वर्णन उसे ही करने देता है।[१]

रोनेवालों की टोली युद्ध-भूमि में पहुंची। विक्षत शवों का दृश्य बड़ा भयानक था। उनके चारों ओर मांसाहारी पक्षी, गीदड़ और पिशाच मंडरा रहे थे और मरे हुए वीरों की माताएं और पत्नियां शवों में रोती हुई घूम रही थीं। कृष्ण को सम्बोधित करके विलाप करती हुई गांधारी ने यह सब देखा। उसकी नजर दुर्योधन पर पड़ी और बड़े दुःख के साथ उसको याद आया कि कैसे युद्ध में जाते समय दुर्योधन ने उससे विदा ली थी। किसी समय जिसको सुन्दर स्त्रियां पंखे झलती थीं, आज उसे मांसाहारी पक्षी अपनी पंखों से हवा कर रहे हैं। अपने वीर पुत्र और अन्य सौ पुत्रों को जिन्हें स्वर्ग में स्थान मिल चुका है धूल में पड़े देखने से कहीं अधिक करुणा गान्धारी को अपनी पतोहुओं को देख कर हुई जो अपने बाल बिखेरे पागल-सी अपने पतियों और पुत्रों के शवों के पास इधर-उधर दौड़ती फिर रही थीं। उसने मरी हाथियों के बीच भग्न अवयवों वाले अपने बुद्धिमान् पुत्र विकर्ण को पड़ा देखा मानो कि शरद के आकाश में चन्द्रमा काले बादलों से घिरा हो। इसके बाद अर्जुन के पुत्र युवा अभिमन्यु को देखा जिसकी सुन्दरता को मृत्यु भी एकदम नष्ट न कर सकी थी। अभिमन्यु की अभागी युवती पत्नी उसके पास पहुंची, उसे सहलाया। उसके भारी कवच को खोला। खून में सने उसके घुंघराले बालोंवाले उसके सिर को अपनी गोद में रख लिया और बहुत ही करुण स्वर में उस मरे वीर से बोलने लगी। उसने प्रार्थना की कि वह स्वर्ग में वहां की सुन्दरियों का आनन्द लेते समय कभी-कभी उसकी भी याद कर लिया करे। इसके बाद गान्धारी की आंख कर्ण पर जा टिकी। जिस कर्ण से सब लोग डरा करते थे वही आज आंधी से उखड़े वृक्ष की तरह वहां पड़ा था। इसके बाद उसने अपने दामाद सिन्धुराज जयद्रथ को देखा जिसकी पत्नियां उसके शव से लोभी मांसाहारी पक्षियों को उड़ाने का व्यर्थ प्रयास कर रहीं थीं और गान्धारी की अपनी पुत्री दुश्शला रोती हुई अपने पति का सिर ढूंढ़ रही थी। फिर उसने मद्रराज शल्य को देखा जिसकी जीभ गीध नोच रहे थे और रोती हुई उसकी पत्नियां उसके चारों ओर बैठीं थीं जैसे मदमस्त हथिनियां कीचड़ में फंसे हाथी को चारो ओर से घेरे हुए हों। उसने बाणों की शय्या पर लेटे भीष्म को देखा जैसे आकाश में सूर्य अस्त होता है उसी तरह मनुष्यों के बीच यह सूर्य अस्त हो गया। द्रोण, द्रुपद

१. यद्यपि यह स्पष्ट कहा गया है कि धृतराष्ट्र तथा स्त्रियां कुरुक्षेत्र पहुंच जाती हैं और रक्तरंजित युद्ध-भूमि अपनी-आंखों से देखती हैं फिर भी इस पर्व के आरंभ में कहा गया है कि व्यास की कृपा से और तपस्या से गान्धारी को दिव्य-दृष्टि मिल गई थी जिससे वह बड़ी दूर से ही युद्ध-भूमि का निरीक्षण कर सकती थी। निश्चय ही यह प्राचीन कविता में नहीं रहा होगा और किसी परवर्ती पण्डित की दुरूह कल्पना की उपज होगी।

और अन्य सभी मरे वीरों के लिए रो लेने के बाद गान्धारी कृष्ण की ओर मुड़ी और क्रोध से पाण्डवों और कौरवों के विनाश को न रोकने के लिए कृष्ण को झिड़कने लगी। उसने कृष्ण को शाप दिया कि छत्तीस वर्षों बाद वे स्वयं अपनी जाति के विनाश का कारण बनेंगे और स्वयं भी कष्ट के साथ निर्जन स्थान में मर जायेंगे।

इसके बाद सारे मरे लोगों का क्रिया-कर्म करने की युधिष्ठिर ने आज्ञा दी। चितायें बनाई गईं और उन पर घी और तेल डाला गया। शवों के साथ सुगन्धित लकड़ियां सिल्क के बहुमूल्य वस्त्र टूटे रथ और अस्त्र-शस्त्र भी जला दिए गए। मरे लोगों का क्रिया-कर्म और उनके लिए रोना-धोना जब समाप्त हो गया और इस अवसर पर अपरिचितों और मित्र-हीनों को भी याद कर लिया गया तब सब लोग मरे लोगों का तर्पण करने के लिए गंगा के किनारे पहुंचे।

शायद पुराना काव्य यहीं समाप्त हो गया था। हमारा महाभारत वीरों की कथा को आगे चालू रखता है।

अश्वमेध यज्ञ[1]

मरे लोगों का श्राद्ध करते समय ही पहले-पहल कुन्ती ने युधिष्ठिर से कहा कि कर्ण भी उसके पुत्रों में से एक था और युधिष्ठिर से बड़े भाई के रूप में कर्ण का श्राद्ध करने को कहा। युधिष्ठिर इस पर दुःखी हुए—न केवल बहुत से सम्बन्धियों और मित्रों के विनाश का निमित्त होने के कारण बल्कि कर्ण को मार कर भाई के वध का पापी होने के कारण थी। अशान्त हो कर उन्होंने जंगल में जाने और तपस्वी बन जाने की अपनी इच्छा व्यक्त की। उनके भाई और कृष्ण उनको राज्यभार सम्हालने के लिए राजी करने का व्यर्थ प्रयत्न करते रहे—पर वे अपने निश्चय पर तब तक दृढ़ बने रहे जब तक व्यास ने आकर उनको अश्वमेध करने की सलाह न दी और यह न बताया कि अश्वमेध उनको सारे पापों से मुक्त कर देगा। युधिष्ठिर ने उन की सलाह के अनुसार कार्य किया। महायज्ञ की तयारियां होने लगीं। शास्त्र के अनुसार अपनी इच्छा से एक वर्ष तक घूमने के लिए यज्ञ का घोड़ा छोड़ दिया गया। अर्जुन को घोड़े के साथ जाने और उसकी रक्षा करने के लिए चुना गया। वे घोड़े के पीछे पीछे देशों में घूमते सारी पृथ्वी का चक्कर लगा आये। अपनी इस यात्रा में उनको कई लड़ाइयां लड़नी पड़ी क्योंकि हर जगह उनको ऐसी जातियों से मुकाबला करना पड़ा जिनके शासक कौरव-युद्ध में मारे गये थे और वे जातियां उनके विरुद्ध थीं। बड़ी वीरता के कार्य उन्होंने किए पर अनावश्यक रक्तपात को बचाया और हारे राजाओं को अश्वमेध में सम्मिलित होने के लिए निमन्त्रित किया। एक साल के बाद वे यज्ञ के घोड़े के साथ हस्तिनापुर लौटे और वहां उनका उल्लास-पूर्ण स्वागत हुआ। यज्ञ का उत्सव आरम्भ हुआ और सभी निमंत्रित राजा लोग एकत्र हुए। यज्ञ की सारी विधिका पूर्ण

१. यह चौदहवें भाग आश्वमेधिक पर्व का विषय है। बारहवें और तेरहवें भाग के विषय के लिए आगे देखिए।

पालन करते हुए घोड़े को मारा गया और उसकी अग्नि में आहुति दे दी गयी। पाण्डवों ने जले मांस के धुएं का गन्ध लिया जिससे उनके सारे पाप नष्ट हो गये। यज्ञ पूर्ण हो जाने के बाद युधिष्ठिर ने सारी पृथ्वी व्यास को दान कर दी पर व्यास ने इसे उदारता पूर्वक उन्हें वापस दे दिया पर उनसे ब्राह्मणों को प्रचुर मात्रा में सोना देने को कहा। इसके अनुसार जब युधिष्ठिर ने ब्राह्मणों को प्रचुर सुवर्ण दान कर दिया तो वे पापों से मुक्त हो गए और उसके बाद अच्छे सदाचारी राजा की तरह राज्य करने लगे।

धृतराष्ट्र की मृत्यु

हर बात में परिवार में बड़े होने के नाते बूढ़े राजा धृतराष्ट्र[१] से सलाह ली जाती थी और उनका तथा उनकी पत्नी गान्धारी का बड़ा आदर किया जाता था। पाण्डवों के साथ बिलकुल मिलजुल कर धृतराष्ट्र पन्द्रह वर्षों तक युधिष्ठिर के राज्य में रहे पर कभी-कभी भीम के साथ धृतराष्ट्र के संबंध के कारण मन-मुटाव भी हो जाता था। धृतराष्ट्र हृदय से भीम को कभी बिलकुल क्षमा नहीं कर सकते थे क्योंकि उसने उसके सारे पुत्रों को उससे छीन लिया था और भीम अपने बूढ़े चाचा की भावनाओं को बहुधा कठोर बातें कह कर ठेस पहुंचाते रहते थे। अतः पन्द्रह वर्षों के बाद बूढ़े राजा ने वानप्रस्थ आश्रम ग्रहण करने का निश्चय किया। न चाहते हुए भी युधिष्ठिर ने इसे मान लिया। पर कृष्ण ने कहा कि धर्मात्मा राजाओं की सर्वदा यही रीति रही है कि वे या तो युद्ध में प्राण दे देते हैं या फिर वन में तपस्वी का जीवन बिताते हुए मरते हैं। धृतराष्ट्र और गान्धारी वन को चले गये और कुन्ती, संजय और विदुर भी उनके साथ हो लिये। कुछ समय बाद पाण्डव अपने संबंधियों से मिलने वन में गए। ठीक उसी समय महात्मा विदुर मरणासन्न थे। दो वर्षों बाद पाण्डवों को समाचार मिला कि धृतराष्ट्र, गान्धारी और कुन्ती भी वन में मर गये और संजय हिमालय चले गये।

कृष्ण और उनके वंश का विनाश[२]

कुरुक्षेत्र की लड़ाई के छत्तीस वर्षों के बाद पाण्डवों को यह दुःखद समाचार मिला कि गान्धारी का शाप सत्य हो गया और अपने सारे वंश के साथ कृष्ण का विनाश हो गया। एक पान-उत्सव के समय दोनों जातियों के नेता लड़ने लगे और शीघ्र ही अन्य लोग भी इसमें सम्मिलित हो गए। एक गदा-युद्ध आरम्भ हुआ, कृष्ण ने घासों को भी गदा में परिणत कर दिया और यादव वंश के लोग आपस में लड़ मरे। कृष्ण ने चारो ओर बलदेव को ढूंढ़ा और ठीक मरते समय उनके पास पहुंच

---

१. यहां पन्द्रहवें भाग आश्रमवासिक पर्व का आरम्भ होता है।
२. सोलहवें भाग मौसलपर्व में वर्णित।

सके। बलदेव के मुंह से एक सफेद सांप निकल कर समुद्र की ओर लपका[1] जहाँ बड़े प्रसिद्ध नाग-देवों ने उसका स्वागत किया। तब कृष्ण भी एक निर्जन वन में जाकर लेट रहे और ध्यान में मग्न हो गए। एक जरा (बुढ़ापा) नामक व्याध ने उन्हें गल्ती से मृग समझ कर उनके तलवे में तीर मार दिया। उनके सारे शरीर में केवल तलवा ही ऐसा था जिस पर कोई शस्त्र असर कर सकता था और इससे वे मर गये।

पाण्डवों की महायात्रा

अपने सच्चे मित्र की मृत्यु से पाण्डव अशान्त हो गए और इसके बाद उन्होंने महा-यात्रा पर शीघ्र निकल पड़ने का निश्चय कर लिया[2]। युधिष्ठिर ने परीक्षित को राजा बना दिया और अपनी प्रजा से विदा ले ली। तब पांचो भाई तथा उनकी पत्नी द्रौपदी वल्कल धारण करके सिर्फ एक कुत्ते के साथ हिमालय की ओर चले और उस पर चढ़कर वे देवपर्वत मेरु पर पहुंच गये। स्वर्ग के रास्ते में पहले द्रौपदी मर कर गिर पड़ी, उसके बाद क्रम से सहदेव, नकुल, अर्जुन और अन्त में भीम भी मर गए। युधिष्ठिर को स्वर्ग ले जाने इन्द्र अपने दिव्य रथ पर चढ़कर आए।[3] पर युधिष्ठिर उनके साथ स्वर्ग नहीं जाना चाहते थे क्योंकि वे बिना भाइयों के स्वर्ग में नहीं रहना चाहते थे। इस पर इन्द्र ने कहा कि उन्हें फिर से स्वर्ग में उनके भाई और द्रौपदी मिलेगी। पर युधिष्ठिर ने जोर दिया कि उनके साथ का कुत्ता भी स्वर्ग में प्रवेश पाये। पर इन्द्र को यह कदापि स्वीकार नहीं था। अन्त में वह कुत्ता धर्मराज के रूप में प्रगट हो गया और युधिष्ठिर के सत्य व्यवहार के ऊपर सन्तोष व्यक्त किया। इस प्रकार वे स्वर्ग पहुंचे पर वहां युधिष्ठिर बिलकुल नहीं रहना चाहते थे क्योंकि

---

१. बहुत जातियों में प्रचलित विचार का कि आत्मा मरकर सर्प हो जाती है, यह एक सुन्दर उदाहरण है। राजा Guntram की एक जर्मन दंतकथा में भी सोते राजा के मुंह से सर्प के रूप में निकल कर उसकी आत्मा पहाड़ों में चली जाती है।

२. इसके साथ सत्रहवां भाग महाप्रास्थानिक पर्व आरम्भ होता है।

३. "Points de contact entre Mahābhārata et la Shāh-nāmah" (J.A. s. t. T. X, 1887, पृ० 38 आ०; मि० JBRAS 17, Proceed, पृ० ii आ०) शीर्षक लेख में J. Darmesteter ने युधिष्ठिर के स्वर्गारोहण की फारसी के वीर इतिहास-काव्य के काई खुसरू के अदृश्य हो जाने के साथ तुलना की है। काई खुसरू भी एक पर्वत पर ऊंचे चढ़ जाता है और सदेह स्वर्ग पहुँच जाता है। युधिष्ठिर के भाइयों की तरह काई खुसरू के साथी पहलवान भी रास्ते में मर जाते हैं। फिर भी मूलतः दोनों घटनाएं इतनी भिन्न हैं कि मैं उनके सम्बन्ध में विश्वास नहीं कर सकता। (मि० Barth को भी RHRt. 19, 1889, पृ० 162 आ० में)।

वहां उन के भाई और द्रौपदी नहीं दिखाई पड़े। जब उन्होंने दुर्योधन—जैसे आदमी को[1] भी दिव्य आसन पर विराजते और सब के द्वारा पूजित देखा तो स्वर्ग से ऊब गये और कहा कि उन को उस लोक में भेज दिया जाय जहां उन के भाई और कर्ण जैसे वीर रह रहे हैं। तब देवताओं ने उन के साथ एक दूत कर दिया जो उन को नरक में ले गया जहां उन्होंने पापियों की भयानक यातना देखी। वे इस भयानक दृश्य को देख कर मुड़ चुके ही थे कि उन्होंने रुके रहने की प्रार्थना सुनी क्यों कि उन के शरीर से आनन्ददायक वायु निकल रही थी। दया से द्रवित हो कर उन्होंने पूछा कि यातना सहन करने वाली ये आत्माएं कौन हैं तो उत्तर मिला कि वे उन के भाई और मित्र हैं। दैव के इस अन्याय पर उन्हें क्रोध और दुःख हुआ और देवताओं से यह कहलाने के लिए कि वे अब स्वर्ग नहीं लौटेंगे अपितु नरक में ही रहेंगे उन्होंने दूत को वापस भेज दिया। पर देवता लोग तुरत उन के पास आये और इन्द्र ने उन्हें बताया कि जिन्होंने जादे पाप किये हैं उन्हें पहले स्वर्ग में भेजा जाता है और बाद में नरक में जब कि जिन्होंने थोड़े ही पाप किये हैं वे पहले जल्दी से नरक में पाप का फल भोग कर बाद में स्वर्ग का अक्षय सुख भोगते हैं। युधिष्ठिर को स्वयं पहले नरक में इस लिए आना पड़ा कि उन्होंने द्रोण को धोखा दिया था। इसी तरह भाइयों और मित्रों को भी नरक में पहले अपने पाप को भोग कर अपने को शुद्ध करना था। पर नरक की सारी दारुणता शीघ्र ही नष्ट हो गयी और सब ने अपने आप को स्वर्ग में पाया और सब देव-रूप हो गये।[2]

जिस मुख्य कथा को यहां चित्रित किया गया है वह महाभारत के अठारह पर्वों का आधा भी नहीं है।[3] महाभारत के बाकी भाग में अंशतः वर्णनात्मक तथा अंशतः नीत्यात्मक कविताएं हैं जिनका कौरवों और पाण्डवों के युद्ध से कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। और यदि है भी तो बहुत साधारण। आगे के अध्यायों में इसी का उल्लेख किया जाएगा।

महाभारत में प्राचीन वीर-कविता

प्राचीन भारतीय भाटों के कार्यों में से एक कार्य यह भी था कि वे राजाओं की वंशावली ढूंढ़ निकालते थे या यदि आवश्यक हुआ तो वंशावली की कल्पना भी कर लेते थे। इस लिए अनुवंश श्लोक या वंशावली-परक श्लोक प्राचीन वीर-कविता के आवश्यक अंग होते थे। महाभारत के प्रथम पर्व में पूरा का पूरा एक अवान्तर

---

१. यहां अठारहवां और अन्तिम भाग स्वर्गारोहण पर्व आरम्भ होता है।

२. मि० इस घटना के साथ मार्कण्डेय पुराण की विपश्चित् वाली कथा और देखिए L. Scherman, Materialien zur Geschichte der indischen Visionslitteratur, Leipzig, 1892, पृ० 48 आ०।

३. महाभारत के अठारह पर्वों में कुल मिला कर २१०९ अध्याय हैं (बम्बई संस्करण में)। इनमें से करीब १००० अध्याय मुख्य घटना का वर्णन करते हैं।

पर्व ही है जिसका शीर्षक ही है संभव-पर्व या उत्पत्ति का पर्व जिस में वीरों की वंशावली उन के पूर्व पुरुषों से आरम्भ कर के बतायी गयी है जो पूर्व पुरुष देवताओं की सन्तान थे। प्राचीन युग के राजाओं के सम्बन्ध में कई रोचक कथाएं इस में वर्णित हैं। भारत जाति के कौरवों और पाण्डवों के पूर्व पुरुष भरत को नहीं भुलाया गया है जिस भरत के नाम से महाभारत का भी नाम निकला है। भरत कालिदास के नाटक के कारण सुप्रसिद्ध राजा दुष्यन्त और शकुन्तला के पुत्र हैं और सम्भवपर्व में उनकी भी कहानी कही गयी है।

दुःख की बात है कि महाभारत का यह शाकुन्तलोपाख्यान[1] आज हमारे सामने काफी विकृत और शायद परिवर्तित रूप में है और यह मालूम होता है कि इस में प्राचीन वीर-कविता की कुछ ही विशेषताएं बच रही हैं और इस लिए शायद ही यह कालिदास की कथा का उपजीव्य रहा हो। वन के वर्णन, मृगया और आश्रम के वर्णन इतिहास-काव्य की शैली में नहीं अपितु कुछ अंशों में परवर्ती आलंकारिक कविता के आदर्श पर पाण्डित्यपूर्ण ढंग से उपस्थित किये गये हैं। कथा भी अपने-आप में आकर्षक नहीं है और इस का आधार कलात्मक नहीं है। राजा ने शकुन्तला को स्वीकार नहीं किया इस तथ्य का जैसा कालिदास ने शाप और अंगूठी के खो जाने की कल्पना कर के व्याख्यान किया है वैसा कोई व्याख्यान यहां नहीं है अपितु यह कहा गया है कि चूंकि राजा अपने दरबारियों के मन से अपने पुत्र के चक्रवर्ती के द्वारा उत्पन्न होने की सत्यता के बारे में सभी प्रकार के सन्देह को मिटा देना चाहते थे इस लिए उन्होंने शकुन्तला को स्वीकार नहीं किया। मानों राजा के इस कर्म के कारण एक दैवी निर्णय हुआ। राजा ने शकुन्तला को न पहचानने का बहाना बनाया और अपने पुत्र को भी अस्वीकृत कर दिया इस पर सारे दरबार के सामने एक दैवी वाणी ने घोषणा की कि शकुन्तला का कहना सही है और पुत्र वास्तव में राजा दुष्यन्त का ही है। यहां दो ऐसे श्लोक मिलते

---

१. I, 68-75। Charles Wilkins कृत शाकुन्तलोपाख्यान का एक अंग्रेजी अनुवाद A. Dalrymple's Oriental Repertory में १७९४ में और अलग (लंडन, १७९५) भी निकल चुका था, कालिदास के शाकुन्तल के संस्करण के अनुबंध रूप में फ्रेंच अनुवाद A. Chezy द्वारा (पेरिस, १८३०), B. Hirzel कृत जर्मन अनुवाद (१८३३), A. F. Graf von Schack (1877, Stinemen vom Ganges, पृ० 32 आ०), J. J. Meyer, Das Weib im altindischen Epos, पृ० 68 आ०, तथा W. Przig (Indische Erzähler, Vol. 12, Leipzig 1923, पृ० 50 आ०)। कुम्भकोणम् संस्करण ने पारम्परिक पाठ को बढ़ा दिया है और नष्ट कर दिया है, दे० M. Winternitz, Ind. Ant. 1898, पृ० 136; J. J. Meyer, वही, पृ० 76 टिप्पणी, तथा Porzig, वही, पृ० 123 आ०।

हैं जिन्हें हम निश्चय ही शकुन्तला-सम्बन्धी प्राचीनतम कविता का अंश कह सकते हैं और जो प्राचीन भाट-काव्य से लिये गये हैं।[१]

"मां तो केवल चमड़े का पात्र है जिसमें बीज सुरक्षित रहता है पर सन्तान असल में पिता की होती है, उत्पादक पिता ही स्वयं पुत्र रूप धरता है। ओ दुष्यन्त! अपने पुत्र का भरण[२] करो और शकुन्तला का निरादर मत करो।

"राजन्! पुत्र सन्तान को जन्म देकर अपने (पितरों को) यमलोक से ऊपर (स्वर्ग में) ले जाता है। तुम्हीं ने इस बीज को उत्पन्न किया है—शकुन्तला ने सत्य कहा है।"

बहुत सम्भव है कि अपने अधिकार के लिए अड़ी शकुन्तला, उसके पुत्र तथा उसको स्वीकार न करना चाहते हुए राजा के संवाद में बहुत से प्राचीन मूल श्लोक भी सुरक्षित हों। जो कुछ भी हो इस तरह का कोई एक संवाद प्राचीन आख्यान का मुख्य अंश अवश्य रहा होगा और निम्नलिखित सुन्दर श्लोक की तरह बहुत से नीति के श्लोक शकुन्तला के कथन में रहे होंगे :

"पाप में लिप्त उन्मत्त मूर्ख व्यक्ति सोचता है कि "मुझे कोई नहीं देख रहा है" पर देवता लोग उसके पापों को देखते हैं और उस व्यक्ति के भीतर आत्मा भी उसे देखती रहती है।"[३]

शकुन्तला ने शायद यह भी कहा होगा कि पुत्र पिता को कितना आनन्द और कल्याण देता है—जैसे कि इस श्लोक में :

"व्यक्ति अपने आपको ही पुत्र रूप में उत्पन्न करता है[४]—ऐसा विद्वान् लोग कहते हैं। पर क्या अपने पुत्रों की माता को वह व्यक्ति उसी प्रकार देखेगा जैसे वह अपनी माता को देखता है?"

"खेल कर लौटे, धूल में सने और अपने पिता के घुटनों को चूमने के लिए दौड़कर आते नन्हें पुत्र को देखने से अधिक क्या कोई और भी सुख इस दुनिया में है?"

"वह तुम्हारे कोख से ही निकला है—एक आत्मा से दूसरी आत्मा पैदा हुई

---

१. इसके बार-बार आने से यह सिद्ध हो जाता है क्योंकि यही श्लोक फिर (I. 74, 109 आ०), अनुवंशश्लोक (महा० I, 95, 29 आ०) के रूप में उद्धृत है। हरिवंश (32, 10 आ०), विष्णु पुराण (IV, 19), वायु पुराण (99, 135 आ०, आनन्दाश्रम संस्क०), मत्स्य पुराण (49, 12 आ०, वही सस्क०) और भागवत पुराण (IX, 20, 21 आ०) में भी ये आते हैं।

२. इस 'भर' शब्द के कारण ही लड़के का नाम 'भरत' पड़ा।

३. I, 74, 171. J. Muir द्वारा Metrical Translations from Saskrit Writers, पृ० 8 में अनूदित।

४. ऐतरेय ब्राह्मण VII, 13 भी यही कहता है।

है। आइने के समान स्वच्छ तालाब में पड़ती अपनी परछाईं की तरह अपने इस पुत्र की ओर तो देखो।"[१]

फिर भी यह संभावित नहीं है कि शकुन्तला के मुख से कहलायी गयी विवाह-सुख-सम्बन्धी पति-पत्नी के कर्त्तव्य, माता पिता के कर्त्तव्य और सत्यवादिता से सम्बन्धित सभी सूक्तियाँ वास्तव में प्राचीन वीर-कविता के अंग हैं। कुछ श्लोक जिनमें विवाह के नियम और दायभाग के अधिकारों का उल्लेख है सीधे-सीधे धर्मशास्त्रों से ले लिये गये हैं—इससे मालूम होता है कि ब्राह्मण-धर्मानुयायी विद्वानों ने शकुन्तला के इस कथन का आचार और विधान सम्बन्धी वाक्यों को यथासंभव एकत्र करने के निमित्त के रूप में उपयोग किया है। परन्तु यह बात हमें इन कथनों में भारतीय उपदेशात्मक कविता के अत्युत्कृष्ट उदाहरणों को ढूंढ़ निकालने से नहीं रोक सकती। जैसे—

"पत्नी पुरुष का आधा अंग है और सारे मित्रों से कहीं अधिक मूल्यवान् है। वह सारे सांसारिक सुख देती है और यहां तक कि उससे मुक्ति भी मिलती है।"

"सुन्दर स्त्रियाँ एकान्त में साथ देकर आनन्द का सृजन करती हैं, अनुभवी पिता की तरह कर्तव्य परायण स्त्रियाँ सत्कर्म में प्रेरित करती हैं। जब भी हमें दुःख और कष्ट होता है तो ये दयालु मां की तरह हमें छुटकारा दिलाती हैं।"

"जब भाराक्रान्त, थका मनुष्य जीवन के वन में भटक जाता है तो उसकी पत्नी उसके विश्राम का स्थान बनती है—वहीं वह टिकता है, ताजगी पाता है और आनन्द प्राप्त करता है।"[२]

महाभारत के वीरों के पूर्वजों में एक राजा ययाति का भी नाम आता है जिनका इतिहास भी सम्भवपर्व में वर्णित है।[3] पर जिस तरह प्राचीन शकुन्तला की कविता को विधि और आचार सम्बन्धी ब्राह्मण धर्म के उपदेशों को प्रस्तुत करने के उद्देश्य से काम में लाया गया उसी तरह ययाति के प्राचीन आख्यान को, जो मालूम होता है कि

---

१. I, 74, 47; 52; 64।

२. I, 74, 40, 42; 49 का अनुवाद J. Muir द्वारा, वही, पृ० 134 आ०।

३. यह कथा पहले I,75 में संक्षेप में वर्णित है फिर I,76-93 में विस्तार के साथ। कथा का अन्तिम भाग कुछ जोड़ कर के फिर से V,120-123 में कहा गया है। यह कथा जर्मन में A. Holtzmann (Indische Sagen), J. J. Meyer (Das Weib im altindischen Epos, पृ० 8 आ०) और W. Porzig (Indische Erzähler, Vol. 12, पृ० 12 आ०) द्वारा अनूदित हुई। संस्कृत में इस कथा के विभिन्न रूपों के बारे में दे० Porzig, वही, पृ० 105 आ०। कथा के पौराणिक व्याख्यान के लिए दे० A. Ludwig को Sitzungsberichte der K. bähmischen Gesellschraft der Missenschaften, Prague, 1893 में।

अपने मूल रूप में एक प्रकार की टिटान गाथा रही होगी, आचार-वर्णन के रूप में बदल दिया गया जिस से कि यह वैराग्य-परक कविता का प्रिय विषय बन गया। पर प्राचीन वीर कविता के चिह्न एकदम नष्ट नहीं हो गए हैं। विशेष कर जहां पर राजा की दो पत्नियों की कथा कही गई है वहां प्राप्त प्रवाहयुक्त हास्य में इन चिह्नों को देखा जा सकता है। ययाति-आख्यान के वर्ण्य विषयों मे से केवल निम्नलिखित अंश ही यहां दिया जा सकता है।

असुरों के पुरोहित शुक्र की कन्या देवयानी का असुर-राज की पुत्री शर्मिष्ठा ने अपमान कर दिया। इस कारण से पुरोहित ने राजा को छोड़ देना चाहा। पुरोहित को प्रसन्न करने के लिए राजा ने अपनी पुत्री को देवयानी की दासी बना दिया। जल्दी ही देवयानी का विवाह राजा ययाति से हो गया पर ययाति को प्रतिज्ञा करनी पड़ी कि वह देवयानी की दासी राजकुमारी शर्मिष्ठा के साथ सम्बन्ध न रखेगा। पर राजा ने अपनी प्रतिज्ञा तोड़ दी, छिप कर शर्मिष्ठा से विवाह कर लिया और उससे तीन पुत्र उत्पन्न किए। ईर्ष्यालु देवयानी को यह बात मालूम हो गई और अपने पिता शुक्र से इस की शिकायत कर दी। शुक्र ने ययाति को शाप दे दिया कि उस का यौवन तुरत नष्ट हो जाय और वह बूढ़ा और जर्जर हो जाय। पर ययाति की प्रार्थना पर उन्होंने शाप का प्रभाव कम करने के लिए कहा कि राजा ययाति अपने बुढ़ापे को किसी दूसरे को दे सकते हैं।

एकाएक राजा जब बूढ़ा हो गया, झुर्रियाँ पड़ गईं और बाल सफेद हो गये तो एक एक कर के उसने अपने लड़कों से कहा कि वे उस का बुढ़ापा ले लें और बदले में अपनी जवानी दे दें। क्योंकि राजा ने जीवन का पूरा आनन्द नहीं लिया है। दो बड़े लड़कों में से कोई भी इस अदला-बदली के लिये तयार नहीं हुआ। इस पर उन के पिता ने उन को शाप दे दिया। केवल सब से छोटा पुरु तयार हुआ। उसने अपने पिता का बुढ़ापा अपने ऊपर ले लिया और बदले में अपनी जवानी राजा को दे दी। इसके बाद एक हजार वर्षों तक राजा ने पूर्ण विकसित यौवन का आनन्द लिया और जीवन के सुखों का पूर्ण उपभोग किया। राजा ने न केवल अपनी दो पत्नियों का अपितु स्वर्ग की एक सुन्दरी अप्सरा विश्वाची का भी आनन्द लिया। पर उन्होंने जितना भी आनन्द लिया उससे कभी उनको पूरा सन्तोष नहीं हुआ। और जब एक हजार वर्ष बीत गये तब राजा इस निष्कर्ष पर पहुंचा जिसका वर्णन नीचे लिखे श्लोकों में किया गया है—

"यह सत्य है कि काम के भोग से काम शान्त नहीं होता, उल्टे यह बढ़ता तथा बलवान होता जाता है जैसे आहुति का घी डालने पर आग बढ़ती है।

यह सोचो कि कोष, सोना, पशु और स्त्रियों से पूर्ण यह पृथ्वी भी एक व्यक्ति के लिए पर्याप्त नहीं है और फिर अपनी आत्मा को सन्तोष देने का प्रयत्न करो।

जिसने कभी मन वचन या कर्म से किसी भी प्राणी का बुरा नहीं किया है वही ब्रह्म के समीप है।

जो व्यक्ति निर्भय है, जिससे कोई प्राणी भयभीत नहीं होता, जिसकी कोई इच्छा नहीं है और जो द्वेष को नहीं जानता वही ब्रह्म के समीप है[1]।"

इसके बाद राजा ने अपने पुत्र पुरु को उसका यौवन लौटा दिया, अपना ही बुढ़ापा फिर से ले लिया और पुरु को राजगद्दी पर बैठा कर स्वयं वन को चले गए जहां एक तपस्वी की तरह रहने लगे और एक हजार वर्षों तक घोर तपस्या की। इसके कारण उनको स्वर्ग मिला और देवताओं और ऋषियों से पूजित होकर बहुत दिनों तक वहां रहे। एक दिन इन्द्र के साथ बातचीत में उन्होंने घमंड दिखाया और इस अपराध में उनको स्वर्ग से निकाल दिया गया। पर बाद में अपने चार पुण्यात्मा पौत्रों के साथ वे फिर स्वर्ग चले गए।

ययाति के पिता नहुष का आख्यान भी, जो महाभारत में कई बार आया है[2], एक तरह का टिटान आख्यान है जिसका अंत स्वर्ग से पतन में होता है।

वेदों में[3] प्रसिद्ध पुरूरवा का पौत्र नहुष एक शक्तिशाली राजा था जिसने दस्युओं के समूहों का विनाश किया। पर उसने ऋषियों पर भी कर लगा दिए और उनको आज्ञा दी कि वे भारवाही पशुओं की तरह उसे अपनी पीठों पर ढोया करें। उसने देवताओं पर भी विजय कर ली और बहुत दिनों तक इन्द्र की जगह वह स्वर्ग पर राज्य करता रहा। उसने इन्द्र की पत्नी शची को अपनी पत्नी बनाना चाहा और वह इतना बढ़ गया था कि अगस्त्य के सिर पर लात मारी और स्वर्ग के ऋषियों को अपने रथ में जोत दिया। इस महर्षि के लिए यह असह्य था और उन्होंने नहुष को

---

१. I, 75, 49-52। अन्यत्र जहां कहीं ययाति की कथा आती है वहां केवल पहला श्लोक ही दुहराया गया है। (यह मनुस्मृति, II. 94 में भी आया है।) बाकी श्लोक कुछ परिवर्तन के साथ I, 85, 12-16, हरिवंश 30, 1639-1645, विष्णुपुराण IV, 10, और भागवतपुराण IX, 19, 13-15 में मिलते हैं। पर केवल I. 75, 51-52 और हरिवंश 30, 1642 में वेदान्त दर्शन के अर्थ में ब्रह्म के साथ एकीभाव की चर्चा है। अन्य सभी स्थानों पर समानान्तर श्लोक केवल तपश्चर्या के लक्ष्य के रूप में कामना का दमन करने की बात कहते हैं, यह तपश्चर्या बौद्ध, जैन, ब्राह्मण और वैष्णव तपस्वियों के लिए समान है। भारत के सभी तपस्यापरक संप्रदायों में इसीलिए इस तरह की उक्तियां मिलती हैं।

२. पहले I, 75 में ययाति के आख्यान की भूमिका के रूप में, फिर विस्तार से V, 11-17 में, संक्षेप से XII, 342 और XIII, 100 में। स्वतंत्र काव्य रूप Ad. Holtzmann, Indische Sagen I, पृ० 9-30 में।

३. महाभारत (I, 75, 20 आ०) के अनुसार नहुष की तरह पुरूरवा भी मुनियों का शत्रु था, वह भी ऋषियों को सताता था और उनके शाप से उसका भी नाश हुआ।

शाप दे दिया जिसका फल यह हुआ कि वह स्वर्ग से गिर पड़ा और दस हजार वर्षों तक उसे पृथ्वी पर एक अजगर के रूप में रहना पड़ा[१]।

महाभारत में कुछ कवितायें ऐसी भी आ गई हैं जो इतनी बड़ी और अपने आप में इतनी पूर्ण है कि हम उनको इतिहास-काव्य के बीच में इतिहास काव्य कह सकते हैं। इस प्रकार की कविताओं में नल और दमयंती की प्रसिद्ध कविता सबसे ऊपर है[२]। जिस समय पांडव लोग वनवास कर रहे थे उस समय ऋषि बृहदश्व उनसे मिलने आए। युधिष्ठिर ने उनसे अपने और अपने लोगों के दुर्भाग्य की चर्चा की और पूछा कि क्या कभी कोई राजा उनसे भी ज्यादे अभागा हो चुका है। इस पर बृहदश्व ने अभागे राजा नल की कहानी कही। अपने भाई पुष्कर के साथ जुए में नल अपनी सारी सपत्ति और अपना राज्य हार गए और तब अपनी सुन्दर और पतिव्रता पत्नी दमयंती के साथ उनको वन में जाना पड़ा। जुए के दुष्ट राक्षस ने फिर भी उनका पीछा नहीं छोड़ा और उससे अंधे होकर उन्होंने अपनी पतिव्रता पत्नी को, जब कि वह चलने से थककर गहरी नींद में सो रही थी, जंगल में ही छोड़ दिया। राजा नल तथा अपने पति द्वारा छोड़ दी गई दमयन्ती का साहसपूर्ण चरित्र—कि कैसे एक दूसरे से अलग होकर वे जंगल में भटकते रहे, कैसे बड़े दुःख और कठिनाई के बाद दमयन्ती को चेदि की राजमाता के यहां सौहार्द पूर्ण आश्रय मिला, कैसे नागराज कर्कोटक के द्वारा न पहिचानने योग्य बना दिए जाने पर नल राजा ऋतुपर्ण के यहां सारथि और रसोइये का तब तक काम करते रहे जब तक लम्बे और दुःखपूर्ण वियोग के बाद पति-पत्नी दोनों फिर से न मिल गए- यह सब हृदय को छूने वाली सरल और सही माने में लोकप्रचलित परी-कथाओं के ढंग से वर्णित है जिसमें हास्य की भी कमी नहीं है।

सन् १८१९ के बाद से जब कि Franz Bopp (फ्रांज बोप) ने लैटिन अनुवाद के साथ पहले पहल नल की कथा प्रकाशित की, इसे केवल भारतीय साहित्य का ही नहीं बल्कि सारे विश्व के साहित्य का भी एक रत्न माना जाने लगा। ए० डब्ल्यू० वी० श्लीगेल[३] ने बोप की कविता के संस्करण और अनुवाद का स्वागत करते हुए कहा—"मैं केवल यही कहूंगा कि मेरे मत में अपनी कारुणिकता और सन्देश में आत्मविभोर करने की शक्ति में और भावों की कोमलता में इस कविता का कठिनाई से ही कोई दूसरी कविता अतिक्रमण कर सकती है। वृद्ध और बालक, अभिजात और सामान्य जन, पारखी और केवल प्रकृति से नियन्त्रित, सभी लोगों को आकर्षित करने के लिए इसका निर्माण किया गया है। और भी, यह आख्यान भारत में अत्यन्त लोकप्रिय है, वहां दमयन्ती की साहसपूर्ण दृढ़ता और आस्था उतनी ही प्रसिद्ध है

---

१. बाद में युधिष्ठिर ने उसका उद्धार किया (III, 179 आ०)।

२. III, 52-79 नलोपाख्यान।

३. Indische Bibliothek, I, 90 आ०।

जितनी कि हमारे बीच पेनेलोप को और यूरोप में, जो कि सारे महाद्वीपों और सभी युगों की कृतियों का संग्रह स्थान है, इस आख्यान को उतना ही प्रसिद्ध होना चाहिए।" और यह उतना प्रसिद्ध हुआ भी। अनुवाद कला के आचार्य जर्मन कवि स्वर्गीय फ्रीडरिश रुकर्ट ने सन् १८२८[1] में इस कविता का अनुवाद जर्मन पद्यों में किया जो उनकी अतुलनीय प्रतिभा के कारण जर्मनी में इतना प्रसिद्ध हुआ कि डीन एच० एच० मिलमैन के अनुवाद के द्वारा यह इंगलैण्ड में भी प्रसिद्ध हो गया[2]।

इस आख्यान का नायक नलनैषध निश्चय ही शतपथ ब्राह्मण में उल्लिखित नड नैषिध से भिन्न नहीं है जिसके बारे में वहां कहा गया है कि "वह प्रतिदिन यम को दक्षिण में ले जाता है।" इसलिए वह अवश्य उस समय जीवित रहा होगा और दक्षिण की ओर उसने युद्ध जैसा अभियान किया होगा। इस तरह नायक का नाम बड़ी प्राचीनता की ओर संकेत करता है। सम्भवतः यह कविता महाभारत के प्राचीन अंशों में से है लेकिन प्राचीनतम अंशों में से नहीं। जो भी हो यह सारे पुराण जैसे तत्त्वों से परे है और इसमें वरुण और इन्द्र जैसे प्राचीन वैदिक देवताओं का ही उल्लेख है विष्णु या शिव का नहीं। इस कविता में वर्णित सभ्यता का स्तर सब कुल मिलाकर काफी सरल है और प्राचीन मालूम पड़ता है। दूसरी ओर, प्राचीनतम कविता में हमें कहीं भी पूर्वराग और प्रेम के चित्रण में इतनी रोमांचकता और कोमलता नहीं मिलती जितनी कि विशेष रूप से नल-काव्य के पहले कुछ अध्यायों में मिलती है। केवल पुरूरवा और उर्वशी के प्रेम की बड़ी प्राचीन कविता के कारण हम सन्देह कर सकते हैं कि बहुत प्राचीन काल में भी प्रेमाख्यान भारत के लिए अपरिचित नहीं था। पर साधारणतः भारतीय मन के लिए प्रेमाख्यान कितना उपयुक्त है यह बात इस कविता की अत्यन्त लोकप्रियता से सिद्ध है। संस्कृत तथा आधुनिक भारतीय भाषाओं और बोलियों में परवर्ती कवियों ने बार-बार इसका अनुकरण किया है।[3] बहुत कम ऐसी भारतीय कविताएं हैं जो नल कविता की तरह यूरोपीय रुचि के इतने अधिक अनुकूल हों। प्रायः यूरोप की[4] सारी भाषाओं में इसका अनुवाद हो गया है और ए० गुबेर-

---

१. नये संस्करण 1838, 1845, 1862 और 1873 में निकले। एक अति स्वतंत्र काव्यात्मक रूप Ad. Holtzmann ने अपने Indische Sagen में दिया है।

२. Nala and Damayantī and other Poems translated from the Sanskrit into English verse, Oxford, 1835।

३. मि०—A. Holtzmann कृत Das Mahābhārata, II, 69 आ० में इसकी गणना के लिए।

४. A. Holtzmann, वही, II, 73 आ०, में जर्मन, अंग्रेजी, फ्रेंच, इतालवी, स्वीडिश, चेक, पोलिश, रूसी, आधुनिक ग्रीक और हंगेरियन अनुवादों की गिनती करते हैं। मैं केवल अंग्रेजी में Monier Williams (1860),

नातिस कृत इसका नाट्य रूपान्तर भी फ्लारेन्स में सन् १८६९ में रंगमंच पर प्रस्तुत किया गया। और बहुत दिनों से प्रायः पश्चिम के सारे विश्वविद्यालयों में यह परम्परा चली आ रही है कि संस्कृत के अध्ययन का आरम्भ इस कविता के पठन से किया जाता है जो कि भाषा और विषय की दृष्टि से इस कार्य के लिए बहुत ही उपयुक्त है।[१]

राम[२] का आख्यान भी इतिहास-काव्य के भीतर एक तरह से इतिहास काव्य है। (कुछ प्रक्षेपों और जोड़ों के कारण, जिससे महाभारत का कोई भी अंश बिलकुल मुक्त नहीं है, विकृत होने के बावजूद) नल का आख्यान एक कलात्मक कृति है और प्राचीन भाट कविता का मूल्यवान् अवशेष है। परन्तु राम के आख्यान का भारतीयों के दूसरे महान् इतिहास-काव्य रामायण के इतिहास की दृष्टि से केवल साहित्यिक महत्त्व है। क्योंकि राम का आख्यान अपने आप में कठिनाई से महत्त्वपूर्ण कहा जा सकता है, यह या तो रामायण का ही कलाहीन संक्षिप्त रूप है,[३] या फिर उन वीर-कविताओं का जिनके आधार पर वाल्मीकि ने अपने महाकाव्य की रचना की। किसी भी स्थिति में महाभारत में हमें प्राप्त होने वाली राम सम्बन्धी कवितायें प्राचीनतम वीर गान नहीं है। द्रौपदी के हरण के कारण बहुत दुःखी युधिष्ठिर को सान्त्वना देने के लिए मार्कण्डेय ऋषिने राम की कथा सुनाई क्योंकि राम की पत्नी सीता भी हरण कर ली गई थी

Charles Bruce (1864), Edwin Arnold (Indian Idylls, 1883 और Poetical Works, 1885); जर्मन में E. Lobedanz (1863), H. C. Kellner (Reclams Universal-bibliothek में), L. Fritze (1914); फ्रेंच में S. Levi (1920—"Les classiques de l' orient" में) के अनुवादों का उल्लेख करना चाहूंगा।

१. नलकी कथा शब्दकोश और टिप्पणियों के साथ संस्कृत प्रारंभ करनेवालों के लिए अनेक बार छप चुकी है, यथा—G. Bühler (Third Book of Sanskrit, बंबई, २सरा संस्क०, 1877), Monier Williams (लंडन, 1879), J. Eggerling (लंडन, 1913), H. C. Kellner (Leipzig, 1885), W. Caland (Utrecht, 1917) द्वारा।

२. III, 273-290—रामोपाख्यान।

३. H. Jacobi (Das Rāmāyaṇa-Bonn, 1893, पृ० 71 आ०) ने इस मान्यता के लिए इतने अच्छे तर्क दिए हैं कि मुझे ये सर्वाधिक संभव लगते हैं यद्यपि A. Ludwig ने über das Rāmāyaṇa und die Beziehungen desselben zum Mahābhārata, पृ० 30 आ० में तथा Hopkins ने The Great Epic of India, पृ० 63 आ० में इस पर आपत्ति उठाई है। मि० A. Weber, über das Rāmāyaṇa, पृ० 34 आ० भी।

और बहुत दिनों तक राक्षस रावण के यहां वन्दी थी। महाभारत के दूसरे भागों में भी राम की कथा की ओर संकेत न हो ऐसी बात नहीं। मैं केवल भीम का वानर हनुमान के साथ मिलन की ओर संकेत करता हूँ।

महाभारत के पाँचवे पर्व में प्राचीन भारत की भाट कविता का एक और अधिक मूल्यवान् अवशेष मिलता है जो दुर्भाग्य से केवल अंशतः सुरक्षित है। यह वीर-माता विदुला की कथा है।[1] कुन्ती ने कृष्ण के द्वारा अपने पुत्रों पांडवों को संदेश भेजते हुए कहलाया कि वे अपने क्षत्रिय धर्म को न भूलें और इस प्रसंग में उसने बताया कि वीर-पत्नी विदुला ने कैसे अपने पुत्र संजय को युद्ध के लिए उत्साहित किया। सिन्धु-राज के हाथों लज्जाजनक हार खा जाने के बाद संजय एकदम उत्साह-हीन हो गया था और अपनी पत्नी तथा अपनी माता विदुला के साथ कष्ट में दिन बिता रहा था। इस पर अत्यन्त ओजस्वी भाषा में विदुला ने उसकी कायरता और निष्क्रियता पर उसे धिक्कारा और उत्तेजना-पूर्ण शब्दों में उसे वीरता के नये कर्म करने को उकसाया। प्राचीन वीर-कविता के इस अंश की भाषा के ओजपूर्ण प्रवाह का एक रूप उपस्थित करने के लिए मैं नीचे विदुला के इस प्रवचन से कुछ पद्यों का गद्यानुवाद उद्धृत करता हूँ।[2]

"कायर उठ, जब तू हार गया है तो अपने शत्रुओं को आनन्द तथा अपने मित्रों को दुःख देने के लिए इस तरह निष्क्रिय न पड़ा रह।"

छोटी-सी तलैया जल्दी ही भर जाती है, चूहे की मुट्ठी को भर देना बहुत आसान है। कायर व्यक्ति जल्दी ही थोड़ा-बहुत जो पा जाता है उसी में सन्तोष कर लेता है।"

"साँप के जहरीले दाँतों को कम से कम तोड़ने के पहले ही तू कुत्ते की मौत न न मर। बहादुर बन। भले ही इसके लिए तुझे प्राण ही क्यों न दे देना पड़े।"

"तू मुर्दे की तरह क्यों पड़ा है? क्यों ऐसे आदमी की तरह पड़ा है जिसे बिजली मार गई हो? रे कायर! उठ, जब तू शत्रु से हरा दिया गया है तो सोता न रह।"

---

१. V, 133-136—विदुलापुत्रानुशासन। मि० H. Jacobi, über ein Verlorenes Heldengedicht der Sindhu-Sauvīra (me'langes Kern, Leyden, 1903, पृ० 53 आ० में)। इसका स्वतंत्र काव्यात्मक रूप J. Muir ने Metrical Translations from Sanskrit Writers, पृ० 120-133 में दिया है। उन्होंने राजपूताना की स्त्रियों को ठीक ही "आज भी महाभारत के इस अंश में विदुला की कही गई वीरता से युक्त" बतलाया है (वही, पृ० 132)।

२. Muir का अनुवाद (वही, पृ० 121 आ० में) मूल की गति का पूरा आभास नहीं दे पाता।

"तिंदुक की लकड़ी की तरह एक बार भभक जल उठ। भले यह एक क्षण के लिए ही हो पर अपना जीवन बढ़ाने के लिए भूसे की आग की तरह मत सुलगता रह।"

"एक क्षण के लिए जल उठना अच्छा है पर घंटों सुलगते रहना ठीक नहीं। आश्चर्य है कि एक बोदा गधा राजा के घर में जन्म ले।"

"जिस आदमी के कार्य आश्चर्यपूर्ण कहानी के विषय न बनें वह केवल पृथ्वी का भार बढ़ाता है। वह न तो स्त्री है न पुरुष।"[१]

अपनी माँ के सारे उपदेशों और धिक्कारों के उत्तर में उस स्वभावतः कम बोलने वाले पुत्र ने केवल यह कहा कि युद्ध में विजय पाने के लिए उस के पास साधन नहीं है और जो भी हो उसकी मृत्यु से विदुला का कोई लाभ न होगा।

"तुम्हारा हृदय लोहे का हृदय है और तुम प्यार करने वाली माता जैसा व्यवहार नहीं कर रही हो। तुम क्षत्रिय वंश की सच्ची पुत्री हो और तुम्हारी आत्मा कठोर और न झुकने वाली है। तुम अपने सारे सच्चे क्षत्रिय संस्कारों के आगे प्रेम को उसका उचित स्थान नहीं दे रही हो और न तो अपने एक-मात्र पुत्र, जो तुम्हारा सब से बड़ा सुख है, की रक्षा करना चाहती हो। झूठ-मूठ में मुझे उकसा रही हो जैसे कि मानों मैं कोई पराया युवक होऊं कि मैं फिर व्यर्थ के युद्ध में फंसूं और बिना किसी लाभ के अपने जीवन को खतरे में डालूं। मेरी मां! यदि मैं न रहूं तो तुम्हारे लिए पृथ्वी का—इसके धन-दौलत, इस के आनन्द, इसकी शक्ति, इस के राज्य, इसके चमकते खिलौने और जीवन का—तुम्हारे लिए क्या मूल्य रह जायगा?"[२]

पर उसकी मां ने सदा नया उत्साह देते हुए यही उत्तर दिया कि एक योद्धा भय का नाम नहीं जानता और किसी भी हालत में उसे योद्धा का कर्तव्य अवश्य पूरा करना चाहिए। अंत में वह अपने पुत्र को उद्बोधित करने में सफल हुई यद्यपि उस पुत्र के पास थोड़ी बुद्धि थी।

"जैसे कि एक अच्छी नस्ल का घोड़ा दंड दे देने पर बात मानने लगता है उसी तरह अपनी माँ के शब्द-रूपी चाबुक से प्रेरित होकर उस पुत्र ने वैसा ही किया जैसा कि उस की माँ ने कहा।"[३]

एक वीर-कविता का यह मूल महाभारत के उन थोड़े-से अंशों में से है जो प्रायः ब्राह्मणों के प्रभाव से बिलकुल अछूता बच गया है। क्षत्रियत्व से उद्भूत प्राचीन भाट कविता अपने रूप और विषय में ब्राह्मण विद्वानों के प्रभाव से एक दम रंग दी गई है। इस तरह का एक उदाहरण (यह बहुतों में से एक है) हमें महाभारत के बारहवें पर्व में उद्धृत एक प्राचीन इतिहास में मिलता है जिसको उस के पुत्र की मृत्यु

---

१. V. 132, 8-10, 12, 15, 22।
२. V, 134, 1-3, J, Muir द्वारा अंग्रेजी में अनूदित, वही, पृ० 127 आ०।
३. V, 135, 12; 16।

के बाद सान्त्वना देने के लिए नारद ने शृंजय से कहा था। आदिकाल के बहुत से राजाओं का नाम लिया गया है वे सब यद्यपि प्रसिद्ध वीर थे फिर भी उनको मरना पड़ा। पर इन राजाओं की वीरता किस बात में थी? उन्होंने अनेक यज्ञ किए और सब से अधिक महत्त्व की बात तो यह है कि उन्होंने पुरोहितों को बहुत दान दिया। उदाहरण के लिए एक राजा ने यज्ञ की दक्षिणा में पुरोहितों को सोने से सजी दस लाख स्त्रियां दीं। उन में से हर एक स्त्री चार घोड़ों वाले रथ पर बैठी थी हर रथ के साथ सोने की माला पहने एक सौ हाथी थे। हर हाथी के पीछे एक हजार घोड़े थे, हर घोड़े के पीछे एक हजार गायें थीं और हर गाय के पीछे एक हजार बकरियां और भेड़ें थीं[1]। प्रायः यह कहना कठिन है कि ये प्राचीन वीर-कविता के अवशेष हैं अथवा पुनः संस्करण करते समय ब्राह्मणों ने उन्हें विकृत कर दिया है या कि ये स्वतंत्र ब्राह्मण रचनाएं हैं।

महाभारत में ब्राह्मण आख्यान और कथाएँ

प्राचीन भारतीय भाट कविता अपने शुद्ध मूल रूप में सुरक्षित नहीं रही इस तथ्य का कारण यह है कि महाभारत को ब्राह्मणों ने अपना लिया। पर इस के लिए हम आभारी हैं क्यों कि इस से महाभारत में न केवल देवता-शास्त्र और परम्परा के इतिहास की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण देवताओं की अनेक कथायें और आख्यान ही सुरक्षित रहे अपितु ब्राह्मणों की काव्यकला की कुछ सुन्दर कृतियाँ और ब्राह्मण बुद्धि के महत्त्वपूर्ण नमूने भी सुरक्षित रह सके।

देवता-शास्त्र और परम्परा की दृष्टि से रोचक कथा महाभारत की भूमिका-कथा जनमेजय के नागयज्ञ की कथा है[2] जिसमें बहुत-सी छोटी कथाएं बीच-बीच में गुंथी हुई हैं—जैसे नाग-आख्यान, गरुड़ पक्षी की कथा और दूसरी कथाएं। जिसको नागयज्ञ कहा गया है वह वास्तव में नागों को समूल नष्ट कर देने का एक सर्पवशीकरण मात्र है। जनमेजय के पिता परीक्षित नागराज तक्षक के काटने से मर गए थे। अपने पिता की मृत्यु का बदला लेने के लिए राजा जनमेजय ने एक महायज्ञ आयोजित

---

१. XII, 29। इसी प्रकार की अपने दान के लिए प्रसिद्ध राजाओं की एक सूची VII, 56-71 में मिलती है।

२. I, 3, 13-58; XV, 35। जर्मन पद्यों में A. Holtzmann द्वारा Indische Sagen में स्वतंत्र रूप से लिखित। अक्षरशः जर्मन गद्य में W. Porzig (Indische Erzähler, Vol. 15, Leipzig, 1924 में) द्वारा अनूदित। यूरोप में भी ऐसी दंत-कथाएं वर्तमान हैं खास कर Jyral में, दे० मेरी पुस्तक" "Das Schlangenopfer des Mahābhārata" (Kulturgeschi-chtliches aus der Tierwelt, Festschrift des Vereins füür Valkskunde und Linguistik, Prgue, 1904)।

किया[1] जिसमें पुरोहितों के आकर्षण के कारण पृथ्वी के सारे नागों को दूर या नजदीक से खींच कर वहाँ आना पड़ा और अपने आप को आग में होम कर देना पड़ा। हमारे इतिहास-काव्य में इसका वर्णन बड़े विशद रूप में हुआ है।

"नागयज्ञ के लिए विहित नियमों के अनुसार यज्ञ का उत्सव आरम्भ हुआ। पुरोहित लोग इधर-उधर दौड़ने लगे और हर एक अपना निर्धारित कार्य उत्सुकता-पूर्वक पूरा करने लगा। काले कपड़ों में लिपटे पुरोहितों की आंखें धुएं से लाल हो गईं और मन्त्र पढ़ते हुए वे लपलपाती आग में घी की आहुति देने लगे। उन्होंने सारे सर्पों का हृदय कंपा दिया और उन्हें आग की दाढ़ों में गिरने के लिए बुलाने लगे। इस पर अपने शरीरों को मरोड़ते और एक दूसरे को कातर होकर पुकारते सांप लोग जलते हवनकुड में गिरने लगे। कांपते और फुफकारते अपने फणों और पूंछों द्वारा एक-दूसरे से लिपटे झुण्ड के झुण्ड सांप जलती हुई आग में अपने को झोंकने लगे···बड़े सर्प और छोटे सर्प, बहुत सारे, बहुत से रंगों के, गदा जैसे बली, भयानक विष से भरे सांप अपनी माता के शाप से खिंच आग में गिरने लगे।"[2]

यहां पर नाग यज्ञ का यह आख्यान वैदिक ग्रन्थों में पहले से ही उल्लिखित कद्रू और विनता के प्राचीन आख्यान[3] से मिला दिया गया है। कद्रू यानी 'लाल, भूरी' पृथ्वी है जो नागों की माता है, विनता यानी 'झुकी हुई' अंतरिक्ष है और पौराणिक पक्षी गरुड की माता है। समुद्र-मन्थन की कथा भी यहां जुड़ी हुई है[4] जो रामायण और पुराणों में भी आती है। बार-बार यह कथा कही गई है या बाद के कवियों ने उदाहरण या तुलना के लिए इसका उपयोग किया है। किस तरह देवताओं और दैत्यों ने मिलकर घोर परिश्रम किया, अमृत पाने के लिए समुद्र को मथा, मंदरा-

---

१. इस यज्ञ में बीच-बीच में महाभारत का पारायण किया गया माना जाता है। Porzig (वही) का कहना है कि आस्तीकोपाख्यान मूल रूप में महाभारत की भूमिका-कथा से अधिक निकट रूप में संबद्ध रहा होगा। वैशम्पायन नहीं बल्कि आस्तीक ने स्वयं संपूर्ण महाभारत का प्रवचन किया होगा। इसी से उसने नागराज तक्षक को बचाया होगा। इस मान्यता के लिए आधार कमजोर हैं। यह अधिक संभव है कि पूरा का पूरा आस्तीकपर्व शुरू में स्वतंत्र कविता थी और बाद में ही महाभारत के प्रवचन के साथ इसे जोड़ा गया। मि० वी० वेंकटाचलन् अय्यर, Notes on a Study of the Preliminary Chapters of the Mahābhārata, मद्रास, 1922, पृ० 352 आ०।

२. I. 52।

३. तैत्तिरीय संहिता, VI, 1, 6, 1; काठक, 23, 10; शतपथ ब्रा० III. 6, 2। आस्तीकपर्व से कद्रू और विनता की कथा का अनुवाद J. Charpentier ने Die Suparṇasage, पृ० 167 आ० में किया।

४. I. 17-19।

चल मथनी बना और नागराज वासुकि को रस्सी बनाया गया, कैसे फेन के बीच से चन्द्रमा निकला, उसके बाद सौभाग्य और सौन्दर्यकी देवी लक्ष्मी, मादक पेय सुरा और अन्य मूल्यवान वस्तुएं निकलीं, और अन्त में समुद्र के बीच से चमकते सफेद घड़े में अमृत लिये हुए धन्वन्तरि नामक एक सुन्दर देवता प्रगट हुए—यदि हम कहें तो इन सब बातों का बड़ा सजीव वर्णन किया गया है।

नाग-आख्यानों में से एक और आख्यान भूमिका-कथा में जोड़ा गया है जिसका भी उल्लेख किया जा सकता है। यह है रुरुका आख्यान जो अंशतः नागयज्ञ की कथा की पुनरावृत्ति मात्र है क्योंकि जनमेजय की तरह रुरु सारे सांपों को नष्ट करने की प्रतिज्ञा करता है। यह घटना यों है :

एक बार एक ब्राह्मण के पुत्र रुरु ने एक सुन्दर कन्या प्रमद्वरा को देखा जो एक अप्सरा की पुत्री थी और वह उसके प्रेम में फंस गया। वह उसकी पत्नी बनने वाली ही थी कि विवाह के कुछ दिनों पहले खेलते समय एक जहरीले सांप ने उस कन्या को काट लिया। वह निर्जीव पड़ी रही मानो सो रही हो और इस अवस्था में वह और भी सुन्दर दिखाई दे रही थी। सारे आश्रमवासी आये और करुणा से द्रवित होकर आंसू बहाने लगे पर रुरु दुःखी होकर घोर जंगल में चला गया। उसने जोर से रोते हुए देवताओं से उसकी अपनी तपस्या और पवित्र जीवन पर ध्यान देते हुए उसकी प्रिया को फिर से जिला देने की प्रार्थना की। इस पर देवताओं का एक दूत प्रगट हुआ और कहा कि प्रमद्वरा उसी हालत में फिर से जीवित हो सकती है यदि रुरु अपनी आधी आयु अपनी प्रिया को दे दे। रुरु इसके लिये तुरत तयार हो गया और यमराज ने प्रमद्वारा को फिर से जिलाने की आज्ञा देदी। इसके बाद जल्दी ही एक शुभ दिन दोनों का विवाह हो गया। अब दुनिया के सारे सर्पों का नाश करने के लिए रुरु ने प्रतिज्ञा की और तब से वह जहां कहीं भी सांप देखता उसे मार डालता। पर एक दिन उसे एक विष रहित सांप मिला जिसने उससे छोड़ दिये जाने की प्रार्थना की। वास्तव में यह एक ऋषि थे जो किसी शाप के कारण सर्प बन गए थे और रुरु से मिलने के बाद वे शाप से मुक्त हो गये। मनुष्य के रूप में आकर उन्होंने रुरु को जीवित प्राणियों को न मारने का उपदेश दिया[१]।

इस कथा का नायक रुरु च्यवन का वंशज है जिसके बारे में ऋग्वेद[२] में कथा आती है कि अश्विनियों ने उन्हें पुनः युवा बनाया था। यह पुनः युवा बनाने की कथा ब्राह्मण ग्रंथों[३] में विस्तार से कही गई है और इस कथा का एक रूप महाभारत में

---

१. उद्धरण I, 8-12 से लिया गया।

२. ऋग्वेद, I, 116, 10 जहां उन्हें च्यवान कहा गया है।

३. शतपथ ब्राह्मण IV, 1, 5। जर्मन में A. Weber द्वारा Indische Streifen I (बर्लिन, 1868) पृ० 13 आ० में अनूदित। जैमिनीय ब्राह्मण, III, 120 आ०। मि० E. W. Hopkins का रोचक अध्ययन "The

भी मिलता है।[१] कथा के वैदिक रूप का इतिहास-काव्य में प्राप्त रूप से तुलना करने से कुछ बातें मालूम होती हैं। अतः आगे मैं महाभारत के अनुसार कथा का विषय उपस्थित करूंगा और जहां कहीं ब्राह्मण ग्रन्थों में आए वर्णनों से महत्त्वपूर्ण भेद है उसकी ओर ध्यान आकर्षित करूंगा।

भृगु के पुत्र च्यवन ने एक तालाब के किनारे घोर तपस्या की। वे खम्भे की तरह इतने दिनों तक निश्चल खड़े रहे कि उनके ऊपर मिट्टी का एक ढूहा-सा बन गया, चींटियां उस पर घूमने लगीं और वे स्वयं एक बांबी की तरह दिखाई देने लगे।[२] इस तालाब के पास एक दिन राजा शर्याति बहुत-से लोगों के साथ आये। राजा की पुत्री सुकन्या अपनी सहेलियों के साथ जंगल में घूमती हुई उस बांबी के पास आई जिसमें ऋषि की सिर्फ दो आंखें जुगनू की तरह चमकती दिखाई दे रही थीं। उद्धतता और उत्सुकता-वश उस लड़की ने दो चमकती चीजों में यानी ऋषि की आंखों में एक कांटा चुभो दिया।[३] क्रोध से ऋषि ने शर्याति की सेना में लोगों की टट्टी और पेशाब बन्द करवा दी।[४] बहुत देर तक तो राजा ने इस विपत्ति का कारण ढूंढ़ा पर जब उन्हें मालूम हुआ कि महर्षि को कष्ट हुआ है तो उनसे क्षमा मांगने के लिए राजा उनके पास गये। ऋषि तभी क्षमा कर सकते थे जब कि राजा अपनी कन्या का विवाह उनसे कर दे। इस तरह वह युवती कन्या उस बूढ़े आदमी की पत्नी बन गई। एक दिन जब ऋषि की युवती पत्नी स्नान करके निकल रही थी तो दो अश्विनी कुमारों ने उसे देखा और उससे उस बदसूरत बूढ़े आदमी को छोड़ कर अपने में से किसी एक को अपना पति बना लेने का अनुरोध करने लगे। पर उसने कहा कि वह अपने पति के प्रति वफादार बनी रहना चाहती है। तब देवताओं के उन दो वैद्यों ने उससे प्रस्ताव किया कि वे उसके पति को युवा बना देंगे और तब वह उन दोनों तथा युवा बनाये गए च्यवन में से जिसको चाहे चुन ले। चूंकि च्यवन ने इस

Fountain of Youth" (JAOS, Vol. XXVI, 1905, पृ० 1-67 और 411 आ०) जिसमें न सिर्फ भारत के ही बल्कि दूसरे देशों के भी यौवन-स्रोत संबंधी कथानक एकत्र किये गए हैं।

१. III, 122-125। कथानक के अंतिम भाग के लिए XII, 342; XIII, 156 तथा XIV, 9 भी दे०।

२. ब्राह्मणों में इस प्रकार की तपस्या का कोई उल्लेख नहीं मिलता। वहां च्यवन केवल बूढ़ा और प्रेत की तरह दिखाई देनेवाला ऋषि है।

३. ब्राह्मण ग्रंथों में राजा के परिजनों में से कुछ लड़कों ने ऋषि का अपमान किया—उनको पत्थर फेंक कर मारा दिखाया गया है।

४. ब्राह्मण ग्रंथों के अनुसार यह दंड सेना में फूट डाल कर बताया गया है। "पिता पुत्र से, भाई-भाई से लड़ने लगा" (शत० ब्रा०)। मां ने अपने पुत्र को और पुत्र ने मां को नहीं जाना" (जैमि० ब्रा०)।

बात को मान लिया इसलिए उसने भी अपनी स्वीकृति दे दी। इस पर अश्विनी कुमारों ने बूढ़े ऋषि को तालाब में डुबकी दी और अपने भी पानी में डुबकी लगाई इसके बाद वे तीनों बिलकुल एक जैसे युवा अवस्था की चमकती सुन्दरता लिये बाहर निकले। अब सुकन्या को चुनना था और बहुत सोच-विचार कर उसने अपने ही पति च्यवन को चुना।[1] यौवन देने के बदले में च्यवन ने प्रतिज्ञा की कि वे अश्विनियों को सोमपान का अधिकारी बना देंगे। शर्याति के लिए उन्होंने एक महायज्ञ किया जिसमें उन्होंने अश्विनियों को सोमरस दिया। इस पर देवराज इन्द्र नहीं माने कि वैद्य के रूप में जो अश्विनी मनुष्यों के बीच विचरते हैं वे सोमपान के अधिकारी हो सकते हैं। पर इन्द्र की इस आपत्ति पर च्यवन ने ध्यान नहीं दिया और अश्विनियों के लिए हवन करते ही रहे। क्रोध में आकर इन्द्र च्यवन पर वज्र फेकने ही वाले थे। पर उसी समय ऋषि ने इन्द्र का हाथ शून्य कर दिया और इन्द्र को पूरी तरह नीचा दिखाने के लिए[2] अपनी तपस्या के बल से एक भयानक दैत्य मद का निर्माण किया। वह अपना विशाल मुँह फाड़े (उसका एक जबड़ा धरती को छूता था तो दूसरा आसमान को) इन्द्र की ओर लपका और उनको निगलने चला। भय से काँपते हुए देवराज ने ऋषि से दया की भीख माँगी और ऋषि ने सन्तुष्ट होकर उस मद को मादक पेय सुरा, स्त्री, जूआ और शतरंज इन चारों में बाँट कर उसको फिर से गायब कर दिया।[3]

बहुत से अन्य प्रसंगों की तरह हम यहाँ भी स्पष्ट देखते हैं कि इतिहास काव्य में लिखी गई ब्राह्मण कविता वैदिक साहित्य से बहुत बाद के विकास की अवस्था उपस्थित करती है। इस परवर्ती ब्राह्मण कविता की विशेषता है बढ़ा-चढ़ाकर कहना, साधारण तौर पर सीमा का अभाव और खास कर देवताओं के ऊपर ब्राह्मणों और ऋषियों को सीमा से बाहर बढ़ा-चढ़ाकर बताना। देवताओं से सम्बद्ध वैदिक आख्यानों

---

१. शतपथ ब्रा० में आश्विनियों के तालाब में डुबकी लगाने का उल्लेख नहीं है। पर जैमि० ब्रा० में लिखा है कि च्यवन ने पहले से ही सुकन्या को कोई संकेत बता रखा था जिससे वह उनको पहचान सके।

२. शतपथ ब्रा० में इन्द्र को नीचा दिखाने की कोई चर्चा नहीं है। च्यवन ने अश्विनियों को ऐसा बना दिया कि इन्द्र और दूसरे देवताओं ने उनको स्वतः सोमपान का अधिकारी मान लिया। यह सच है कि जैमि० ब्रा० में ऋषि और देवों में शक्ति की परीक्षा होती है और अपनी सहायता के लिए ऋषि मद का निर्माण करते हैं। पर चूँकि इन्द्र और अन्य देवता उस दैत्य से डर कर भागने लगे तो यज्ञ इन्द्र और देवताओं से शून्य होने लगा और ऋषि ने बड़ी नम्रता से स्तुतियों द्वारा इन्द्र से लौट आने की प्रार्थना की। केवल महाभारत की कथा में ही इन्द्र को ऋषि द्वारा नीचा देखना बताया गया है।

३. जैमि० ब्रा० में मद को केवल सुरा में ही गायब बताया गया है।

से सम्बन्धित इन्द्र की कथा में इन्द्र अब दैत्यों के विजेता और वीर नहीं रहे जैसा कि उन्हें हम ऋग्वेद की ऋचाओं में पाते हैं। यह सही है कि इन्द्र और वृत्र के युद्ध की प्राचीन कथा अब भी जीवित है और महाभारत में काफी विस्तार से दो बार कही भी गई है[१] पर खास जोर इस बात पर दिया गया है कि इन्द्र ने वृत्र को मार कर अपने सिर पर ब्रह्महत्या का पाप ले लिया। बड़े विस्तार से यह बतलाया गया है कि कैसे अनेक अपमानों को सहते हुए इन्द्र ने इस भयानक पाप से अपने आप को मुक्त किया। हमने देखा है कि कुछ दिनों के लिए तो इन्द्र का राज्य भी छीन लिया गया था और उस पर नहुष राज्य करता रहा। ब्राह्मणों की तपस्या से इन्द्र का आसन डोल सकता था इस विश्वास के उदाहरण कई आख्यानों में मिलते हैं। यहाँ तक कहा गया है[२] कि तपस्या से इन्द्र को यमराज के घर भी जाने को विवश किया जा सकता है। जब कोई तपस्वी अपनी कठोर तपस्या के द्वारा देवताओं के भय का कारण बन जाता है तो बहुधा उस तपस्वी को तपस्या से गिराने के लिये इन्द्र को किसी सुन्दर अप्सरा की सहायता लेनी पड़ती है और यह उपाय सिद्ध है।[३]

इन्द्र के मित्र अग्नि देवता की भी बहुत सारी प्राचीन महिमा महाभारत के आख्यानों में आकर नष्ट हो गई है। फिर भी अग्नि सम्बन्धी आख्यान वेदों में प्राप्त और आग के देवता सम्बन्धी विचारों से जुड़े हुए हैं। ऋग्वेद में ही कहा जा चुका है कि अग्नि सुन्दरियों का प्रेमी, स्त्रियों का पति है। पर महाभारत अग्नि के निश्चित प्रेम-व्यापारों का वर्णन करता है। एक बार अग्नि राजा नील की सुन्दर पुत्री पर आसक्त हो गया और राजा के महल में यज्ञ की आग तभी जलती थी जब राजा की पुत्री अपने सुन्दर ओठों और सुगंधित सांस से आग को फूँकती थी। इसका और कोई उपाय नहीं था अलावा इसके कि राजा अपनी पुत्री को अग्नि से ब्याह दें। इसके बदले में अग्नि ने राजा को वर दिया कि वे अजेय हों और उनके नगर की स्त्रियाँ मैथुन में पूरी स्वतन्त्र हों।[४] अग्नि के भुक्खड़पन की बात भी वेद में पहले ही कही गई है। पर महाभारत के आख्यानों में कहा गया है कि भृगु ऋषि के शाप से अग्नि सर्वभक्षी बन गया। अग्नि के कई भाई हैं और वह स्वयं पानी या अरणियों में छिपा रहता है। ये सब बातें वेदों की हैं जिनके आधार पर ब्राह्मण ग्रन्थों में कहानियाँ गढ़ी जा चुकी थीं,[५]

---

१. III, 100 आ०; V, 9-18। इस युद्ध की ओर अनेक संकेत हैं। इन्द्र-नमुचि युद्ध (IX, 43) वृत्रयुद्ध का ही प्रतिरूप है।

२. III, 126, 21।

३. मि० A. Holtzmann, ZDMG, 32, 187, पृ० 290 आ० महाभारत में इन्द्र के लिए।

४. II. 31। अग्नि के प्रेम की ऐसी ही कथा XIII. 2 में है।

५. मि० शतपथ ब्रा० I. 2, 3, 1; तैत्तिरीय संहिता II, 6, 6।

पर महाभारत में ही आकर ऐसी कहानियाँ विस्तार से कही गयीं जो यह बतलाती हैं कि किस कारण से अग्नि छिपे और कैसे देवताओं ने उन्हें ढूँढ़ निकाला।[१]

ऐसे आख्यानों में से जो वेद में पहले से ही वर्तमान हैं और महाभारत में भी जिनका उल्लेख है एक आख्यान मनु और मछली सम्बन्धी प्रलय का आख्यान है जिसे हम शतपथ ब्राह्मण के अनुसार पहले ही बता चुके हैं। महाभारत में इसे मत्स्योपाख्यान[२] कहा गया है और विस्तार तथा काव्यात्मक उपस्थापन में यह ब्राह्मण के आख्यान से भिन्न है। उदाहरण के लिए जब उबलते समुद्र में नाव इधर उधर झकोरे खा रही थी तो उसकी तुलना नशे में चूर स्त्री के साथ की गई। कथा के विस्तार के बारे में यह महत्त्वपूर्ण बात है कि महाभारत में बिलकुल सेमिटिक प्रलय-आख्यानों की तरह नाव में बीजों का ले जाना भी वर्णित है।[३] मैं इसमें इस बात का दृढ़तम प्रमाण पाता हूँ कि भारत का प्रलय आख्यान सेमिटिक प्रलय आख्यान से उधार लिया गया है[४]। महाभारत के आख्यान का अन्त ब्राह्मण से भिन्न है। महाभारत में मछली कहती है कि वह स्वयं ब्रह्मा है और मनु से नये सिरे से दुनिया बनाने को कहती है और मनु घोर तपस्या के बाद वह काम करते हैं।[५]

महाभारत में मृत्यु देवी की कथा दो बार आई है जो गंभीर और सुन्दर कथा है पर उतनी प्रसिद्ध नहीं है। मृत्यु किससे पैदा हुई है? "मृत्यु कहां से आती है? इस संसार के प्राणियों को मृत्यु क्यों समाप्त कर देती है"? युद्ध में बहुत से वीरों के मर

---

१. मि० A. Holtzmann, Agni nach den Vorstellungen des Mahābhārata, Strassburg, 1878।

२. मत्स्योपाख्यान III, 187, जर्मन अनुवाद F. Bopp (1829), F. Rückert तथा H. Jacobi (H. Usener, Die Sintflutsagen, Bonn 1899. पृ० 28 आ० में) द्वारा।

३. मत्स्य पुराण और भागवतपुराण में भी, जहाँ यह कथा आती है, ऐसा ही वर्णन है।

४. मि० मेरी पुस्तक Die Flutsagen des Altertums und der Naturvölker, Vol. XXXI में Mitteilungen der Anthropologischen Gesellschaft in Wien (Vienna), 1901, विशेष कर पृ० 321 आ० तथा 327 आ० के संदर्भ में। R. Pischel (Der Ursprung des christlichen Fischsymbols, S.B.A. XXV, 1905 में) जैसे लोग जिस तरह भारतीय और सेमेटिक प्रलय-आख्यानों में संबंध का निषेध करते हैं, मुझे नहीं मालूम कि वे कैसे इस ध्यान देने योग्य समानता की व्याख्या करते हैं।

५. नये सिरे से संसार की सृष्टि होने पर मनु द्वारा ले जाये गये बीजों की कोई चर्चा नहीं है।

जाने पर युधिष्ठिर ने दुःखी होकर ये प्रश्न पूछे। तब भीष्म (व्यास[1]) ने उनसे एक कथा कही जिसे नारद ने एक बार राजा अनुकंपक को उस समय सुनाया था जब राजा अपने पुत्र की मृत्यु पर बड़े दुःखी थे। संक्षेप में कथा का विषय निम्नलिखित है :

जब पितामह ब्रह्मा ने प्राणियों की रचना की तो वे निरंतर बढ़ने लगे और कोई मरता न था। सारी पृथ्वी इनसे ठसा-ठस भर गई। तब पृथ्वी ने ब्रह्मा से निवेदन किया कि अब वह भार सहन नहीं कर सकती। तब पितामह ने सोचा कि प्राणियों की संख्या कैसे कम की जाय, पर कोई उपाय उन्हें नहीं सूझा। इससे उनको क्रोध आ गया और उनके शरीर के रोम-रोम से क्रोध की ज्वाला फूट पड़ी। ज्वाला ने सारे संसार को घेर लिया और हर वस्तु को नष्ट करने पर उतारू हो गई। पर शिव को प्राणियों पर दया आ गई और उनकी प्रार्थना पर ब्रह्मा ने अपने क्रोध की ज्वाला को अपने भीतर समेट लिया और नियम बनाया कि प्राणी पैदा होंगे और मरेंगे। पर जब वे वैसा कर ही रहे थे कि उनके शरीर से एक काली आंखोंवाली सुन्दर सजी हुई स्त्री निकली जो गहरे लाल रंग के कपड़े पहने हुई थी। वह दक्षिण की ओर जाने लगी कि ब्रह्मा ने उसे बुलाया और कहा ओ मृत्यु, इस दुनिया के प्राणियों को मारो क्योंकि तुम दुनिया को नष्ट करने के मेरे विचार और मेरे क्रोध से उत्पन्न हुई हो। इसलिए मूर्खों और साधुओं, सब प्राणियों को समान रूप से मारो। इस पर कमल का मुकुट धारण किये मृत्यु की देवी जोर-जोर से रोने लगी। पर भूतपति ने उसके आँसू को अंजलि में रोक लिया। उसने उनसे प्रार्थना की कि उसको इस भयानक कर्म से मुक्त कर दिया जाय:

"हे भूतों के पति ! मैं तेरे पांव पड़ती हूँ, मेरे ऊपर दया कर, मुझे भोले प्राणियों—बच्चों, बूढ़ों और युवकों को न मारना पड़े, प्यारे बच्चों, विश्वासी मित्रों, भाइयों, माताओं और पिताओं को न मारना पड़े। यदि वे इस तरह मरेंगे तो मुझे

---

१. VII, 52-54, यहां अभिमन्यु के मारे जाने पर दुःखी युधिष्ठिर को यह कथा सुनाकर व्यास सान्त्वना देते हैं। तथा च XII, 256-258 में महायुद्ध में मारे गए अनेक वीरों की मृत्यु से दुःखी युधिष्ठिर को सान्त्वना देनेवाली यही कथा भीष्म सुनाते हैं। शायद मूलतः यह आख्यान XII पर्व में ही था क्योंकि XII, 256, 1-6 श्लोकों में मरे लोगों के लिए बहुवचन का प्रयोग है और शब्दशः ये ही श्लोक VII. 52, 12-18 में भी मिलते हैं, यद्यपि यहां कथा के अनुसार मरने वाला केवल एक अभिमन्यु है जिसके लिए शोक प्रगट किया जा रहा है। F. Rückert (Rab. Boxberger के Rückert Studien, Gotha 1878, पृ० 114 आ० में) और Deussen (Vier Philosophische Texte des Mahābhārata, पृ० 404-413 में) द्वारा जर्मन अनुवाद किया गया।

ही कोसा जाएगा। मैं इससे डरती हूँ। और मैं दुःखी लोगों के उन आँसुओं से डरती हूँ जिनका गीलापन मुझे अनंत काल तक जलाता रहेगा।"

पर, ब्रह्मा का निश्चय बदल नहीं सकता था। उसे यह मानना ही पड़ा, पर पितामह ने उसे वर दिया कि लोभ, क्रोध, ईर्ष्या, द्वेष, घृणा, आसक्ति और निर्लज्जता मनुष्यों को नष्ट कर देंगे और मृत्यु देवी के आँसू, जिनको उन्होंने अपने हाथों में रोक रखा हैं, प्राणियों को मारने के लिए रोग बन जाएँगे। इसलिए प्राणियों की मृत्यु का दोष उसके सिर नहीं मढ़ा जाएगा। इसके विपरीत पापी अपने ही पापों से मरेंगे। पर प्रेम और घृणा से मुक्त मृत्यु की देवी साक्षात् न्याय है और धर्म की पत्नी है[1] जो प्राणियों को मार डालती है।

इस कथा और मनु तथा प्रलय की कथा को काफी प्राचीन मानने का एक प्रमाण यह है कि इनमें ब्रह्मा को ऊँचा स्थान दिया गया है। मृत्यु देवी की कथा में शिव को ब्रह्मा से नीचा बताया गया है क्योंकि ब्रह्मा शिव को वत्स कह कर संबोधित करते हैं। जिन कथाओं में शिव सारे देवताओं से ऊपर माने गए हैं वे कथाएँ महाभारत में ब्राह्मण कविता के काफी बाद के स्तर की होनी चाहिए। यही बात उन कथाओं के साथ भी सही है जिन में विष्णु की मुख्य भूमिका है। बहुधा प्राचीन ब्राह्मण कथाओं और आख्यानों को शिव या विष्णु की पूजा के अनुसार संशोधित किया गया है जिसे ढूँढ़ लेना प्रायः कठिन नहीं है। इस प्रकार के वैष्णव और खास कर शैव परिवर्धन एक चित्र पर धब्बों के समान दिखाई देते हैं। उन को आसानी से अलग किया जा सकता है और उनके हटाने से कविता का मूल्य बढ़ता ही है। वे वर्णन जो विष्णु या शिव की स्तुति में लिखे गये हैं काव्यकृति की दृष्टि से काफी निम्न हैं।[2]

भारतीय देवता-शास्त्र में अन्यत्र कहीं भी मृत्यु देवी का कोई स्थान नहीं है।[3] परन्तु जिस प्रकार ऊपर लिखी कथा में मृत्यु की देवी धर्म देवी बन जाती है उसी तरह पूरे महाभारत में यह विचारधारा फैली है कि मृत्यु के देवता धर्मराज से अभिन्न हैं। पर मृत्युलोक के शासक का धर्मराज से एकीकरण इतनी सुन्दरता से कहीं नहीं हुआ है जितना सती सावित्री की अद्भुत कविता में, जो कविता इतिहास काव्य में सुरक्षित

---

१. VII, 54, 41।

२. पूर्णतः संप्रदाय-विशेष के साथ संबद्ध अंश जैसे विष्णुसहस्रनामकथन (XIII, 149), शतरुद्रीय (VII, 202), शिवसहस्रनामस्तोत्र (XII, 284, 16 आ०) इसके उदाहरण हैं।

३. जहां तक मेरा ज्ञान है सिर्फ ब्रह्मवैवर्त पुराण में यम के साथ इसका उल्लेख पुनः हुआ है। (Th. Aufrecht, Catalogus Codicum MSS. Sanscriticorum, Bibl. Bodleiana, पृ० 22a में)

सभी ब्राह्मण कविताओं में सर्वश्रेष्ठ है[1]। कविता का अंशतः धार्मिक रूप, देवता-शास्त्र का सम्पर्क, खास कर प्राचीन ब्राह्मण देवताशास्त्र का, जिसमें पितामह ब्रह्मा लोगों के भाग्य के विधाता हैं और न तो शिव और न विष्णु का कोई हाथ है—और जंगल के आश्रम का वह दृश्य जहाँ कथा की अधिकतर घटना घटती है—इन सारी बातों से हम सावित्री के आख्यान को ब्राह्मण आख्यान कविताओं में गिनने के लिए विवश हैं। फिर भी मुझे पूरा निश्चय नहीं है कि क्या यह कथा प्राचीन भाट-कविता से सम्बन्धित एक पवित्र आख्यान तो नहीं है। राजकुमारी सावित्री की स्वतंत्र—वृत्ति जो एक पति को ढूंढ़ने निकलती है, अपने चुनाव पर दृढ़ रहती है यद्यपि ऋषि और उसके पिता उसको सावधान कर के उसका विरोध करते हैं, जिस स्वतंत्रता से वह तपस्या करती है, यज्ञ करती है, व्रत लेती[2] है, इन सब के अलावा अपने पति के जीवन के लिए उसका साहसपूर्ण संवाद और उस का सूक्तियों का ज्ञान जिस के द्वारा वह यमराज पर भी अपना प्रभाव डालती है—ये सब बातें स्त्रियों के सम्बन्ध में ब्राह्मण आदर्श की अपेक्षा द्रौपदी, कुन्ती और विदुला जैसी वीर कविता में वर्णित स्त्रियों की अधिक याद दिलाती हैं[3]। पर जिस किसी ने भी सावित्री के गीत गाये हों, चाहे वह सूत रहा हो चाहे ब्राह्मण, निश्चय ही वह सारे युगों के श्रेष्ठतम कवियों में से एक रहा होगा। केवल एक महाकवि ही इस उत्तम स्त्री-पात्र को इस ढंग से हमारे सामने रखने में सफल हो सकता था कि मानों हम सावित्री को अपनी आँखों के सामने देख रहे हों। प्रेम और दृढ़ता, सद्गुण और बुद्धिमत्ता की भाग्य और मृत्यु के ऊपर विजय पाने की कहानी को एक सच्चा कवि ही इतने मर्मस्पर्शी और उदात्त ढंग से वर्णन कर सकता था और ऐसा करते समय वह कहीं भी एक आचार के प्रचारक की नीरसता में नहीं फंसता।[4] केवल एक

---

१. III, 293-299 साविच्युपाख्यान अथवा पतिव्रतामाहात्म्य। हजारों वर्षों की आयु होने पर भी सर्वदा युवा रहने वाले मार्कण्डेय ऋषि ने द्रौपदी के भाग्य पर दुःखी युधिष्ठिर को सान्त्वना देने के लिए यह कथा सुनायी।

२. अपने पति से अलग रहकर कोई स्त्री ब्राह्मण-नियमों के अनुसार न तो यज्ञ कर सकती है न ही उपवास और व्रत कर सकती है (मनुस्मृति—V, 155)।

३. संक्षेप में यह आदर्श बिना शर्त आज्ञापालन करनेवाली, अनुगमन करनेवाली पत्नी का आदर्श है जिसके बारे में मनु बतलाते हैं (V, 154) "भले ही पति सारे गुणों से हीन हो, इन्द्रिय-सुखों में लिप्त रहता हो और उसमें कोई सद्गुण न हो, पर साध्वी पत्नी उसका देवता के समान आदर करे।"

४. सावित्री तथा मृत्यु और धर्म के देवता यमराज का संवाद इस कविता का मूल बिंदु है। कुछ श्लोक बिगड़े रूप में सुरक्षित हो सकते हैं। फिर भी सारे श्लोकों का मूलभूत विचार, जिसके द्वारा सावित्री यम को बहुत प्रसन्न करती है और उन्हें पराजित करती है, काफी स्पष्ट है। प्रेम और सदाशयता बुद्धिमत्ता के सिद्धान्त से अलग नहीं है।

प्रतिभासम्पन्न कलाकार ही इस तरह का अद्भुत चित्र हमारे सामने उपस्थित कर सकता है कि मानों वह जादू कर रहा हो। हम बड़ी दुःखी स्त्री को अपने उस पति के साथ चलती हुई देखते हैं जो मरने ही वाला है, मरणासन्न पति थककर अपना सिर अपनी पत्नी की गोद में रखे है, यमराज का भयानक रूप जो यमराज आदमी की आत्मा को पाश में बाँध कर खींच ले चलते हैं, स्त्री अपने पति के जीवन के लिए यमराज से लड़ती है और अन्त में सुखपूर्वक पति-पत्नी मिलते हैं और एक दूसरे को बाँहों में पकड़े चांदनी में घर की ओर जाते हैं—यह सारा दृश्य हमें दिखाई देता है आदिकालीन भारत के वन की शोभापूर्ण भूमिका में, हम मानों इस वन की गहरी शान्ति का अनुभव कर रहे हों और मानों इसकी मधुर सुगंध हमारी सासों में बस गई हो और तब हम इस अतुलनीय कविता के जादू में अपने आप को भुला देते हैं।

इस अमर कविता के रूप में जो एक खजाना है उसको हिन्दू लोग किस प्रकार मानते हैं यह बात हमारे महाभारत में आई इस कविता के अंत में जोड़े गए इन शब्दों से होती है :

"जिसने सावित्री के इस उत्तम आख्यान को भक्तिपूर्वक सुना है वह व्यक्ति भाग्यशाली है, उसकी वृद्धि होगी और उसके पास दुःख कभी नहीं आयेगा।"

आज भी अपने लिए वैवाहिक सुख प्राप्त करने के उद्देश्य से सतीसावित्री की याद में हिन्दू स्त्रियाँ प्रति वर्ष सावित्री व्रत का उत्सव मनाती हैं जिसमें महाभारत के सावित्री आख्यान का पाठ एक मुख्य अंग है[1]।

यूरोप की भाषाओं में, जिनमें जर्मन भी है, इस कविता का कई बार अनुवाद हुआ है[2]। पर सारे अनुवाद, छायाएं और अनुकरण इस भारतीय कविता की अतुलनीय सुन्दरता का एक हलका-सा ही रूप उपस्थित कर सकते हैं।

सावित्री के आख्यान की तरह सभी ब्राह्मण आख्यान पवित्र और आचार-परक नहीं हैं। ब्राह्मणों को पसंद आनेवाली महाभारत की घृणा उत्पन्न करनेवाली

१. शिबचन्द्र बोस—The Hindoos as they are, दूसरा संस्क०, कलकत्ता, 1883, पृ० 293।

२. अंग्रेजी अनुवाद R. T. H. Griffith (1852 तथा Idylls from the Samskrit, इलाहाबाद 1912, पृ० 113 आ०) तथा J. Muir (Edinburgh, 1880) द्वारा। जर्मन अनुवाद F. Bopp (1829), F. Rückert (Brahmanische Legenden, 1836 में) तथा H. C. Kellner (Reclams Universal bibliothek, 1895 में) द्वारा। अन्य अनुवादों के लिए दे० Holtzmann, Das Mahābhārata II, पृ० 92 आ०। सावित्री कविता को Ferdinand Graf Sporck ने रंगमंच के उपयुक्त बनाया, जिसका संगीत Hermann Zumpe ने दिया तथा जर्मन नाट्यशालाओं में प्रदर्शित हुआ।

और अश्लील कहानियों से आसानी से एक पूरी पुस्तक भरी जा सकती है। पर इस प्रकार की कहानियों में से एक कहानी कविता के रूप में प्रसिद्धि पा चुकी है और यह ठीक भी है। पर इसके अलावा यह महाभारत की आलोचना के लिए काफी महत्त्वपूर्ण भी है। यह आख्यान ऋष्यश्रृंग[1] का है जिस ऋषि ने कभी कोई स्त्री नहीं देखी थी। संक्षेप में इस प्राचीन भारत की कथा का सारांश इस तरह है :

ऋष्यश्रृंग[2], जो आश्चर्यजनक ढंग से एक मृगी से उत्पन्न हुए, किसी ऋषि के पुत्र थे जो जंगल में एक आश्रम में बढ़े और अपने पिता के अलावा उन्होंने कभी किसी और आदमी को नहीं देखा था। स्त्री को तो उन्होंने कभी देखा ही नहीं था। एक बार राजा लोमपाद के राज्य में बड़ा अकाल पड़ा और ऋषियों ने बताया कि देवता लोग अप्रसन्न हैं और वर्षा तभी होगी जब राजा किसी तरह ऋष्यश्रृंग को अपने राज्य में लाने में सफल हों। राजा की पुत्री शांता ने[3] उस युवा ऋषि को बहका कर राज्य में ले आने का भार अपने ऊपर लिया। पेड़ों और झाड़ियों से एक तैरता हुआ

१. III, 110-113। A. Holtzmann ने Indische Sagen में तथा J. V. Windmann (Buddha, Bern 1869, पृ० 101 आ० में) स्वतंत्र जर्मन अनुवाद किया। स्वतंत्र नाटकीय रूप Calcutta Review, Nov. 1923, पृ० 231 आ० में A. Christina Albers ने ("The Great Drought") प्रकाशित किया। J. Hertel (WZKM, 18, 1904. पृ० 158 आ०) तथा L. U. Schroeder, Mysterium und Mimus im Rigveda, पृ० 292 आ० ने ऋष्यश्रृंग की कविता को प्राचीन नाटक, एक प्रकार का रहस्य-नाटक, सिद्ध करने का प्रयत्न किया है। वास्तव में वैदिक आख्यानों की तरह का यह एक गीति-नाट्य है। H. Lüders (NGGW, 1897, पृ० 1 आ०; 1901, पृ० 1 आ०) ने भारतीय साहित्य में प्राप्त इस आख्यान के विभिन्न रूपों की तुलना करके इसके प्राचीनतर रूप को ढूंढ निकाला है।

२. इस शब्द का अर्थ है "मृग की सींगों वाला"। चूँकि उसके सिर में एक सींग थी इसलिए इस कथा के बौद्ध रूप में इसको 'एक श्रृंग' कहा गया है।

३. हमारे महाभारत में शान्ता की बजाय एक वेश्या ऋषि को बहकाती है। पर Lüders (वही) ने यह सिद्ध कर दिया है कि न केवल अपने मूल रूप में ही, जैसा कि बौद्ध त्रिपिटक के जातक ग्रंथ में मिलता है, अपितु महाभारत के प्राचीनतर संस्करण में भी शान्ता ने ही ऋषि को बहकाया। बाद में किसी प्रतिलिपिकार ने राजा की लड़की द्वारा ऋष्यश्रृंग को बहकाया जाना अच्छा न समझकर उसकी जगह वेश्या को रख दिया। इससे हमको यह पता नहीं चलता कि क्यों अन्त में राजा अपनी कन्या ऋषि को विवाह में दे देते हैं। Holtzmann ने अपने स्वतंत्र अनुवाद में राजकुमारी शान्ता को ही ऋष्यश्रृंग की बहकानेवाली बतलाया है।

एक नकली आश्रम बनाया गया और इसमें बैठकर शान्ता ऋष्यशृंग के स्थान की ओर खे चली। आश्रम के पास पहुंच कर राजकुमारी किनारे पर उतर गई और उसने युवा ऋषि के पास पहुंचने के लिए ऋष्यशृंग के पिता की अनुपस्थिति का लाभ उठाया। उसने ऋषि को सुन्दर फल और स्वादिष्ट मदिरा दी, गेंद के साथ खेलने का नाटक करने लगी और उस युवक से प्रेमालिंगन में चिपट गई। पर युवक समझता था कि वह अपने सामने अपने जैसे किसी आश्रम के लड़के को ही देख रहा है। इसके बाद वह ऋष्यशृंग के पिता के आश्रम में आते ही अपने नाव पर लौट आई। बूढ़े ऋषि ने अपने पुत्र की उत्तेजना को भांप लिया और उससे पूछा कि क्या बात हुई। इस पर उसके पुत्र ने उस सुन्दर युवक के साथ हुए कार्यों और उसके मिलने से उत्पन्न आनंद का खूब वर्णन किया और कहा कि वह भी उस युवक जैसी ही तपस्या करना चाहता है क्योंकि उसको फिर से देखने की अभिलाषा हो रही है। पर पिता ने उसको सावधान किया कि ये सब राक्षस हैं जो इस प्रकार का रूप धारण करके पवित्र लोगों की तपस्या में बाधा डालते हैं।

पर ज्यों ही उसके पिता फिर कहीं चले गए त्यों ही ऋष्यशृंग अपने युवा मित्र को ढूंढ़ने निकल पड़ा। उसे सुन्दरी शान्ता जल्दी ही मिल गई और उसने बहका कर ऋषि को तैरते आश्रम में ला बिठाया और लोमपाद के राज्य में ले चली। ज्यों ही वह युवा ऋषि राज्य में घुसा त्यों ही मुसलाधार वर्षा शुरू हो गई। राजा ने उन को अपना दामाद बना लिया और उनके बूढ़े पिता को मूल्यवान् उपहार देकर संतुष्ट कर दिया।

इस आख्यान के कई रूप अन्य भारतीय साहित्य के ग्रंथों में, खास कर रामायण, पद्मपुराण और बौद्ध जातक में मिलते हैं। यह पहचान लेना आसान है कि यद्यपि यह गीति-नाट्य धार्मिक भूमिका वाले किसी प्राचीन आख्यान पर आधारित है पर अपने मूल रूप में यह आख्यान चालू किस्म के हास्य से भरा था जिसकी अश्लीलताओं को अनेक संस्कर्ताओं ने कम करने की कोशिश की। वह दृश्य जिसमें ऋषि का पुत्र, जिसने कभी किसी स्त्री को नहीं देखा था, जब उस सुन्दर स्त्री को देखता है और उस को भी एक ऋषि समझता है, यद्यपि उस की सुन्दरता से वह अप्रभावित नहीं रह पाता, निश्चय ही कहानी के मूल रूप में उस का मुख्य अंग था और इसका भद्दे हास्य के साथ वर्णन किया गया था, जिस भद्देपन के कुछ उदाहरण आज भी बौद्ध जातक में सुरक्षित हैं[1]। यह कथा कितनी लोकप्रिय थी इस बात का पता तिब्बत, चीन और

---

१. ५२३ वें और ५२६ वें जातकों की गाथाओं में। Lüders (वही, 1897, पृ० 38) के अनुसार ये गाथाएँ "ऋष्यशृंग-आख्यान के साहित्यिक उपस्थापन के प्राचीनतम अवशेष हैं" और जो भी हो, ये अंशतः महाभारत-संस्करण के लेखक को ज्ञात थीं और थोड़े-बहुत रद्दोबदल के साथ संस्कृत में अनूदित करके उसने इन्हें अपने ग्रन्थ में ले लिया।

जापान में प्राप्त इसके विभिन्न रूपों से चलता है और पश्चिम के यूनिकार्न (एक प्रकार का पौराणिक जीव जिस का शरीर घोड़े का तथा एक सींग होती थी) आख्यान पर भी इस कथा ने अपना प्रभाव छोड़ा है।[१]

ऋष्यशृंग आख्यान तथाकथित तीर्थ-यात्रापर्व में आता है।[२] अर्जुन के भाइयों को सान्त्वना देने के लिए लोमश ऋषि आते हैं और उन के साथ तीर्थ-यात्रा करते हैं। वे जिस-जिस तीर्थ में जाते हैं उस-उस तीर्थ के बारे में ऋषि कथा कहते हैं। इस प्रकार इस पर्व में अनेक ब्राह्मण कथाएं संगृहीत हैं (जो महाभारत के प्राचीनतम अंशों में-से निश्चय ही नहीं हैं)। यहाँ उदाहरण के लिए हमें उपर लिखित च्यवन का आख्यान, प्रसिद्ध ऋषि अगस्त्य के आख्यान मिलते हैं। देवताओं ने और बातों के अलावा इस महर्षि से समुद्र को सुखा डालने को कहा जिससे वे समुद्र के तल में रहने वाले दैत्यों से लड़ सकें। ऋषि ने सारे समुद्र को पीकर यह काम बड़ी आसानी से कर दिया। वे कई दूसरे ब्राह्मण आख्यानों के भी नायक हैं।[३]

ये अगस्त्य के आख्यान देवताओं और मनुष्यों के ऊपर ब्राह्मण ऋषियों की श्रेष्ठता दिखाने के लिए लिखे गये पर इसी के साथ महाभारत में आख्यानों का हमें एक पूरा का पूरा ऐसा भी सिलसिला मिलता है जिनके नायक प्रसिद्ध ऋषि वशिष्ठ और विश्वामित्र[४] हैं और जिनमें ब्राह्मणों और क्षत्रियों के बीच श्रेष्ठता के लिए हुए संघर्ष के चिह्न अभी भी दिखाई देते हैं यद्यपि उनमें अन्त में ब्राह्मणों की ही बड़ाई की गई है। इन आख्यानों का मूल बहुत पहले के वैदिक युग में जाता है और अनेक रूपों में वे रामायण और पुराणों में भी आते हैं। महाभारत के अनुसार इस कथा का संक्षेप इस प्रकार है :

विश्वामित्र एक क्षत्रिय थे, वे कान्यकुब्ज के राजा गाधि के पुत्र थे। एक रोज शिकार खेलते हुए वे ऋषि वशिष्ठ के आश्रम में पहुँचे। वशिष्ठ के पास अद्भुत गाय थी जो उनकी सारी इच्छाओं को पूरी कर देती थी। जब उनको किसी चीज की जरूरत

---

१. मि० F. W. K. Müller, Ikkaku seunin, eine mittelalterliche japanische Oper, transkribiert und übersetzt, Nebst einem Exkurs zur Ein hornsage (Festschrift für Adolf Bastian Zu seinem 70, Geburtstag, Berlin 1896, पृ० 513–538 में)।

२. III 80–156।

३. III, 96–109.

४. I, 177–182; V 106–119; IX, 39 आ०; 42 आ०; XII, 141; XIII, 3 आ०। मि० J. Muir. Original Sanskrit Texts, Vol. I, २ रा संस्क० (लंडन 1890), पृ० 388 आ०, 411 आ० तथा F. E. Pargiter, JRAS, 1913, पृ० 885 आ०।

होती, चाहे खाना चाहे पीना, हीरे, जवाहरात, कपड़े, जो भी कुछ हो, वे सिर्फ कहते कि 'दो' और उनकी गाय नन्दिनी उन्हें वह दे देती। जब विश्वामित्र ने उस श्रेष्ठ गाय को देखा तो उन्हें उसको लेने की इच्छा हुई और उन्होंने उस गाय के बदले वशिष्ठ को दस हजार साधारण गायें देने को कहा। पर वशिष्ठ उसे देने को राजी न हुए क्योंकि यज्ञ के लिए उन को जिस किसी चीज की जरूरत होती सब उस गाय से मिल जाती। तब विश्वामित्र ने क्षत्रियों की प्रथा के अनुसार उस गाय को चुरा ले जाना चाहा। एक अच्छे ब्राह्मण की तरह वशिष्ठ ने उनको वैसा करने से नहीं रोका परन्तु उस अद्भुत गाय ने ही अपने शरीर से बली योद्धाओं की एक सेना उत्पन्न की जिसने विश्वामित्र की सेना को हरा दिया और मार भगाया। तब उस घमण्डी राजा को मालूम हुआ कि जो कुछ भी हो ब्राह्मण की शक्ति क्षत्रिय की शक्ति से बड़ी होती है। उन्होंने अपना राजपाट छोड़ दिया और ब्राह्मण बनने के लिए घोर तपस्या शुरू कर दी जिसमें अवर्णनीय प्रयत्नों के बाद वे सफल हुए।

कथाओं के इस सिलसिले में-से मैं एक दूसरी ध्यान देने योग्य कथा उद्धृत करना चाहूँगा क्योंकि यह अहासुएरस कथा की कुछ विशेषताओं की याद दिलाती है :

ब्राह्मण बन जाने के बाद भी वशिष्ठ के साथ विश्वामित्र की शत्रुता चलती ही रही। विश्वामित्र के उकसाने पर कल्माषपाद, जिसमें एक राक्षस का प्रवेश था, ने वशिष्ठ के पुत्रों को मार डाला। पर वशिष्ठ इतने नम्र थे कि वे मर जाते पर अपना क्रोध कभी प्रगट न करते। वे मरने चले और मेरु पर्वत से कूद पड़े। पर वे रुई के एक ढेर पर गिरे। वे आग में कूदे पर आग ने उनको नहीं जलाया। अपने गले में पत्थर बांधकर वे समुद्र में कूदे लेकिन उनको जीवित ही बाहर फेंक दिया गया। वे दुःखी हृदय से इस तरह अपने आश्रम में लौट आये। पर जब उन्होंने अपना घर बच्चों से सूना देखा तो दुःख से उनके मन में फिर आत्महत्या करने की इच्छा लौट आई। उन्होंने रस्सी से अपने शरीर को कसकर बांधा और फिर भरे हुए पहाड़ी प्रपात में अपने आपको छोड़ दिया। पर धाराओं ने उनका बंधन तोड़ दिया और उन्हें एक किनारे पर फेंक दिया। आगे चलते हुए उनको एक नदी मिली जो घड़ियालों और भयानक जन्तुओं से भरी थी। उन्होंने अपने आपको उसमें डाल दिया पर वे भयानक जन्तु उनके पास से दुम दबाकर पीछे हट गये। जब उन्होंने देखा कि वे अपने से नहीं मर सकते तो वे पहाड़ों और नगरों में घूमते-घामते फिर आश्रम में लौट आये। रास्ते में उनकी भेंट उनकी बहू अदृश्यन्ती से हुई और उन्होंने एक आवाज सुनी जैसे कि मानों उनका लड़का वेद पढ़ रहा हो। यह आवाज उनके पौत्र की थी जो अभी पैदा नहीं हुआ था—अदृश्यन्ती के पेट में वह बारह वर्षों से था—उसने अपनी मां के गर्भ में ही सारे वेद सीख लिये थे। ज्यों ही उनको मालूम हुआ कि वंशज आनेवाला है, उन्होंने आत्महत्या का विचार छोड़ दिया।

इस प्रकार के ब्राह्मण आख्यानों के साहित्यिक मूल्य के बारे में कोई विवाद नहीं है पर महाभारत में अनेक ऐसी कथाएं भी हैं जो केवल ब्राह्मणों की प्रशंसा में या किसी ब्राह्मण सिद्धान्त का उपदेश देने के लिए लिखी गई हैं। उदाहरण के लिए शिष्यों की कथाएं हैं जिनमें शिष्य अपने गुरु की आज्ञा मानने में अति कर देते हैं। उद्दालक आरुणि की कथा ऐसी ही है जिसे उसके गुरु ने टूटे मेंड़ का पानी रोकने की आज्ञा दी और जब उसे कोई दूसरा उपाय न सूझा तो उसने अपने शरीर से ही पानी को रोक रखा। एक राजा की कथा आती है जो एक ब्राह्मण की गाय किसी दूसरे को दे देने के दंड में छिपकली बना दिया जाता है[१]। ब्राह्मणों को गोदान करने से बढ़कर कोई पुण्य नहीं है इस बात को सिद्ध करने के उद्देश्य से कुछ अन्य कथाएं लिखी हैं। एक प्रसिद्ध उपनिषद् में बालक नचिकेता ज्ञान की प्यास बुझाने पाताल में यमराज से पर-तत्व के बारे में पूछने जाता है। महाभारत में एक युवक, जिसको नचिकेता कहा गया है, गोदान करने वालों को प्राप्त होने वाला स्वर्ग देखना चाहता है और यमराज गोदान करने से उत्पन्न पुण्य के बारे में एक लम्बा भाषण देकर उसको प्रसन्न करते हैं[२]। छातों और जूतों का दान करने से पुण्य होता है यह सिद्ध करने के लिए कहा गया है कि एक बार ऋषि जमदग्नि सूर्य के ऊपर क्रुद्ध हो गये और सूर्य को आकाश से मार गिराने ही चले थे कि उसी समय सूर्य देवता ने एक छाता और एक जोड़ा जूता देकर उनको शान्त किया[३]। ऐसी कथाएं खास कर महाभारत के आचार सम्बन्धी खण्डों और पर्वों में (१२ और १३) बार-बार आती हैं। महाभारत के इन भागों में हमें बहुत सी भूमिका-कथाएं मिलती हैं जिनको इतिहास कहा गया है और जो केवल विधि, आचार या दर्शन के बारे में प्रचलित बातों को एक रूप में उपस्थित करती हैं तथा उनका ज्ञान कराती हैं। यह ध्यान देने की बात है कि इन इतिहासों में कभी-कभी हम वक्ता के रूप में उन लोगों को पाते हैं जो उपनिषदों में भी हमें मिलते हैं—जैसे याज्ञवल्क्य और जनक[४]। उपनिषदों और बौद्ध-संवादों की तरह महाभारत के इतिहासों में भी हमें विदुषी स्त्रियां[५], राजा और ऋषि लोग मिलते हैं।[६]

---

१. I. 3; XIII, 70 आ०।

२. XIII, 71।

३. XIII, 95 आ०।

४. XII, 18; 290; 310-320।

५. राजा जनक भिक्षुणी सुलभा से शास्त्रार्थ करते हैं, XII, 320। राजा सेनजित पिंगला वेश्या के श्लोकोंसे सान्त्वना पाते हैं—XII, 174।

६. कभी-कभी देवता भी, यथा इन्द्र और बृहस्पति, XII, 11; 21; 68; 84; 103; XIII, 111-113।

महाभारत में पशु-कथाएं, उदाहरण-कथाएं और नीति-संवाद[1]

ये इतिहास-संवाद जिन्हें हम संवाद के रूप में प्रवचन कह सकते हैं अधिकांशतः ब्राह्मणों की आख्यान कविता के अंश नहीं है तथा किसी और अच्छे शब्द के अभाव में हमने उन्हें मुनि-कविता कहा है।[2] इन कविताओं को हम आसानी से देवताओं की प्राचीन कथाओं से सम्बन्धित ब्राह्मण कविता से स्पष्ट अलग कर सकते हैं जो बहुत हद तक जनता में भुला दी गई हैं। यह मुनि कविता पशु-कथाओं और परी कहानियों के लोकप्रिय साहित्य से कहीं अधिक निकट सम्पर्क में हैं क्योंकि कुछ हद तक ये उन पर आधारित हैं और कुछ अंशों में ये यथा-सम्भव उनके नजदीक भी हैं। ब्राह्मणों के इतिहास-संवाद की तरह ब्राह्मण आख्यान भी पुरोहितों के विशेष अभिमतों को पूरा करते हैं और पुरोहितों के संकुचित आचार की शिक्षा देते हैं जिसकी चरम परिणति यज्ञ करने में और ब्राह्मणों की (देवताओं से बढ़कर) पूजा करने में है। पर मुनि-कविता मानव मात्र के सामान्य आचार को लेती है और सारे प्राणियों पर दया और संसार का त्याग इन दो बातों को सबसे ऊपर बताती है। इस प्रकार के साहित्य का संकेत सबसे पहले उपनिषदों में मिलता है पर बाद में महाभारत और कुछ पुराणों के साथ-साथ बौद्धों और जैनों के धर्म-ग्रन्थों में भी मिलता है। इसलिए यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि इन विभिन्न साहित्यों में हम ऋषियों की प्रायः एक जैसी कथाएँ पाते हैं और प्रायः शब्दशः नीति और आचार की उक्तियां पाते हैं।

भारत की सबसे पुरानी पशु-कथाएं तो इसी इतिहास-काव्य में मिलती हैं और वे नीति और धर्म के नियमों की शिक्षा देने के लिए उपयोगी हैं। उदाहरण के लिए एक मन्त्री धृतराष्ट्र को सलाह देता है कि वह पाण्डवों के साथ उसी तरह का व्यवहार करे जैसे एक गीदड़ ने अपना शिकार पाने के लिए अपने चार मित्रों—सिंह, चूहा, भेड़िया, और नेवला—का उपयोग किया पर चालाकी से उनको धता बता दिया जिससे कि शिकार अकेले उसी को मिले।[3] एक दूसरी जगह शिशुपाल ने भीष्म की तुलना उस बूढ़े धूर्त गीध से की जो सदा केवल धर्म की बात करता था और अपने

---

१. नीति-संवादों का एक संग्रह, विशेषकर महाभारत के XII पर्व से लिए गये संवादों का, फ्रेंच अनुवाद A. Roussel ने Legendes Morales de l'Inde empruntees au Bhāgavata Purāṇa et au Mahābhārata traduites du Sanskrit, (Les literatures populaires 38 et 39), Paris, 1900 में दिया है। पशु-कथाओं और उदाहरण-कथाओं के बारे में दे० Oldenberg, Das Mahābhārata, पृ० 66 आ०।

२. दे० M. Winternitz, Calcutta Review, Oct. 1923, पृ० 1 आ० में।

३. I, 140। इसी तरह की पशु-कथाओं के लिए मि० Th. Benfey, Pantschatantra, पृ० 472 आ०।

साथ के पक्षियों का विश्वास पात्र बना था जिससे उन सारे पक्षियों ने अपने-अपने अण्डे उसको रखवाली के लिए सौंप दिये पर बहुत देर बाद उनको मालूम हुआ कि गीध अण्डे खा जाता है। उस धोखेबाज बिल्ली की कहानी भी मनोरंजक है जो दुर्योधन के नाम पर उलूक ने उन्हीं को लक्ष्य कर युधिष्ठिर से कही। गंगा के किनारे हाथों को ऊपर उठाकर वह बिल्ली घोर तपस्या करती रही और वह देखने में इतनी धर्मात्मा और अच्छी थी कि न केवल पक्षी ही उसकी पूजा करते थे बल्कि चूहे भी उसकी शरण में रहते थे। बिल्ली ने कहा कि वह उनकी रक्षा करना चाहती है पर तपस्या से वह इतनी कमजोर हो गई है कि चल फिर नहीं सकती। इसलिए चूहे उसको नदी तक ले जाया करते। वहां जाकर वह उनको खा जाती और मोटी होती जाती।[1] बुद्धिमान् विदुर भी बहुत कहानियां जानते थे जिनके मुंह से बहुत सी नीतियां कहलाई गई है। उन्होंने धृतराष्ट्र को स्वार्थ के लिए पाण्डवों को न छेड़ने की सलाह दी क्योंकि उसके साथ भी कहीं वैसा न हो जैसा कि उस राजा के साथ हुआ था जिसने लोभ से सोने के अंडे देनेवाले पक्षियों को मार डाला जिससे न तो उसको पक्षी ही मिले और न सोना।[2] शांति स्थापित करने के लिए विदुर ने उन पक्षियों की भी कहानी बताई जो बहेलिये के द्वारा फेंके गए जाल को ही लेकर उड़ गये थे पर अंत में वे उसी बहेलिये के हाथों में पड़ गये क्योंकि वे आपस में लड़ने लगे थे।[3]

अधिकतर पशु-कथाएं, उदाहरण-कथाएं और नीति-संवाद नीति के अध्यायों में और बारहवें तथा तेरहवें पर्वों में मिलते हैं। इनमें से बहुत सी कथाएं बौद्धों के तथा बाद के कहानी-संग्रहों में भी मिलती हैं और कुछ तो यूरोप के कथा-साहित्य में भी पहुंच गई हैं। बेनफी ने विश्व साहित्य में ऐसी पशु कथाओं की एक माला ही

---

१. II. 41; V, 160। इस प्रकार की पशु-कथाएँ, जिनमें पशु धोखेबाज मुनियों की तरह दिखाए गए हैं, भारतीय पशु-कथा-साहित्य में नगण्य नहीं हैं; मि० Th. Benfey, वही, पृ० 177 आ०, 352 तथा M. Bloomfield, JAOS, 44, 1924, पृ० 202 आ०।

२. II, 62। राजा सृंजय के पुत्र सुवर्णष्ठीवी (सोना उगलनेवाला) का आख्यान इसी प्रकार का है। राजा ने ऐसे पुत्र की कामना की जिसका सारा मल सोना हो। इच्छा पूरी हुई और महल में सोना जमा होने लगा। पर अन्त में उस लड़के को दस्यु लोग चुरा ले गए और मार डाला—सारा सोना समाप्त हो गया। VII, 55 मि० Benfey, वही, I, 379।

३. V, 64। मि० कौवे की कहानी जिसमें कौवा हंस के साथ उड़ने की प्रतियोगिता में भाग लेता है, VIII, 41 Benfey (वही, I, पृ० 312 आ० में) अनूदित, जहाँ अन्य सम्बन्धित कथाएँ भी निर्दिष्ट हैं।

ढूंढ निकाली है जिसका विषय है बिल्ली और चूहे में मित्रता की असंभावना।[१]

बहुत-सी उदाहरण कथाएं भी महाभारत के नीति-परक भागों में मिल सकती हैं। झुकना अच्छा है इस सिद्धान्त को प्रतिपादित करने के लिए "एक प्राचीन इतिहास, नदी और समुद्र के बीच में बातचीत"[२] बताया गया है :

"समुद्र ने नदियों से पूछा कि नदियां बड़े-बड़े मजबूत पेड़ों को तो उखाड़कर समुद्र के पास ले आती हैं पर वे दुबली पतली घास कभी नहीं लातीं, ऐसा क्यों ? गंगा ने उत्तर दिया पेड़ एक जगह पर अच्छी तरह गड़े रहते हैं। चूंकि वे धारा को रोकते हैं इसलिए उनको अपनी जगह से हटना पड़ता है। घास के साथ ऐसी बात नहीं है। धारा को आती देख घास तुरत झुक जाती है पर पेड़ ऐसा नहीं करते और जब धारा का वेग समाप्त हो जाता है तो घास फिर तनकर खड़ी हो जाती है"।

विद्वान् विदुर ने राजा धृतराष्ट्र को जो कुएं में पड़े आदमी की कथा सुनाई उसको बड़ी प्रसिद्धि मिली और करीब-करीब सर्वत्र उसका प्रचार हुआ।[३] इस कथा के लिए और विश्व साहित्य में इसके महत्त्व के कारण इसके कुछ अंश का संक्षेप और कुछ अंश का अनुवाद उद्धृत करना उचित होगा।

एक ब्राह्मण शिकारी जानवरों से भरे घने जंगल में अपना रास्ता भूल गया। भय के मारे वह बहुत इधर-उधर दौड़ा पर उसको बाहर निकलने का कोई मार्ग दिखाई न दिया। "तब उसने देखा कि वह भयानक जंगल चारों ओर से घिरा हुआ है और भयानक दिखाई देने वाली एक स्त्री अपनी दोनों बाहों से इसको गोद में लिये हुए है। जैसे कि बड़े भयानक दो पांच फणों वाले सांप, जो पहाड़ की चोटियों की तरह आसमान को छू रहे हों, इस महावन को घेरे हुए हैं।" इस जंगल के बीच में झाड़ियों और लताओं से ढंका हुआ एक कुआं था। ब्राह्मण उस कुएं में गिर पड़ा और एक लता की आपस में गुथी हुई टहनियों पर जाकर अटक गया। "जैसे कि कटहल के पेड़ से दण्ठल के सहारे एक बड़ा कटहल का फल नीचे लटकता है उसी तरह पैर ऊपर और सिर नीचे की ओर किये वह ब्राह्मण लटक रहा था। वहां उसको एक और भी भयानक आफत आई। कुएं के बीच में उसने एक बहुत विशाल अजगर देखा और उसे यह भी दिखाई दिया कि एक काला, छ सूंड़ों और बारह

---

१. XII, 111; 138-139 (हरिवंश 20, 11,17 आ० भी Benfey द्वारा अनूदित तथा अन्य साहित्यों से तुलित वही I, 575 आ०; 545 आ० 560 आ०)। महाभारत की अन्य पशु-कथाएं जो विश्व साहित्य के अंग हैं, ये हैं— तीन मछलियों की कथा, XII, 137 (Benfey, वही, I, 243 आ०), मुनि के कुत्ते की कथा जिसमें कुत्ता, चीता, शेर, हाथी, शरभ बनकर फिर अंत में कुत्ता बन जाता है, XII, 116 आ० (Benfey, वहीं, 374 आ०)।

२. XII, 113.

३. XI, 5।

पैरों वाला विशाल हाथी धीरे-धीरे उस कुएं की ओर बढ़ता आ रहा है"। जिस पेड़ की डालों से कुआं ढका हुआ था उस पर भयानक मधुमक्खियों ने शहद का छत्ता लगा रखा था। उस छत्ते से शहद चू रहा था और कुएं में लटका ब्राह्मण उसे लोभ से पीने लगा। क्योंकि वह अपने अस्तित्व से ऊबा नहीं था और जीवन से निराश नहीं था यद्यपि सफेद और काले चूहे उस पेड़ की डाल को काट रहे थे जिससे वह लटका हुआ था। दया से पूर्ण राजा को इस रूपक की व्याख्या करते हुए विदुर ने बताया कि जंगल संसार है, दुनिया में रहना; शिकारी पशु रोग है, भयानक राक्षसी बुढ़ापा है, कुआं प्राणियों का शरीर है, कुएं के बीच में रहने वाला अजगर काल है, जिन लताओं में आदमी अटक गया था वे जीने की आशा हैं, छ सूंड़ों, बारह पैरों वाला हाथी वर्ष है जिसमें छ ऋतुएं और बारह महीने होते हैं, चूहे रात और दिन हैं और शहद की बूदें इन्द्रिय-सुख हैं।

इसमें कोई सन्देह नहीं किया जा सकता कि यह कहानी मुनि-कविता का शुद्ध भारतीय उत्पादन है इसको मूलतः बौद्ध[1] माना गया है पर यह जितनी ही बौद्धों की जीवन दृष्टि से मिलती है उतनी ही जैन और अन्य भारतीय मुनि-सम्प्रदायों की दृष्टि से। पर शायद इस कथा के बौद्ध रूप ने इसको पश्चिम में ले जाने में मदद दी क्योंकि यह पश्चिम के साहित्य में साहित्य की खास कर उस धारा के साथ घुसी जो "वर्लाम ऐण्ड जोजफ", "कलीलह ऐण्ड दिमनह" जैसी लोकप्रिय पुस्तकों के द्वारा पश्चिम में आई थी। ये पैदा तो भारत में हुई थीं पर बाद में बिलकुल अन्तरराष्ट्रीय हो गईं। पर जर्मनी में यह कथा "Es war ein Mann in Syrerland" नामक रुकर्ट की सुन्दर कविता के द्वारा बहुत प्रसिद्ध है। इस कविता का स्रोत जलालेद्दीन रूमी की एक फारसी कविता है।[2] अन्स्ट कुह्न ने विश्व के सारे साहित्यों में से यह बात ढूँढी है कि "यह सही माने में असाम्प्रदायिक कहानी, जो ब्राह्मण, जैन, बौद्ध, मुसलमान, ईसाई और यहूदी सबके लिए समान रूप से महत्त्व की है, सारे साहित्यों में उपलब्ध है।"[3]

जो बात इस उदाहरण-कथा के साथ है वही बात महाभारत की अनेक नीति-

---

१. Benfey का यही कहना है, वही I, पृ० 80 आ० तथा M. Haberlandt, Der altindische Geist (Leipzig, 1887) पृ० 209 आ०।

२. C. Beyer द्वारा प्रकाशित Friedrich Rückerts werke, Vol. I, पृ० 104 आ०। फारसी अनुवाद जलालेद्दीन रूमी के दूसरे दीवान से, Joseph v. Hammer द्वारा Geschichte der schönen Redekünste Persiens, Vienna 1818, पृ० 183 में हुआ। मि० R. Boxberger, Rückert Studien, पृ० 85 आ०, 94 आ० भी।

३. "Festgrauss an O. v. Böhtlingk", Stutgart 1888, पृ० 68-76 में।

कथाओं के साथ भी है। कोई आदमी उनको बौद्ध स्रोतों में ढूँढ़ना चाहेगा। पर नजदीक से उनकी छान-बीन करने पर लगता है कि वे उसी तरह लोकप्रिय कथाओं के उस स्रोत से ली गई होंगी जो समान रूप से ब्राह्मणों, बौद्धों और दूसरे सम्प्रदायों की प्रेरणा के स्रोत रहे होंगे। उदाहरण के लिए राजा शिवि की कथाएँ न केवल बौद्ध कथाएँ मालूम पड़ती हैं अपितु त्रिपिटक[1] के एक ग्रंथ में यह कथा वर्णित भी है कि कैसे यह आत्मत्यागी राजा एक भिखमंगे को देने के लिए अपनी दोनों आँखें निकाल लेता है। महाभारत में यह कथा तीन भिन्न रूपों में मिलती है।[2] कैसे वह राजा अपने ही शरीर से टुकड़े-टुकड़े मांस काटता है और बाज के द्वारा पीछा किये जाते एक कबूतर की जान बचाने के लिए अपनी ही जान दे देता है। यही राजा शिवि ययाति की प्राचीन वीर-कथाओं में भी आता है। वह इस राजा के चार धर्मात्मा पौत्रों में से एक है जो उसको अपना अपना स्वर्ग में स्थान देने को कहते हैं और अंत में उसके साथ स्वर्ग चले जाते हैं।[3] साथ ही शिवि की अपार सम्पत्ति और महान् उदारता की कथा एक दूसरी जगह आती है जहाँ पर उसकी यज्ञ करनेवाले धर्मात्मा के रूप में स्तुति की गई। यह राजा ब्राह्मणों को उतने बैल दान में देता है जितनी वर्षा की बूँदें धरती पर गिरती हैं, आकाश में जितने तारे हैं और गंगा की तलहटी में जितने रेत के कण हैं। यह कथा स्पष्टतः ब्राह्मणों के रंग में रंगी है।[4]

मुनि-कविता में बहुप्रचलित आत्मत्याग की कथाओं में एक मर्मस्पर्शी कथा बहेलिये और कबूतरों की कथा है[5] जो पंचतंत्र के एक संस्करण में भी मिलती है।[6] शत्रु से प्रेम और आत्मत्याग कभी शायद ही उस सीमा तक जा सकें जितना इस

१. चरियापिटक I, 8। सि० सिविजातक (V, Fausböll द्वारा सम्पादित जातक, IV, 401 आ० सं० 499) तथा Benfey; वही, I, 388 आ०।
२. III, 130 आ०, 197, XIII, 32। दे० Griffith, Idylls from the Sanskrit, पृ० 123 आ०।
३. I, 86 तथा 93।
४. VII, 58। III, 198 में कही शिवि की कथा भी काफी ब्राह्मण धर्म से प्रभावित है। यहाँ ब्रह्मा की इच्छा से वह अपने पुत्र को मार डालता है और खा भी लेता है क्योंकि ब्रह्मा की वैसी ही आज्ञा है। दूसरी ओर राजा सुहोत्र और शिवि की कथा (III, 194) बौद्ध जादे मालूम पड़ती है और शिवि के नाम के बिना यह बौद्ध साहित्य (जातक सं० 151) में उपलब्ध भी है। सि० T. W. Rhys Davids, Buddhist Birth Stories, लंडन 1880, पृ० XXii—XXViii, R. O. Franke, WZKM. 20, 1906, पृ० 320 आ०।
५. XII, 143-149।
६. दे० Benfey, वही, I, 365 आ०, II, 247 आ०।

पवित्र और पापनाशक इतिहास में दिखाया गया है, यह बतलाता है कि कैसे एक नर कबूतर दुष्ट बहेलिये के लिए अपने आपको आग में जला देता है क्योंकि उसने उसकी प्रिय पत्नी को पकड़ लिया था और अतिथि को देने के लिए उसके पास और कोई भोजन नहीं था, कैसे कबूतरी अपने पति की मृत्यु का अनुगमन करती है और कैसे कबूतरों के उस जोड़े का प्रम और आत्मत्याग देखकर वह दुष्ट बहेलिया द्रवित हो जाता है, जंगली जीवन छोड़ देता है, साधु बन जाता है और अन्त में आग में जल कर मृत्यु का वरण करता है[१]।

एक पवित्र मुनि मुद्गल की, जो स्वर्ग नहीं जाना चाहता था, कथा के द्वारा मुनियों के आचार का दूसरा पक्ष दिखाया गया है :

चूँकि मुद्गल बड़ा विद्वान् और धर्मात्मा है इसलिए उसे स्वर्ग लिवा जाने के लिए देवताओं का एक दूत आता है। पर मुद्गल पहले ही सावधानी के साथ पूछता है कि स्वर्ग का जीवन कैसा है। देवदूत इस पर उस स्वर्ग की सारी सुन्दरताओं और धर्मात्मा के लिए वहाँ प्रतीक्षा करते हुए सब प्रकार के सुखों का वर्णन करता है। पर वह इस बात को छिपा नहीं पाता कि यह आनन्द सदा के लिए नहीं है। सब को अपने कर्मों का फल अवश्य भोगना पड़ता है। जब एक बार कर्म चुक जाता है तो प्राणी को स्वर्ग से फिर उतर आना पड़ता है और नया जीवन फिर से शुरू करना पड़ता है। इसपर मुद्गल इस प्रकार के स्वर्ग की कोई चीज नहीं चाहता, फिर से तपस्या में लग जाता है और अन्त में ध्यान-योग और विषयों से पूर्ण वैराग्य के द्वारा वह विष्णु का परमपद पाता है। केवल वहीं निर्वाण का नित्य सुख मिल सकता है[२]।

कर्म मनुष्य का भाग्य है, पहले पहल हम उपनिषदों में इस के सिद्धान्त को देख चुके हैं और महाभारत की कई गम्भीर कथाओं का यह विषय है। इन में से एक बड़ी ही सुन्दर कथा सांप, मृत्यु, भाग्य और कर्म की है। संक्षेप में यह इस प्रकार है—

एक धर्मात्मा बुढ़िया ब्राह्मणी गौतमी ने एक रोज अपने लड़के को मरा पाया। एक सांप ने उसे डंस लिया था। अर्जुन नाम का एक शिकारी रस्सी में बांध कर उस सांप को घसीटता ले आया और गौतमी से पूछा कि इस उस के पुत्र के घाती दुष्ट सांप को वह किस तरह मारे। गौतमी ने उत्तर दिया कि उस सांप के मारने से उस का लड़का जीवित नहीं होगा न तो इस से कुछ बात ही बनेगी क्योंकि एक जीवित प्राणी को मारने से मारने वाले पर भी पाप चढ़ेगा। शिकारी ने प्रतिवाद किया और कहा कि शत्रु को मारना उचित है। इन्द्र ने भी तो वृत्र को मारा ही था। पर शत्रुओं

---

१. यह कथा शायद ही बौद्ध हो क्योंकि बौद्ध लोग धार्मिक आत्महत्या की सलाह नहीं देते। जैन-जैसे दूसरे संप्रदाय इस का अनुमोदन करते हैं।

२. III, 260 आ०। E. Windisch (Festschrift Kuhn, पृ० 4 आ०) को इस मुद्गल में बौद्ध मौद्गल्यायन की छाया दिखाई देती है जो स्वर्ग और नरक की यात्रा करता है।

को दुःख देने और मारने में गौतमी को कुछ भला दिखाई नहीं दिया। इस के बाद सांप भी बात-चीत में भाग लेने लगा। उसने कहा कि लड़के की मृत्यु के लिए वह दोषी नहीं है। मृत्यु ने ही मुझे अपना माध्यम बनाया। जब सांप और शिकारी इस बात पर जोर-शोर से लड़ ही रहे थे कि लडके की मृत्यु के लिए सांप दोषी है या नहीं इतने में मृत्यु स्वयं वहाँ प्रगट हुई और कहा कि न तो सांप और न वह स्वयं लड़के की मृत्यु के दोषी हैं अपितु काल ही दोषी है। क्यों कि जो कुछ भी होता है सब काल के द्वारा होता है, जो कुछ है वह काल के कारण है। "हवा जैसे बादलों को तितर-बितर कर देती है" उसी तरह मृत्यु भी काल के हाथ है। शिकारी इस बात पर अड़ा ही रहा कि सांप और मृत्यु दोनों ही लड़के की मृत्यु के अपराधी हैं। इतने में ही वहाँ स्वयं काल प्रगट हुआ और बोला : "न तो मैं न मृत्यु और न यह सांप किसी प्राणी की मृत्यु के लिए दोषी हैं, हे शिकारी ! हम सब कारण नहीं है। कर्म ने हमें इस के लिए प्रेरित किया है। लड़के की मृत्यु का कोई दूसरा कारण नहीं है, वह तो अपने कर्म से ही मरा है···जिस प्रकार कुम्हार मिट्टी के लोंदे से जो चाहता है बना लेता है उसी तरह आदमी भी अपने कर्म के द्वारा जिस भाग्य का अपने लिए निर्माण करता है उसी को वह प्राप्त करता है। जैसे प्रकाश और छाया एक दूसरे के साथ मिली होती हैं उसी तरह कर्म और कर्ता भी जो कुछ किया जाता है उस के माध्यम से संपृक्त रहते हैं।" इस पर गौतमी को इस विचार से शांति मिली कि उस के पुत्र की मृत्यु उस के अपने ही कर्म से हुई है।[१]

मृत्यु के प्रति मनुष्य को कैसा व्यवहार करना चाहिए इस प्रश्न पर भारतीय विचारकों और कवियों ने बार-बार अनगिनत उक्तियों और अनेक सांत्वना देने वाली कहानियों में अपना मत उपस्थित किया है[२]। इन में से एक बड़ी सुन्दर कथा गीध, सियार और मरे लड़के की है जिस की कथा हम फिर संक्षेप में ही दे सकेंगे।

एक ब्राह्मण का छोटा-सा इकलौता बच्चा मर गया। रोते-गाते उस के सम्बन्धी बच्चे के शव को श्मशान में ले गए। अपने दुःख में उस मरे बच्चे को अपने से अलग करना वे नहीं सह सकते थे। रोने की आवाज सुनकर एक गीध वहाँ उड़ कर आया और उन को बताया कि मरे के लिए रोना व्यर्थ है। एक बार काल[३] के गाल में चले जाने पर कोई आदमी फिर से जीवित नहीं होता इसलिए वे जल्दी से घर चले जांय। थोड़ी सान्त्वना मिलने पर वे रोने वाले घर की ओर जाने लगे। इसके बाद एक सियार उनकी ओर दौड़ता आया और उनको धिक्कारने लगा कि उनके हृदय में प्रेम नहीं है क्योंकि वे अपने ही बच्चे को इतनी जल्दी छोड़कर चले जा रहे हैं। दुःखी होकर वे फिर लौट आये। यहाँ गीध उनकी

---

१. XIII. 1।

२. Lüders को ZDMG, 58, 1904, पृ० 107 आ० में दे०।

३. काल समय या भाग्य नहीं, मृत्यु का नियन्ता भी है।

राह देख रहा था और उनकी कमजोरी के लिए उनको बुरा भला कहने लगा। आदमी को मृतक के लिए नहीं बल्कि अपने ही लिए रोना चाहिए। इस एक बात से ही आदमी पाप से छूट जायेगा, मृतक के लिए रोना व्यर्थ है क्योंकि आदमी का सुख और दुःख केवल कर्म पर निर्भर है। "विद्वान् और मूर्ख, धनी और निर्धन सब अपने अच्छे और बुरे कर्मों के साथ काल के वश में हैं। तुम रोने से क्या चाहते हो? मृत्यु की क्यों शिकायत करते हो?" आदि-आदि। रोने वाले फिर घर की ओर लौटे और फिर सियार ने उनको बढ़ावा देते हुए अपने पुत्र के प्रेम को न छोड़ने के लिये कहा। आदमी को काल के विरुद्ध प्रयत्न करना चाहिए क्योंकि अब भी हो सकता है कि बचा फिर से जी जाय। इस पर गीध ने कहा "मैं एक हजार साल का बूढ़ा हूँ पर मैंने कभी मरे को जीवित होते नहीं देखा···जो अपने माता-पिता, भाई, बन्धु की परवाह नहीं करते वे धर्म के प्रति अत्याचार करते हैं। जो अपनी आँखों से देख नहीं सकता जो हिल-डुल नहीं सकता और बिलकुल मर गया है उसको तुम्हारे रोने से क्या लाभ?" गीध ने बार-बार रोने वालों से घर लौट जाने के लिए कहा, पर सियार उनसे श्मशान वापस चलने को कहता रहा। कई बार वह बात दुहराई गई। गीध और सियार इससे अपना काम निकालना चाहते थे क्योंकि वे दोनों भूखे थे और उनको शव का लोभ था। अन्त में भगवान् शिव ने अपनी पत्नी उमा के कहने पर उन बेचारे सम्बन्धियों पर दया की और बच्चे को फिर से जिला दिया।[१]

महाभारत की नीति-कथाओं में केवल मुनि के आचार का ही वर्णन नहीं है। उनमें से कई हमारे ऊपर इसलिए प्रभाव डालते हैं कि वे पति और पत्नी, माता-पिता और बच्चों संबंधी दैनिक आचार के बारे में हमें शिक्षा देते हैं। इन कथाओं में एक बड़ी ही सुन्दर कथा चिरकारी की है।[२] उसके पिता ने उससे अपनी माँ को मार डालने को कहा क्योंकि माँ ने बहुत बड़ा पाप कर दिया था। चूँकि चिरकारी स्वभाव से धीमा था और हर बात पर देर तक सोचता था इसलिए आज्ञा को पूरा करने में उसे देर हुई और वह हर दृष्टि से सोचने लगा कि क्या वह अपने पिता की आज्ञा माने और माँ को मारने का पाप सिर पर ले ले या फिर अपने पिता के प्रति कर्त्तव्य से विमुख हो जाय। बहुत देर तक वह सोचता ही रहा कि उसका पिता लौट आया और चूँकि इस बीच उसका क्रोध शान्त हो गया था इसलिए उसको आनन्द हुआ कि अपने नाम के अनुरूप चिरकारी इतनी देर तक सोचता-विचारता रहा। इस कथा के बीच में उस युवक का अपने आप से बोलना निबद्ध है जो थोड़े हास्य के साथ साधारण लोकप्रिय ढंग से कहा गया है। सुन्दर शब्दों में वह पिता के

---

१. XII, 153।

२. XII, 265, Deussen द्वारा अनूदित "Vier philosophische Texte des Mahābhāratam" पृ० 437-444।

प्रेम और माता-पिता के प्रति कर्तव्यों की बात करता है और इससे कहीं अधिक सुन्दर शब्दों में माँ के प्रेम की बात करता है।

"जब तक माँ है तब तक आदमी की अच्छी तरह देखभाल होती है, जब वह नहीं रहती तब आदमी अरक्षित हो जाता है। जो माँ-माँ चिल्लाता घर में घुसता है उसको दुःख नहीं सताता और अवस्था उस पर प्रभाव नहीं डालती भले ही उसका सारा धन लूट लिया गया हो। भले ही पुत्र और पौत्र हो गये हों, भले ही आदमी पूरे सौ सालों का बूढ़ा हो गया हो पर जब वह अपनी माँ के पास पहुँचता है तो वह दो वर्ष के बच्चे जैसा व्यवहार करने लगता है···जब आदमी की माँ नहीं होती तो आदमी बूढ़ा हो जाता है, दुःखी हो जाता है, उसके लिए सारा संसार सूना हो जाता है। माँ की तरह कोई ठंढी छाया नहीं है, माँ के समान कोई शरण नहीं है, माँ की तरह कोई प्रिय नहीं है···"

इन कथाओं में जो खास बात है वह पात्रों के संवादों में है। पर मैंने पहले ही कहा है कि बहुत से तथाकथित इतिहास वास्तव में नीति-संवादों की छोटी भूमिकाएँ और फ्रेम मात्र हैं जिससे उनको हम इतिहास-संवाद कह सकते हैं। इनमें से कुछ संवाद तो उपनिषद् और बौद्ध-साहित्य की इसी प्रकार की उत्तम कृतियों के साथ रखे जा सकते हैं। मन की शान्ति पा लेने के बाद विदेह के राजा जनक की उक्तियां ऐसी मालूम होती हैं कि जैसे वे किसी उपनिषद् से ली गई हों : "अरे! मेरा धन अतुलनीय है क्योंकि मेरे पास कुछ भी नहीं है। भले ही सारी मिथिला जल जाय पर मेरा कुछ भी नहीं जलता।"[१] संकेत-स्थान पर अपने प्रिय को न पाकर उत्पन्न हुए दुःख के बाद जब वेश्या पिंगला आत्मा की वह गहरी शान्ति पा लेती है जो भारतीय मुनि-बुद्धि का सबसे ऊँचा लक्ष्य है तो श्लोक कहती है जिनका अंत इन शब्दों से होता है : "इच्छाओं और आशाओं के स्थान पर निरीहता को रखकर पिंगला शान्ति से सो रही है।"[२] और इससे हमें बौद्धों की थेरीगाथा की

---

१. XII, 178। J. Muir ने (Metrical Translations, पृ० 50 में) यों अनुवाद किया है : "मेरा धन कितना अपार है, मैं कितने आनन्द का उपभोग करता हूँ क्योंकि मेरे पास कुछ नहीं है और मैं कुछ इच्छा नहीं करता। यदि यह नगर आग की लपटों में घिर जाय तब भी मेरी कोई वस्तु नष्ट नहीं होगी।" मिथिला जनक का निवास स्थान थी। मि० जातक (संस्क० Fausböll) Vol. V, पृ० 252 (सोनक जातक, सं० 529 की 16 वीं गाथा) तथा Vol. VI, पृ० 54 (सं० 539)। R. O. Franke, WZKM, 20, 1906, पृ० 352 आ०।

२. XII, 174; 178, 7 आ०। मि० O. Böhtlingk, Indische Sprüche सं० 1050 आ०। समानान्तर बौद्ध गाथाएँ R. O. Franke ने WZKM, 20, 1906, पृ० 346 आ० में दी हैं।

याद आ जाती है। उपनिषदों की तरह महाभारत के संवादों में भी कभी-कभी हमें ऐसे नीच जाति के लोग मिलते हैं जिनके पास सर्वोच्च ज्ञान है। ब्राह्मण कौशिक को मांस बेचनेवाला धर्म-व्याध दर्शन और आचार पर उपदेश देता है और खास कर यह सिद्धान्त बताता है कि जन्म से नहीं, बल्कि सदाचार से ब्राह्मण होता है।[१] इसी तरह तुलाधार वैश्य ब्राह्मण मुनि जाजलि[२] के गुरु के रूप में सामने आता है। भारतीय आचार-शास्त्र के इतिहास में यह इतिहास-संवाद इतना महत्त्वपूर्ण है कि इसके अंश यहाँ लिखे जाने योग्य हैं :

ब्राह्मण जाजलि मुनि के रूप में जंगल में रहा करते थे और घोर तपस्या करते थे। चिथड़े और चमड़े लपेटे, धूल में सने वे वर्षा और तूफान में जंगलों में घूमा करते थे, कठिन व्रत रखते थे और मौसम की हर कठिनाइयों को सहते थे। एक बार वे समाधि लगाकर बिना हिले-डुले लकड़ी के एक खम्भे-जैसे जंगल में खड़े हो गए। चिड़ियों का एक जोड़ा उधर से उड़ता हुआ आया और उनकी धूल और वर्षा से आपस में जुटी हुई और आँधी से बिखरी हुई जटा में अपना घोसला बना लिया। जब योगी ने इसे देखा तो वे हिले नहीं पर तब तक खम्भे की तरह वे अचल खड़े रहे जब तक मांदा ने उनके सिर पर बने घोसले में अंडे नहीं दे दिए, जब तक अंडे फूट न गये और बच्चे बड़े होकर उड़ न गए। तपस्या के इस कठोर कर्म के बाद जाजलि को घमण्ड हो गया और वे गर्व से जंगल में चिल्ला उठे : "मैं सारी उपासना के तत्त्व तक पहुँच गया।" इस पर आकाशवाणी ने उत्तर दिया कि "हे जाजलि! तुम तो उपासना में अभी तुलाधार के बराबर भी नहीं हो और वाराणसी में रहनेवाला परम पण्डित तुलाधार भी अपने बारे में वैसा नहीं कह सकता जैसा तुम कह रहे हो।" इस पर जाजलि बड़े निराश हुए और यह देखने के लिए कि वह किस प्रकार उपासना में इतना बढ़ गया है वे वाराणसी में तुलाधार के पास गये। तुलाधार वाराणसी का एक दूकानदार था और हर तरह के मसाले, औषधियाँ आदि बेचता था। ब्राह्मण जाजलि के यह पूछने पर कि उसकी प्रसिद्ध उपासना का क्या रहस्य है उसने आचार पर एक लम्बा व्याख्यान देते हुये उत्तर दिया जिसका आरम्भ इन शब्दों से होता है :

"हे जाजलि! सारे रहस्यों के सहित मैं सनातन धर्म को जानता हूँ : लोग इसे प्राचीन सिद्धान्त के नाम से जानते हैं जो सबका कल्याण करता है और वह है प्रेम का सिद्धान्त[३]। जीवन की वह पद्धति जो प्राणिमात्र के प्रति पूर्ण अहिंसा से युक्त है या

---

१. III, 207-216।

२. XII, 261-264। Deussen द्वारा अनूदित "Vier Philosophische Texte des Mahābhāratam", पृ० 418-435।

३. मैत्र (बौद्धों के पालि में मेत्ता) का अर्थ है "मित्रता"। इसका प्रयोग प्राणिमात्र के प्रति दया के अर्थ में होता है और यह ईसाई धर्म के भाईचारे के प्रेम से बड़ा है क्योंकि मनुष्यों के अलावा यह पशुओं के प्रति भी होता है।

हिंसा से किंचित् युक्त है वही सबसे बड़ी उपासना है। हे जाजलि ! मैं इसी के अनुसार जीवन यापन करता हूँ। दूसरों के द्वारा काटी गई लकड़ी और घास से मैंने अपने लिए यह झोपड़ी बनाई है। लाक्षा, कमल की जड़, कमल-नाल, सब तरह के सुगन्धि द्रव्य, अनेक प्रकार के रस और नशा करनेवाले पेयों के अतिरिक्त सब प्रकार के पेय मैं खरीदता हूँ और बिना बेईमानी किये बेच देता हूँ। हे जाजलि ! जो सारे प्राणियों का मित्र है और मन, वचन और कर्म से सबकी भलाई में सुख लेता है वह धर्म को जानता है। मैं न तो पक्षपात करता हूँ और न द्वेष, न तो प्रेम करता हूँ न घृणा। मैं सब प्राणियों के प्रति समान हूँ, जाजलि ! देखो यही मेरा व्रत है। मेरी तराजू[1] सबके लिए समान है। हे जाजलि ! यदि कोई किसी से नहीं डरता और उससे कोई नहीं डरता, यदि कोई किसी को अधिक नहीं चाहता और किसी से घृणा नहीं करता तो वह ब्रह्म में लीन हो जाता है…"

इसके बाद अहिंसा के बारे में एक लम्बा व्याख्यान आता है। सारे प्राणियों के प्रति दया से बढ़कर और कोई धर्म नहीं है। इसलिए पशु को पालना क्रूर कर्म है क्योंकि इसमें पशुओं को कष्ट पहुँचता है और वे मारे जाते हैं। दासों को रखना और किसी भी जीवित प्राणी का व्यापार क्रूरतापूर्ण है। खेती भी पाप से भरी है क्योंकि हल से धरती को चोट पहुँचती है और कितने ही बेचारे जानवर मारे जाते हैं। जाजलि ने इसका प्रतिवाद करते हुए कहा कि बिना खेती और पशु-पालन के लोग जीवित नहीं रह सकते और उनको भोजन नहीं मिल सकता और यदि पशुओं को न मारा जाय और पौधे न नष्ट किये जायँ तो यज्ञ करना भी असम्भव हो जायेगा। इस पर तुलाधार ने सच्चे यज्ञ के बारे में एक लम्बा व्याख्यान देते हुए उत्तर दिया कि सच्चा यज्ञ वही होगा जो बिना फल की इच्छा के, बिना पुरोहितों की धोखा-धड़ी के और बिना प्राणियों को मारे किया जाय। अन्त में तुलाधार ने जाजलि की जटा में घोंसला बनाकर रहने वाले पक्षियों को अपने सिद्धान्त का साक्षी बनाया और उन्होंने भी इस बात को अनुमोदित किया कि सच्चा धर्म प्राणिमात्र के प्रति दया करने में है।

पिता और पुत्र के संवाद[2] में ब्राह्मण धर्म और भारतीय मुनिवाद का जितना स्पष्ट भेद दिखाई देता है उतना अन्यत्र कहीं नहीं मिलता। इसमें पिता ब्राह्मण का दृष्टिकोण उपस्थित करता है और पुत्र उस मुनि का, जिसने अपने आपको कर्मकाण्डी धर्म से मुक्त कर लिया है। पुत्र के द्वारा उपस्थापित जीवन की दृष्टि बौद्धों और जैनों की है[3] पर यह उन्हीं तक सीमित नहीं हैं। इस संवाद को, जिसके कुछ अंश का अनुवाद

---

१. 'तुलाधार' का अर्थ है "तराजू धारण करनेवाला।"

२. XII, 175। कुछ हेर-फेर के साथ XII, 277 में दुहराया गया। J. Muir द्वारा Metrical Translations from Sanskrit Writers, पृ॰ 28-32 में अंग्रेजी में; Deussen द्वारा "Vier philosophische Texte des Mahābhāratam" पृ॰ 118-122 में जर्मन में अनूदित।

३. प्रायः पुत्र द्वारा कहे गए सारे श्लोक किसी बौद्ध या जैन ग्रंथ में भी आ सकते हैं।

यहाँ दिया जा रहा है, अथवा इसके अलग-अलग श्लोकों को बौद्ध या बौद्धों से उधार लिया हुआ घोषित करना उचित न होगा।

वेदों में पारंगत एक ब्राह्मण का एक बुद्धिमान् लड़का था। जिसका नाम मेधावी था। इस लड़के ने मोक्ष, धर्म और व्यावहारिक जीवन के बारे में सब कुछ पढ़ रखा था और संसार के तत्व का उसको साक्षात्कार था। उसने वेदाध्ययन में रत अपने पिता से कहा :

पुत्र—"चूँकि मनुष्यों के दिन शीघ्र समाप्त हो जाते हैं इसलिए बुद्धिमान् लोग अपना जीवन कैसे बिताएँ ? मेरे आदरणीय ! मैं युवावस्था से बुढ़ापे तक सच्चे धर्म के लिए कौन-सा मार्ग अपनाऊँ ?

पिता—"अपना मार्ग अध्ययन से आरंभ करो, अपनी बुद्धि को पवित्र वैदिक ज्ञान से भर लो। इस आश्रम को पूरा करके एक पत्नी ढूँढ़ो, विवाहित जीवन का फल प्राप्त करो और अपनी आत्मा की भलाई के लिए पुत्रों को उत्पन्न करो, जो मरने के बाद तुम्हारे अन्तिम संस्कार कर सकें। इसके बाद अग्निहोत्र करो और देवताओं का उचित यजन करो। जब अवस्था ढलने लगे तो संसार को छोड़ दो और जंगल को अपना घर बना लो। वहाँ शान्त तपस्वी बन कर अपनी वासनाओं के विरुद्ध लड़ो। इस प्रकार सांसारिक दुःख से मुक्त हो जाने पर तुम्हें पूर्णता प्राप्त हो सकती है।[1]

पुत्र—"पिताजी ! जब आप मुझे ऐसे जीवन की सलाह देते हैं तो क्या आप उचित रास्ते पर हैं ? कौन बुद्धिमान् या विचारशील मनुष्य इन औपचारिक अध्ययनों और बेकार के कर्मकाण्डों में रस लेगा ? क्या यह उचित है कि इस प्रकार के प्रयत्न और विचार मनुष्य की आधे से अधिक आयु ले लें ? संसार सर्वदा पीड़ित और दुःखी बना रहता है पर गूँगे डाकू कभी शान्त नहीं होते।

पिता—"मुझे बताओ कि क्यों संसार पीड़ित और दुःखी रहता है ? कौन से गूँगे डाकू कभी शान्त नहीं रहते ? तुम्हारे इस निराशापूर्ण और सचेत करने वाले वचन का क्या अर्थ है ? अपना अभिप्राय स्पष्ट शब्दों में बताओ।

पुत्र—"संसार मृत्यु से पीड़ित है, जरा मनुष्य के शरीर को तोड़ देती है। क्या आप नहीं देखते कि रात और दिन डाकुओं की तरह चुपचाप घूमते रहते हैं और वे अंत में हमारा जीवन ही चुराकर भाग जाते हैं ? जब मुझे अच्छी तरह मालूम है कि दुःख से भरे संसार में मृत्यु जमी हुई है और कभी अपने कार्य से विरत नहीं होती तो फिर भला मैं अनजाने में आगे आने वाले सांसारिक सुख में कैसे विश्वास कर

वास्तव में XII 174, 7-9 जैनों के उत्तराध्ययन सूत्र (14, 21-23) में तथा XII, 174, 13 प्रायः अक्षरशः बौद्धों के धम्मपद 47 आ० में मिलता है। इसी तरह [का एक संवाद 509वें जातक में भी प्राप्त होता है। मि० J. Charpentier, ZDMG. 62, 1908, 725 आ०।

१. यह ब्राह्मणों का आश्रम-सिद्धान्त है।

सकता हूँ ? चूँकि हर रात के बीतने के साथ जीवन छोटा होता चला जाता है इसलिए क्या बुद्धिमान् यह न सोचे कि जो दिन बाकी बचे हैं वे निरर्थक हैं ? जीवन के संकरे घेरे में बँधे हमलोग छिछले पानी में मछली की तरह तड़प रहे हैं।

"मनुष्य दूसरी बातों में लगे हुये हैं, मानों वे फूल चुनने में मस्त हों, पर जैसे भेड़िया मेमने को नोचकर भाग जाता है उसी तरह ये लोग भी, जिसके लिए कभी प्रयत्न नहीं किया, उस सत् को पाने के पहले ही अचानक मृत्यु के शिकार बन जाते हैं।

"समय मत गंवाओ, गम्भीर होकर अभी से सदाचरण शुरू कर दो, कल का काम आज ही कर डालो, शाम का काम दोपहर तक समाप्त कर लो। किसी काम को बहुत शीघ्र कर लेना चाहिए। कौन जानता है कि आज रात मृत्यु किसको पकड़ लेगी और कौन सवेरे का प्रकाश देखेगा ? मृत्यु किसी से यह पूछने के लिए नहीं रुक सकती कि तुमने अपना काम कर लिया है या नहीं। छोटी अवस्था से ही मूर्खताओं से बचो, सद्गुण से शान्ति प्राप्त करो। इसी प्रकार तुम्हें यहाँ यश मिलेगा और भविष्य में भी बहुत सुख प्राप्त होगा।

"मैंने यह कर लिया है, इसे अभी करना है, इसे अभी शुरू किया है" मनुष्य की इस प्रकार की अनेक योजनाओं के निरर्थक स्वप्न को मृत्यु भंग कर देती है। जैसे अपने किनारों पर शान से खड़े वृक्षों को धारा उखाड़ देती है और बहा ले जाती है उसी तरह निरर्थक स्वप्न में पड़े लोगों को मृत्यु भी पृथ्वी से बहा ले जाती है।

"कुछ लोग बिल्कुल धारा में बहे जा रहे हैं, कुछ घर-गृहस्थी की चिन्ता में लगे हैं और पत्नी, बच्चों के पालन-पोषण की चिन्ता में डूबे हुए हैं। अथवा जीवन के किसी-न-किसी दुःख से निरन्तर जूझ रहे हैं। इन निरन्तर संघर्षरत लोगों को उनके परिश्रम, विचार और संघर्षों का फल मिलने के पहले ही मृत्यु हर ले जाती है।

"मृत्यु जाति, पद या अवस्था का ध्यान नहीं रखती। वह मूर्ख, विद्वान्, साधु, असाधु, जवान, बूढ़ा, बली, निर्बल सबको ले जाती है।

"मनुष्य के जन्म लेते ही जरा और मृत्यु उसके पीछे लग जाती हैं। जब कि तुम्हारे जीवन में अगणित दुःख भरे हुए हैं—जब दुःख-दर्द तुम्हारी शक्ति क्षीण करते जा रहे हैं तो तुम निर्द्वंद्व, निर्विकार कैसे रह सकते हो ?

"मनुष्यों के निवास-स्थान को छोड़ दो क्योंकि वही मृत्यु का प्रिय स्थल है। अपना घर निर्जन वन में बनाओ क्योंकि वहाँ देवता प्रसन्नतापूर्वक विचरते हैं।

"पुराने राग-मोह से बँधे मनुष्य अपने लोगों के बीच रहना पसन्द करते हैं। मुनि इस बन्धन को छिन्न-भिन्न कर देता है पर मूर्ख लोग इसको तोड़ने का साहस कभी नहीं करते।

"आप मुझे यज्ञ द्वारा देवताओं को प्रसन्न करने की सलाह दे रहे हैं, पर इन यज्ञों को मैं व्यर्थ समझता हूँ क्योंकि इनसे किसी को पूर्णता नहीं मिल सकती। पशुओं को मारकर उनके रुधिर और मांस से सम्पादित क्रूर यज्ञों में देवताओं का क्या काम ?

मैं एक दूसरा यज्ञ विधिपूर्वक सम्पादित करूँगा—शान्ति और सत्य का, शुद्ध पवित्र जीवन का, ब्रह्म के गम्भीर चिन्तन का यज्ञ सम्पादित करूँगा। जो इस प्रकार का यज्ञ सम्पादित करता है वह मृत्यु पर विजय पा लेता है और उसे अमृतत्व मिलता है।

"आप कहते हैं कि मैं विवाह कर लूँ और पुत्र उत्पन्न करूँ जो मर जाने पर मेरा श्राद्ध करें और मेरी आत्मा को सद्गति, शान्ति दें। पर मैं कभी अपने भविष्य की सुरक्षा के लिए पुत्रों के पवित्र कर्मों की कामना नहीं करूँगा। मेरा कोई पुत्र गर्व से यह कभी नहीं कह पाएगा कि उसके श्राद्ध ने उसके पिता के प्रेत को मुक्ति दिलाई।

"ब्रह्म को प्राप्त करने के लिए एकान्तवास, शान्ति, सत्य, सद्गुण, एकाग्रता, नम्रता, धैर्य और सारे कर्मों के त्याग से बढ़कर अन्य कोई उपाय नहीं है। हे ब्राह्मण! यदि मरना ध्रुव है तो फिर धन, सम्बन्धी या पत्नी तुम्हें क्या लाभ पहुँचा सकते हैं? अपने भीतर छिपी आत्मा को ढूंढ़ो। तुम्हारे पूर्वज कहाँ हैं? तुम्हारे पिता किधर गए हैं?"

इस प्रकार यह संवाद ऊपर से तो बिलकुल बौद्ध विचारों की दुनिया में चलता दिखाई देता है पर यह वेदांत के आत्मवाद की ओर ले जाता है—जिससे हम उपनिषदों में परिचित हो चुके हैं। यह कोई बहुत खास बात नहीं है। प्राचीन भारत के मुनि-सम्प्रदाय एक दूसरे से बड़ी कठिनाई से ही स्पष्टतः अलग किये जा सकते हैं—जैसे आज इंग्लैण्ड के अनेक प्रोटेस्टेंट सम्प्रदाय। अतः इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि महाभारत में संगृहीत मुनि-कविता की उदात्त कहानियों, संवादों और सूक्तियों में अनेक ऐसे विचार प्राप्त होते हैं जो उपनिषदों तथा बौद्ध और जैन ग्रन्थों के विचारों से मिलते हैं।

महाभारत के उपदेशात्मक भाग[1]

पहले अध्याय में वर्णित इतिहासों और इतिहास-संवादों में से अधिकतर इतिहास और संवाद महाभारत से अनेक और विस्तृत उपदेशात्मक भागों में मिलते है। इस प्रकार के छोटे और बड़े भाग महाभारत के प्रायः हर पर्व में वर्तमान हैं और उनमें तीन बातों का विवेचन है जिन्हें भारतीय **नीति** (सांसारिक ज्ञान, विशेषतः राजाओं के लिए; अतः राजनीति भी), **धर्म** (व्यवस्थित विधान और सामान्य आचार) और **मोक्ष** (सारे दर्शन का चरम लक्ष्य मुक्ति) कहते हैं। पर इन बातों को सर्वदा सुखद संवादों और सुन्दर उक्तियों के माध्यम से नहीं व्यक्त किया गया है। हमें ऐसे लम्बे भाग भी मिलते हैं जिनमें शुष्क विचार-विमर्श भरे हैं—विशेषतः बारहवें पर्व में दर्शन पर तथा तेरहवें पर्व में धर्म पर।

---

१. इन उपदेशात्मक भागों की शैली और विषयों के लिए मि० O. Strauss, ZDMG. 62, 1908, पृ० 661 आ० तथा Ethische Probleme aus dem Mahābhārata, Firenze 1912 (GSAI, 24, 1911 से)।

वर्ण्य-विषय की हमारे द्वारा प्रस्तुत रूप-रेखा से यह बात स्पष्ट है कि बारहवें और तेरहवें पर्वों का वास्तविक इतिहास-काव्य से बिलकुल भी सम्बन्ध नहीं है। चौदहवें पर्व में वर्णित घटनाओं का सीधा सम्बन्ध ग्यारहवें पर्व के अन्त से है। इन दो विशालकाय पर्वों का प्रक्षेप एक कथा के कारण सम्भव हुआ, जिस पर हम ऊपर विचार कर आए हैं। अगणित बाणों से बिंधे भीष्म युद्ध भूमि में पड़े हुए हैं। पर चूँकि वे अपनी मृत्यु का समय निश्चित कर सकते हैं अतः वे छः महीनों के बाद मरने का निश्चय करते हैं।[1] घातक रूप से मारे गए वीर भीष्म, जो नीतिज्ञ, धर्मज्ञ और योगी हैं, बीच का समय दर्शन और धर्म पर युधिष्ठिर को उपदेश देने में लगाते हैं। बारहवाँ पर्व अनेक वीर योद्धाओं और सगे सम्बन्धियों की मृत्यु के कारण शोकाभिभूत युधिष्ठिर के वर्णन से आरम्भ होता है। वे अपने को धिक्कारते हैं और निराश होकर संसार को त्याग जंगल में यतियों की तरह जीवन बिताने का निश्चय करते हैं। भाई लोग इससे उनको विरत करने का प्रयत्न करते हैं और इस पर क्या संन्यास ले लेना या गृहस्थ और राजा की तरह कर्तव्य का पालन करना उचित है इस विषय पर लम्बा-चौड़ा और विस्तृत विवाद उठ खड़ा होता है। बुद्धिमान् व्यास भी उपस्थित हैं और यह घोषित करते हैं कि राजा को पहले अपने धर्म का पालन करना चाहिए और जीवन की सन्ध्या आने पर ही जंगल में जाना चाहिए। फिर भी वे युधिष्ठिर को भीष्म के पास जाने को कहते हैं—जो युधिष्ठिर को राजधर्म का पूर्ण उपदेश दे सकेंगे। अतः राज्याभिषेक के बाद युधिष्ठिर परिजनों के साथ भीष्म के पास जाते हैं जो अब भी युद्धभूमि में पड़े हुए हैं। उनसे वे पहले यह पूछना चाहते हैं कि राजा का धर्म क्या है और उसके बाद अन्य बातें। धर्म, नीति और दर्शन पर दिए गये भीष्म के उपदेशों से बारहवाँ और तेरहवाँ पर्व भरे पड़े हैं।

बारहवें पर्व (शान्ति पर्व) के पूर्वार्ध के दो भाग हैं—राजधर्म और आपद्धर्म प्रकरण।[2] इनमें राजा की महत्ता और कर्तव्य का वर्णन है और स्थान-स्थान पर नीति का भी विवेचन है। साथ ही चारों वर्णों और चारों आश्रमों के कर्तव्यों का—माता-पिता और गुरु के प्रति कर्तव्य, आपत्ति और भय के समय कर्तव्य कर्म, आत्म-संयम, यति-धर्म, सत्य का पालन, जीवन के तीनों पुरुषार्थों—धर्म, अर्थ और काम—में सम्बन्ध आदि विषयों का—सामान्य विवेचन है। इस पर्व के उत्तरार्ध मोक्षधर्म प्रकरण का विषय मुख्यतः दर्शन से सम्बन्धित है।[3] फिर भी विश्वोत्पत्तिविद्या, मनोविज्ञान,

---

१. V. V. Iyer, Notes on the Study of the Preliminary Chapters of the Mahābhārata, पृ० 271 आ०; तथा Oldenberg, Das Mahābhārata, पृ० 76 आ०। Hopkins, Great Epic of India, पृ० 381 आ० में इन (XII तथा XIII) पर्वों को इतिहास-काव्य का आभास कहते हैं।

२. राजधर्माऽनुशासनपर्व (1-30) तथा आपद्धर्माऽनुशासनपर्व (131-173)।

३. मोक्षधर्माऽनुशासन (174 आ०), Deussen के "Vier Philosophische Texte des Mahābhārata" में पूर्णतः अनूदित।

नीतिशास्त्र के सिद्धान्तों या मोक्ष के सिद्धान्तों पर लंबे नीरस और प्रायः अस्पष्ट विचारों के अलावा बहुत से अत्युत्कृष्ट आख्यान, उदाहरण-कथाएँ, संवाद और नीतिपरक सूक्तियाँ भी यहाँ मिलती हैं जिनमें से कुछ का वर्णन हमने पहले के अध्याय में कर दिया है। समग्र रूप में बारहवाँ पर्व एक कलाहीन दुरूह संग्रह मात्र है फिर भी कविता और प्रज्ञा के अनेक अमूल्य रत्न इसमें भरे पड़े हैं। भारतीय दर्शन के आकर के रूप में भी इस पर्व का मूल्य नहीं आँका जा सकता।

जब कि बारहवें पर्व को एक माने में "दर्शन का संग्रह" कहा जा सकता है, तेरहवें अनुशासन पर्व को हम मूलतः धर्म का संग्रह कर सकते हैं। वास्तव में इस पर्व में ऐसे अनेक बड़े-बड़े प्रकरण है जिनमें मनुस्मृति-जैसे प्रसिद्ध धर्मशास्त्रीय ग्रन्थों से या तो केवल उद्धरण दिए गये हैं या उनके बिलकुल समानान्तर रचनाएं उपस्थित की गई हैं। बाद के एक प्रकरण में हम देखेंगे कि भारत का विधि-साहित्य भी छन्दोबद्ध ग्रन्थों से परिपूर्ण है और उसको उपदेशात्मक काव्य की श्रेणी में रखा जा सकता है। महाभारत के तेरहवें पर्व तथा धर्मशास्त्रों में केवल इतना भेद है कि महाभारत में नीरस उपस्थापन के बीच-बीच में बहुधा बिलकुल भोंड़े और रूखे आख्यान वर्णित हैं।[१] बारहवाँ पर्व मूल इतिहास-काव्य का अंग नहीं था फिर भी सम्भवतः इसको अपेक्षाकृत प्राचीन काल में ही महाभारत में ले लिया गया था पर तेरहवाँ पर्व निस्संदेह ही उसके भी बाद जोड़ा गया। इसमें इसके परवर्ती होने के सारे चिह्न वर्तमान हैं। एक ही बात इसको सिद्ध करने के लिए पर्याप्त है कि समाज के अन्य सारे वर्गों के ऊपर ब्राह्मण की उच्चता का दावा जिस गर्वपूर्ण ढंग से बढ़ा-चढ़ाकर यहाँ जताया गया है वैसा महाभारत में अन्यत्र कहीं नहीं है। इस पर्व का एक बड़ा भाग दानधर्म अर्थात् दान के कर्तव्य और नियमों से सम्बन्धित है। पर दान सर्वदा ब्राह्मणों को देने के अर्थ में ही लिया गया है।

इन दो पर्वों तथा एक या दो अध्यायों-वाले छोटे प्रकरणों के अलावा हमें तीसरे, पाँचवें, छठें, ग्यारहवें और चौदहवें पर्वों में भी लंबे उपदेशात्मक प्रकरण प्राप्त होते हैं। तीसरे पर्व (२८-३३) में द्रौपदी, युधिष्ठिर और भीम का नीति-सम्बन्धी प्रश्नों पर एक लम्बा संवाद मिलता है जिसमें द्रौपदी बलि और प्रह्लाद के संवाद का तथा 'बृहस्पति नीति' का उद्धरण देती है।[२] उसी पर्व में (२०५-२१६) स्त्रियों के गुणों, (२०५ आ०), अहिंसा (२०६-२०८), भाग्य की शक्ति, संन्यास और मोक्ष, सांख्य (२१०) तथा वेदान्त (२११) दर्शनों के सिद्धान्तों, माता-पिता के प्रति कर्तव्यों (२१४ आ०) आदि पर मार्कण्डेय के प्रवचन भी मिलते हैं। पाँचवें पर्व में धर्म और नीतिविषयक विदुर के लंबे उपदेश (३३-४०) और नित्य-बालक सनत्सुजात के दार्शनिक सिद्धान्त (४१-४६) संगृहीत हैं। छठें (२५-४२) पर्व में सुप्रसिद्ध भगवद्गीता प्राप्त

---

१. दे० ऊपर उल्लिखित वसिष्ठ-विश्वामित्र का आख्यान।

२. III, 32, 61।

होती है, जिसके पूरक रूप में चौदहवें पर्व में (१६-५१) अनुगीता लिखी गई है।[1] ग्यारहवें पर्व में (२-७) सान्त्वनापरक विदुर के उपदेश आचार से सम्बन्धित हैं।

महाभारत के उपदेशात्मक भागों में से भगवद्गीता जैसी लोकप्रियता और प्रसिद्धि किसी अन्य भाग को नहीं मिली।[2] भारत में ही मुश्किल से कोई ऐसा ग्रन्थ होगा जो भगवद्गीता जितना पढ़ा जाता हो और उतने आदर की दृष्टि से देखा जाता हो। यह वैष्णवों के भागवत सम्प्रदाय का पवित्र ग्रन्थ है पर प्रत्येक हिन्दू इसे भक्ति और पवित्रता का ग्रन्थ मानता है, चाहे वह किसी सम्प्रदाय का हो। इतिहासकार कल्हण[3] ने काश्मीर के एक राजा अवन्तिवर्मा, जो सन् ८८३ ई० में मरा, के बारे में लिखा है कि मरते समय उसने भगवद्गीता को आद्योपान्त पढ़वाकर सुना और विष्णु के स्वर्गीय धाम का ध्यान करते हुए प्रसन्नतापूर्वक अपने प्राण त्याग दिए। मृत्यु के समय इस पुस्तक से शान्ति पानेवाला वह अकेला हिन्दू नहीं था। आज भी अनेक शिक्षित हिन्दू ऐसे हैं जिन्हें पूरी गीता कंठस्थ है। इसके अगणित हस्त-लेख सुरक्षित हैं। जब यह १८०९ में पहली बार कलकत्ता में छपी तब से शायद ही कोई ऐसा साल जाता होगा जब कि भारत में इसका पुनर्मुद्रण न होता हो। आधुनिक भारतीय भाषाओं में इसके अगणित अनुवाद भी हैं।

भारत के बाहर भी भगवद्गीता ने अनेक प्रशंसक पाए हैं। अरब का यात्री अलबेरूनी इसको भली-भाँति जानता था और इसको बड़ा गौरव देता था।[4] यूरोप में पहले-पहल लोगों को इसका ज्ञान Chas. Wilkins (लंदन, १७८५) के अंग्रेजी अनुवाद से हुआ। इसके पाठ का आलोचनात्मक संपादन श्लीगेल ने १८२३ में प्रकाशित किया और साथ में लैटिन अनुवाद भी दिया। यह बड़े महत्व का कार्य था। इसी के द्वारा विल्हेम वान हम्बोल्ट को गीता का परिचय प्राप्त हुआ और हमने पहले ही उनके उत्साह की चर्चा की है।[5] वे भगवद्गीता को Lucretius,

---

१. तीन दार्शनिक कविताओं—भगवद्गीता, सनत्सुजातीय और अनुगीता को काशीनाथ त्रिंबक तेलंग ने अंग्रेजी में (SBE, Vol, 8) तथा Deussen ने अपने 'Vier Philosophische Texte des Mahābhāratam' में जर्मन भाषा में अनूदित किया।

२. इसका पूरा नाम है 'भगवद्गीता उपनिषदः'। भगवत् शब्द कृष्णावतारधारी विष्णुदेव का विशेषण है। वे इस कविता में निहित सिद्धान्तों का अर्जुन को उपदेश देते हैं। भगवद्गीता के अलावा 'गीता' इस छोटे नाम का भी भारत में प्रचलन है।

३. राजतरंगिणी, V, 125।

४. दे० E. C. Sachau, Alberuni's India, I, पृ० XXXVIII; II. Index s. v. Gītā.

५. मि० Ges. Werke of W. v. Humboldt, I, पृ० 96 और 111।

Parmenides और Empedokles से कहीं ऊँचा स्थान देते थे और कहा था कि "महाभारत की यह रचना सबसे सुन्दर या कहें कि हमें ज्ञात सम्पूर्ण वाङ्मय में में यह एकमात्र वास्तविक दार्शनिक कविता है।" हम्बोल्ट (Humboldt) ने बर्लिन अकादमी (१८२५-२६) के "Über die unter dem Namen Bhagavadgītā bekannte Episode des Mahābhārata"[1] शीर्षक विस्तृत निबन्ध में और श्लीगल के संस्करण तथा अनुवाद की समीक्षा में विस्तार से गीता पर विचार किया है।[2] बार-बार यूरोप की भाषाओं में इसका अनुवाद हुआ है।[3]

यह कविता ऐसे स्थान पर आती है जहाँ कि इसके होने की जरा भी संभावना नहीं है अर्थात् छठें पर्व के आरम्भ में महायुद्ध के वर्णन के पूर्व। युद्ध की सारी तयारी पूरी हो चुकी है। दोनों सेनाएँ आमने-सामने खड़ी युद्ध के लिए सन्नद्ध हैं—तब अर्जुन अपने रथ को दोनों सेनाओं के बीच में रुकवा देते हैं और कौरवों तथा पाण्डवों की युद्ध के निमित्त शस्त्र से सज्जित सेनाओं का निरीक्षण करते हैं। दोनों ओर वे पिता, पितामह, गुरु, चाचा, भाई, पुत्र, पौत्र, मित्र, श्वसुर और बांधवों को देखते हैं। वे परम कृपा से अभिभूत हो जाते हैं। इस विचार के आते ही कि उन्हें सम्बन्धियों और मित्रों से लड़ना है उनको भय व्याप्त हो जाता है। जिनके लिए युद्ध लड़ा जाता है उन्हीं को मारने की इच्छा करना अर्जुन को पाप और पागलपन लगता है। जब कृष्ण उन्हें कायर और कोमल-हृदय का बताकर फटकारते हैं तो अर्जुन घोषित करते हैं कि उन्हें समझ में नहीं आ रहा है कि वे क्या करें। उन्हें यह ज्ञात नहीं होता कि विजय पाना अच्छा है या हार मान लेना। अन्त में वे कृष्ण से प्रार्थना करते हैं कि धर्म-संकट में क्या करना चाहिए इसका उपदेश करें। इस पर कृष्ण एक विस्तृत

---

१. Ges. Werke, I, 26-109।

२. Schlegel के Indische Bibliothek, Vol. II, 1824, पृ० 218 आ०, 328 आ० में। Ges. Werke, I, 110-184 में भी।

३. अंग्रेजी अनुवाद J. c. Thomson, Hertford, 1855; K. T, Telang (पद्य में, बम्बई, 1875; गद्य में SBE, Vol. 8); John Davies (1882); Edwin Arnold (1885); C. C. Caleb (1911); L. D. Barnett (Temple Classics में) द्वारा। संस्कृत पाठ—अंग्रेजी अनुवाद सहित—एनी बेसेण्ट और भगवान्दास, बनारस, 1905। जर्मन अनुवाद C. R. S. Peiper (1869); F. Lorinser (1869); R. Boxberger (1870); P. Deussen (Vier Philosophische Texte des Mahābhāratam में); R. Garbe (1905, दूसरा संस्क० 1921); तथा L. v. Schroeder (Jena, 1912) द्वारा। भारतीय भाषाओं तथा यूरोप की भाषाओं के अन्य अनुवादों के लिए दे० Holtzmann, Das Mahābhārata, II, 129 आ०।

दार्शनिक उपदेश देते हैं[1] जिसका सद्यः प्रयोजन अर्जुन को विश्वास दिलाना है कि चाहे जो भी परिणाम हो क्षत्रिय का कर्तव्य युद्ध करना है। वे कहते हैं :

"तुम न दुःख करने वाली बातों पर दुःख करते हो पर विद्वानों की तरह बातें करते हो। निष्प्राण और प्राणवान् वस्तुओं के लिए पण्डित लोग दुःख नहीं करते।

"मैं कभी नहीं था यह बात नहीं है, न तो तुम कभी नहीं थे यही बात है। न तो ये सब राजा लोग ही कभी नहीं थे। हम सब कभी भविष्य में न होंगे यह बात भी नहीं है।

"देहधारी के देह में जैसे बाल्यावस्था, यौवन और बुढ़ापा आते हैं वैसे ही दूसरा शरीर धारण करना भी आता है। धीर लोग इस बात पर मोह नहीं करते...।

"नित्य, अविनाशी और अप्रमेय शरीरी आत्मा के शरीर अन्तवान् होते हैं—ऐसा कहा गया है। इसलिए हे भरतवंश के पुत्र! युद्ध करो।

"जो इसको मारने वाला मानता है और जो इसे मारा गया मानता है वे दोनों नहीं जानते, यह न तो मारता है और न मारा जाता है।

"यह पैदा नहीं होता, न कभी मरता है। न तो कभी यह पैदा होकर कभी भविष्य में उत्पन्न होता है। यह अजन्मा, नित्य, शाश्वत और सनातन काल से चला आ रहा आत्मतत्त्व शरीर के मारे जाने पर भी नहीं मारा जाता...।

"जैसे पुराने कपड़ों को छोड़कर मनुष्य दूसरे नये कपड़े धारण कर लेता है, उसी प्रकार देही आत्मा जीर्ण शरीरों को छोड़कर दूसरे नये शरीरों में प्रवेश करती है।

"इसको शस्त्र नहीं काटते, इसको आग नहीं जलाती, पानी इसको गीला नहीं करता, वायु इसको नहीं सुखाती...।

"इसको अदृश्य, अज्ञेय और विकार रहित कहा गया है, इसलिए इसको वैसा समझकर तुम्हें दुःख नहीं करना चाहिए...।"[2]

कृष्ण कहते हैं : उपस्थित हिंसा के लिए दुःखी होने का कोई कारण नहीं है क्योंकि पुरुष स्वयं, अर्थात् आत्मा, नित्य और अविनाशी है। केवल शरीर ही नष्ट होते हैं।[3] इसके बाद वे अर्जुन को क्षत्रिय के कर्तव्य के रूप में धर्म-युद्ध करने का

---

१. भगवद्गीता के उपदेशों के लिए दे० R. G. Bhandarkar, Vaiṣṇavism, Śaivism etc. (Grundriss III, 6) पृ० 14 आ० तथा J. E. Carpenter, Theism in Mediaeval India, London, 1921, पृ० 250 आ०। कुछ अपेक्षाकृत कम ज्ञात गीता-सम्बन्धी लेखों पर P. E. Pavalini ने GSAI. 24, 1911, पृ० 395 आ० में विचार किया है।

२. II, 11-13, 18-20, 22, 23, 25—L. D. Barnett द्वारा अनूदित।

३. इस वितण्डावाद के द्वारा कोई भी हत्या या क्रूर कर्म सही सिद्ध किया जा सकता है। आश्चर्य की बात है कि गीता के पुण्यात्मा पाठक इस बात को नहीं

उत्साह दिलाते हैं। वह क्षत्रिय धन्य है जिसके भाग्य में ऐसा युद्ध बदा है—यह युद्ध उस क्षत्रिय के लिए स्वर्ग का द्वार खोल देता है। यदि अर्जुन युद्ध नहीं करते तो मृत्यु से भी बुरी बदनामी उनके सिर पर आएगी। यदि वे युद्ध में मारे जाते हैं तो उनका स्वर्ग पाना निश्चित है; यदि वे विजयी होते हैं तो पृथ्वी का राज्य उन्हें मिलेगा। अतः किसी भी हालत में अर्जुन को युद्ध करना ही चाहिए। जो भी हो, ऋषि के रूप में कृष्ण ने बाद में जो व्याख्या की है, तदनन्तर ईश्वर के रूप में की गई उनकी व्याख्या (कविता में ईश्वर-रूपी कृष्ण ही अधिकतर अर्जुन को उपदेश देते दिखाई देते हैं) ये दोनों व्याख्याएँ वीर कृष्ण के वचनों से मेल नहीं खातीं और उनसे विपरीत भी जाती हैं। कर्म की नीति के बारे में भगवद्गीता में प्राप्त सारी व्याख्याएँ अंत में इस सिद्धान्त पर पहुँचती हैं कि वास्तव में मनुष्य को अपने धर्म के अनुसार आचरण करना चाहिए, पर सफलता या असफलता का ध्यान नहीं रखना चाहिए, सम्भव फल के लिए परेशान नहीं होना चाहिए। क्योंकि इसी प्रकार का निष्काम कर्म कुछ हद तक नीति के उस सच्चे आदर्श के अनुकूल होगा जो सम्पूर्ण कर्मों के परित्याग, निष्कर्मता और संसार के पूर्ण संन्यास में निहित है। वास्तव में, इस सबके बावजूद, सम्पूर्ण गीता में एक ऐसा विरोध वर्तमान है जिसका समाधान नहीं हो सका है। यतिधर्म की शांतिपूर्ण नीति, जो संसार से विरत होकर समाधि में लीन होने की ओर तथा मोक्ष के मार्ग के रूप में परम ज्ञान प्राप्त करने के प्रयत्न की ओर इंगित करती है, तथा कर्म की नीति, जो कम-से-कम भारत के दार्शनिकों को भली-भाँति स्वीकार्य नहीं है—इन दोनों नीतियों में विरोध है। यह सही है कि कृष्ण मोक्ष पाने के लिए ज्ञान और कर्म के दो मार्गों का उपदेश देते हैं। पर जब तक आत्मा शरीर से सम्बद्ध है तब तक यह कहना कि बिना कर्म किए मनुष्य जीवित रह सकता है निरा पाखण्ड है। क्योंकि भौतिक तत्त्व सर्वदा सत्व (प्रकाश और सत्), रजस् (शक्ति, राग) और तमस् (अन्धकार, भारीपन, अज्ञान) इन तीन गुणों[1] से सम्पृक्त रहता है और इनके कारण कर्म निश्चय ही उत्पन्न होगा। इसलिए मनुष्य केवल इतना ही कर सकता है कि वह बिना इच्छा और कामना के अपना कर्तव्य कर्म करता रहे। क्योंकि "जैसे आग धुएँ से, शीशा धूल से और गर्भ उल्ब से आवृत रहता है वैसे ही ज्ञान कामना से आवृत है जो कामना ज्ञानी का नित्य शत्रु है।"[2] अतएव जो निष्काम होकर कर्म

समझ पाते। गीता के सिद्धान्तों तथा कृष्ण के उपदेश की आरम्भक युद्धनीति में विरोध, (जिसका न तो समाधान हुआ है और नहीं कोई समाधान सम्भव है) के बारे में दे० W. L. Hare, Mysticism of East and West, London, 1923, पृ० 159 आ०।

१. त्रिगुणों के सांख्य सिद्धान्त के लिए दे० R. Garbe, Die Sāmkhya—Philosophie, 2nd. ed; Leipzig, 1917, पृ० 272 आ० तथा S. Dasgupta, History of Indian Philosophy, I, पृ० 243 आ०।

२. III, 38 आ०।

करता है वह वास्तविक आदर्श के अत्यन्त समीप पहुँच जाता है और यह आदर्श ज्ञान के मार्ग में स्थित है। भगवद्गीता मोक्ष प्राप्ति के साधन के रूप में ज्ञान को कितना ऊँचा स्थान देती है यह निम्नलिखित अंशों से स्पष्ट है (IV, 36 आ०):

"यदि तुम सारे पापियों में सबसे बड़े पापी हो तो भी केवल ज्ञान-रूपी नौका के सहारे सारे पापों को पार कर जाओगे। हे अर्जुन! जैसे अच्छी प्रकार प्रज्वलित आग ईंधन को राख बना देती है उसी प्रकार ज्ञान की अग्नि सारे कर्मों को जलाकर राख कर देती है।"[1]

भगवद्गीता के अनुसार सारी सांसारिक वस्तुओं से विमुख होकर ध्यान में लीन हो जो व्यक्ति ज्ञान प्राप्त करने का प्रयत्न करता है वह साधु और ऋषियों का आदर्शभूत योगी कहलाता है। योगी "गर्मी और सर्दी, सुख और दुःख, आदर और निरादर" में अपनी आत्मा की शान्ति बनाए रहता है। मिट्टी का ढेर, पत्थर और सोना उसके लिए समान मूल्य रखते हैं। वह मित्र और शत्रु, अजनबी और सम्बन्धी, बुरे और भले लोगों के लिए समान रहता है। एकान्त स्थान में बैठकर ध्यान में लीन हो "वह योगी बिना हिले-डुले नासिका के अग्रभाग पर ध्यान केन्द्रित करता है।" "वायु-रहित स्थान में दीपक की लौ नहीं हिलती"—यह उपमा चिरकाल से योगी के लिए दी गई है जो अपनी बुद्धि को वश में कर लेता है और योग में लीन हो जाता है।[2] परन्तु उपनिषदों में ध्यान और चिन्तन ये दो ही ज्ञान के मार्ग बताए गए हैं—लेकिन भगवद्गीता में भक्ति अर्थात् ईश्वर के प्रति प्रेम और समर्पण भी एक मार्ग बताया गया है।[3] अर्जुन पूछते हैं कि क्या जो व्यक्ति अपने आपको ध्यान में एकदम

१. K. T. Telang द्वारा SBE., Vol. 8, पृ० 62 में अनूदित।

२. VI, 7-19। Gentz को लिखे एक पत्र में Wilh. v. Humboldt कहते हैं कि उसे ज्ञात हो गया होगा कि वह इस भारतीय कविता से कितना प्रभावित हुआ है। "क्योंकि मैं उन योगियों जैसा नहीं हूँ जिनका इसमें वर्णन किया गया है।" (Schriften von Friedrich von Gentz, G. Schlesier द्वारा प्रकाशित, Mannheim, 1840, V, पृ० 300)।

३. भगवद्गीता में भक्ति एक ऐसी चीज है जो हमें ईसाई विचारधारा की याद दिलाती है। अन्यत्र भी ईसाई विचारों से इतना साम्य मिलता है कि F. Lorinser ने अपने अनुवाद (Breslau, 1869) के एक अनुबन्ध में भगवद्-गीता पर ईसाई प्रभाव सिद्ध करने का प्रयत्न किया है। इस मत का एकाएक खंडन नहीं किया जा सकता। पर Lorinser की खोज स्वयं यह बात सिद्ध करती है कि यह एक समानान्तर विकास है जो धर्म के इतिहास की दृष्टि से बड़ा रोचक है, पर इसे एक का दूसरे से उधार लेना नहीं कहा जा सकता। Lorinser को विश्वास है कि "भगवद्गीता के लेखक को न केवल New Testament का ज्ञान ही था और न केवल उसने उसका उपयोग ही किया था; अपितु उसने अपने ग्रन्थ में सामान्य ईसाई विचारों और मतों का

लीन नहीं कर पाता, वह समाप्त हो जाता है ? इसके उत्तर में कृष्ण कहते हैं : "जिसने

समावेश भी किया।" इससे Lorinser सिद्ध करना चाहते हैं कि "प्राचीन भारतीय चिन्तन का बहुत आदर-प्राप्त अवशेष, अति सुन्दर और उत्कृष्ट उपदेश-काव्य, जिसे हम गैरईसाई दर्शन का बहुत बहुमूल्य पुष्प मान सकते हैं, बहुत हद तक अपने शुद्धतम तथा अतिप्रशंसित सिद्धान्तों के लिए" ईसाई-स्रोतों का ऋणी है। इस तरह की प्रवृत्ति से प्रेरित होकर Lorinser ने उन सभी बातों की तुलना कर डाली है जिनकी तुलना संभव है। पर Lorinser द्वारा Gospels से उद्धृत भगवद्गीता के समानान्तर शताधिक उद्धरणों में मैंने पचीस ही ऐसे उद्धरण पाए हैं जिनके आधार पर भगवद्गीता का Gospels से उधार लेने की बात सोची जा सकती है। पर एक भी ऐसा उदाहरण नहीं है जिसमें प्राप्त समानता उधार लेने की बात की पुष्टि करती हो। अतः आकस्मिक समानता की अपेक्षा उधार लेने की बात अधिक सम्भव नहीं जान पड़ती। ईश्वर के प्रति रहस्यात्मक प्रेम ईसाई धर्म में ही सीमित नहीं है। मैं केवल सूफीमत का उल्लेख करना चाहूँगा। इसमें भक्ति का स्थान ईसाई रहस्यवाद से किसी माने में कम नहीं है। आजतक के बहुत कम ऐसे भारतीय विद्या के विद्वान् होंगे जो Lorinser के उक्त मत से सहमत हों। A. Weber भी, जो स्वयं ('Griechen in Indien', SBA, 1890, 930 में) भक्ति का मूल ईसाई प्रभाव में मानते हैं, स्वीकार करते हैं कि Lorinser बहुत दूर चले गए हैं। E. W. Hopkins (India : Old and New, New york 1902, 146 आ॰) ही एक ऐसे विद्वान् हैं जिन्होंने 'भगवद्गीता ईसाई धर्म से प्रभावित है' इसके पक्ष में अपना निश्चित मत व्यक्त किया है। G. Howells (The Soul of India, London, 1913, 425 आ॰) ने गीता के सिद्धान्तों की New Testament के सिद्धान्तों से तुलना की है और समान बातों को ढूँढ़ने का प्रयत्न किया है पर यह नहीं कहा है कि गीता ईसाई धर्म पर आधारित है। अधिकतर विद्वान् इस बात पर सहमत हैं कि भक्ति के सिद्धान्त की व्याख्या प्राचीनतर भारतीय चिन्तन के प्रकाश में की जा सकती है और ऐतिहासिक आधार पर भगवद्गीता में ईसाई प्रभाव की प्रस्तुति संभव नहीं है। मि॰ J. Muir, Ind. Ant., 4, 1875, पृ॰ 77 आ॰; A. Barth, RHR., 11, 1885, पृ॰ 57 आ॰ (Oeuvres I, 370 आ॰) तथा The Religions of India; London 1889, 220 आ॰; J. von den Gheyn, Le Muséon 17, 1898. पृ॰ 57 आ॰; L. J. Sedgwick, JBRAS., 23, 1910, 111 आ॰; A. B. Keith, JRAS, 1907, 490 आ॰; Grierson, ERE. II (1909), पृ॰ 547 आ॰ और विशेषतः R. Garbe, Die Bhagavadgītā (2nd. ed.) पृ॰ 66 आ॰ तथा Indien und das Christentum, 1914, पृ॰ 227 आ॰।

सत् कर्म किया है वह कभी दुर्गति को नहीं प्राप्त होता।" जिसने इस लोक में अपना कर्तव्य निभाया है वह मृत्यु के बाद अपने कर्मों के अनुसार सुन्दर और पवित्र कुल में जन्म लेता है और अनेक जन्मों के बाद धीरे-धीरे योगी बनने की क्षमता प्राप्त कर लेता है। कृष्ण कहते हैं "सारे भक्तों में से जो श्रद्धा से पूर्ण होकर मेरी आराधना करता है—अन्तःकरण मुझमें लगा देता है मैं उसको सबसे अधिक भक्त मानता हूँ।"[1] ईश्वर की भक्ति से ईश्वर का ज्ञान तथा वास्तविक मोक्ष प्राप्त होते हैं। कृष्ण बार-बार यही उपदेश देते हैं :

"अनन्य रूप से यदि बड़ा दुराचारी भी मेरी भक्ति करता है तो उसे साधु पुरुष ही समझना चाहिए क्योंकि उसने सही निश्चय किया है। वह जल्दी ही धर्मात्मा हो जाता है और नित्य शान्ति प्राप्त कर लेता है। (तुम चाहो तो) हे कुन्ती के पुत्र ! मान सकते हो कि मेरा भक्त कभी नष्ट नहीं होता। क्योंकि हे पार्थ ! जिनका जन्म पाप के कारण हुआ है वे स्त्रियाँ, वैश्य और शूद्र भी मेरी शरण में आकर परम गति को प्राप्त करते हैं। तब फिर पुण्यात्मा ब्राह्मणों और राजर्षियों की क्या बात है जो मेरे भक्त हो गए हैं ?......"[2]

योगी के धर्मविहित कर्म और पुण्य भी ईश्वर की भक्ति से ही मूल्यवान् बनते हैं :

"सारे प्राणियों से द्वेष न करने वाला, मित्रता से युक्त, करुणावान्, ममता और अहंकार से रहित, सुख-दुःख में समान, क्षमावान्, निरन्तर संतुष्ट रहने वाला, योग युक्त, अपनी आत्मा को वश में करने वाला, दृढ़-निश्चयी, मुझमें मन और बुद्धि को समर्पित कर देने वाला जो मेरा भक्त है वह मेरा प्रिय है।

जिससे संसार नहीं भयभीत होता और जो स्वयं संसार से भयभीत नहीं होता, जो हर्ष, ईर्ष्या, भय और उद्वेग से मुक्त है—

इच्छारहित, पवित्र, आलस्य-रहित, पक्षपात-रहित, मानसिक व्यथा से मुक्त, सारे उद्यमों को त्याग देनेवाला जो मेरा भक्त है वह मुझे प्रिय है।"[3]

भगवद्गीता के आचारपरक उपदेशों का सारांश निम्नलिखित श्लोक में है जिसे व्याख्याकारों ने ठीक ही "सार श्लोक" कहा है :

"जो मेरे लिए कर्म करता है, जिसने मुझे अपना परम पुरुषार्थ समझ लिया है, जो मेरा भक्त है, जो आसक्ति से रहित है, जो सारे प्राणियों के प्रति वैरभाव से मुक्त है, हे पाण्डव ! वह मेरे पास आता है।"[4]

---

१. VI, 47।
२. IX, 30-33।
३. XII, 13-16।
४. XI, 55।

यहाँ भगवद्गीता के अनुसार मोक्ष या परम पुरुषार्थ अर्थात् ईश्वर के पास पहुँचना या उससे तादात्म्य भी वर्णित है। इसको "ईश्वर-जैसे पद तक आत्मा का उत्थान या व्यक्ति की ईश्वर के समक्ष नित्य स्थिति" समझना चाहिए।[१]

अतः इस लक्ष्य तक पहुँचने के लिए तीन मार्ग हैं—धर्म-विहित निष्काम कर्म का मार्ग, ज्ञान मार्ग और ईश्वर-भक्ति का मार्ग। कम-से-कम प्रयत्न यह किया गया है (यद्यपि यह प्रयत्न सर्वदा सफल नहीं रहा है) कि इन तीनों मार्गों को एक दूसरे से सुसंबद्ध कर दिया जाय! पहले मार्ग को तीसरे मार्ग के साथ मिलाया जा सकता है और ईश्वर के प्रेम से ईश्वर का ज्ञान प्राप्त होता है और इस प्रकार दूसरा मार्ग भी उन दोनों से सम्बन्धित हो जाता है। इस तरह कुछ हद तक भगवद्गीता के आचार-परक उपदेशों में प्राप्त विरोधों को दूर किया जा सकता है।[२]

पर इस कविता में कुछ अन्य विरोध बड़े स्पष्ट हैं। कृष्ण सर्वदा अपने को वैयक्तिक (सगुण) ईश्वर, जगत् का कर्ता तथा नित्य और अविनाशी होते हुए भी संसार में उत्पन्न अथवा धर्म की हानि उपस्थित होने पर अवतार धारण किया हुआ बताते हैं। यह बात भक्तिपरक श्लोकों (IV, 5 आ०) में विशेष रूप से मिलती है। दूसरे स्थानों पर वे कहते हैं कि वे ही सारे प्राणी रूप में वर्तमान हैं। तथा सारे प्राणी उनमें वर्तमान हैं (VI, 30 आ०)। "तागे में पिरोयी गई मणियों की तरह सब कुछ मुझमें पिरोया गया है। हे कौन्तेय! मैं जल में रस, सूर्य और चन्द्र में प्रभा, वेदों में ओम्, आकाश में शब्द और मनुष्यों में पौरुष हूँ।" आदि, अदि (VII, 7 आ०)। ईश्वर संसार से परे होते हुए भी इसमें व्याप्त है—इस सिद्धान्त को परम रहस्य बताया गया है (IX, 1 आ०)। अपि च, श्लोकों का एक तीसरा वर्ग ऐसा है जिसमें कृष्ण का नाम ही नहीं लिया गया है अपितु एकाएक उपनिषदों के अद्वैतवाद की तरह संसार के चरम और एकमेव तत्व ब्रह्म (नपुंसक लिंग में) की चर्चा की गई है। और, वेदों की करीब-करीब निन्दा करने वाले श्लोकों (II, 42 आ०) के साथ-ही-साथ हमें दूसरे श्लोक भी मिलते हैं जो वेदविहित यज्ञ करने का समर्थन करते हुए यज्ञ को 'कामधेनु' तक कह डालते हैं (III, 10)। इसको बहुधा प्रशंसित 'निष्काम कर्म' के साथ समन्वित करना कठिन है।

निष्काम कर्म को कहीं-कहीं योग कहा गया है। इस योग शब्द का कई अर्थों में प्रयोग हुआ है। साधारण रूप से भारतीय साहित्य में योग से समाधि के सिद्धान्त तथा उन पद्धतियों का बोध होता है जिनके द्वारा इन्द्रिय-गोचर जगत् से हट कर

१. Garbe, Die Bhagavadgītā (2nd ed.) P. 65।

२. Otto Strauss, Ethische Probleme aus dem "Mahābhārata," Firenze 1912 (GSAI, 24, 1911) पृ० 309 आ० में गीता के आचारपरक सिद्धान्तों का सारांश परस्पर विरोधी सिद्धान्तों के समन्वय के रूप में उपस्थित करते हैं।

मनुष्य ईश्वर में एकदम लीन होता है। इसी अर्थ में भगवद्गीता को योगशास्त्र कहा गया है। योग के इस व्यावहारिक दर्शन की मनोवैज्ञानिक तथा तत्वमीमांसा-सम्बन्धी भूमिका सांख्य में है।[1] सांख्य पुरुष और प्रकृति में भेद, पुरुष की अनेकता, तथा प्रकृति की स्वतन्त्रता एवं नित्यता प्रतिपादित करता है और मूल प्रकृति से विकसित विश्व के विकास की व्याख्या करता है। ये सारे सिद्धान्त वेदान्त और उपनिषदों में प्रतिपादित एकता के सिद्धान्त से बिलकुल भिन्न हैं। इसके बावजूद ब्रह्म का प्रतिपादन करने वाले श्लोक विश्व की एकता का प्रतिपादन करते ही हैं।

इन सारे विरोधों की कैसे व्याख्या की जाय ? विद्वान् इस बात पर एकमत नहीं हैं। कुछ इतना ही कह कर संतोष कर लेते हैं कि ये विरोध सिर्फ इसलिए हैं कि भगवद्गीता कोई सुसंबद्ध दार्शनिक ग्रंथ नहीं है। यह तो सिर्फ एक रहस्यात्मक कविता है और Franklin Edgerton के शब्दों में, जो इस मत के बहुत बड़े सुसंबद्ध समर्थक हैं, यह "तार्किक और दार्शनिक न होकर काव्यात्मक, रहस्यात्मक तथा भक्तिपरक है।" W. von Humboldt ने पहले ही कहा है: "यह एक ऋषि है जो अपने ज्ञान और अनुभव की पूर्णता और अन्तःप्रेरणा से बोलता है न कि किसी संप्रदाय में दीक्षित दार्शनिक है जो सीमित पद्धति के द्वारा अपने विषय का विभाजन कर के विचारों की शृंखला के माध्यम से अपने सिद्धान्तों तक पहुँचता है।"[2] दूसरी ओर दूसरे सम्प्रदाय मानते हैं कि रहस्यात्मक कविता

---

१. V, 4 आ० में जोर देकर कहा गया है कि सांख्य और योग एक हैं। XVIII, 13 में 'सांख्ये कृतान्ते' का 'सांख्य प्रस्थान' के अलावा कोई दूसरा अर्थ नहीं हो सकता। XVIII, 19 में 'गुण संख्यान' का शंकर ने कापिल शास्त्र अर्थ किया है। सांख्य शास्त्र के प्रवर्तक कपिल को सिद्धों में प्रथम माना गया है (X,26)।

२. "Uber die unter dem Namen Bhagavadgītā leckamte Episode des Mahābhārata," 1825 (Gesammelte Schriften, V, पृ० 325)। निम्नलिखित विद्वान् भी करीब-करीब वही मत मानते हैं: K. T. Telang, SBE, Vol. 8, पृ० 11 आ०; E. W. Hopkins, JRAS 1905, पृ० 384 आ० तथा Cambridge History I, 273; L. v. Schroeder अपने जर्मन अनुवाद की भूमिका में; B. Faddegon, Caṃkara's Gītābhāṣya, toegelicht en beoordeeld, Diss, Amsterdam 1906, पृ० 12 आ०; D. von Hinloopen Labkerton, ZDMG. 66, 1912, 603 आ०; R. G. Bhandarkar, Vaiṣnavism, Śaivism etc, पृ० 157 आ०; O. Strauss, Ethische Problem aus dem Mahābhārata (GSAI, 24, 1911) पृ०310; ZDMG. 67, 1913, 714 आ०; A. B. Keith, JRAS;

की भी सीमाएँ होती हैं और गीता के विरोधों की अधिक अच्छी व्याख्या यह मान कर की जा सकती है कि यह कविता हमारे सामने अपने मूल रूप में नहीं बल्कि महाभारत के बहुत से भागों की तरह प्रक्षेपों और संस्करणों से युक्त होकर इस वर्तमान रूप में हमारे सामने आई है। कुछ विद्वानों ने माना है कि भगवद्गीता मूल रूप में 'सर्वं खलु इदं ब्रह्म' का प्रतिपादन करने वाली कविता थी जिसका विष्णु के भक्तों ने बाद में सगुण ईश्वर का प्रतिपादन करने वाली कविता के रूप में पुनः संस्करण किया। यह बहुत असम्भव बात मालूम होती है क्योंकि सारे विरोधों के बावजूद पूरी गीता का स्वरूप मुख्यतः सगुण ईश्वरवादी है। गीता का ईश्वर मूलतः सविग्रह ईश्वर है जो उपदेशक के रूप में मानव रूप धारण करके अपने भक्तों की भक्ति की कामना करता है। उक्त बात को मान कर R. Garbe[1] ने अपने अनुवाद में उन सभी श्लोकों को, जिन्हें वे अप्रामाणिक अर्थात् वेदान्त दर्शन और परम्परानुगत ब्राह्मण-धर्म की दृष्टि से प्रक्षिप्त समझते थे, महीन टाइप में छापा इस तरह मूल कविता का स्वरूप उपस्थित करने का सीधा प्रयत्न किया। पहले मैं Garbe से पूर्ण सहमत था।[2] पर बार-बार गीता का अध्ययन करने के बाद तथा Garbe के द्वारा अलग किए गए श्लोकों की पूरी छानबीन के बाद अब इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि मूल कविता भी शुद्ध सगुण ईश्वर का प्रतिपादन नहीं करती अपितु ऐसे सगुण ईश्वर का प्रतिपादन करती है जो 'सर्वं खलु इदं ब्रह्म' की भावना से सपृक्त है। ऐसे सभी श्लोकों को, जिनमें कृष्ण अपने को विश्व-व्याप्त बतलाते हैं (उदाहरण के लिए VII, 7 आ० के सुन्दर श्लोक), प्रक्षिप्त घोषित करना न्याय-संगत है इस बात में मैं अब विश्वास नहीं करता। दूसरी ओर मैं अब भी Garbe से सहमत हूँ कि वे श्लोक, जिनमें एकाएक ब्रह्म (नपुंसक लिंग में) का वर्णन है पर कृष्ण की कोई चर्चा नहीं है, प्रक्षिप्त

1913, पृ० 197; 1915, पृ० 548; H. Oldenberg, NGGW; 1919, 321 आ० तथा Das Mahābhārata, पृ० 39, 43, 70 आ०; J. N. Farquhar, Outline of the Religious Literature of India, London 1920, पृ० 90 आ०; H. Jacobi. DLZ, 1921, 715 आ०; 1922, 266 आ०; F. Edgerton, The Bhagavad Gītā interpreted, Chicago 1925।

१. अपने भगवद्गीता के अनुवाद में। और भी दे० ERE. II, 535 आ० तथा DLZ, 1922, 98 आ०; 605 आ०।

२. F. O. Schrader, ZDMG. 64, 340 तथा A. Hillebrandt, GGA, 1915, पृ० 628 भी Garbe से सहमत हैं। Grierson भी (ERE., II, 540 आ०; Ind. Ant. 37, 1908, 257) Garbe से इस बात में सहमत हैं कि वे श्लोक, जिनमें ब्राह्मण धर्म का उपदेश है, गीता के बाद के अंश हैं।

हैं (उदा० II, 72; V, 6, 7, 10; VII, 29; VIII, 4 इत्यादि)। इसी प्रकार वे भी श्लोक हैं जिनमें यज्ञ-याग करने का उपदेश है या उनकी बड़ाई की गई है (उदा० III, 9-18; IX, 16-19 आदि)। मैं यह भी सोचता हूँ कि मूल भगवद्गीता काफी छोटी थी और वर्तमान रूप में यह ग्रंथ Garbe की मान्यता से कहीं अधिक प्रक्षेपों और परिवर्धनों से युक्त है। भगवद्गीता में १८ अध्याय हैं, ठीक उतने ही अध्याय जितने महाभारत के पर्व और जितनी पुराणों की संख्या। यह बात संदेह उत्पन्न करनेवाली है।[1] गीता का ग्यारहवाँ अध्याय, जहाँ कृष्ण अर्जुन को अपना ईश्वरीय रूप दिखाते हैं, पुराणों जैसा लगता है; पहले अध्यायों के कवि की कृति जैसा नहीं मालूम पड़ता। मूल गीता का लेखक महान् कवि था ऐसा मेरा विश्वास है। इसी कारण मुझे XI, 26 आ० जैसे श्लोकों को उसकी रचना मानने में हिचकिचाहट होती है। इन श्लोकों में इतिहास-काव्य के वीर लोग ईश्वर की डाढ़ों के बीच में अटके हुए दिखाए गए हैं। इस दृश्य के द्वारा दूसरे अध्याय में वर्णित शत्रु को मारने के बहानों में और वृद्धि हुई है। वहाँ कहा गया है कि शत्रु को मारने में अर्जुन को सोच-विचार नहीं करना चाहिए क्योंकि वास्तव में "(ईश्वर ने) उनको पहले से ही मार रखा है।"[2]

भगवद्गीता मूल वीर-काव्य से सम्बन्धित नहीं थी—इसमें शायद ही सन्देह हो। यह कल्पना करना कठिन है कि इतिहास-काव्य का कोई कवि अपने पात्रों को युद्ध के वर्णन के बीच में ६५० श्लोकों वाले दार्शनिक वादविवाद में लगा चित्रित करे। बहुत सम्भव है कि मूल इतिहास-काव्य में अर्जुन और नायक एवं सारथि (न कि ईश्वर) कृष्ण के बीच केवल बहुत छोटा-सा संवाद रहा हो। मानों कि यह संवाद बीज था जो कि वर्तमान उपदेश—कविता के रूप में बढ़ा।[3] स्वभावतः मूल रूप में यह

---

१. मि० Hopkins, Great Epic, पृ० 371।

२. वे विद्वान् भी, जो Garbe के मतों को अस्वीकार करते हैं, गीता को एकात्मक ग्रन्थ नहीं मानते। Hopkins (Great Epic, पृ० 215, 234 आ०) गीता को "स्पष्टतः···किसी आधुनिक हाथों से पुनः लिखित" रचना कहते हैं। Oldenberg भी यह सम्भव मानते हैं कि प्राचीनतम गीता II, 38 पर समाप्त हो जाती थी और XIII से XVIII अध्याय परिशिष्ट हैं (NGGW, 1919, 333 आ०, 336 आ०)। दे० Strauss, Ethische Probleme, पृ० 312 आ० भी।

३. H. Jacobi (ZDMG, 72, 1918, 323 आ०) ने गीता में उन श्लोकों को (पहले और दूसरे अध्यायों के) ढूँढ़ने का प्रयत्न किया है जो प्राचीन इतिहास-काव्य के अंग थे। पर यह असम्भव नहीं है कि कृष्ण और अर्जुन के बीच प्राचीन वीर-काव्य में कोई संवाद ही नहीं रहा हो। पूरी की पूरी भगवद्गीता इतिहास-काव्य से स्वतन्त्र उपनिषद्-ग्रन्थ के रूप में थी और बाद में इतिहास-काव्य में जोड़ दी गई।

उपदेशात्मक कविता भागवत सम्प्रदाय का धर्म-ग्रन्थ रहा होगा जिसमें सांख्य को आधार मानकर निष्काम कर्मयोग के सिद्धान्त को भक्ति से संपृक्त करके प्रतिपादित किया गया रहा होगा। शिलालेखों से प्रमाण मिलता है कि ईसा-पूर्व दूसरी शताब्दी के प्रारम्भ में भी गान्धार के ग्रीक लोगों में भागवत धर्म के अनुयायी थे।[१] यह मानना शायद साहस नहीं होगा कि प्राचीन भगवद्गीता शायद उस समय लिखी गई होगी जब कि भागवत सम्प्रदाय का कोई उपनिषद् लिखा गया होगा।[२] इसकी भाषा, शैली और छंद भी यह सिद्ध करते हैं कि यह महाभारत का अपेक्षाकृत प्राचीन अंश होगी। इतिहास-काव्य के परवर्ती भागों में गीता का निर्देश मिलता है[३] और अनुगीता (XIV, 16-51) तो निश्चय ही गीता की अनुकृति तथा उसके विषयों पर विस्तार से आगे विचार करनेवाली रचना है। इसमें भगवद्गीता से कहीं अधिक तरह के सिद्धान्त उल्लिखित हैं।

कवि बाण (७ वीं शताब्दी ई०) को भगवद्गीता महाभारत के अंश के रूप में ज्ञात थी[४] और उपनिषदों तथा वेदान्त-सूत्रों के साथ यह शंकर के दर्शन की एक आधार-भूत कृति थी। ईसाई शताब्दी के आरम्भ में ही शायद सनातनी ब्राह्मणों के हाथों गीता को उसका वर्तमान रूप दिया जा चुका था। आज तक उसका यह रूप चला आ रहा है और हिन्दुओं की यह सबसे अधिक लोकप्रिय धार्मिक पुस्तक बनी हुई है। इसकी बहुत अधिक लोकप्रियता इस बात से है कि परस्पर विरोधी दार्शनिक सिद्धान्त और धार्मिक मत इसमें समन्वित हैं जिससे सारे सम्प्रदायों और मतों के माननेवाले इसका उपयोग कर सकते हैं और आज भी घोर सनातनी ब्राह्मण इसका

---

१. दे० J. H. Marshall, JRAS, 1909, पृ० 1053 आ०; J. F. Fleet, वही, 1087 आ०; D. R. Bhandarkar, JBRAS, 23, 1910, 104 आ०; R. G. Bhandarkar, Ind. Ant. 41, 1912, पृ० 13 आ०; Vaiṣṇavism, Śaivism etc, पृ० 3 आ०; H. Raychaudhuri, Early History of the Vaiṣṇava Sect, कलकत्ता 1920, पृ० 13, 52 आ०, 58 आ०।

२. K. T. Telang (SBE, Vol. 8, पृ० 34) के अनुसार गीता "तीसरी शताब्दी ई० पू० के पहले" की रचना है। R. G. Bhandarkar (Vaiṣṇavism, Śaivism etc. पृ० 13) के अनुसार यह "चौथी शताब्दी ई० पू० के प्रारम्भ के बाद की" रचना नहीं है। मैं Edgerton से (ऊपर दे०) सहमत हूँ कि "हम इतना ही कह सकते हैं कि शायद यह ईसाई संवत् के आरम्भ के पूर्व लिखी जा चुकी थी पर यह काल ईसाई संवत् से कुछ शताब्दियों से अधिक पूर्व नहीं होगा।"

३. XII, 346, 11, हरिगीता के साथ तथा XII, 348, 8।

४. K. T. Telang, SBE, Vol. 8, पृ० 28।

उतना ही आदर करता है जितना कि ब्रह्मोसमाज के अनुयायी तथा एनीबेसेन्ट के नेतृत्व में चलनेवाले विश्वासी थियोसोफिस्ट।

पर यह मानना कठिन होगा कि भगवद्गीता शुरू से ही समन्वयवाद के आधार को लेकर चली होगी क्योंकि समन्वयवाद धीरे-धीरे बाद के समय में ही प्रकाश में आया। यह निश्चित है कि प्राचीन और प्रामाणिक गीता सच्चे और महान् कवि की रचना थी। इसके काव्यगत मूल्य, इसकी सशक्त भाषा, बिम्बों और रूपकों की छटा, सारी रचना में व्याप्त प्रेरणा का स्वर—इन बातों के कारण प्रभाव ग्रहण कर सकने योग्य मस्तिष्क पर इसने सर्वदा प्रभाव डाला है। मुझे विश्वास है कि काव्य-सौन्दर्य और नैतिक मूल्यों के कारण यह रचना और भी सम्मान पाती यदि प्रक्षेपों के कारण इसका रूप बिगाड़ न दिया गया होता।[1]

भागवत सम्प्रदाय का एक अन्य ग्रन्थ नारायणीय है (XII, 334-35)। निश्चय ही यह भगवद्गीता के बाद की रचना है पर इसे भी प्रक्षेपों से बढ़ाया गया है।[2] यह बिलकुल पुराण-शैली की रचना है जिसके अनुसार भक्ति और ईश्वर की कृपा से पूर्णत्व की प्राप्ति का होना बताया गया है। ईश्वर को यहाँ नारायण बताया गया है। यहाँ भी भागवत धर्म, सांख्य दर्शन और योग को वेदान्त के मतों से संयुक्त करके दिखाया गया है। नारायण के पुण्यात्मा भक्तों के स्वर्ग "श्वेतद्वीप" का बड़ा अविश्वसनीय ढंग से वर्णन किया गया है :

नारद मुनि, जो भगवान् के बड़े श्रद्धालु भक्त हैं, एकमेव देवता नारायण को उनके असली रूप में देखना चाहते हैं। इसलिए वे योग की शक्ति से ऊपर उठकर दिव्य पर्वत मेरु पर पहुँचते हैं। वहाँ से उत्तर-पश्चिम की ओर दृष्टि दौड़ाने पर उन्हें क्षीरसागर के उत्तर में मेरु से ३२,००० योजन दूर सुप्रसिद्ध श्वेतद्वीप दिखाई देता है। उस द्वीप में वे देखते हैं "इन्द्रियों से रहित श्वेत पुरुष जो भोजन नहीं करते, जिनकी आँखों की पलकें नहीं गिरतीं, जिनके शरीर से बड़ी अच्छी सुगन्धि निकलती

---

१. प्रायः इस बात की ओर ध्यान दिलाया गया है कि सुन्दरताओं और उच्च विचारों के बावजूद गीता में अनेक कमजोरियाँ हैं। मि० O. Böhtlingk, Bemerkungen Zur Bhagavadgītā (BSGW, 1897); E. W. Hopkins, Religions of India, पृ० 390, 399 आ०, R. Garbe द्वारा Die Bhagavadgītā, पृ० 16 पर अनुमोदन के साथ उद्धृत; तथा V. K. Rajwade, Bhandarkar Com. Vol., पृ० 325 आ०।

२. दे० R. G. Bhandarkar, Vaiṣṇavism Śaivism etc., पृ० 4 आ०, Grierson, Ind. Ant. 37, 1908, 251 आ, 373 आ०। Deussen द्वारा Philosophische Texte des Mahābhāratam, पृ०748 आ०, में जर्मन भाषा में अनूदित, डच भाषा में अनुवाद C. Lecoutere द्वारा Mélanges Charles de Harlez, Leyden, 1896, पृ० 162 आ० में।

है, जो सारे पाप से मुक्त हैं, जिनको देखकर पापी लोग त्रस्त हो जाते हैं, जिनके शरीर की हड्डियाँ वज्र की तरह कठोर हैं, आदर और निरादर के प्रति जो उदासीन हैं, शरीर से मानों वे स्वर्ग के बालक लगते हैं, जिनका तेज उज्ज्वल है और सिर छाते के आकार का है। उनका स्वर वर्षा की धारा के स्वर जैसा है, उनके चार समान अण्डकोष हैं, पैर कमल-पत्र की तरह हैं, साठ सफेद दाँत और आठ मसूड़े हैं, वे सूर्य-सदृश अपने चेहरे को अपनी जीभ से चाटते हैं और ईश्वर-भक्ति से वे भरे हैं।"[१]

यह स्पष्ट है कि श्वेत-द्वीप, देव-पर्वत मेरु और क्षीरसागर कल्पना के भूगोल में ही मिलते हैं न कि ऐतिहासिक भूगोल में। कुछ एक विद्वानों ने क्षीरसागर को इसिक-कुल झील या बलखश झील से, श्वेतद्वीप को उत्तर में स्थित "सफेद लोगों की भूमि" से, जिसमें Nestorian ईसाई लोग रहते हैं,[२] मिलाने की कोशिश की है जिससे कि नारायणीय में ईसाई प्रभाव हमें मानना पड़े। मेरे मन में श्वेत द्वीप का वर्णन ईसाई Eucharist की याद तो नहीं पर वैकुण्ठ, गोलोक, कैलास तथा अमिताभ बुद्ध के स्वर्ग सुखावती की याद अवश्य दिलाता है।

यद्यपि महाभारत के अधिकतर दार्शनिक प्रकरणों में सांख्य और योग स्पष्ट सामने आते हैं पर फिर भी हमें सर्वत्र ऐसे प्रक्षिप्त अंश मिलते हैं जहाँ वेदान्त प्रतिपादित किया गया है तथा कुछ सनत्सुजातीय (V. 41–46) जैसे लम्बे अंश भी प्रक्षिप्त हैं जो शुद्ध वेदान्त का प्रतिपादन करते हैं।[३] जो भी हो, काव्यात्मक मूल्य का

---

१. XII, 335, 6–12। इस प्रकार की जीभ का होना बुद्धके ३२ लक्षणों में से भी एक माना गया है पर बुद्ध के सिर्फ चालीस ही सफेद दाँत हैं, उदा० सुत्त-निपात, सेलसुत्त (SBE, Vol 10, II, पृ० 101)।

२. मि० J. Kennedy, JRAS, 1907: R. Garbe, AR, 16, 1913, 516 आ० तथा Indien und das Christentum, Tübingen 1914, पृ० 192 आ०; Grierson, ERE, II, पृ० 549। दूसरी ओर दे० Winternitz, Oesterreich, Monatsschrift fur den Orient, 41, 1915, पृ० 185 आ० तथा H. Raychaudhuri, Early History of the Vaiṣṇava Sect, पृ० 79 आ०।

३. महाभारत में आए दार्शनिक सिद्धान्तों के लिए दे० E. W. Hopkins, The Great Epic of India, पृ० 85–190; J. Dahlmann, Die Sāṁkhya Philosophie als Naturlehre und Erlösungslehre nach dem Mahābhārata, Berlin 1902; P. Deussen, AG Ph. I, 3, पृ० 8–144। Deussen और Dahlmann के विपरीत मैं "इतिहास-काव्य के दर्शन" को उपनिषदों के दर्शन तथा परवर्ती दर्शनों के बीच "संक्रान्तिकालीन दर्शन" कहना उचित नहीं समझता। मूल इतिहास-काव्य का दर्शन से कोई सम्बन्ध नहीं है, पर "इतिहास-काव्याभास" में विभिन्न कालों के दार्शनिक सिद्धान्त का मिश्रण मिलता है।

जहाँ तक प्रश्न है महाभारत में कोई ऐसा दार्शनिक अंश नहीं है जो भगवद्गीता की थोड़ी-सी भी समता प्राप्त कर सके।

दूसरी ओर भारतीय कविता के बहुत-से बहुमूल्य रत्न उन उपदेशात्मक अंशों में पाए जाते हैं जिनमें आचार-सम्बन्धी प्रश्नों पर विचार किया गया है। इनमें एक बहुचर्चित प्रश्न मनुष्य के भाग्य और कर्म के सम्बन्ध के बारे में है। अथवा इन कविताओं में किन्हीं खास दार्शनिक या धार्मिक मतों से अलग होकर आचार के सामान्य सिद्धान्तों पर विचार किया गया है। महाभारत के इन श्लोकों में सौन्दर्य और ज्ञान का जो भाण्डार छिपा पड़ा है उसका एक छोटा-सा नमूना निम्नलिखित अनुवाद से मिल सकता है :

"शत्रु के तीक्ष्ण अस्त्र से जो घाव होता है वह समय पाकर ठीक हो जाता है। लकड़हारा पेड़ को काटता है, पर पेड़ फिर से पनपने लगता है और बढ़ने लगता है। पर कठोर और छेद देने वाले शब्दों से पैदा किया गया घाव कभी नहीं भरता।"

"देवता लोग जिसकी रक्षा करना चाहते हैं उसकी चरवाहों की तरह हथियार लेकर नहीं रक्षा करते। जिनपर उनकी कृपा होती है उनका वे मार्ग-दर्शन करते हैं और उन्हें बुद्धि देते हैं। पर जिनपर वे क्रुद्ध हो जाते हैं उनका सारा ज्ञान वे हर लेते हैं। ये मूर्ख मनुष्य, जिनका दिमाग विक्षिप्त हो गया है, सब कुछ विपरीत और बदला हुआ ही देखते हैं। भला उनको बुरा दिखाई देता है, मूर्खता उनके लिए ज्ञान बन जाती है।"

"क्षमा से क्रोध को जीतो, दया से पाप पर विजय करो। कंजूसी को दान से और झूठ को सच से मार भगाओ।"

"कठोर वचन का सामना धैर्य से करो। किसी मनुष्य के प्रति द्वेष न करो। कठोर वचन और क्रोधपूर्ण शब्दों का मृदु वचन और मधुर शब्दों के साथ स्वागत करो। किसी के द्वारा ताडित होने पर उसका बदला मत लो। इस प्रकार जो शत्रु से व्यवहार करते हैं उनका देवता भी सम्मान करते हैं।"

"यदि शत्रु भी सहायता की याचना करे तो उसे क्रोध से मत भगाओ। पेड़ को काटने के लिए आए व्यक्ति को भी पेड़ छाया देता ही है।"

"तुम दूसरों के दोष को, भले ही वह सरसों के दाने जितना ही क्यों न हो, तो देख लेते हो, पर अपना दोष, भले वह बेल के फल जितना भी हो तो भी, तुम्हें नहीं दिखाई पड़ता।"[1]

"मनुष्य को सारी शक्ति लगाकर संकल्पित शुभ कर्म करना ही चाहिए, पाप से पाप को जीतने का प्रयत्न न करो, अपितु दूसरों के प्रति सर्वदा दयालु बनो।"

"(दूसरों द्वारा किए गए) शुभ और दयापूर्ण कर्मों की याद करो, पर बुरे और कष्टदायक कर्मों को भूल जाओ। दूसरों की भलाई करते जाओ पर कभी उसके प्रतिदान की आशा न करो।"

---

१. Matthew, Vii, ३ आ०।

"लाभ या यश के लिए अथवा भयभीत होकर भला आदमी अन्याय से दूर नहीं भागता तथा पुण्यात्मा पुण्य का वरण नहीं करता। उनके भीतर कोई आवाज-सी होती है जो कहती है कि अपना कर्तव्य पूरा करना चाहिए।"

"तुम्हारे कर्म दूसरों को अच्छे या बुरे लगते हैं तो तुम्हें सर्वदा वैसा करना चाहिए जैसा कि तुम चाहते हो कि दूसरे तुम्हारे साथ करें।"[1]

हरिवंश : महाभारत का परिशिष्ट[2]

पहले के प्रकरणों में जो कुछ कहा गया है उस से महाभारत के अठारह पर्वों के बारे में काफी पता चल गया होगा। पर, भारतीय लोग हरिवंश को, जो वास्तव में एक पुराण है और कभी-कभी इसे हरिवंश पुराण कहा भी जाता है, महाभारत का एक भाग मानते हैं। परन्तु भारतीयों ने भी इसे महाभारत का उन्नीसवाँ पर्व न मान कर 'खिल' अर्थात् महाभारत का एक परिशिष्ट ही माना है। यह सही है कि इस खिल में १६३७४ श्लोक हैं—यों कहें कि यह इलियड और ओडेसी दोनों के सम्मिलित आकार से भी बड़ा है। पर इस का साहित्यिक मूल्य इस के आकार के साक्षात् समानुपात में नहीं है। सब से बड़ी बात तो यह है कि यह 'कविता' नहीं हैं, किसी अर्थ में यह एक कवि की रचना नहीं है अपितु विष्णुदेव की बड़ाई के उद्देश्य से एकत्र किए गए पुराण-आख्यानों, दंत-कथाओं और सूक्तों का ढेर या येन केन प्रकारेण सम्बन्धित ग्रंथों का समूह है। हरिवंश एक संग्रहकर्ता की भी कृति नहीं है। इस का अन्तिम तिहाई भाग निश्चय ही इस परिशिष्ट का भी परिशिष्ट है और बाकी के भागों में भी बहुत से अंश शायद अलग-अलग काल में इस ग्रंथ में जोड़े गए हैं।

हरिवंश का महाभारत के साथ सम्बन्ध भी आनुषंगिक है और यह सम्बन्ध केवल इस बात से है कि सम्पूर्ण महाभारत के प्रवक्ता वैशम्पायन, जिन्होंने जनमेजय को इसे सुनाया था, हरिवंश के भी प्रवक्ता माने जाते हैं। महाभारत की भूमिका-कथा के प्रसंग में हरिवंश के प्रारम्भ में उग्रश्रवा से भारत लोगों की सुन्दर कथाओं को सुन लेने के बाद शौनक प्रार्थना करते हैं कि वे वृष्णि और अंधक वंशों की कथा सुनाएँ जिन से कृष्ण का सम्बन्ध रहा है। इस पर उग्रश्रवा ने कहा कि ठीक यही प्रार्थना महाभारत सुन लेने के बाद जनमेजय ने वैशम्पायन से की थी और वैशम्पायन

---

१. V, 33, 77, 80 आ०, 34, 41; III, 194, 7; V, 35, 11; XII, 146, 5; I, 74, 82; III; 206, 44; II, 72, 7; XII, 158, 58; V, 38, 72 (राय का संस्करण), J. Muir द्वारा Metrical Translations, पृ० 93, 9, 88, 110, 85, 81 तथा 84 पर अनूदित।

२. मि० A. Holtzmann, Das Mahābhārata, II, पृ० 272-298 तथा E. W. Hopkins, Gleanings from the Harivaṁśa, Festschrift Windisch, पृ० 68 आ० में। हरिवंश का फ्रेंच अनुवाद S. A. Langlois ने पेरिस से 1834-35 में प्रकाशित कराया।

ने जो कुछ कहा था वही अब मैं तुम्हें सुनाता हूँ। इस हरिवंश में आगे जो कुछ कहा गया है उसे वैशम्पायन ने कहा है। इस के अलावा हरिवंश के आरम्भ के कुछ श्लोकों में तथा अंत के पूरे के पूरे लम्बे अध्याय में[1] हरिवंश-सहित महाभारत की लम्बी-चौड़ी प्रशस्ति गाई गई है तथा पूरे के पूरे इतिहास-काव्य के पठन और श्रवण से होने वाले धार्मिक पुण्य का महत्त्व बतलाया गया है। सिर्फ इतनी ही बात हरिवंश में इस के महाभारत के साथ सम्बन्ध के बारे में कही गई है। जहाँ तक वर्ण्य विषय का सम्बन्ध है, हरिवंश का महाभारत के साथ उतना ही सम्बन्ध है जितना कि महाभारत का पुराणों के साथ। क्यों कि बहुत-से आख्यान, खास कर महाभारत में कहे गए ब्राह्मणों के आख्यान और कथाएँ, हरिवंश और पुराणों में विभिन्न रूपों में मिलते हैं।

हरिवंश तीन बड़े-बड़े पर्वों में विभाजित है। पहले को हरिवंशपर्व कहते हैं। 'हरिवंश'[2] यह नाम, जो कि पूरे परिशिष्ट का नाम है, वास्तव में इसी पहले पर्व के बारे में सही है। पुराणों की तरह इस का भी प्रारम्भ सृष्टि की उत्पत्ति के अस्पष्ट विवरण से होता है और सभी तरह के पुराण-वर्णन इस में आते हैं जैसे कि ध्रुव की कथा, जो ध्रुवतारा बन गया (८२ आ०), दक्ष और उन की पुत्रियों की कथा, जो दैत्यों तथा देवताओं की माताएँ हुईं (१०१ आ०) इत्यादि। वेद और यज्ञ के विरोधी वेन और मनुष्यों के प्रथम सम्राट् वेन के पुत्र पृथु की कथा विस्तार से कही गई है।[3] विश्वामित्र और वसिष्ठ (७०६ आ०) के आख्यान—जैसे अनेक आख्यान सूर्यवंश (अर्थात् राजा इक्ष्वाकु और उन के वंशधरों के, जिन का सम्बन्ध मूलतः सूर्य देवता से है, वंश) के वर्णन के प्रसंग में बतलाए गए हैं। इस वंशावली के साथ बिना किसी सम्बन्ध के पितरों के श्राद्ध से सम्बन्धित एक कर्मकाण्डी अंश भी जोड़ दिया गया है। इस के बाद चन्द्रवंश (१३१२ आ०) का वर्णन आता है जो सोम (चन्द्रमा) के पुत्र अत्रि से शुरू होता है। सोम का एक पौत्र पुरूरवा था। इस का उर्वशी के साथ प्रेम-व्यापार बड़े अनगढ़ ढंग से वर्णित है। यह वर्णन शतपथ ब्राह्मण से काफी मिलता-जुलता है। पुरूरवा के वंशधरों में नहुष और ययाति भी आते हैं। ययाति का पुत्र यदु यादवों का मूल पुरुष था। वसुदेव यादवों के वंश में उत्पन्न हुए और उन के पुत्र कृष्ण के रूप में विष्णु ने धरती पर अवतार लिया। मानव कृष्ण की वंशावली के बाद गानों की एक परम्परा (२१३१ आ०) आती है जिस में केवल विष्णु की स्तुति है और कुछ हद तक कृष्ण का दैवी इतिहास दिया गया है।

हरिवंश का दूसरा पर्व विष्णुपर्व कहलाता है जिस में मानव-रूपधारी विष्णु अर्थात् कृष्ण की ही प्रायः कथा कही गई है। जन्म, बाल्यकाल, वीरतापूर्ण कर्म, मानव रूप-धारी के प्रेम-व्यापार, ग्वालों के देवता की कथाएँ विस्तार से यहाँ कही गई हैं। कुछ पुराणों में भी इन का थोड़े-बहुत विस्तार से उल्लेख मिलता है जिन के द्वारा

---

१. ३२३ अध्याय।

२. विष्णु के अगणित नामों में से 'हरि' नाम अधिक प्रचलित है।

३. पृथूपाख्यान, अध्या० 4-6, श्लो० 257-405।

प्रत्येक हिन्दू कृष्ण के नाम से बहुत अधिक परिचित हो गया है। विष्णु की पूजा करने वालों में सर्वोच्च एवं सब से अधिक बुद्धिमान् लोग गीता के पवित्र सिद्धान्तों के प्रतिपादक के रूप में कृष्ण की पूजा करते हैं। पर हरिवंश और पुराणों में वर्णित आख्यानों के कृष्ण कभी बड़े देवता के रूप में और कभी पूर्णतम मानव के रूप में आज तक सारे भारत में लाखों हिन्दुओं के आराध्य देव बने हुए हैं। आख्यानों के इस देवता के बारे में ही ग्रीक देश के निवासी मेगस्थनीज ने कहा था कि वह 'भारती हरक्युलीस' है; न कि महाभारत के उस कृष्ण के बारे में जो पाण्डवों का चालाक मित्र था। साहित्य और धर्म के इतिहासों की दृष्टियों से समान महत्व रखने वाले कृष्ण-सम्बन्धी आख्यानों की एक झलक उपस्थित करने की दृष्टि से हम यहाँ पर हरिवंश के दूसरे पर्व के वर्ण्य-विषयों की रूप-रेखा प्रस्तुत करेंगे।

मथुरा नगरी में एक दुष्ट राजा, कंस, राज्य करता था। नारद ने उस से कहा कि उस की बुआ, वसुदेव की पत्नी, देवकी के आठवें पुत्र के हाथों उस की मृत्यु होगी। इस पर कंस ने देवकी के सारे पुत्रों को मार डालने का निश्चय किया। उस के नौकर देवकी की सावधानी-पूर्वक रखवाली करते थे और देवकी की छः संतानों को जनम लेते ही मार डाला गया। सातवीं संतान बलदेव हुए जो कृष्ण के भाई थे और उन्हें हल धारण करने वाला हलधर, राम, बलराम भी कहा जाता था। निद्रा देवी[1] ने पैदा होने के पहले ही बलदेव को देवकी के गर्भ से निकाल कर वसुदेव की दूसरी पत्नी रोहिणी के गर्भ में स्थापित कर दिया जिससे वे कंस की मार से बच गए। आठवें पुत्र के रूप में कृष्ण पैदा हुए और पैदा होते ही वसुदेव ने, कंस से उन की रक्षा के लिए, ग्वालों के राजा नन्द और उन की पत्नी यशोदा की सद्यःजात पुत्री से उन को बदल लिया। इस नन्हीं कन्या को कंस ने पत्थर पर पटक दिया पर कृष्ण को लोग ग्वाले का लड़का कहने लगे और वे ग्वालों के बीच में बढ़ने लगे। वसुदेव ने राम को भी ग्वालों के उस परिवार की संरक्षकता में छोड़ रखा था। दोनों लड़के एक साथ वहाँ बड़े होने लगे। दुधमुँहे कृष्ण ने अद्भुत कार्य करने शुरू कर दिए। एक दिन माता यशोदा उन को एक छकड़े के नीचे सुला कर चली गयीं और वे बहुत देर से भूखे पड़े रहे। वे अधीर होकर हाथ-पैर मारने लगे और अन्त में एक पैर से मार कर उस भारी छकड़े को उलट दिया। आनन्द से खेलते कूदते बालक कृष्ण और राम जंगलों और मैदानों में दौड़ने लगे। इस से बेचारी ग्वालन को बड़ी परेशानी उठानी पड़ती थी। एक बार यशोदा को कुछ नहीं सूझा तो उन्होंने कृष्ण के कमर में रस्सी बाँध दी और उस के दूसरे छोर को एक भारी ओखल से बाँध दिया और गुस्से से कहने लगीं "अब दौड़ो तो देखें।" पर लड़के ने न केवल अपने साथ ओखल को भी घसीट लिया बल्कि जब वह ओखल दो दैत्याकार वृक्षों के बीच जाकर अटक गया तो उसने उन वृक्षों को भी

---

१. शायद निद्रा भी दुर्गा का एक नाम है इसीलिए दुर्गा की स्तुति बाद में यहाँ जोड़ दी गई। इसे आर्यास्तव (अध्या० ५९ = श्लो० ३२६८-३३०३) कहा जाता है। इस प्रकार स्तोत्रों का प्रक्षेप पुराणों की विशेषता है।

जड़ से उखाड़ डाला। भयभीत होकर ग्वालों और माता यशोदा ने जब देखा तो बच्चे को सही-सलामत, वृक्षों की टहनियों के बीच हँसते बैठा पाया।

सात वर्ष बीतते-न-बीतते दोनों बालक उस गोकुल से ऊब गए। इसलिए कृष्ण अपने शरीर से बहुत से भेड़िये पैदा करने शुरू कर दिए। इससे डरकर ग्वाले गोकुल से आगे जाने के लिए तयार हो गए। वे अपनी गायों आदि को लेकर वृन्दावन चले गए। यहाँ वे बालक जंगलों में प्रसन्नतापूर्वक घूमने लगे। पर एक दिन कृष्ण अकेले ही निकल पड़े। खेलते, कूदते, बाँसुरी बजाते वे जमुना नदी के किनारे पहुँचे। वे उस गहरे ह्रद के पास गए जहाँ नागराज कालिय रहता था और अपने परिजनों के साथ उसने जमुना के जल को विषैला बनाकर आस-पास के प्रदेश को असुरक्षित कर रखा था। एकाएक निश्चय करके कृष्ण उस भयानक नाग को वश में करने के उद्देश्य से ह्रद में कूद पड़े। पाँच फणों से आग उगलता वह दैत्याकार नाग सामने आया और अन्य बहुत से नाग कृष्ण की ओर दौड़ पड़े और उनको घेर कर उनको डसने लगे। पर कृष्ण ने अपने-आप को बचाकर कालिय के गर्दन को झुका दिया और उसके बीच वाले फण पर जल्दी से कूदकर सवार हो गए। इस पर नागराज ने हार मान ली और अपने सारे साथियों के साथ वह नीचे पाताल में चला गया।

इसके बाद ही कृष्ण ने धेनुक नामक दैत्य को मारा जो गधे के रूप में गोवर्धन पर्वत की रखवाली करता था। दूसरा एक दैत्य प्रलम्ब कृष्ण का सामना करने से डरता था पर कृष्ण के भाई राम ने उसका भी वध कर डाला।

शरद् ऋतु के प्रारम्भ में अपनी एक प्रथा के अनुसार ग्वालों ने वर्षा के देवता इन्द्र के सम्मान में एक महोत्सव का आयोजन करना चाहा। कृष्ण इन्द्र की पूजा के पक्ष में नहीं थे। "हम जंगलों में घूमने वाले, गायों पर जीने वाले ग्वाले हैं। गाएं, पर्वत और जंगल हमारे देवता हैं" (३८०८)। इन शब्दों के साथ उन्होंने इन्द्र-महोत्सव के बजाय ग्वालों को पर्वत-पूजा करने को उकसाया और ग्वालों ने वैसा ही किया। इस पर इन्द्र इतने क्रुद्ध हुए कि उन्होंने भयानक तूफान को भेजा। कृष्ण ने गोवर्धन पर्वत को उखाड़ लिया और छाते की तरह उस पर्वत को ग्वालों और उनकी गायों के ऊपर तान दिया। इससे वे बिलकुल सुरक्षित रहे। सात दिनों के बाद तूफान शान्त हुआ, कृष्ण ने पर्वत को फिर से उसके स्थान पर रख दिया और नम्र होकर इन्द्र ने कृष्ण को विष्णु के रूप में पहचाना।

इस कारण से ग्वाले देवता के रूप में उनका आदर और उनकी पूजा करने लगे पर उन्होंने मुसकराते हुए कहा कि वे ग्वालों के सम्बन्धी-मात्र बने रहना चाहते हैं। बाद में एक ऐसा समय आएगा जब कि ग्वाले उनका असली रूप पहचानेंगे। वे ग्वालों के बीच ग्वाले के रूप में रहकर यौवन का आनन्द लेने लगे। सांड़ों का युद्ध करवाते, ग्वालों में सबसे बली ग्वालों के साथ मल्लयुद्ध करते। शरद् की सुहानी रातों में उनका मन रास-नृत्यों में रमता।[1] इन नृत्यों में सुन्दरी गोपियाँ युवक नायक

---

१. इन नृत्यों को रास या हल्लीश कहते हैं। इनमें नकल उतारी जाती है। आज

कृष्ण के प्रति आकर्षित होकर चांदनी रात में उनके चरित गातीं और कृष्ण की क्रीड़ा, उनके कटाक्ष, उनके चलने के ढंग तथा नाचने-गाने का प्रेम पूर्वक अनुकरण करतीं।

एक बार कृष्ण गोपियों के साथ क्रीड़ा कर रहे थे। उसी समय अरिष्ट नामक एक दैत्य सांड़ के रूप में वहाँ आया। कृष्ण ने उसकी एक सींग उखाड़ कर उसी से उसको मार डाला।

कृष्ण के वीरतापूर्ण कर्मों की कीर्ति कंस के कानों तक पहुँची जिससे उसे चिन्ता होने लगी। रास्ते से कृष्ण को हटाने के उद्देश्य से उसने कृष्ण और राम इन दो युवक वीरों को मथुरा बुला भेजा जहाँ एक उत्सव में दो सबसे अच्छे पहलवानों से उन्हें लड़ना था। पर मथुरा में पहुँचते ही कृष्ण ने आश्चर्यजनक कार्य तथा वीरता के प्रदर्शन शुरू कर दिये। उन्होंने कंस के एक धनुष को इतने जोर से झुका दिया कि वह जोर की आवाज करके दो टुकड़ों में टूट गया। इस धनुष को देवता भी नहीं झुका सकते थे। कंस ने इनके ऊपर एक हाथी दौड़ाया पर इन्होंने उसका एक दांत उखाड़कर उसी से उसका वध कर डाला। दोनों भाइयों ने दो शक्तिशाली पहलवानों को भी मार गिराया। क्रोध से भर कर कंस ने आज्ञा दी कि इन दोनों भाइयों को तथा सारे ग्वालों को राज्य से निकाल दिया जाय। इस पर कृष्ण शेर की तरह कंस पर टूट पड़े और उसके केश पकड़ कर उसको सभा-मंच के बीच में घसीट लाए और उसे मार डाला।

कुछ समय बीतने पर दोनों भाई धनुर्विद्या सीखने एक प्रसिद्ध गुरु के पास उज्जैन गए। इस गुरु का एक पुत्र समुद्र में डूब गया था। गुरु दक्षिणा के रूप में गुरुजी ने कृष्ण से उसको वापस लाने की मांग की। कृष्ण पाताल पहुँचे, यमराज को हराया और लड़के को उसके पिता के पास ले आए।

कंस की मृत्यु का बदला लेने के लिए कंस का श्वसुर जरासंध कई अनुयायी राजाओं के साथ यादवों से युद्ध करने निकला। उसने मथुरा को घेर लिया, कृष्ण ने कई बार उसको पीछे हटा दिया पर बार-बार वह आक्रमण करता जाता। अंत में उसको विवश होकर पीछे हटना ही पड़ा। जरासंध के साथ हुए युद्धों का वर्णन बड़े विस्तार के साथ किया गया है।

इसी प्रकार से निम्नलिखित रुक्मिणी-हरण की कथा भी वर्णित है।[1] विदर्भ के राजा भीष्मक ने अपनी पुत्री रुक्मिणी का विवाह राजा शिशुपाल से करने का वचन

भी ये नृत्य भारत के कुछ हिस्सों में प्रचलित हैं। उदाहरण के लिए काठियावाड़ में अब भी इसे संस्कृत शब्द हल्लीश से मिलते-जुलते नाम से पुकारते हैं (मि० भारत की मासिक पत्रिका East and West Vol. I, 748 आ०, May 1902)

१. प्राचीन आख्यान में कृष्ण नायक के रूप आते हैं पर परवर्ती भाग में वे अपनी सारी दैवी शक्तियों के साथ विष्णु का रूप धारण कर लेते हैं। यह अंश प्रक्षिप्त है।

दिया था। विवाह संपन्न होने ही वाला था। इसी समय अपने भाई राम के साथ कृष्ण विवाह-उत्सव में गए और रुक्मिणी का हरण कर लिया। क्रुद्ध होकर राजाओं ने उन का पीछा किया पर राम ने सबको मार भगाया। रुक्मिणी के भाई रुक्मी ने प्रतिज्ञा की कि वह तब तक अपनी राजधानी नहीं लौटेगा जब तक वह कृष्ण को मार कर अपनी बहन वापिस न ले ले। घोर युद्ध हुआ और रुक्मी उस में हार गया। पर रुक्मिणी की प्रार्थना पर कृष्ण ने रुक्मी को जीवन-दान दे दिया। अपनी प्रतिज्ञा को न तोड़ने के लिए रुक्मी ने अपने लिए एक नया नगर बसाया। कृष्ण और रुक्मिणी का विवाह द्वारका में सम्पन्न हुआ। रुक्मिणी से कृष्ण ने दस पुत्र उत्पन्न किए। बाद में कृष्ण ने सात रानियों और सोलह हजार अन्य स्त्रियों से विवाह किया जिन से हजारों पुत्र उत्पन्न हुये। कृष्ण से रुक्मिणी में उत्पन्न पुत्र[1] प्रद्युम्न ने आगे चल कर रुक्मी की पुत्री से विवाह किया और उन से अनिरुद्ध उत्पन्न हुए। अनिरुद्ध ने रुक्मी की पौत्री से विवाह किया। अनिरुद्ध के विवाह में जुए के खेल को लेकर राम और रुक्मी में झगड़ा हो गया और राम ने उसे मार डाला। इस प्रसंग में राम के कार्यों की प्रशंसा की गई है।[2]

इस के बाद नरक के वध की कथा आती है।[3] नरक एक दानव था जिसने अदिति के कानों के आभूषण चुरा लिए थे और देवताओं को अन्य तरीकों से भी अनेक कष्ट दिए थे। इन्द्र की प्रार्थना पर कृष्ण ने लड़कर उस का वध किया।

इस के बाद की कथा में[4] हम कृष्ण को इन्द्र के साथ युद्ध करता हुआ पाते हैं। एक बार देवर्षि नारद ने स्वर्ग में स्थित पारिजात वृक्ष के कुछ फूल लाकर कृष्ण को दिए। कृष्ण ने वे फूल अपनी प्रिय रानी रुक्मिणी को दे दिए। इस पर कृष्ण की एक दूसरी रानी सत्यभामा को बड़ी डाह हुई और वह गुस्से से भर गई। तब कृष्ण ने स्वर्ग से पूरा का पूरा पारिजात वृक्ष ही लाकर उसे देने का वचन दिया। पर इन्द्र वह वृक्ष देना नहीं चाहते थे। कृष्ण ने उन्हें युद्ध करने के लिए ललकारा। दोनों में बड़ा लंबा और भयानक युद्ध छिड़ गया। किसी तरह देवताओं की माता अदिति ने दोनों में समझौता कराया।

इस के अनन्तर एक बड़ा-सा उपदेशात्मक अंश आता है[5] जिसका मुख्य कथा से दूर का-सा सम्बन्ध है। यह अंश कामशास्त्र से सम्बन्ध रखता है। (कृष्ण की पत्नियों और ऋषि नारद के बीच संवाद के रूप में, जिसमें नारद शिव की पत्नी उमा को अपना प्रमाण मानते हैं) इस अंश में पुण्यक और व्रतक का अर्थात् ऐसे व्रत और

१. वे कामदेव के अवतार हैं।

२. बलदेवमाहात्म्यकथन, अध्या० १२०, ६७६६-६७८६।

३. नरकवध—अध्या० १२१-१२३ = ६७८७-६९८८।

४. पारिजातहरण, अध्या० १२४-१४० = ६९८९-७९५६। यहाँ महादेवस्तवन भी दिया गया है—अध्या० १३१ = ७४१५-७४५५।

५. पुण्यकविधि—अध्या० १३६-१४० = ७७२२-७९५६।

उत्सव का, जिनके द्वारा पत्नी अपने शरीर को अपने पति के लिए आकर्षक बनाती है और उसे प्रसन्न रख सकती है, उपदेश है। चूँकि ये व्रत-उत्सव पतिव्रता स्त्री को ही फलदायक होते हैं इस लिए आरम्भ में पातिव्रत्य धर्म का भी विधान दिया गया है (७७५४ आ०)।

बाद के प्रकरण में[१] फिर कृष्ण का असुरों के साथ युद्ध वर्णित है। षडपुर के असुर लोग धर्मात्मा ब्रह्मदत्त की पुत्रियों को चुरा ले गए। कृष्ण उस की सहायता के लिए गए और असुरों के राजा निकुम्भ को मार कर उस ब्राह्मण को उस की पुत्रियाँ वापस ला दीं।

इस के बाद एक बिलकुल शैव प्रसंग आता है[२] जिस का कृष्ण से कोई सम्बन्ध नहीं है। इस में हजार सिरों वाले असुर अंधक का शिव के द्वारा वध वर्णित है।

तदनन्तर आने वाला प्रसंग[३] पुनः कृष्ण के साथ सम्बन्धित है जिस में असुर निकुम्भ के वध की एक दूसरी कथा दी गई है। कृष्ण और राम के नेतृत्व में यादव लोगों ने कोई महान् उल्लासपूर्ण उत्सव मनाने के उद्देश्य से समुद्र के किनारे स्थित एक पवित्र तीर्थ की यात्रा की। कृष्ण अपनी सोलह हजार पत्नियों के साथ, राम अपनी एकमात्र पत्नी रेवती के साथ तथा अन्य यादव युवक अनेक वेश्याओं के साथ समुद्र के किनारे और पानी में अनेक प्रकार की क्रीड़ाओं, नाच-गाने, आमोद-प्रमोद में लगे थे।[४] इसी बीच यादव वंश के भानु नामक व्यक्ति की पुत्री भानुमती को असुर निकुम्भ चुरा ले गया। कृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न ने उस का पीछा किया और हरी गई लड़की को वापस छीन लाए तथा कृष्ण ने स्वयं निकुम्भ का वध कर दिया।

बाद के अध्यायों[५] में मूलतः कृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न का वर्णन है। पहली कथा में असुर वज्रनाभ की पुत्री प्रभावती के साथ प्रद्युम्न के विवाह का वर्णन है जिस में स्वर्ग के हंस प्रेम-सम्बन्ध स्थापित कराने में सहायक होते हैं जैसे नल और दमयन्ती के बीच प्रेम-संवाद पहुँचाने का काम हंसों के द्वारा होता है। प्रभावती को पाने के लिए प्रद्युम्न नट का वेश धारण कर के नटों की टोली के साथ वज्रनाभ के दरबार में पहुँचे। वहाँ अनेक नाटक दिखाए गए[६] जिन से असुरों का बड़ा मनोरंजन हुआ। पर प्रद्युम्न ने

१. षट्पुरवध, अध्या०—१४१-१४४ = ७९५७-८१९८।

२. अन्धकवध, अध्या०—१४५ आ०, ८१९९-८३००।

३. भानुमतीहरण, अध्या०—१४७-१४९ = ८३०१-८५४९।

४. इन उत्तेजक दृश्यों का वर्णन पूरे दो अध्यायों में किया गया है (१४७ आ० = ८३०१-८४७०)।

५. अध्या० १५० आ० = ८५५० आ०। "Stimmen vom Ganges" पृ० 67 आ० में 'प्रद्युम्न' शीर्षक कविता में इस का जर्मन भाषा में मुक्त अनुवाद Schack ने दिया है।

६. यहाँ (८६७२ आ०) शायद भारतीय साहित्य में नाटक खेलने का सब से पहले

सुन्दर रातों का उपयोग छिप-छिप कर प्रभावती के प्रेम का आनन्द उठाने में किया। अन्त में इस प्रेम-प्रसंग का पता वज्रनाभ को लगा और वह क्रोध में भर कर प्रद्युम्न को बाँधने चला। पर प्रद्युम्न ने उन सारे योद्धाओं को, जो उन्हें पकड़ने चले थे, तथा राजा को भी मार डाला। इस के बाद अपनी प्रिया के साथ वे द्वारका लौट आए।

दूसरे आख्यानों में[1] प्रद्युम्न की किशोरावस्था का प्रेम-प्रसंग वर्णित है। पैदा होने के सात दिनों बाद ही प्रद्युम्न को असुर लोग उठा ले गए और वे शम्बर दैत्य के घर में बड़े हुए। शम्बर की पत्नी मायावती इस सुन्दर युवक के प्रेम में फँस गई और उन्हें बताया कि वे उस के पुत्र नहीं हैं बल्कि कृष्ण और रुक्मिणी के पुत्र हैं। तब प्रद्युम्न ने युद्ध कर के शम्बर को मार डाला[2] और अन्त में मायावती के साथ अपने घर वापस लौट आए, जहाँ उन के माता-पिता ने बड़े आनन्द से उन का स्वागत किया।

बिना किसी कारण के राम की एक स्तुति आह्निक-पाठ के रूप में[3] यहाँ दी गई है जिस में स्वर्गीय प्राणियों की गणना की गई है।

कुछ छोटे-छोटे कृष्ण के आख्यानों तथा उनकी प्रशंसा में किए गए प्रवचनों के बाद यह पर्व "बाण के युद्ध" की कथा के साथ समाप्त होता है।[4] प्रद्युम्न के पुत्र अनिरुद्ध तथा असुरराज बाण की पुत्री ऊषा का प्रेम-प्रसंग यहाँ वर्णित है। बाण शिव का कृपापात्र था। कृष्ण बाण के द्वारा बन्दी बनाए गए अनिरुद्ध की सहायता के लिए गए। बाण के साथ युद्ध के दौरान शिव और विष्णु की भयंकर लड़ाई छिड़ गई। इस युद्ध से सारा विश्व संत्रस्त हो गया। पर ब्रह्मा पृथ्वी की सहायता के लिए आए और दोनों देवों में शान्ति स्थापित कराई और घोषित किया कि शिव और विष्णु एक ही हैं। यहाँ पर इन दो एक-रूप देवताओं की स्तुति दी गई है।[5] अनिरुद्ध और

उल्लेख मिलता है और निश्चय ही नाटक का यह उल्लेख बड़ा रोचक है। इस में न केवल कृष्ण के जीवन के दृश्य उपस्थित किए गए थे बल्कि रामायण महाकाव्य तथा ऋष्यश्रृंग की कथा का भी नाट्य-रूपान्तर मंच पर खेला गया था। दुर्भाग्य से इस "प्रद्युम्नोत्तर" नामक खंड का रचना-काल बिलकुल अनिश्चित है। मि० Sylvain Lévi का "Le théâtre indien", Paris, 1890, पृ० 327 आ० तथा A. B. Keith कृत "The Samskrit Drama, Oxford 1924, पृ० 28,47 आ०।

१. शम्बरवध, अध्या० १६३-१६७ = ९२०८-९४८७।

२. इस वध में दुर्गा की स्तुति (प्रद्युम्नकृत दुर्गास्तव, अध्या० १६६ = ९४२३-९४३०) करने पर दुर्गा ने प्रद्युम्न की सहायता की।

३. बलदेवाह्निक, अध्या० १६८ = ९४८८-९५९१।

४. बाणयुद्ध, अध्या० १७५-१९० = ९८०६-११०६२।

५. हरिहरात्मकस्तव, अध्या० १८४ = १०६६०-१०६९७। यह स्थल भारतीय साहित्य के उन बहुत कम स्थलों में से है जिनमें त्रिमूर्त्ति का उल्लेख मिलता

ऊषा का विवाह बड़ी धूम-धाम से द्वारावती में सम्पन्न हुआ और इसी के साथ यह दूसरा पर्व समाप्त हो जाता है।

विष्णु और शिव के स्तोत्रों से भरे होने के कारण यह स्पष्ट है कि किस हद तक हरिवंश धार्मिक उद्देश्य से लिखे गए अंशों का संग्रह है न कि यह एक काव्यात्मक कृति है।[1]

पर, दूसरे पर्व में कृष्ण-काव्य के कुछ अवशेष फिर भी मिलते हैं जिनसे पता चलता है कि कभी कृष्ण-काव्य का अस्तित्व रहा होगा, जबकि भविष्यपर्व (११०६३ आ०) नामक तीसरा पर्व ऐसे पुराण ग्रंथों का संकलन है जिनमें कठिनाई से ही परस्पर सम्बन्ध ढूंढ़ा जा सकता है। "भविष्यपर्व" यह नाम इस पर्व के आरम्भिक अध्यायों के लिए ही लागू होता है जिनमें संसार में आगे आनेवाले युगों के बारे में भविष्यवाणी की गई है। यहाँ एक कथा आती है। जनमेजय अश्वमेध यज्ञ करना चाहते थे पर व्यास ने भविष्यवाणी की कि यह यज्ञ सफल नहीं होगा क्योंकि निरीश्वरवादी कलियुग का आरम्भ होनेवाला है और इसके बहुत दिनों बाद ही धर्म और पुण्य का युग कृतयुग आएगा। यह भाग[2] अपने-आप में पूर्ण है और इसे स्वतन्त्र कविता कहा भी गया है। इसके बाद बिना किसी सम्बन्ध के सृष्टि के दो भिन्न वर्णन दिए गए हैं।[3] इसके अनन्तर विष्णु के सूकर, नृसिंह और वामन अवतारों की कथा बड़े विस्तार से वर्णित है।[4] इसके बाद एक प्रसंग में दूसरे पर्व की तरह हम शिव और विष्णु की पूजाओं में साम्य स्थापित करने की प्रवृत्ति पाते हैं। क्रमशः शिव और विष्णु एक दूसरे की स्तुति करते हैं।[5] इसके बाद कृष्ण की वीरता की एक कथा आती है जिसमें

है। क्योंकि न केवल हरि और हर ही एक दूसरे से अभिन्न हैं अपितु वे एक तीसरे देवता ब्रह्मा से भी अभिन्न हैं।

१. हरिवंश को कितने महत्त्व का धार्मिक ग्रंथ माना जाता है इसका एक प्रमाण यह है कि नेपाल में किसी हिन्दू गवाह के सिर पर कचहरी में हरिवंश की पोथी रखी जाती है—ठीक उसी तरह जिस तरह कि मुसलमान के सिर पर कुरान। (A. Barth, Religions of India, पृ० 156 note)।

२. अध्या० १९१–१९६ = ११०६३–११२७८। ११२७० आ० में इसे महाकाव्य कहा गया है पर ११०८२ तथा आगे के श्लोकों में स्पष्ट कहा जा चुका है कि हरिवंश समाप्त हो गया है और जनमेजय के अश्वमेध यज्ञ की कथा हरिवंश का परिशिष्ट मात्र है। बहुत सम्भव है कि परवर्ती अध्याय बाद में जोड़े गए हों।

३. पौष्करप्रादुर्भाव, अध्या० १९७–२२२ = ११२७९-१२२७७।

४. अध्या० २२३–२६३ = १२२७८–१४३९०। ब्रह्मा एक विष्णुस्तोत्र कहते हैं—१२८८० आ० (अध्या० २३८)। कश्यप गद्य में महापुरुषस्तव सुनाते हैं—१४११४ आ० (अध्या० २५९)।

५. कैलासयात्रा, अध्या० २६४–२८१ = १४३९१–१५०३१; अध्या० २७८; ईश्वर-स्तुति, अध्या० २७९ तथा २८१।

कृष्ण अपने विरोधी एक राजा, पौण्ड्र का वध करते दिखाए गए हैं।[१] हरिवंश के अंतिम और अपेक्षाकृत बड़े भाग में कृष्ण-विष्णु द्वारा पराजित दो शिवभक्तों—हंस और डिम्भक—का उपाख्यान है।[२]

एक अन्य विशालकाय अध्याय बहुत बढ़ा-चढ़ाकर यह बतलाता है कि महाभारत के पाठक को क्या पुण्य मिलता है और उसे स्वर्ग में कौन फल प्राप्त होता है। आगे कहा गया है कि प्रत्येक पर्व की समाप्ति पर महाभारत के वाचक (व्यास) को कौन-सा उपहार दान में देना चाहिए। अंत में महाभारत की परम पवित्र, तथा शास्त्रों में अत्युत्कृष्ट शास्त्र के रूप में स्तुति की गई है।[३] यहाँ पर बड़े गर्व के साथ कहा गया है, जो बड़े महत्त्व का है, कि यह महाभारत विष्णु का गुणगान है क्योंकि "हे भरतवंशियों में परमवीर! वेद में, रामायण में और पवित्र भारत में—प्रारम्भ में, अंत में और मध्य में, सर्वत्र—हरि का ही गुणगान किया गया है।"[४]

आश्चर्य की बात तो यह है कि विष्णु की सारी स्तुति के बाद, यहाँ तक कि पुस्तक की समाप्ति के बाद फिर एक और अध्याय[५] आता है जिसमें शिव द्वारा दानवों के तीन नगरों (त्रिपुर) के विध्वंस का वर्णन है। पर यहाँ भी अंतिम श्लोक में महायोगी विष्णु की स्तुति जोड़ी गई है।

पुस्तक का अंत हरिवंश के वर्ण्य विषयों का सारांश तथा इस "पुराण" को सुनने से होनेवाले पुण्यों की गिनती से होता है।

हरिवंश शुद्ध रूप से एक पुराण है यह बात इससे भी सिद्ध होती है कि बहुधा शब्दशः समान अनेक उक्तियाँ इस सम्बन्ध में कई प्रमुख पुराणों में उपलब्ध हैं।[६] फिर भी हमें यहाँ पर हरिवंश की चर्चा करना इसलिए आवश्यक जान पड़ा (पुराणों वाले अध्याय में इसकी चर्चा न करके) कि न केवल भारतीय लोग ही इस ग्रंथ को महाभारत का अंग मानते हैं अपितु यह परिशिष्ट जिस ढंग से इतिहास-काव्य में जोड़ा

---

१. पौण्ड्रकवध, अध्या० २८२-२९३ = १५०३२-१५३७५।

२. हंसडिम्भकोपाख्यान, अध्या० २९४-३२२ = १५३७६-१६१३९।

३. अध्या० ३२३ = १६१४०-१६२३८ : सर्वपर्वानुकीर्तन। इस पर्व-गणना में कुछ ऐसे पर्व हैं जिनका हमारे संस्करणों में प्राप्त नामों स भिन्न नाम दिया गया है। इस अध्याय का विषय महाभारत के पहले पर्व में आए महाभारत की प्रशंसा वाले अंश से मिलता है।

४. श्लोक—१६२३२।

५. त्रिपुरवध, अध्याय—३२४ = १६२३९-१६३२४।

६. ब्रह्म-, पद्म-, विष्णु-, भागवत-, तथा विशेषतः वायु पुराण। गरुडपुराण महाभारत और हरिवंश की विषय-सूची संक्षेप में देता है। दे० A. Holtzmann, Das Mahābhārata, IV, पृ० 32, 35, 37 आ०, 40, 42 आ०, 47 आ०, 56।

गया है उससे महाभारत के इतिहास पर भी खास ढंग से प्रकाश पड़ता है। अब हम इस इतिहास को देखेंगे।

महाभारत का रचना-काल और इतिहास

हस्तलिखित पोथियों और संस्करणों में सुरक्षित संपूर्ण महाभारत का हमने सर्वेक्षण कर लिया। अब हमारे सामने यह प्रश्न है कि कैसे और कब इस विशाल-काय ग्रंथ की उत्पत्ति हुई ?

महाभारत के वर्ण्य-विषय के संक्षिप्त उपस्थापन में ही पाठकों को एक अन्तर्विरोध का आभास मिल गया होगा। महाभारत को पढ़ने से यह विरोध और स्पष्ट हो जाता है। वर्तमान रूप में महाभारत पाण्डवों का पक्ष लेता है और पाण्डवों को न केवल अतुलनीय वीर ही बतलाता है बल्कि उन्हें अच्छा और सदाचारी भी बतलाता है। दूसरी ओर कौरव लोग धोखेबाज और दुष्ट दिखाए गए हैं। यहाँ यह अन्तर्विरोध ध्यान देने योग्य है कि सारे के सारे कौरव वीर धोखे से या अधर्म पूर्वक की गई लड़ाई से मरे हैं—यह बात भी महाभारत ही बतलाता है। यह और भी ध्यान देने योग्य बात है कि सारी धोखेबाजी की शुरुवात कृष्ण से होती है। कृष्ण ही सदा धोखेबाजी को उभारते हैं और पाण्डवों के कार्यों को सही बताते हैं। ये वही कृष्ण हैं जिनकी, महाभारत के कई स्थलों पर और खास करके हरिवंश में, विष्णु के अवतार के रूप में, परमेश्वर के रूप में तथा सारे सद्‌गुणों के आदर्श और लक्ष्य के रूप में, स्तुति की गई है।

इन स्पष्ट अन्तर्विरोधों का कैसे समाधान किया जा सकता है ? इस पर हम केवल कल्पना कर सकते हैं। पहली बात यह है कि महायुद्ध के फलस्वरूप पश्चिमोत्तर भारत में राजवंश में वस्तुतः परिवर्तन हुआ और ये ही अर्ध-ऐतिहासिक घटनाएँ इस इतिहास-काव्य का आधार बनीं—इस मान्यता के लिए एक सम्भव प्रमाण है। भले ही यह प्रमाण स्वयं महाभारत है।[१] इसको आधार मानकर हम कल्पना कर सकते हैं

---

१. इतिहास-काव्य के आख्यान का आधार जो लोग पुराण-कल्पना को मानते हैं वे भी स्वीकार करते हैं कि इसमें कुछ ऐतिहासिक तत्त्व वर्तमान हैं। दे० A. Ludwig कृत "Uber das Verhältnis des mythischen Elementes zu der historischen Grundlage des Mahābhārata." (Abhandlungen der k. böhmischen Ges d. Wissensch, VI, 12) Prague, 1884। Pargiter तथा Grierson (JRAS., 1908, पृ० 309 आ० तथा 602 आ०) का मत है कि कौरवों पाण्डवों के युद्ध के पीछे देशों के युद्ध का ऐतिहासिक तथ्य सम्भव है (मध्यदेश के देश तथा भारत के अन्य देशों के बीच यह युद्ध हुआ होगा)। इसी के साथ यह भी सम्भव है कि युद्ध में एक ओर क्षत्रिय लोग थे और दूसरी ओर पुरोहित लोग। मेरे मत में इस प्रकार के इतिहास-निर्माण के लिए कोई प्रमाण नहीं है। मि० Hopkins, Cambridge History, I पृ० 275।

कि आपस में शत्रुता रखने वाले चचेरे भाइयों के बीच हुए युद्ध से सम्बन्धित मूल वीर-गीत उन भाटों द्वारा गाए जाते थे जो अब भी दुर्योधन या कौरव घराने से सम्बन्धित थे। पर कालान्तर में ज्यों ज्यों विजयी पाण्डवों का शासन सुदृढ़ होता गया, ये गीत भी नये राजवंश की सेवा में रहनेवाले भाटों के पास आ गए। इन भाटों के मुख से ही इन गीतों में ऐसे परिवर्तन हुए जिनसे पाण्डवों को अच्छा और कौरवों को बुरा दिखाया जा सके। पर गीतों की मूल प्रवृत्ति को हटा देना सम्भव न हो सका। वर्तमान महाभारत में इतिहास-काव्य की केन्द्र-भूत कथा, महायुद्ध का वर्णन, धृतराष्ट्र के सारथि संजय, अर्थात् कौरवों के एक भाट (सूत), के मुख से कहलाई गई है। केवल इन युद्ध के दृश्यों में ही कौरवों को भला दिखाया गया है। दूसरी ओर, सम्पूर्ण महाभारत का पारायण, प्रथम पर्व की भूमिका-कथा के अनुसार, जनमेजय के नागयज्ञ के अवसर पर व्यास के शिष्य वैशम्पायन द्वारा सम्पन्न हुआ। यह जनमेजय पांडव अर्जुन से सम्बन्धित माना गया है। यह बात इस तथ्य से मेल खाती है कि पूरे महाभारत में कौरवों की अपेक्षा पाण्डवों को महत्व दिया गया है।[1]

अब कृष्ण के बारे में विचार करें। कृष्ण यादव जाति के थे। महाभारत में कई स्थानों पर इस जाति को ग्वालों की असभ्य जाति कहा गया है और कई बार विरोधी लोग स्वयं कृष्ण को 'ग्वाला' और 'दास' कह कर उन का निरादर करते हैं। प्राचीन वीर-कविता में वे ग्वालों की जाति के एक प्रमुख नेता के सिवा कुछ भी नहीं

---

१. सुनियोजित ढंग से महाभारत का पुनर्निर्माण किया गया (जैसा Holtzmann का मत है) ऐसा मैं नहीं मानता। क्रमशः ही परिवर्तन हुआ होगा। J. v. Negelein (OLZ, 1908, 336 आ०) इस का खंडन करते हुए कहते हैं कि प्राचीन इतिहास-काव्य में नैतिक दृष्टिकोण पर कोई ध्यान नहीं दिया गया था। इसमें दोनों पक्षों को एक जैसा चित्रित किया गया था। केवल शौर्य-प्रदर्शन इसका उद्देश्य था। इसी प्रकार का मत Oldenberg का (Das Mahābbārata, पृ० 35 आ०) है जो Hopkins (Cambridge History I, 265) की तरह यह विश्वास करते हैं कि पाण्डवों के कार्यों पर नीति की दृष्टि से प्रकाश डालने वाले अंश आधुनिक युग की देन हैं—"जिस युग में असंस्कृत, राजसी और योद्धा जीवन में सुसंस्कृत नीति ने हस्तक्षेप करना शुरू किया।" Hertel (WZKM, 24, 1910, 421) पाण्डवों के धोखेबाजी से भरे कार्यों और कवि का उन के प्रति पक्षपात के बीच विरोध का समाधान यह कह कर करते हैं कि महाभारत एक नीतिशास्त्र है और राजनीति के नियमों के अनुसार राजा धूर्तता का सहारा लेने का अधिकारी है। पर ये विद्वान् यह भूल जाते हैं कि वे प्रसंग जिन में पाण्डवों का लड़ने का ढंग गर्हित कहा गया है, इतिहास-काव्य के उपदेशात्मक प्रकरणों के अंग नहीं हैं। ये तो युद्ध के वर्णन के साथ ही गुंथे गए हैं और उन में परवर्ती होने का जरा भी आभास नहीं मिलता।

थे और उन में कोई दैवी बात नहीं थी। हरिवंश के कृष्णाख्यानों के पीछे भी प्राचीनतर आख्यान का आधार मालूम पड़ता है जिस में कृष्ण अभी देवता नहीं बने थे। वे केवल ग्वालों की असभ्य जाति के नायक थे। यह विश्वास करना कठिन है कि पाण्डवों का मित्र और सलाहकार कृष्ण, भगवद्गीता के सिद्धान्तों का प्रतिपादक कृष्ण, यौवन से पूर्ण वीर और दैत्यों का संहारक कृष्ण, गोपी-वल्लभ और गोपियों का प्रेमी कृष्ण, और परमेश्वर विष्णु का अवतार कृष्ण एक ही व्यक्ति हो सकता है। बहुत संभव है कि परंपरा में दो या अधिक कृष्ण थे जिन्हें बाद में एक देवता के रूप में मिला दिया गया। देवकी के पुत्र कृष्ण का घोर आंगिरस के शिष्य के रूप में उल्लेख छान्दोग्य उपनिषद् (III, 17) में मिलता है। इनके द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त भगवद्गीता के सिद्धान्तों से अंशतः मिलते हैं। इस कारण से उपनिषद् काल के इस प्राचीन ऋषि को भगवद्गीता के कृष्ण से शायद ही अलग माना जा सके।[१] यह संभव है कि कृष्ण भागवत धर्म के संस्थापक थे और भारत के अनेक धर्म-संस्थापकों की तरह भागवत धर्म के संस्थापक कृष्ण की भी भागवत धर्म के आराध्य देव के अवतार के रूप में पूजा होने लगी हो।[२] यह भी संभव है कि मूल इतिहास-काव्य में कृष्ण का स्थान ही नहीं था। बाद में कृष्ण को उसमें स्थान दिया गया। ऐसा शायद पाण्डवों के नैतिक दृष्टि से गर्हित कर्मों को 'भगवान्' कृष्ण द्वारा प्रेरित दिखा कर स्पष्टतः उचित ठहराने के लिए किया गया हो।[३] कृष्ण की समस्या पर बहुत कुछ लिखा जा चुका है, पर हमें स्वीकार करना ही पड़ता है कि अब तक कोई सन्तोषजनक समाधान नहीं प्राप्त हो सका है।[४] जो भी हो, पाण्डवों के मित्र कृष्ण से हरिवंश के कृष्ण और परमेश्वर विष्णु तक पहुँचना बड़ा कठिन है।

---

१. मि॰ H. Raychaudhuri, Early History of the Vaiṣṇava Sect, पृ॰ 23, 30 आ॰, 48 आ॰।

२. इस मत का विशेष प्रतिपादन Garbe ने Die Bhagavadgītā, द्वि॰ सं॰, पृ॰ 27 आ॰ में किया है।

३. ऐसा Oldenberg ने Das Mahābhārata, पृ॰ 37, 43 में कहा है। मि॰ Jacobi, ERE. VII, 195 आ॰ तथा Sir Charles Eliot, Hinduism and Buddhism (लंडन, 1921), II, 154। उनका कहना है कि महाभारत की कथा में कृष्ण का उतना आवश्यक रूप से महत्त्वपूर्ण स्थान नहीं है जितना राम का रामायण की कथा में। मुझे लगता है कि योद्धा कृष्ण, न कि ईश्वर कृष्ण, इतिहास-काव्य की मुख्य कथा के साथ जुड़े हुए हैं। बिना कृष्ण के इतिहास-काव्य की कल्पना ही नहीं की जा सकती।

४. मि॰ Holtzmann, Das Mahābhārata I, 132 आ॰; A. Weber, Zur indischen Religionsgeschichte (Sonderabdruck aus "Deutsche Revue" 1899), पृ॰ 20 आ॰; L. J. Sedgwick,

महायुद्ध का वर्णन करने वाले अंशों में राजनैतिक और धार्मिक विकास दृष्टि-गोचर होता है—सत्ता कौरवों से पाण्डवों के हाथों में चली जाती है और कृष्ण भगवान् बन जाते हैं—जो लम्बे समय में ही सम्भव है। यह सोचा भी नहीं जा सकता कि सिर्फ महाभारत के केन्द्र-भूत ये अंश भी एक ही कवि की रचनाएँ हैं। यह मान्यता तब और भी असम्भव मालूम होती है जब हम मुख्य वर्णन के विस्तार में आए अनेक अन्तर्विरोधों की ओर ध्यान देते हैं। मैं केवल पाण्डवों के विवाह तथा अर्जुन की वीरता के वर्णन की याद दिलाना चाहूँगा। चौथे पर्व में हम कुरुक्षेत्र में लड़े गए युद्ध का पूरा-पूरा प्रतिरूप पाते हैं : अर्जुन भीष्म तथा कौरवों के अन्य वीरों को देखते-देखते मार भगाते हैं। यह बात इस तथ्य के साथ मेल नहीं खाती कि बाद में चलकर कौरवों को हराने में अठारह दिन लगे तिस पर भी पाण्डवों को धूर्तता का सहारा लेना पड़ा। इसमें शायद ही संदेह हो कि पूरा का पूरा चौथा पर्व (विराटपर्व) बाद के पर्वों में प्रभावशाली ढंग से उपस्थापित युद्ध-वर्णन के बाद की रचना है[1]। निस्सन्देह रूप से इतिहास-काव्य के प्राचीनतम अंशों से युक्त इन बाद के पर्वों में भी हमें लगातार अन्तर्विरोध प्राप्त होते हैं। इन विरोधों को हम किसी एक कवि के द्वारा की गई "अज्ञानतावश असावधानी" कहकर नहीं टाल सकते। प्रवाह और ओज से पूर्ण, उत्कृष्ट वर्णनों के अलावा ऐसे लंबे प्रकरण भी आते हैं जिनमें अठारह दिनों का युद्ध उबा देनेवाली नीरसता और लगातार आनेवाली पुनरुक्तियों के साथ यथासम्भव विस्तार के साथ वर्णित है।

हमारे सामने उपस्थित "वास्तविक इतिहास-काव्य" भी अतएव एक कवि की कृति नहीं है। महाभारत का यह केन्द्र भी प्राचीन वीर-काव्य नहीं रहा। पर प्राचीन वीर-काव्य काफी रद्दोबदल के साथ इसमें गृहीत अवश्य है।

JBRAS, 23, 1910, पृ० 115 आ०; Grierson, ERE.II, 539 आ०; Jacobi, ERE, VII, 193 आ० तथा Streitberg-Festgabe, पृ० 168; A. B. Keith, JRAS. 1915, 548 आ०; R. G. Bhandarkar, Vaiṣṇavism etc, पृ० 3 आ०, 8 आ०, 33 आ०; Raychaudhuri, वही, पृ० 18 आ०; Garbe, वही; Eliot, Hinduism and Buddhism, II, 152 आ०; Hopkins, Cambridge History I, 258 में, Oldenberg, Das Mahābhārata, पृ० 37 आ०।

१. इस प्रकार Holtzmann, Mahābhārata, II, पृ० 98 तथा Hopkins, The Great Epic of India, पृ० 382 आ० में पहले ही कह चुके हैं। मि० N. B. Utgikar, the Virāta-parvan of the Mahābhārata (पूना, 1923), पृ० XX और मेरा वक्तव्य Ann. Bh. Inst. V, 1, पृ० 23।

हमने देखा कि इस केन्द्र-बिन्दु के चारो ओर बिलकुल फुटकल ढंग की प्रचुर रचनाएँ एकत्र होती गईं : आख्यानों की अनेक मालाओं से लिये गए वीर-गीत, ब्राह्मणों के आख्यान और पुराण-कथाएँ, मुनि-कविता और सामान्य आचार सम्बन्धी उक्तियों से लेकर विस्तृत दार्शनिक कविताओं तक अनेक प्रकार की उपदेशात्मक कविताएँ, धर्म-शास्त्र के प्रकरण एवं पूरे के पूरे पुराण। यद्यपि J. Dahlmann ने अपनी सारी विद्वत्ता लगाकर यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि काव्य और धर्म-शास्त्र के ग्रंथ के रूप में महाभारत किसी एक कवि द्वारा बुद्ध से पूर्व रची गई सुसंबद्ध रचना है[1], पर बहुत कम विद्वान् इस मत से सहमत हैं। Sylvain Lévi[2] ने भी हाल ही में महाभारत के बारे में कहा है कि यह "एक जान-बूझकर बनाई गई पुस्तक है जो बनावट और कला की दृष्टि से एक केन्द्रीय तथ्य के चारो ओर लिपटी हुई है तथा एक ऐसी प्रमुख भावना से प्रेरित है जो इसमें घुसी हुई है और इसमें व्याप्त है।" उन्होंने मूलसर्वास्तिवादी बौद्धों के वि-य से महाभारत की तुलना की है और उनका मत है कि "सारी अतिशयोक्तियों और घटनाओं के साथ, नानाविध और विकसित विस्तारों के साथ" यह सम्पूर्ण महान् इतिहास-काव्य केवल "भागवतों द्वारा आचरित क्षत्रिय-विनय के नियमों" पर आधारित है। वस्तुतः जब हम यह मान लें कि इतिहास-काव्य का केन्द्र-बिन्दु भगवद्गीता, नारायणीय और हरिवंश में ही निहित है तभी इस प्रकार का दृष्टि-कोण न्याय-संगत हो सकेगा। पर यदि, जैसा कि मैं स्वयं मानता हूँ, महाभारत का वास्तविक केन्द्र-बिन्दु कौरवों और पाण्डवों के

---

१. यह सही है कि अपनी पुस्तक "Das Mahābhārata als Epos und Rechtsbuch" (Berlin, 1895) में Dahlmann ने सिर्फ "unified diaskeuasis" की बात कही है पर फिर भी "diaskeuast" के बारे में वे ऐसा कहते हैं कि वह एक कवि रहा होगा। निष्कर्ष में (पृ० 302) वे महाभारत को "एकमेव काव्यात्मक, रचनात्मक प्रतिभा" की उपज कहते हैं। अपनी पुस्तक "Genesis des Mahābhārata" (Berlin, 1899) में वे साफ-साफ कहते हैं "कवि diaskeuast था और diaskeuast कवि"। यह ध्यान देने योग्य बात है कि C. V. Vaidya जैसा भारतीय परम्परानुयायी व्यक्ति (The Mahābhārata : A Criticism, बंबई, 1905) जो बड़े आदर के साथ कृष्ण के समकालीन व्यास को महाभारत का "कवि" मानता है (जिनको वह होमर, मिल्टन और शेक्सपियर से ऊँचा मानता है), और ईमानदारी के साथ कहता है कि कृष्ण और व्यास महाभारत युद्ध के समय (3101 ई० पू०) जीवित रहे होंगे, वही व्यक्ति स्पष्टतः स्वीकार करता है कि अपने वर्तमान रूप में महाभारत मूलतः बहुत छोटे ग्रंथ का विस्तार है जिसमें अनेक जोड़ और क्षेपक घुसा दिए गए हैं।

२. Bhandarkar Com. Vol., पृ० 99 आ० (अंग्रेजी Ann. Bh. Inst. I, 1, 13 आ० में)।

युद्ध से सम्बन्धित वीर-कविता ही हो सकती है तो Levi की व्याख्या उतनी ही असम्भव होगी जितनी कि Dahlmann की। वे विद्वान्, जो महाभारत में "क्षत्रिय जाति के धर्म-ग्रंथ" का दर्शन करते हैं[1], यह भूल जाते हैं कि आज के रूप में उपलब्ध महाभारत में बहुत-सी ऐसी रचनाएँ भी संगृहीत हैं जो क्षत्रियों के निमित्त लिखे गए ग्रंथ में नहीं खप सकतीं। मुनियों की अहिंसा की नीति, सारे प्राणियों के प्रति प्रेम-भाव और पूर्ण संन्यास, उपदेशात्मक प्रकरणों में अनेक स्थानों पर वर्णित है। यह नीति वीरों को इन्द्र के स्वर्ग में प्राप्त होनेवाले अत्यधिक ऐन्द्रिय सुखों के उतनी ही विरुद्ध है जितनी यथास्थित इतिहास-काव्य में प्राप्त क्षत्रिय जीवन के सजीव वर्णनों में उल्लिखित मांस-भक्षण और मद्यपान के – क्षत्रिय और उनकी पत्नियां खुलकर मांस खाते और मद्य का पान करते थे।[2] जिस किसी ने सम्पूर्ण महाभारत का, न कि इसके प्रमुख अंशों का ही, अध्ययन किया है, यह अवश्य स्वीकार करेगा कि आज के महाभारत में न केवल विभिन्न प्रकार के विषय ही हैं, बल्कि इनके मूल्य भी विभिन्न प्रकार के हैं। सत्य यह है कि जो भी व्यक्ति सनातनी हिन्दुओं तथा ऊपर कहे गए पश्चिमी विद्वानों के साथ यह मानेगा कि वर्तमान रूप में महाभारत एक व्यक्ति की रचना है उसको अगत्या इस निर्णय पर पहुँचना होगा कि वह रचयिता एक साथ ही महाकवि और निम्नकोटि का नकलची, साधु और मूर्ख, प्रतिभा-सम्पन्न कलाकार और हास्यास्पद पंडित-मानी रहा होगा—इसके अलावा कि यह विचित्र व्यक्ति बिलकुल विरोधी धार्मिक मतों और परस्पर एकदम विरोधी दार्शनिक सिद्धान्तों को जानता और मानता रहा होगा[3]।

भाषा, शैली और छंद के बारे में भी महाभारत के अनेक भागों में एक-रूपता बिलकुल नहीं दिखाई देती। बड़े सामान्य अर्थ में ही हम लोकप्रिय इतिहास-काव्यों की भाषा के लिए "इतिहास-काव्य की संस्कृत" नाम दे सकते हैं[4]। वास्तव

---

१. Eliot, Hinduism and Buddhism I, पृ० XC आ० तथा Cambridge History, I, पृ० 256 में Hopkins।

२. दे० Hopkins, Great Epic, पृ० 373, 376 आ०।

३. Oldenberg (Das Mahābhārata, पृ० 32) महाभारत को एक-रूप की रचना मानने को "वैज्ञानिक असामान्यता" कहते हैं।

४. इतिहास-काव्य की भाषा पर विचार H. Jacobi ने Das Rāmāyaṇa, पृ० 112 आ० में किया है। मि० Hopkins, The Great Epic, पृ० 262; A. Ludwig, Mahābhārata als Epos und Rechtsbuch, पृ० 5 आ०; J. Wackernagel, Altindische Grammatik I, पृ० xliv आ०; W. Kirfel, Beiträge zur Geschichte der Nominalkomposition in den Upaniṣads und im Epos, Bonn 1908; Keith, JRAS, 1906, पृ० 2 आ०; Oldenberg, वही, पृ० 129 आ०; 145 आ०।

में महाभारत की भाषा कुछ अंशों में अपेक्षाकृत अधिक आदि-कालिक है अर्थात् इसका वैदिक गद्य के साथ नजदीक का सम्बन्ध है। अन्य भागों में ऐसी बात नहीं है। पालि भाषा की याद दिलानेवाले, भाषा-सम्बन्धी लोक-प्रचलित प्रयोगों के साथ कुछ अन्य प्रयोग ऐसे भी हैं जिन्हें हमें अप्रचलित (solecisms) मानना पड़ता है। ये प्रयोग पुराणों के लेखकों की तरह के अशिक्षित और निम्नकोटि के लेखकों द्वारा किए गए हैं। सामान्य अर्थ में ही, शैली भी तथा-कथित "काव्य-शैली" से बहुत दूर है अर्थात् अलंकारों के प्रचुर प्रयोगों से युक्त परवर्ती अलंकृत कविता की शैली (इसमें नहीं के बराबर है)। पर फिर भी महाभारत में ऐसे अंशों की कमी नहीं है जो हमें इस काव्य-शैली की याद दिलाते हैं[1]। इनके अलावा ऐसे भी अंश हैं जिनमें प्राचीन इतिहासों की अनगढ़ शैली सुरक्षित है—ये इतिहास ब्राह्मणों और उपनिषदों में इसी रूप में निबद्ध हैं। पर अनेक अन्य अंशों में पुराणों—जैसी फूहड़ शैली वर्तमान है। छंद के बारे में[2] हमें कहना है कि प्राचीन अनुष्टुभ् से निकला श्लोक वस्तुतः सर्वोत्तम छंद है। पर श्लोक के प्राचीन और नवीन दो रूप हैं जो महाभारत में मिलते हैं। हमारे इतिहास-काव्य में प्राचीन गद्यांश भी मिलते हैं—इनका गद्य कहीं तो लयात्मक है और कहीं पद्य और गद्य साथ मिलते हैं[3]। त्रिष्टुभ् की अपेक्षा यद्यपि श्लोकों की संख्या क़रीब बीस गुनी होगी, पर त्रिष्टुभ् का भी महाभारत में बहुधा प्रयोग किया गया है। त्रिष्टुभ् का भी प्राचीन रूप मिलता है जो इसके वैदिक रूप के समान है; इसके नये रूप तो प्राप्त होते ही हैं। श्रेण्य संस्कृत कविता में प्रयुक्त बड़े छंद भी महाभारत के कुछ अंशों में मिलते हैं।

अंत में हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि महाभारत के प्रारम्भ में ही स्पष्ट संकेत मिलता है कि इस इतिहास-काव्य का सर्वदा से ऐसा ही रूप और विस्तार नहीं रहा है। पहले दो अध्यायों में प्राप्त विषय-सूची भी वर्तमान महाभारत की विषय-सूची से मेल नहीं खाती।[4]

---

१. ऐसे अंश अधिक नहीं हैं। कम से कम उतने अधिक नहीं हैं जितने रामायण में हैं।

२. दे॰ Hopkins, Great Epic, पृ॰ 191 आ॰; J. Zubaty, ZDMG, 43, 1889, पृ॰ 619 आ॰; Ludwig, वही, पृ॰ 37; Jacobi गुरुपूजा-कौमुदी, पृ॰ 50 आ॰ में; Oldenberg, वही, पृ॰ 137 आ॰।

३. मि॰ Hopkins, Great Epic; पृ॰ 266 आ॰। Oldenberg (Das Mahābhārata, पृ॰ 21 आ॰) में मानते हैं कि गद्य-पद्यात्मक भाग महाभारत का प्राचीनतम भाग है। मेरे मत में यह बिलकुल गलत है।

४. V. V. Iyer, Notes of a Study of the Preliminary Chapters of the Mahābhārata, पृ॰ 17 आ॰; Oldenberg, वही, पृ॰ 33 आ॰; 43 आ॰। यद्यपि अठारह पर्वों में विभाजन पारम्परिक है पर निश्चित

इस प्रकार हर बातों से यही संकेत मिलता है कि महाभारत एक व्यक्ति की अथवा एक काल की रचना नहीं है वरन् इस में पूर्ववर्ती और परवर्ती भाग हैं जिन का सम्बन्ध अलग-अलग शताब्दियों से है। विषय-वस्तु और आकार दोनों से यह निश्चित होता है कि महाभारत के कुछ अंश तो वैदिक काल के हैं और कुछ अंश बहुत बाद के पुराण-साहित्य की रचना के समय के।

यह माना जाता है (खास कर A. Holtzmann ने इसे माना है) कि कौरवों की कोई प्राचीन वीर-कविता थी जो "मूल महाभारत" थी और बाद में पाण्डवों के पक्ष को दृष्टि में रख कर इस का "पुनः-संस्करण" लगातार कई बार हुआ—पहले बौद्धों के द्वारा फिर ब्राह्मणों के द्वारा। Holtzmann के अनुसार "पुराणों-जैसा इस का दूसरा पुनः-संस्करण" ९००-११०० ई० के बीच हुआ होगा। इस के बाद, कुछ शताब्दियों के अनन्तर, इस ग्रंथ को पूरा कर के एक निश्चित रूप दे दिया गया।[1]

यहाँ यह बता देना आवश्यक है कि वह मान्यता, जिस के अनुसार महाभारत का वर्तमान रूप पन्द्रहवीं या सोलहवीं शताब्दी में ही बना, बिलकुल गलत है। क्यों कि साहित्यिक और शिलालेखों के प्रमाणों से यह सिद्ध हो चुका है[2] कि करीब ५०० ईस्वी में ही महाभारत काव्य नहीं माना जाता था बल्कि उस समय ही इसे पवित्र ग्रंथ और धर्म-प्रवचन माना जाने लगा था। और उस समय भी विस्तार और विषय-वस्तु की दृष्टि से यह अपने वर्तमान रूप से मूलतः भिन्न नहीं था। दार्शनिक कुमारिल (७०० ई०) ने महाभारत के करीब सभी पर्वों से उद्धरण दिए हैं और उन के लिए महाभारत व्यास द्वारा प्रतिपादित एक महान् स्मृति है।[3] कवि सुबन्धु और बाण (६००-६५० ई० के करीब) महाभारत को मुख्यतः काव्य के रूप में जानते थे और बाण ने तो इसे कविता का चरम निदर्शन कहा है।[4] अपने कादम्बरी नामक उपन्यास

नहीं है कि यह विभाजन मूलतः वैसा ही रहा होगा जैसा कि आज के उपलब्ध ग्रंथ में है। अलबेरूनी अठारह पर्वों के दूसरे ही नाम बतलाता है, दे० E. Sachau, Alberuni's India, पृ० 132 आ०। दक्षिण भारतीय हस्त-लिखित पोथियों और जावानी भाषा के अनुवाद में अन्य शीर्षक ही मिलते हैं। मि० Brockhaus, ZDMG, 6, 1862, पृ० 528 आ०।

१. Holtzmann, Das Mahābhārata, I, पृ० 194।

२. दे० R. G. Bhandarkar, JBRAS, 10, 1871-2, पृ० 81 आ०; K. T, Telang, SBE, Vol. 8, पृ० 28 आ० और विशेष कर G. Bühler तथा J. Kirste, Indian Studies II. SWA. 1892।

३. दे० Bühler, वही, पृ० 5 आ०।

४. हर्षचरित, भूमिका के श्लोक ४-१०। पर इन श्लोकों से यह अर्थ नहीं निकलता कि (जैसा Peterson ने कादम्बरी की अपनी भूमिका पृ० 68 में कहा है) बाण

में बाण ने बतलाया है कि रानी विलासवती उज्जैन के एक मन्दिर में किसी उत्सव के अवसर पर महाभारत के पारायण के समय उपस्थित थी। आज भी भारत में उत्सवों के अवसर पर मन्दिरों में महाभारत की सार्वजनिक कथा होती है—स्वभावतः यह कथा मनोरंजन के लिए ही नहीं की जाती अपितु धार्मिक शिक्षा देने के उद्देश्य से की जाती है।[1] करीब ६०० ई० में कम्बोडिया में प्राप्त एक शिलालेख से भी प्रमाणित होता है कि महाभारत उस समय में सार्वजनिक रूप से पढ़ा जाता था। महाभारत के इस पाठ के लिए बृहत्तर भारत के उस सुदूर उपनिवेश में महाभारत की हस्तलिखित पोथी दान में दी गई थी जिससे कि वह पाठ संपन्न हुआ था। अंत में, हमारे पास पाँचवीं और छठी शताब्दियों के भूमि-दान के ऐसे दान-पत्र मौजूद हैं जिनमें तेरहवें पर्व के दानधर्म प्रकरण से धार्मिक श्लोक उद्धृत हैं। इस प्रकार के एक शिलालेख में तो महाभारत को "शतसाहस्री संहिता" भी कहा गया है। सौ हजार श्लोकों की संख्या तब तक पूरी नहीं होगी जब तक बारहवें और तेरहवें पर्वों तथा हरिवंश को भी महाभारत में न सम्मिलित कर लिया जाय[2]। परन्तु यदि पाँचवीं शताब्दी में ही निर्विवाद रूप से परवर्ती तेरहवाँ पर्व और हरिवंश[3] महाभारत का अंग बन चुका था, यदि उस समय

के समय महाभारत "संसार में अपेक्षाकृत नयी आश्चर्यजनक वस्तु" थी। अपितु इन का यह अर्थ है कि इस की प्रसिद्धि "तीनों लोकों में व्याप्त" हो गई थी—जैसा कि बाण ने स्वयं कहा है। सुबन्धु और बाण के ग्रन्थों में महाभारत के लिए देखिए—W. Cartellieri, WZKM, 13, 1899, 57 आ०।

१. Peterson द्वारा संपादित (पृ० 209) कादम्बरी में एक स्थान पर आता है कि कादम्बरी महाभारत का गायन सुन रही थी, नारद की कन्या "ललित स्वर में" इसे गा रही थी और किन्नरों का जोड़ा उस के पीछे बैठ कर बांसुरी बजा कर गायन का साथ दे रहा था।

२. महाभारत में ही इसका शतसाहस्री संहिता होना कहा गया है (I, 1, 107; XII, 343, 11; मि० Hopkins, वही, पृ० 9)। कलकत्ता संस्करण में महाभारत के अठारह पर्वों के श्लोकों की संख्या ९००९२ है, जिनमें से १३९३५ बारहवें पर्व के तथा ७७५९ तेरहवें पर्व के हैं। पूरे हरिवंश के साथ श्लोकों की संख्या १०६,४६६ है। यदि भविष्य पर्व को छोड़ दिया जाय तब १०११५४ श्लोक बाकी बचेंगे और यह संख्या "एक सौ हजार" की मोटी संख्या से अच्छी तरह मेल खाती है। पर महाभारत के विभिन्न रूपान्तर एक दूसरे से इस बात में भिन्न हैं कि कोई एक रूपान्तर कुछ श्लोकों को छोड़ देता है जब कि दूसरे रूपान्तर में वे श्लोक गृहीत हैं पर दूसरी तरफ उसमें नये श्लोक जोड़ दिए गए हैं जो दूसरे में नहीं मिलते। इससे सिद्ध होता है कि महाभारत की विषय-वस्तु में तो भेद हो सकता है पर उसके परिमाण में कोई अन्तर नहीं आता।

३. हरिवंश में "दीनार" शब्द के प्रयोग के आधार पर हम हरिवंश के रचना-काल

भी यह धर्म-ग्रंथ माना जाता था और यदि एक सौ साल बाद महाभारत की हस्त-लिखित पोथियाँ बृहत्तर भारत में पहुँच गई थीं और वहाँ के मंदिरों में उनका पाठ होता था तब तो यह निष्कर्ष निकालने के लिए हमारे पास पूरा प्रमाण है कि एक या दो शताब्दियों पूर्व अर्थात् तीसरी या चौथी ईसवी शताब्दी में ही महाभारत का वह रूप तयार हो चुका था जो आज हमारे सामने है। दूसरी ओर इसका यह रूप[1] बौद्ध

का निश्चय नहीं कर सकते (R. G. Bhandarkar, Vaiṣṇavism etc. पृ० 36 में कहते हैं कि इसका काल "ईसवी तीसरी शताब्दी के आस-पास होना चाहिए")। पर हम मान सकते हैं कि महाभारत का यह परिशिष्ट चौथी ईसवी सदी के बहुत पहले का नहीं है। यद्यपि रोम के सोने के सिक्के (दीनार) पहली शताब्दी ईसवी से ही भारत में ज्ञात थे (दे० E. J. Rapson, Indian Coins, Grundriss II, 3 B, पृ० 4, 17 आ०, 25, 35; R. Sewell, JRAS. 1904, 591 आ०) पर भारतीय शब्द दीनार को हम गुप्तकालीन शिला-लेखों से लेकर ४०० ई० के बाद ही प्रयोग में प्रचलित पाते हैं (Sewell, वही, पृ० 616)। मि० B. C. Mazumdar, JRAS, 1907, पृ० 408 आ०; A. B. Keith, JRAS, 1907, पृ० 681 आ०; 1915, पृ० 504 आ०। यदि बौद्ध कवि अश्वघोष वस्तुतः वज्रसूची का लेखक हो, जिसका कि वह लेखक कहा जाता है, तब तो कहना पड़ेगा कि ईसा की दूसरी शताब्दी में ही हरिवंश महाभारत का अंग बन चुका था, क्योंकि हरिवंश के दो श्लोक (१२९२ आ०) "क्योंकि भारत में लिखा है" इस वचन के साथ वज्रसूची ३ में उद्धृत हैं (दे० Weber, Indische Streifen, I, पृ० 189)।

१. दे० Hopkins, Great Epic, पृ० 391 आ०। भारतीय भी होमर की कविता गाया करते थे और वे प्रीमा के कष्टों से अच्छी तरह परिचित थे—यदि Dio Chrysostomos का उक्त कथन महाभारत की ओर संकेत करता है (जैसा कि A. Weber, Ind. Stud. II, 161 आ०; Holtzmann, Das Mahābhārata IV, 163; Pischel, KG, 195; H. G. Rawlinson, Intercourse between India and the Western World, Cambridge, 1916, पृ० 140 आ०, 171 की मान्यता है) तो यह कथन महाभारत के पहली ईसवी सदी में होने का बहिरंग साक्ष्य हो सकता है। पर यह संभव है (वस्तुतः Jacobi, Festschrift Wackernagel पृ० 129 आ० के अनुसार अधिक संभावित है) कि Dio का उक्त कथन, जो Aelian द्वारा दुहराया गया है, वास्तव में होमर के किसी भारतीय अनुवाद की ओर इंगित करता हो। महाभारत में आए अनेक ग्रीक शब्दों के बारे में दे० Hopkins, वही, पृ० 372; Rawlinson, वही, पृ० 172 note।

धर्म की उत्पत्ति और प्रचार के बाद ही बना होगा क्योंकि इसमें बौद्ध धर्म का बहुधा निर्देश किया गया मिलता है। वास्तव में यह रूप भारत पर सिकन्दर के आक्रमण के बाद का ही सम्भव है क्योंकि इसमें अनेक स्थानों पर यवनों (अर्थात् आयोनिया के ग्रीक लोगों) का उल्लेख मिलता है। **इसके अनुसार महाभारत का वर्तमान रूप चौथी शताब्दी ईसा-पूर्व के पहले का तथा चौथी शताब्दी ईसवी संवत् के बाद का नहीं हो सकता**[1]।

इसलिए महाभारत का बड़े पैमाने पर पुनः-संस्करण अथवा किसी एक नये पर्व का इसमें जोड़ा जाना चौथी ईसवी सदी के बाद सम्भव नहीं है। वास्तव में मैं तो एक या अनेक पुनः-संस्करणों की बात को न तो आवश्यक मानता हूँ और न तो वैसा सम्भव ही है[2]। परवर्ती कालों की तरह प्रतिलिपि करनेवाला प्रतिलिपि किए जानेवाले ग्रंथ के साथ मनमाना बर्ताव करता है, इसी तरह प्राचीनतर काल में उन गायकों ने भी, जिनके घरानों में सदियों से मौखिक परम्परा द्वारा वीर-कविता चली आती रही, अपने गीतों को उपस्थित करने में पूर्ण स्वतंत्रता बरती। उन्होंने अपने श्रोताओं को अच्छे लगनेवाले अंशों को विस्तृत किया और कम प्रभावशाली अंशों को संक्षिप्त कर दिया। पर ऐसे बड़े परिवर्तनों का, जिनके द्वारा प्राचीन वीर-कविता ने क्रमशः एक संकलन का रूप धारण कर लिया और बहुत कुछ दिया तथा सबके लिए कुछ दिया, इस तथ्य के द्वारा व्याख्यान किया जा सकता है कि प्राचीन वीर-कविता जिन गायकों के घराने में परंपरा से चली आ रही थी और सुरक्षित थी उनसे हट कर दूसरे क्षेत्रों में चली गई और दूसरे काल तथा परिवर्तित जनता के बीच उनको गृहीत किया गया। जैसा कि हमने पहले देखा, ये गीत कुरुओं से संबंधित भाटों के घरानों से उन भाटों के पास चले गए होंगे जिनका संबंध पाण्डवों से रहा होगा। जिन स्थानों पर विष्णु की पूजा प्रचलित थी उनसे चल कर ये गीत शिव की प्रधान देवता के रूप में पूजा करने वालों के क्षेत्रों में पहुँच गए। कृष्ण-संप्रदाय जिन स्थितियों से गुजरा उन स्थितियों का भी प्रभाव इतिहास-काव्य पर पड़ा। अन्य जातियों की तरह भारतीयों के सामने भी एक ऐसा समय अवश्य आया

---

१. Hopkins, Epic Mythology, (Grundriss III, 1 B, 1915, पृ० 1), में महाभारत का सम्भावित काल ३००-१०० ई० पू० मानते हैं, पर Cambridge History, I, पृ० 258 में उन्होंने भी ई० पू० ४०० से ४०० ई० समय माना है। बौद्ध महामायूरी के भूगोल के साथ महाभारत के भूगोल की समता देखकर S. Iévi (JA, 11, t. V, 1915, पृ० 122) ने कहा कि महाभारत को अंतिम रूप ईसा की तीसरी-चौथी शताब्दी में दिया गया।

२. पर इसका अर्थ यह नहीं है कि अलग-अलग भाग, जैसे विराट पर्व, के पुनः-संस्करण भी नहीं हुए। मि० Hopkins को JAOS, 24, 1903, पृ० 54।

होगा जबकि रचनात्मक कवि-प्रतिभा वीर-कविता के रूप में अभिव्यक्त होनी बन्द हो गई होगी और तब वीर-कविता जीवन्त कविता[1] नहीं रह गई होगी। भाट तब केवल प्राचीन गीत गाते रहे होंगे। प्राचीन वीर-काल भी समाप्त हो गया—वह काल जब भाट वीरों के सारथि के रूप में युद्ध-भूमि में जाया करते थे और विजय मिल जाने के बाद शायद किसी बड़े धार्मिक उत्सव के अवसर पर वीरता के सुन्दर गीत गाया करते थे। इन भाटों के वंशधर निम्न कोटि के साहित्यिक थे—ये वे ही लोग थे जो पुराणों को प्रचारित करने में लगे हुए थे। ये लोग न तो शुद्ध क्षत्रिय थे और न शुद्ध ब्राह्मण। बिना किसी कारण के ही स्मृतियों में सूतों को संकर जाति नहीं कहा गया है। ये सूत क्षत्रिय पुरुष से ब्राह्मणी में या ब्राह्मण पुरुष से क्षत्रिय स्त्री में उत्पन्न माने गए हैं। एकदम यही बात आज के रूप में प्राप्त महाभारत की भी विशेषता है। यह न तो ठीक-ठीक क्षत्रिय-काव्य है और न ही शुद्ध धार्मिक ग्रन्थ; न तो यह इतिहास-काव्य ही रहा, न ही यह शुद्ध पुराण बन सका।

महाभारत को अंतिम रूप मिलने के पहले शताब्दियों तक यह मौखिक परंपरा में ही सुरक्षित रहा होगा। बाद में ही इसे पहली बार लिखा गया होगा। शायद ब्राह्मण पंडित ही इसके संस्करण और लेखन में लगे। यदि हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि ईसा की चौथी शताब्दी या इसके पहले ही महाभारत आज के महाभारत से **सब कुछ मिलाकर मौलिक रूप से** परिमाण और विषय-वस्तु में भिन्न नहीं था तो हमें "सब कुछ मिलाकर" और 'मौलिक रूप से (नहीं)' इन शब्दों पर जोर देना होगा। कारण यह है कि जोड़ना और परिवर्तन (न केवल फुटकर श्लोकों का जोड़ा जाना अपितु दुर्गास्तव आदि की तरह की अनेक रचनाओं का जोड़ा जाना) बाद की शताब्दियों में भी जारी रहा[2] और **महाभारत का आलोचना के द्वारा निश्चित किया गया पाठ आज तक हमें उपलब्ध नहीं है।**[3]

जब हम महाभारत की बात करते हैं तो साधारणतः हमारा अर्थ महाभारत के दो प्रामाणिक संस्करणों में गृहीत पाठ से है—ये संस्करण हैं कलकत्ता संस्करण (१८३४-१८३९)[4] और नीलकंठ की टीका के साथ प्रकाशित बंबई संस्करण।[5] ये

१. मि० H. Jacobi, GGA. 1892, पृ० 632।

२. R. G. Bhandarkar (JBRAS. 20, 1900, पृ० 402) यह यह दिखलाते हैं कि गुप्तकाल तक अनुशासन पर्व में क्षेपक जोड़े गए हैं।

३. [अब भंडारकर ओरियंटल रिसर्च इन्स्टिट्यूट, पूना से संपूर्ण महाभारत का सुसंपादित संस्करण प्रकाशित हो गया है और हरिवंश का संस्करण भी शीघ्र ही प्रकाशित होने वाला है—अनु०।]

४. इस संस्करण का प्रारंभ Committee of Public Education ने किया और समापन Asiatic Society of Bengal के तत्वावधान में हुआ। इसमें हरिवंश भी है।

५. १८६२ के बाद इसके कई संस्करण निकले। दे० Holtzmann, Das

संस्करण भारत में प्रकाशित हुए और भारतीय पंडितों ने इन्हें संपादित किया। ये दो संस्करण एक दूसरे से थोड़े ही भिन्न हैं। इनको हम नीलकण्ठ द्वारा जिस पाठ पर टीका की गई है उस पाठ का अच्छा प्रतिनिधि मान सकते हैं।[1] बंगाली तथा खास कर दक्षिण-भारतीय पोथियाँ प्रायः अन्य पाठ से भिन्न हैं।[2] भारत के सभी भागों से प्राप्त हस्तलिखित पोथियों के आधार पर महाभारत का आलोचनात्मक संस्करण भारतीय विद्या की सब से बड़ी कमी है और हम आशा करते हैं कि निकट भविष्य में ही इस कमी की पूर्ति हो जाएगी।[3] इस प्रकार के संस्करण के प्रकाशित होने के पहले वर्तमान महाभारत में गृहीत अनेक पाठों को निश्चय रूपेण अथवा संभावित

Mahābhārata, III, पृ० 2 आ०, 9 आ० को इस संस्करण के बारे में तथा अन्य भारतीय संस्करणों के बारे में। प्रतापचन्द्र राय (कलकत्ता, 1882 आ०) का संस्करण आकार में छोटा होने पर भी छपाई की गल्तियों से बेकार हो गया है। यह संस्करण भारतीय दान और धर्म का सच्चा रूप है। संपादक द्वारा मुफ्त बाँटने के लिए चन्दा इकट्ठा करके यह संस्करण छापा गया और इसकी १०००० प्रतियाँ मुफ्त बाँटी गईं।

१. नीलकंठ बाद के टीकाकारों में से हैं और उन्होंने जिस पाठ पर टीका की है वह क्षेपकों से भरा हुआ था (दे० Utgikar, Virāṭaparvan, पृ० XII आ०)। अर्जुन मिश्र नीलकंठ से पहले और विषमपदविवरण नामक टीका उन से भी पहले की है। बम्बई के गुजराती प्रिंटिंग प्रेस से १९१५ और १९२० में कई टीकाओं के साथ विराट और उद्योग पर्वों के संस्करण प्रकाशित हुए हैं।

२. बंगाली हस्तलिखित पोथियां भी, न कि केवल बंगाली पोथियां, बर्दवान संस्करण में उपयोग में लाई गई हैं। दक्षिण भारतीय हस्तलिखित पोथियों के बारे में दे० M. Winternitz, Ind. Ant. 27, 1898, 67 आ०, 92 आ० 122 आ० तथा H. Lüders, "Über die Grantharecension des Mahābhārata" AGGW, 190। कुम्भकोणम् संस्करण के लिए दक्षिण भारतीय पोथियों का उपयोग किया गया था पर किसी भी प्रकार इसे दक्षिणी पाठ का संस्करण नहीं कहा जा सकता। यह तो एक उत्तरी और दक्षिणी पोथियों का मिला-जुला संस्करण है। दक्षिणी पाठ के सभापर्व में एक लंबा-सा कृष्ण-काव्य है। Hopkins ने (Festchrift Windisch, पृ० 72 आ०, मि० Cambridge History I, पृ० 255) इस में हरिवंश से मिलती कई साहित्यिक बातें ढूँढ़ निकालीं हैं।

३. सन् १९०५ में International Association of Academies (मि० Almanach der wiener Akademie 54, 1904, 248 आ०; 267 आ०; 55, 1905, 238 आ०) ने महाभारत का एक आलोचनात्मक संस्करण निकालने का निश्चय किया। प्रारम्भिक तयारी भी शुरू हो गई पर विश्वयुद्ध से

रूप से प्रक्षिप्त कह कर अलग करना सम्भव नहीं है।[1] पर हस्तलिखित पोथियों के बिना भी प्रामाणिक और जाली अंशों में कुछ हद तक निश्चय के साथ भेद करना संभव है।[2] इस के लिए महाभारत के भारतीय भाषाओं में किए गए प्राचीन अनुवादों तथा जावानी और फारसी भाषाओं के अनुवादों से सहायता ली जा सकती है।[3]

वह काम बीच में ही रह गया। पूना के भंडारकर ओरियण्टल इन्स्टिट्यूट द्वारा महाभारत का एक संस्करण तयार कराया जा रहा है। दे० A prospectus of a New and Critical Edition of the Mahābhārata 1919 (इन्स्टिट्यूट द्वारा श्रीमंत बाला साहेब पंत प्रतिनिधि, बी० ए०, औंध के राजा, के संरक्षकत्व में तयार कराया जा रहा है)' R. Zimmermann तथा C. V. Vaidya, JBRAS. 25, 1920, पृ० 358 आ०, N. B. Utgikar, Ann. Bh. Inst. II, 2, 1921, पृ० 155 आ० तथा The Virāṭaparvan of the Mahābhārata edited from original MSS. as a tentative work...पूना 1923; M. Winternitz, Ann. Bh. Inst. IV, 2. 1923, पृ० 145 आ०; V. 1, 1924, पृ० 19 आ०।

१. हस्तलिखित पोथियों के आधार पर हम आज भी निश्चय के साथ कह सकते हैं कि उदाहरण के लिए आदि पर्व १ में महाभारत के लिपि-कार के रूप में गणेश की कथा (दे० M. Winternitz, JRAS. 1898, पृ० 380 आ० तथा V. V. Iyer, Preliminary Chapters of the Mahābhārata, पृ० 32 आ०, 97 आ०, 340 आ०) तथा विराटपर्व—६ का दुर्गास्तोत्र (दे० Utgikar, the Virāṭaparvan, Ed. XXII) प्रक्षिप्त हैं।

२. दे० A Ludwig को महाभारत के राजसूय तथा जरासंध पर्वों में (महाभा० II, 12 आ०) आए प्रक्षेपों के बारे में OC XII, Paris, I, पृ० 187 आ० में।

३. महाभारत के भारती भाषाओं के अनुवादों के लिए देखिए—Holtzmann, Das Mahābhārata, III, पृ० 100 आ०। ईसा की ग्यारहवीं शताब्दी के माने जाने वाले तमिल अनुवाद के बारे में दे० V. V. Iyer, वही, पृ० 97 आ०। प्राचीन जावानी अनुवाद की तिथि सन् 906 ई० दी गई है—दे० K. Wulff, Den old javanske Wirataparva, Kopenhagen, 1917; D. van Hinloopen Labberton, JRAS, 1913, पृ० 1 आ० तथा H. Kern, Verspreide Geschriften, 1920, Vol IX, पृ० 39 आ०, 215 आ०। बाली द्वीप में महाभारत के विषय में दे० R. Friederich, JRAS, 1876, पृ० 176 आ०, 179 आ०। फारसी अनुवाद के बारे में दे० Holtzmann, वही, III, पृ० 110 तथा Ludwig, Das Mahābhārata als Epos und Rechtsbuch, पृ 66 आ०, 93 आ०।

जब तक महाभारत का इस प्रकार का आलोचनात्मक ढंग से संपादित पाठ नहीं तयार होता तब तक हरेक प्रकरण का, कभी-कभी तो हरेक श्लोक का, रचना काल अलग अलग निश्चित करना होगा। कोई नाम या विषय महाभारत में आया है—ऐसा कहने का न तो तब तक कोई अर्थ है न तो इस में कोई प्रमाण है। पर लोग बहुधा ऐसा कहा करते हैं। पूरे महाभारत को किसी निश्चित काल से सम्बन्धित करने के बारे में तो प्रमाणों का और भी अभाव है। कारण यह है कि न केवल निस्संदेह पूर्ववर्ती अंशों में बाद में प्रक्षेप हुए अपितु बाद के अंशों में भी काफी प्राचीन रचनाएँ मिलती हैं। इस प्रकार निश्चय ही महाभारत का प्रथम पर्व "प्राचीन" नहीं है फिर भी इस में बहुत से अति प्राचीन आख्यान, कथाएँ और वंशानुक्रम श्लोक मिलते हैं।[1] हरिवंश में भी, जो बहुत बाद में जोड़ा गया है, हमें अति प्राचीन श्लोक और आख्यान मिलते हैं। पर पूरे के पूरे पर्वों तथा महाभारत के बड़े प्रकरणों के लिए "पूर्ववर्ती" या 'परवर्ती" शब्दों का प्रयोग सर्वदा सावधानी के साथ संभल कर करना होगा।

इसके बाद हम सबसे कठिन प्रश्न पर आते हैं : जब हम महाभारत के "प्राचीन" और "प्राचीनतम" अंशों की बात करते हैं तो हमारा क्या अभिप्राय है? दूसरे शब्दों में : महाभारत की उत्पत्ति कब हुई ?

आइए, हम तथ्यों का अनुसरण करें। सम्पूर्ण वैदिक साहित्य में कहीं भी महाभारत का उल्लेख नहीं है, यद्यपि ब्राह्मण ग्रंथों और उपनिषदों में बहुधा आख्यान, इतिहास, पुराण और गाथा नाराशंसी की चर्चा मिलती है। वेदों में कुरुक्षेत्र में लड़े गए उस ऐतिहासिक महायुद्ध का नाम तक नहीं मिलता जो महाभारत का केन्द्र-बिंदु है। यद्यपि ब्राह्मणों में बहुधा कहा गया है कि कुरुक्षेत्र में देवताओं और मनुष्यों ने अनेक यज्ञ किए। यदि यह युद्ध उस समय तक हुआ होता तो इसकी चर्चा अवश्य की गई होती।[2] यह सही है कि परीक्षित के पुत्र जनमेजय तथा दुष्यन्त-शकुन्तला के पुत्र भरत ब्राह्मणों में पहले से ही उल्लिखित हैं और अथर्ववेद के कुन्ताप-सूक्त में परीक्षित की प्रशंसा में कहा गया है कि इस शान्ति-प्रेमी राजा के राज्य में कुरु-भूमि फली-

---

१. उदाहरणार्थ ययाति का आख्यान कम से कम पतञ्जलि के समय में ज्ञात था जिन्होंने "यायातिक" शब्द की व्युत्पत्ति बताते हुए महाभाष्य (4, 2, 60) में कहा है—"जो ययाति का आख्यान जानता है।" बहुत संभव है कि F. Lacôte (Essai sur Guṇāḍhya, पृ० 138 आ०) की यह मान्यता सही हो कि प्राचीन काल में स्वतंत्र कविता के रूप में बड़े इतिहास-काव्यों की घटनाओं का पारायण होता था। मैं इस में यह जोड़ना चाहूँगा कि इन का महाभारत में संग्रह होने के पूर्व वैसा पारायण संभवतः होता ही था।

२. दे० A. Ludwig, Über das Verhältnis des mythischen Elementes zu der historischen Grundlage des Mahābhārata, पृ० 6।

फूली। यजुर्वेद के ग्रंथों में कुरु और पांचाल या कुरुपांचाल बहुधा उल्लिखित हैं और कुरुपांचाल के यज्ञ के संबंध में काठक में (X, 6) विचित्रवीर्य के पुत्र धृतराष्ट्र की एक कथा आती है। दूसरी ओर, पांडु और उनके पुत्र पांडवों की चर्चा पूरे वेद में कहीं नहीं मिलती, न तो दुर्योधन, दुश्शासन, कर्ण आदि का ही नाम लिया गया है। सच है कि एक ब्राह्मण में अर्जुन शब्द आता है पर वहाँ यह इन्द्र का नाम है। शांखायन-श्रौतसूत्र ही (XV, 16) पहली ऐसी रचना है जिसमें हम कुरुक्षेत्र में लड़े गए कौरवों के लिए विनाशकारी युद्ध की चर्चा पाते हैं[1]। आश्वलायनगृह्यसूत्र[2] में वेद के अध्ययन के अंत में स्मरण किए गए आचार्यों तथा धर्म-ग्रंथों की एक सूची में "भरत और महाभारत" के नाम लिए गए हैं। पाणिनि[3] युधिष्ठिर, भीम और विदुर शब्दों की व्युत्पत्ति तथा समस्त-पद 'महाभारत' के स्वर के बारे में बतलाते हैं। पर पतंजलि ऐसे पहले व्यक्ति हैं जिन्होंने कौरवों और पांडवों के बीच हुए युद्ध की कथा की ओर निश्चित संकेत किया है।

बौद्ध साहित्य की क्या गति है? बौद्धों के पालि-धर्म-ग्रंथ त्रिपिटक में

---

१. मि० E. Leumann, ZDMG. 48, 1894, 80 आ०; Ludwig, Das Mahābhārata als Epos und Rechtsbuch, पृ० 77 आ०; Hopkins, Cambridge History 1, 252 आ०। B. C. Mazumdar (JRAS. 1906, 225 आ०) कहते हैं कि महाभारत के लेखक ने कुरु-पाण्डव की कथा को कुरु और पांचाल के युद्ध की प्राचीनतर कथा पर थोप दिया है।

२. IV, 4, 4। इस प्रसंग पर बड़ा विवाद हुआ है। मि० Hopkins, Great Epic, पृ० 389 आ०; Dahlmann, Das Mahābhārata als Epos und Rechtsbuch, पृ० 152 आ०; Winternitz, WZKM. 14, 1900 पृ० 55 आ०, Utgikar, Proc. IOC. Vol II, पृ० 46 आ०; Oldenberg, Das Mahābhārata, पृ० 18, 33। आश्वलायन गृह्यसूत्र (अन्य गृह्यसूत्रों में नहीं) में महाभारत के उल्लेख के बारे में उटगीकर सही कहते हैं कि आश्वलायन शौनक के शिष्यों में से थे और महाभारत की भूमिका-कथा के अनुसार उग्रश्रवा ने शौनक को महाभारत सुनाया था। पर आश्वलायन गृह्यसूत्र का रचना-काल बिलकुल अज्ञात है और इस प्रकार की सूची का आश्वलायन-सम्प्रदाय में किसी समय बढ़ाया जा सकना संभव है। इस कारण से इस प्रसंग के आधार पर काल-संबंधी निष्कर्ष निकालना हमारे लिए उचित नहीं है।

३. VIII, 3, 95; III, 2, 162; 4, 74; VI, 2, 38। परन्तु इन स्वल्प उल्लेखों से हम पाणिनि को ज्ञात महाभारत के परिमाण और विषय के बारे में कोई निष्कर्ष नहीं निकाल सकते।

महाभारत की चर्चा नहीं है। पर, दूसरी ओर त्रिपिटक के प्राचीनतम ग्रंथों में इतिहास-काव्य की भूमिका के रूप में आख्यान-जैसी वे कविताएँ मिलती हैं जिनसे हम ब्राह्मणों में परिचित हो चुके हैं[१]। जातक, जिनका गाथा-भाग त्रिपिटक का अंग है, कृष्ण-आख्यान से तो परिचित हैं पर हरिवंश तथा महाभारत के मौसल पर्व से नहीं।[२] जातक में आने वाले पाण्डव, धनंजय, (महाभारत में अर्जुन का सामान्य नाम), युधिट्ठिल (युधिष्ठिर का पालि रूप) धतरट्ठ (धृतराष्ट्र का पालि रूप), विधुर या विधूर (महाभारत का विदुर) ये नाम तथा द्रौपदी के स्वयंवर और पाँच पतियों के साथ उसके विवाह की कथाएँ महाभारत के साथ किंचित् परिचय-मात्र की साक्षी हैं। जातक में पाण्डव एक घोड़े का नाम है[३], धृतराष्ट्र कई राजाओं का नाम है[४], धनंजय और युधिष्ठिर इन्द्रप्रस्थ में रहने वाले कुछ राजाओं के नाम बतलाए गए हैं—तथा विदुर एक विद्वान् बतलाया गया है जो कभी पुरोहित और कभी धनंजय या युधिष्ठिर के दरबार के एक मन्त्री के रूप में चित्रित है।[५] पर

१. E. Windisch, Māra und Buddha (ASGW, Vol XV, Leipzig, 1895) पृ० 222 आ० तथा T. W. Rhys Davids, Buddhist India, लंडन, 1903, पृ० 180 आ०। ब्रह्मजालसुत्त में आख्यानों के पारायण का तथा भिक्खु के द्वारा हेय वार्तालापों और प्रदर्शनों का उल्लेख है (Dialogues of the Buddha, पालि से T. W. Rhys Davids द्वारा अनूदित, लंडन, 1899, पृ० 8)। जैसा कि टीकाकार मानते हैं यदि महाभारत और रामायण का निर्देश हो तो फिर लेखक स्पष्टतः उनका नाम अवश्य लेता।

२. घटजातक (सं० 454) में कृष्ण (कण्ह) का आख्यान कहा गया है, इसकी ओर संकेत ५१२वें और ५३०वें जातकों में भी मिलता है। दे० Lüders को ZDMG., 58, 1904, पृ० 687 आ० में तथा E. Hardy को ZDMG., 53, 1899, पृ० 25 आ० में। जैनों ने तो ईसा पूर्व ही तीसरी या दूसरी शताब्दी में कृष्ण-पूजा को अपने धर्म का अंग बना लिया था, दे० Jacobi को OC, VII, Vienna 1886, पृ० 75 आ० तथा ZDMG, 42, 1888 पृ० 493 आ० में।

३. जातक संख्या १८५।

४. जातक सं० ३८२ में धतरट्ठ देवताओं का एक राजा है, ५४३वें जातक में वह एक नागराज है, ५०२, ५३३ और ५३४वें जातकों में यह हंसों का राजा है। जातक सं० ५४४ में धर्मात्मा राजाओं की एक सूची में उसका नाम पहला है। महावस्तु में धृतराष्ट्र बुद्ध का नाम है और एक जगह एक भवन का भी, दे० E. Windisch, Buddhas Geburt (ASGW, 1908) पृ० 101, 168।

५. जातक सं० ४१३ में धनंजय एक कुरु-राजा है जो युधिष्ठिर के परिवार का

महाभारत की एक अत्युत्कृष्ट पात्र द्रौपदी जातक में स्त्रीत्व के कलंक के रूप में चित्रित है क्योंकि वह अपने पाँच-पाँच पतियों से भी तृप्त नहीं होती तो एक कुबड़े नौकर के साथ अनुचित संबंध स्थापित करती है।[1]

इन तथ्यों से हमें यही निष्कर्ष निकालना पड़ेगा कि वेदों की समाप्ति के पहले एक इतिहास-काव्य के रूप में महाभारत का अस्तित्व **नहीं** रहा होगा—अर्थात् ऐसे इतिहास-काव्य के रूप में इसका अस्तित्व नहीं रहा होगा जिसका विषय कौरवों-पांडवों की लड़ाई, कुरुक्षेत्र में युद्ध आदि रहा हो और जिसका नाम 'भारत' या 'महाभारत' रहा हो। दूसरी ओर इस प्रकार की काव्यात्मक रचना ईसा पूर्व चौथी शताब्दी में अवश्य विद्यमान रही होगी क्योंकि शांखायन, आश्वलायन और पाणिनि के सूत्र शायद ही इस काल के बाद की रचनाएँ हों। अब चूँकि ईसा पूर्व चौथी या तीसरी शताब्दी के बौद्ध पालि-धर्म-ग्रन्थ महाभारत से बड़े सतही ढंग पर परिचित हैं—इसलिए शायद उस समय महाभारत पूर्वी भारत में अच्छी तरह ज्ञात नहीं था जहाँ बौद्ध साहित्य पैदा हुआ।

पर हमने पहले ही देखा है कि हमारे वर्तमान महाभारत के कुछ तत्त्व वैदिक काल के हैं आर खासकर उपदेशात्मक भागों के बहुत से अंश उस **सर्वसामान्य साहित्यिक थाती** से लिये गए हैं जिससे बौद्धों और जैनों ने भी (शायद ई० पू० पाँचवीं शताब्दी में ही) अपनी सामग्री ली थी।[2]

(युधिट्ठिलगोत्तो) है और इन्दपत्त (इन्द्रप्रस्थ) नगर में रहता है, विधूर उसका पुरोहित है। जातक ५१५ में धनंजय कोरव्य एक धर्मात्मा कुरु-राज है, गाथाओं में उसे युधिट्ठिल कहा गया है, उस समय ऋषि विधुर वाराणसी में रहा करते थे। विधुरपंडित जातक में (सं० ५४५, इस जातक का 'वितुर-पुनकिय जातकम्' शीर्षक से भरहुत के एक शिलालेख में ई० पू० दूसरी शताब्दी में ही उल्लेख हुआ है) विधुर कुरु-राज धनंजय का एक मंत्री है और यह धनंजय (महाभारत के युधिष्ठिर की तरह) जुआ खेलने का शौकीन है। पर वहाँ पर महाभारत की कथा का कोई संकेत नहीं है। ३२९ में जातक में धनंजय वाराणसी का राजा है। बुद्धिमान् भिक्षु के रूप में विधुर थेरीगाथा ११८८ तथा मज्झिम निकाय ५० में भी आता है।

१. जातक सं० ५३६ (गाथा २८८) मि० Winternitz, JRAS, 1897, पृ० पृ० 752 आ०।

२. महाभारत, XI, 7, 23 आ० के वे श्लोक भी, जिन्हें H. Raychaudhuri (JASB. N. S. 18, 1922, पृ० 269 आ०) बेसनगर के शिलालेख में उद्धृत मानते हैं, इसी सर्वसामान्य साहित्यिक थाती से हैं। जातक में ऋष्यश्रृंग के आख्यान के लिए मि० Lüders, NGGW. 1897, पृ० 1 आ०; 1901, पृ० 1 आ०। एक दूसरा आख्यान, जो महाभारत (I, 107

अन्त में, फिर भी यह कहना आवश्यक है कि न केवल महाभारत में वर्णित घटनाएँ ही बल्कि राजाओं, राजघरानों के अगणित नाम—चाहे इनमें से कुछ घटनाएँ और नाम कितने ही ऐतिहासिक क्यों न मालूम पड़ें—सही माने में भारतीय **इतिहास** से संबंधित नहीं हैं। यह सही है कि भारतीय लोग युधिष्ठिर के राज्य का तथा महाभारत के महायुद्ध का काल कलियुग के आरंभ में अर्थात् ३१०२ ई० पू० मानते हैं। पर कलियुग के प्रारम्भ का यह समय भारतीय ज्योतिषियों की गलत गणना पर आधारित है और इस समय का कौरव-पाण्डव के साथ सम्बन्ध वस्तुतः बिलकुल यादृच्छिक है।[1] भारत का राजनैतिक इतिहास मगध के शिशुनाग राजाओं—बिम्बसार और अजातशत्रु—से शुरू होता है। हम इन राजाओं को बुद्ध के समकालिक होने के नाते जानते हैं। हम पुराणों में वर्णित शिशुनाग और नन्द वंशों के राजाओं को भी इतिहास-प्रसिद्ध मान सकते हैं।[2] मौर्य-राजवंश के संस्थापक सम्राट् चन्द्रगुप्त (३२१ ई० पू०) के काल से हम भारत के इतिहास की ठोस भूमि पर आते हैं। इन सारे इतिहास-प्रसिद्ध व्यक्तियों में से किसी की भी महाभारत में चर्चा नहीं है।[3] कथानक और वीरों की "प्रागैतिहासिकता" महाभारत की अतिप्राचीनता की ओर निश्चित रूप से संकेत करती है।

संक्षेप में, समापन करते हुए, हम महाभारत के रचना-काल के बारे में निम्नलिखित बातें कह सकते हैं :

और जातक (सं० ४४४) में समान है, वह है माण्डव्य का आख्यान। बचपन में माण्डव्य ने काँटे से छेदकर एक मक्खी को मार डाला था और बाद में उसको डाकू समझ कर उसी तरह मारा गया। (मि० L. Scherman, Materialien zur Geschichte der indischen Visionslitteratur, Leipzig, 1892, पृ० 53 आ० तथा N. B. Utgikar, Proc. II OC. 1822, पृ० 221 आ०। जातक में मांडव्य कण्हदीपायन (अर्थात् कृष्ण द्वैपायन व्यास) का मित्र है।

१. दे० R. Ramkrishna Bhagwat, JBRAS, 20, 1899, पृ० 150 आ० तथा J.F. Fleet, JRAS, 1911, पृ० 479 आ०, 675 आ०। अरब के ज्योतिषियों ने इसी प्रकार इसी साल का सम्बन्ध प्रलय के साथ जोड़ा है।

२. इन राजाओं ने ६४२ या ६०० ई० पू० और ३२२ ई० पू० के बीच राज्य किया। मि० Smith, Early History, पृ० 44, 46 आ० तथा E.J. Rapson, Cambridge History I, पृ० 312 आ०, 697।

३. यह सही है कि E. W. Hopkins (Album Kern, पृ० 249 आ० में) विश्वास करते हैं कि महाभारत में मौर्यों, अशोक और चन्द्रगुप्त का संकेत है। पर फिर क्यों यह संकेत इतना अस्पष्ट है?

१. महाभारत के आख्यान, पुराण-कथाएँ और कविताएँ अलग अलग रूप में वैदिक युग तक ले जाई जा सकती हैं।
२. भारत या महाभारत नाम का कोई इतिहास-काव्य वैदिक युग में नहीं था।
३. वर्तमान महाभारत में संगृहीत बहुत सी नीति कथाएँ और उक्तियाँ मुनि-कविता से संबद्ध हैं—और ई० पू० छठीं शताब्दी के बाद से बौद्धों और जैनों ने भी इसी मुनि-कविता से अपनी सामग्री लेनी शुरू की।
४. यदि महाभारत नामक कोई इतिहास-काव्य ई० पू० छठीं से चौथी शताब्दी के बीच रहा भी हो तो वह बौद्ध धर्म की जन्म-भूमि में प्रायः अज्ञात था।
५. चौथी सदी ई० पू० के पहले महाभारत—इतिहास-काव्य की स्थिति के लिए कोई निश्चित प्रमाण नहीं मिलता।
६. ई० पू० चौथी शताब्दी से चौथी ईसवी शताब्दी के बीच **इतिहास-काव्य** के रूप में शायद क्रमशः रूपान्तरण हुआ।
७. ईसा की चौथी सदी में सब कुछ मिलाकर महाभारत का परिमाण, विषय-वस्तु और स्वरूप वैसा ही था जैसा कि आज के महाभारत का है।
८. थोड़े-बहुत परिवर्तन-परिवर्धन बाद की शताब्दियों में भी होते रहे।
९. महाभारत का कोई **एक** रचना-काल है ही नहीं पर प्रत्येक भाग का रचना-काल उस भाग के ही आधार पर निश्चित किया जाना चाहिए।

रामायण : एक लोकप्रिय इतिहास-काव्य और अलंकृत-काव्य

रामायण का महाभारत से मूलतः अनेक बातों में भेद है। सब से पहले तो रामायण अपेक्षाकृत काफी छोटा और अधिक एक-रूपता से युक्त है। अपने वर्तमान रूप में महाभारत को कठिनाई से ही वास्तविक इतिहास-काव्य कहा जा सकता है जब कि रामायण अपने वर्तमान रूप में भी काफी एक-रूप वीर-कविता है। पुनश्च भारतीय परम्परा व्यास को महाभारत का सम्पादक या लेखक बताती है—ये व्यास प्राचीन भारत के बिलकुल पौराणिक ऋषि हैं जिन को समझा जाता है कि वे वेदों और पुराणों के भी संग्रह-कर्ता थे। उसी परम्परा के अनुसार वाल्मीकि रामायण के लेखक हैं पर हमारे लिए इस में सन्देह का कोई कारण नहीं कि इस नाम का कवि वास्तव में था और उसने भाटों की मौखिक परम्पराओं में बिखरे गीति-नाट्यों को एकाकार कविता में निबद्ध किया। भारतीय वाल्मीकि को "आदि कवि" अर्थात् अलंकृत कविता का पहला कवि कहते हैं और रामायण को भी "आदिकाव्य" अर्थात् पहला अलंकृत काव्य कहना चाहते हैं। अलंकृत काव्यों का आरम्भ वस्तुतः रामायण से होता है और वाल्मीकि सदा से परवर्ती कवियों के आदर्श रहे हैं जिन का वे आदर के साथ अनुकरण करने का प्रयत्न करते हैं। तथा-कथित अलंकृत काव्य की मुख्य बात यह है कि इसमें कविता के विषय की अपेक्षा रूप को अधिक महत्व दिया जाता है और उपमा, रूपक, श्लेष आदि अलंकारों का अधिक और कभी-कभी अत्यधिक प्रयोग होता है। उपमा के बाद उपमाओं की भरमार रहती है और वर्णन, खास कर प्रकृति के, नित नये रूपकों और तुलनाओं के साथ इस में गुंथे होते हैं। श्रेण्य अलंकृत कविता की इन तथा अन्य विशेषताओं का आरम्भ पहले-पहल हमें रामायण में मिलता है। हम ने महाभारत में लोक-प्रचलित इतिहास-काव्य और धार्मिक उपदेशात्मक कविता (पुराण) का मिश्रण पाया पर हमें रामायण लोकप्रिय इतिहास-काव्य और अलंकृत काव्य दोनों एक साथ दिखाई देता है।

यह महाभारत की तरह एक सच्चा लोकप्रिय इतिहास-काव्य है क्यों कि महाभारत की तरह यह भी सारे भारतीयों की समान थाती बन गया है। सारे संसार के साहित्य में मुश्किल से कोई ऐसी अन्य कविता होगी जिसने शताब्दियों तक समूचे राष्ट्र की विचार-धारा और कविता को इस तरह प्रभावित किया हो। इस की भूमिका में (जो बाद में जोड़ी गई है) कहा गया है कि स्वयं ब्रह्मा ने वाल्मीकि को राम-कथा श्लोकों में निबद्ध करने की प्रेरणा दी। कहा गया है कि ब्रह्मा ने वाल्मीकि से कहा

था : "जब तक इस स्थिर पृथ्वी पर नदियाँ बहती रहेंगी, पर्वत स्थिर रहेंगे, तब तक सारे संसार में रामायण भी प्रचलित रहेगा।[1]"

इस उक्ति में निहित भविष्य-वाणी आज तक सही निकली। दो हजार वर्षों से अधिक समय से राम की कविता भारत में जीवित है और सभी वर्गों तथा श्रेणियों के लोगों में इसका प्रचलन है। ऊँच-नीच, राजा, किसान, सेठ-साहूकार, कलाजीवी, राजकुमारियाँ, गवारिनें सबकी सब इस महाकाव्य की कथाओं और पात्रों से परिचित हैं। पुरुष राम के उदात्त चरित से महानता का अनुभव करते हैं और राम के सुन्दर वचनों से वे अपना जीवन संवारते हैं। स्त्रियों के उच्चतम धर्म पातिव्रत्य धर्म के आदर्श के रूप में स्त्रियाँ सीता से प्रेम करती हैं और उनकी प्रशंसा करती हैं। बूढ़े-बच्चे सच्चे हृदयवाले हनुमान् के अद्‌भुत कर्मों में रस लेते हैं और नर-भक्षी तथा जादुई शक्ति से सम्पन्न राक्षसों की भयोत्पादक कहानियों में भी उन्हें कम आनंद नहीं आता। लोक-प्रचलित कहावतें और उक्तियाँ इस बात के प्रमाण हैं कि रामायण की कथाओं से लोग कितने परिचित हैं। अनेक धर्म संप्रदायों के प्रवर्तक और आचार्य रामायण को उद्‌धृत करते हैं तथा धार्मिक एवं नैतिक सिद्धान्तों का जनता में प्रचार करने के हेतु वे इससे सहायता लेते हैं। परवर्ती काल के कविगण कालिदास से भवभूति तक और उनके अनुयायी सदा रामायण से अपना विषय लेते रहे हैं और उसको नये रूप में उपस्थित करते रहे हैं[2]। जब हम आधुनिक भारतीय भाषाओं के साहित्य पर दृष्टिपात करते हैं तो हमें संस्कृत काव्य का एक तमिल अनुवाद ग्यारहवीं शताब्दी का मिलता है। बाद में उत्तर से दक्षिण तक सारे भारत में आधुनिक भाषाओं में इसके अनुकरण या अनुवाद मिलते हैं। प्राचीन रामायण पर आधारित, करीब सन् १५७४ में सुप्रसिद्ध संत-कवि तुलसीदास द्वारा रचित धार्मिक-दार्शनिक हिन्दी काव्य रामचरितमानस तो लाखों भारतीयों का धर्म-ग्रंथ बन गया। भारत के सारे भागों में हिन्दुओं की अनेक पीढ़ियों ने इस प्रकार के आधुनिक अनुवादों के जरिये राम की प्राचीन कथा से परिचय प्राप्त किया है। धनियों के घरों में आज भी रामायण का पाठ कराया जाता है। राम की कथा का नाट्य-रूपान्तर, जैसा कि हरिवंश में बतलाया जा चुका है, आज भी भारत के गावों और शहरों में धार्मिक उत्सवों के अवसर पर खेला जाता हुआ देखा जा सकता है। उत्तर भारत के लाहौर जैसे नगर में प्रतिवर्ष रामलीला के साथ दशहरा का त्यौहार मनाया जाता है जिसमें रामायण के खास-खास दृश्य हजारों लोगों के सामने खेले जाते हैं।[3] वानरराज हनुमान् एक भारतीय देवता हैं जो सारे भारत में

---

१. १. २. ३६ आ०। R. T. H. Griffith द्वारा अनूदित (अंग्रेजी)।

२. A. Baumgartner, (Das Rāmāyaṇa und die Rāmaliteratur der Inder, Freiburg, 1894 में) ने सारे राम-साहित्य का सर्वेक्षण किया है।

३. व्यक्तिगत रूप से देखकर पूरे उत्सव का विशद वर्णन J. C. Oman ने The

पूजे जाते हैं। इनकी पूजा और सामान्यतः वानर-पूजा मात्र रामायण की लोक-प्रियता के कारण है अथवा राम-कथा में वानरों का प्रमुख स्थान होने की वजह से, जिससे कि हम कहें कि प्राचीन समय में कोई वानर-पूजा की प्रथा थी—यह प्रश्न अब तक सुलझाया नहीं जा सका है। जो भी हो इतना तो निश्चित है कि भारत का कोई बड़ा गाँव ऐसा नहीं है जिसमें वानर-राज हनुमान् की मूर्ति न हो। अनेक मंदिरों में वानर भरे रहते हैं और लोग बड़े प्रेम और धैर्य के साथ उनके साथ बर्ताव करते हैं। राम के प्राचीन निवास-स्थान अवध में तो यह खास बात है[1]।

रामायण के नायक राम को शायद बाद में ही विष्णु का अवतार माना गया और उनकी देवता के रूप में पूजा शुरू हुई। इस ईश्वर राम के बारे में लिखा गया महाकाव्य तभी पवित्र ग्रंथ बना इस तथ्य से हमें आश्चर्य नहीं होगा। प्रथम सर्ग के अंत में (जो वाल्मीकि की रचना नहीं हो सकती) यों कहा गया है :

"जो कोई इस रामचरित का पाठ करता है, जो वेदों की तरह है, वह सारे पापों से मुक्त हो जाता है। जो भी इसका पाठ करता है वह अपने सारे परिजनों के साथ स्वर्ग प्राप्त करता है। इसको पढ़नेवाला ब्राह्मण प्रवचन में परम प्रवीणता प्राप्त करे, क्षत्रिय भूमि प्राप्त करे, वैश्य व्यापार का फल प्राप्त करे और शूद्र इसे सुनकर इस कथा से फल प्राप्त करने में कभी न चूके[2]।"

काश्मीर के राजा दामोदर द्वितीय की कहानी भी महत्त्व की है। यह राजा किसी शाप के कारण सांप बन गया था और तब तक शाप से उसे मुक्ति नहीं मिल सकती थी जब तक वह एक ही दिन में सारी रामायण न सुन ले[3]।

महाभारत की तरह रामायण भी लोक-प्रियता के कारण अपने मूल रूप में हमारे सामने न आ सका—परिवर्तनों और परिवर्धनों के कारण यह बहुत बढ़ गया और इसका रूप काफी बदल गया। जिस रूप में यह रचना सामने है उसमें सात कांड हैं और करीब २४००० श्लोक हैं, पर इनमें से कौन पहले का और कौन बाद का है, कौन सच्चा है और कौन जाली है इसका निर्णय हम तभी कर सकेंगे जब कि इस काव्य का संक्षिप्त सारांश हम उपस्थित कर लें।

Great Indian Epics, The Stories of the Rāmāyaṇa and the Mahābhārata, लंडन, 1899, पृ॰ 75 आ॰ में किया है। मि॰ M. M. Underhill, The Hindu Religious Year, Heritaga of India Series, 1921, पृ॰ 79 आ॰।

१. मि॰ W. Crooke, Popular Religion and Folklore of Northern India, दूसरा संस्क॰, 1896, I, पृ॰ 85 आ॰; W. J. Wilkins, Hindu Mythology, दूसरा संस्क॰, कलकत्ता, 1882, पृ॰ 405; Underhill, वही, पृ॰ 119 आ॰।

२. R. T. H. Griffith द्वारा (अंग्रेजी) अनुवाद।

३. कल्हण की राजतरंगिणी, I, 166।

रामायण की विषय-वस्तु[1]

पहला बालकांड इस काव्य की उत्पत्ति के बारे में दी गई एक भूमिका से प्रारम्भ होता है और राम की कुमारावस्था की कथा इसमें वर्णित है। बिलकुल महाभारत की तरह इस कांड में भी मुख्य कथा के बीच-बीच में ब्राह्मण-आख्यान और पुराण-कथाएँ जोड़ी गई हैं। इनमें से कुछ तो ऐसे हैं जो विभिन्न रूपों में महाभारत में भी आए हैं। जैसे ऋष्यश्रृंग की चर्चा हो जाने के बहाने उस आख्यान का वर्णन कर दिया गया जिससे हम पूर्व-परिचित हैं[2]। वसिष्ठ और विश्वामित्र आए तो इन ऋषियों के बारे में प्राचीन काल से प्रचलित अनेक कथाओं को वर्णित करने का अवसर मिल गया। ब्राह्मण बनने के लिए विश्वामित्र द्वारा की गई तपस्या की कहानी तथा रम्भा और मेनका इन दो अप्सराओं द्वारा उन ऋषि का लुभाया जाना विस्तार से वर्णित है[3]। विश्वामित्र के आख्यानों की माला में शुनःशेप की प्राचीन कथा भी है[4]। अन्य आख्यानों में से हम विष्णु के वामनावतार (I, 29), कुमार कार्तिकेय की उत्पत्ति (I, 35-37), सगर के साठ हजार पुत्र, स्वर्ग से गंगा का अवतरण[5] और देवों तथा असुरों द्वारा समुद्र का मथन[6] की कथाओं का उल्लेख कर सकते हैं।

---

१. अंग्रेजी पद्यों में R. T. H. Griffith द्वारा अनूदित (5 जिल्दों में 1870-1874 में; एक जिल्द में, बनारस, 1895, नया संस्क०, M. N. Venkataswami द्वारा लिखित स्मारक के साथ, बनारस, 1915); अंग्रेजी गद्य में मन्मथनाथ दत्त द्वारा, कलकत्ता, 1892-94; अंग्रेजी पद्य में संक्षेप रोमेश दत्त, लंडन, 1900 द्वारा; इतालवी में अनूदित G. Gorresio द्वारा (Parigi, 1847-58); फ्रेंच में अनूदित H. Fauche द्वारा (Paris, 1854-58) तथा A. Roussel द्वारा (Paris, 1903-1909); केवल प्रथम कांड जर्मन में J. Menrad द्वारा अनूदित, München, 1897 तथा कुछ अंशों का अनुवाद Fr. Rückert द्वारा, दे० Rückert Nachlese, I, 271, आ०। J. C. Oman ने कथा की एक रूप-रेखा The Great Indian Epics, पृ० 19 आ० में प्रस्तुत की है। H. Jacobi ने Das Rāmāyaṇa, Bonn, 1893 में विषय-वस्तु के बारे में पूर्ण विचार किया। R. T. H. Griffith कृत Scenes from the Rāmāyaṇa, 1912।

२. I, 9-11। Lüders, NGGW, 1897, 1, पृ० 18 आ०।

३. I, 51-65।

४. I, 62।

५. I, 38-44। इस कथा की एक रूप-रेखा J. C. Oman ने The Great Indian Epics, पृ० 87 आ० में दी है। जर्मन में इसका अनुवाद A. W. von Schlegel ने अपने "Indische Bibliothek" I (1823), पृ० 50 आ० में दिया है।

६. I, 45।

इस भूमिका से हम केवल श्लोक की उत्पत्ति की कथा पर ही ध्यान दिलाएँगे।[१]

एक नदी के किनारे वाल्मीकि जंगल में घूम रहे थे। उन्होंने क्रौंच पक्षी के एक जोड़े को देखा जो घासों पर कूदते हुए चहक रहे थे। एकाएक एक दुष्ट व्याध आया और उसने तीर से नर क्रौंच को मार डाला। पक्षी खून में तड़पने लगा और उसकी मादा करुण स्वर में विलाप करने लगी तो वाल्मीकि को गहरी वेदना हुई और उन्होंने व्याध को शाप दे दिया। पर उनके शाप के शब्द अपने-आप श्लोक के रूप में निकले। ब्रह्मा आए और उन्होंने इसी छन्द में रामचरित गाने का कवि से अनुरोध किया।

पहले काण्ड में राम की किशोरावस्था की कथा यों वर्णित है :

कोसल देश के (गंगा के उत्तर में) अयोध्या नगर में (वर्तमान औध) दशरथ नाम के शक्तिशाली और बुद्धिमान् राजा राज्य करते थे। उनको कोई संतान न थी। उन्होंने अश्वमेध यज्ञ करने का निश्चय किया। ऋषि ऋष्यशृंग को इस महायज्ञ का आचार्य बनाया गया। उन्होंने पुत्रों को उत्पन्न कराने की विशेष शक्ति से युक्त आहुति दी। उसी समय स्वर्ग में देवता लोग राक्षस रावण से बहुत परेशान थे। इसलिए वे विष्णु के पास गए और उनसे मनुष्य का रूप धारण करके रावण को मारने की प्रार्थना की। विष्णु तयार हो गए और दशरथ के पुत्र के रूप में धरती पर पैदा होने का निश्चय किया। अतः अश्वमेध यज्ञ समाप्त हो जाने पर दशरथ की तीन पत्नियों से चार पुत्र उत्पन्न हुए; कौसल्या से राम (जो साक्षात् विष्णु के अवतार थे), कैकेयी से भरत तथा सुमित्रा से लक्ष्मण और शत्रुघ्न। इनमें से सबसे बड़े राम अपने पिता के बड़े प्रिय थे। बाल्यावस्था से ही लक्ष्मण अपने बड़े भाई के बड़े भक्त थे। वे राम के आधे अंग के समान थे और कहने के पहले ही वे राम की इच्छा पूरी कर दिया करते थे।

जब बच्चे बड़े हो गए तब महर्षि विश्वामित्र दशरथ के दरबार में आए। राम और लक्ष्मण राक्षसों को मारने के लिए उनके साथ गए और इसके लिए महर्षि ने उनको दिव्य अस्त्र दिए। विश्वामित्र इन राजकुमारों के साथ विदेह के राजा जनक के दरबार में भी गए। जनक की एक पुत्री थी जिसका नाम सीता था। वह सामान्य कन्या नहीं थी, क्योंकि एक बार जब राजा हल चला रहे थे तो वह उस समय पृथ्वी से निकली। इसलिए उसका नाम सीता अर्थात् 'हल के चलने से धरती पर पड़ी निशानी' पड़ा। जनक ने उसका पुत्री की तरह पालन किया। पर राजा के पास

---

१. I, 2 F. von Schlegel द्वारा Uber die Sprache und Weischeit der Indier, पृ० 266 में अनूदित। H. Jacobi (Das Rāmāyaṇa, पृ० 80 आ० में बतलाते हैं कि इस आख्यान का आधार यह तथ्य रहा होगा कि अपने अंतिम रूप में काव्य-श्लोक वाल्मीकि की देन रही होगी।

एक आश्चर्यजनक धनुष था और उन्होंने घोषणा कर रखी थी वे सीता का विवाह उस व्यक्ति से ही करेंगे जो उस धनुष को झुका देगा। बहुत से राजकुमारों ने व्यर्थ कोशिश की। राम आए। उन्होंने धनुष को झुका दिया और वह जोर से आवाज करके दो टुकड़े हो गया। बड़े प्रसन्न होकर राजा ने अपनी पुत्री का विवाह राम से कर दिया। दशरथ को सूचना देकर बुलवाया गया और बड़े उत्साह से राम और सीता का विवाह संपन्न हुआ। बहुत वर्षों तक वे आनन्द पूर्वक जीवन बिताते रहे।

असली कथा दूसरे काण्ड से शुरू होती है जिसमें अयोध्या के राजघराने की घटनाएँ वर्णित हैं। इसलिए इसका नाम अयोध्याकांड पड़ा।[1]

दशरथ को जब वृद्धावस्था का अनुभव हुआ तो उन्होंने अपने प्रिय पुत्र राम को राज्य का उत्तराधिकारी बनाने का निश्चय किया। उन्होंने कुल-पुरोहित वसिष्ठ के द्वारा अभिषेक की सारी तयारी करायी। कैकेयी की कुबड़ी नौकरानी ने इसे देखा और अपनी मालकिन से राजा द्वारा अपने पुत्र भरत को राज्य का उत्तराधिकारी घोषित कराने को कहा। राजा ने एक बार कैकेयी की दो इच्छाओं को पूरा करने का वचन दिया था और कैकेयी ने अब तक राजा से कुछ नहीं माँगा था। अब उसने राजा से प्रार्थना की कि वे राम को चौदह वर्षों का वनवास दे दें और भरत को राज्य का उत्तराधिकारी नियुक्त करें। राजा बड़े दुःखी हुए पर राम ने ज्यों ही यह बात सुनी तो स्वयं एक क्षण के लिए भी वन जाने से नहीं हिचके जिससे उनके पिता को वचन-भंग का दोषी न बनना पड़े। उनकी माता कौसल्या और भाई लक्ष्मण ने उन्हें वैसा करने से रोकने का निष्फल प्रयत्न किया। राम इस बात पर अड़े रहे कि अपने पिता की अपने वचन को पूरा करने में पूरी सहायता करना उनका परम धर्म है। उन्होंने तुरत अपनी पत्नी सीता से कहा कि वे वन-वास के लिए जाने को तयार हैं। सीता को भरत के प्रति प्रेम-व्यवहार करने, दशरथ के दरबार में पवित्रता और संतोष के साथ रहने तथा अपनी माताओं[2] और पिता की आज्ञाकारिणी होकर सेवा करने का उन्होंने उपदेश दिया। पर सीता ने पत्नी के धर्म के बारे में बड़ी सुन्दर वक्तृता देते हुए राम को उत्तर दिया कि जंगल में राम का अनुगमन करने से उन्हें कोई नहीं रोक सकता :

"मेरे पति ! माता, पिता, पुत्र सभी अपने किए पुण्य का फल पाते हैं; भाई और पुत्री अपनी नियति का अंश प्राप्त करते हैं। पर जो कुछ भी हो सिर्फ पत्नी को अपने पति के भाग्य को बाँटकर भोगना पड़ता है। अतः राजा की जिस आज्ञा से आप वन जा रहे हैं वह मुझ पर भी लागू होती है। पत्नी का पिता, माता, स्वयं

---

१. इस काण्ड का मुक्त जर्मन अनुवाद A. Holtzmann ने Indische Sagen में किया।

२. यह ध्यान देने योग्य बात है कि राम अपने पिता की सारी पत्नियों को माता कहते हैं।

या पुत्र—कोई भी शरण नहीं होता। इस लोक और परलोक में पति ही उसका एकमात्र सहारा है। हे राघव! यदि आपके चरण उस ओर बढ़ रहे हैं जिधर मार्गों से शून्य दण्डक वन फैला हुआ है, तो मेरे पैर काँटों के जाल और घासों में आप से पहले पड़ेंगे।...जब मैं आपके साथ वहाँ चलूँगी तो आपको मेरे लिए कष्ट नहीं उठाना पड़ेगा और मेरी देख-भाल नहीं करनी पड़ेगी। आप मेरे साथ हों तब मैं निर्भय होकर प्रसन्न आँखों से पर्वत, तालाब, झरने और गुफाएँ देखना चाहती हूँ और शरीर को शीतल करने के लिए आपके साथ किसी कमलों से भरे स्वच्छ तालाब में जल-क्रीड़ा करना चाहती हूँ, जब कि सफेद हंस और बगुले पानी के ऊपर अपने पंख फैलाए तैर रहे हों। इस प्रकार आपके साथ रहने पर हजारों वर्ष एक सुन्दर दिन की तरह बीत जाएँगे। अपने पति के बिना मैं देवताओं के साथ स्वर्ग में निवास को भी तुच्छ समझूँगी। अपने पति के बिना मुझे स्वर्ग और आनन्द कहां?"[१]

सीता को अपने निश्चय से हटाने के लिए राम ने वन के कष्टों एवं खतरों का वर्णन किया। पर सीता दृढ़ बनी रहीं और उन्होंने राम से अलग होने की बात ही नहीं सुनी। जैसे सावित्री सत्यवान् के साथ चली थी उसी प्रकार, सीता ने कहा कि, वह भी राम को नहीं छोड़ेगी।

तब राम ने अन्त में सीता को अपने साथ चलने की अनुमति दे दी। भक्त लक्ष्मण भी अपने भाई का वन में अनुगमन करने से नहीं रुके। वल्कल पहन कर ये निर्वासित लोग सारी जनता की सहानुभूति लेते हुए जंगल की ओर चल पड़े।

इधर राजा दशरथ पुत्र-शोक से नहीं उबर सके। राम के वनवास के थोड़े दिनों बाद राजा मध्य रात्रि में कष्टपूर्ण निद्रा से जागे। उनको एक ऐसा पाप याद आया जो युवावस्था में उनसे हो गया था। उन्होंने कौसल्या को बताया कि कैसे धोखे में उन्होंने शिकार करते समय एक युवा ऋषि-कुमार को मार डाला था। और कैसे उसके अन्धे पिता ने उन्हें शाप दे दिया था कि वे अपने पुत्र के शोक में मर जाएँगे। अब वह शाप पूरा हो रहा है :

"मैं तुम्हें नहीं देख सकता, आँखें अन्धी हो गई हैं और दुःखित मन से स्मरण-शक्ति भी चली गई है। मृत्यु के दूत मेरे चारों ओर घूम रहे हैं और मेरी आत्मा को ले कर भागना चाहते हैं। प्रकाश और जीवन से मैं दूर जा रहा हूँ—इस से अधिक कष्ट और क्या होगा? मरने के पहले मैं अपने सत्यवादी, वीर, धर्मात्मा राम को नहीं देख सकूँगा। वीर और सत्यवादी राम के लिए मुझे दुःख है—वह राम जिस को मेरी आज्ञा का पालन करने में आनंद आता था। ग्रीष्म में जिस प्रकार तालाब की अन्तिम बूंद तक सूख जाती है उसी तरह मेरे प्राण सूख रहे हैं...। हा राम! हा महाबाहो! तुम से मुझे सान्त्वना और प्रसन्नता मिलती थी। मेरे पुत्र! मुझे आनंद देने वाले! अब तुम अपने पिता की आँखों से ओझल हो। हा कौसल्ये! मैं

१. II, 27। Griffith द्वारा (अंग्रेजी) अनुवाद।

देख नहीं पा रहा हूँ, हा विनम्र सुमित्रे ! हा क्रूर कैकेयि, मेरी शत्रु ! अपने पिता को लजा देने वाली !' वे रोते रहे और कौसल्या एवं सुमित्रा उन की देख-भाल करती रहीं। रोते, आहें भरते तथा अपने प्रिय पुत्र के लिए दुःखी होते दशरथ मर गए।"[1]

राजा के मरने के बाद राजगृह से (उस समय वे वहाँ रह रहे थे) भरत को बुलाया गया। उन की माँ कैकेयी तथा मंत्रियों ने उन से राज्य संभालने को कहा। भरत ने किसी की नहीं सुनी और उन्होंने निश्चय के साथ घोषित किया कि राज्य पर राम का अधिकार है और वे उन को वापस ले आएँगे। बड़ी सेना के साथ वे भाई को लिवा लाने चल पड़े। इस बीच राम चित्रकूट पर्वत पर निवास कर रहे थे। वे सीता से वहाँ की भूमि की सुन्दरता का वर्णन कर ही रहे थे[2] कि धूल के बादल उठते हुए दिखाई दिए और नजदीक आती किसी सेना का कोलाहल सुनाई पड़ा। लक्ष्मण ने वृक्ष पर चढ़ कर देखा कि भरत की सेना पास आ रही है। उन्होंने समझा कि यह शत्रुतापूर्ण हमला है और वे बड़े क्रुद्ध हुए। पर शीघ्र ही उन्होंने देखा कि भरत अपनी सेना को पीछे छोड़ अकेले ही चले आ रहे हैं। वे राम के पास आए और उनके चरणों पर गिर पड़े और भाई-भाई गले मिले। आँखों में आँसू भरे अपने को तथा अपनी माँ को धिक्कारते हुए भरत ने राम को पिता की मृत्यु का समाचार सुनाया और उन से वापस लौट चलने तथा राज्य सँभालने की प्रार्थना की। राम ने कहा कि वे न तो भरत को और न ही उन की माँ को दोष दे सकते हैं। पर पिता की जो आज्ञा है वह आज भी उन्हें प्रिय होनी चाहिए और वनवास में चौदह वर्ष बिताने के निश्चय से वे पीछे नहीं हट सकते। भरत की सारी मिन्नतें बेकार हुईं। भरत ने पिता के मर जाने की बात याद दिलाई। राम ने बहुत रो-धो कर मृत पिता का श्राद्ध किया पर अपने निश्चय पर अटल रहे। रोते भाई को राम ने अस्तित्व की स्वाभाविक और आवश्यक अनित्यता तथा मृत्यु की अनिवार्यता की बात बड़े सुन्दर ढंग से कह कर सान्त्वना दी और बताया कि रोना-धोना व्यर्थ है।

"सारे संघात अलग हो जाते हैं, ऊँचे ऊँचे ढेर भी गिर जाते हैं। मृत्यु से सारे सम्बन्ध समाप्त हो जाते हैं। सारे प्राणियों का जीवन मृत्यु की ओर अग्रसर है। पेड़ में पक कर लटकते फल का शीघ्र पतन निश्चित है। देखो मनुष्य भी प्रौढ़ावस्था के बाद मृत्यु के वश में हो जाते हैं। जैसे घर को संभालने वाले खंभों के जीर्ण हो जाने पर घर गिर पड़ता है उसी प्रकार अवस्था के बीतने से प्राण-शक्ति क्षीण हो जाने पर मनुष्य का शरीर भी नष्ट हो जाता है।···जिस प्रकार समुद्र में बहते लकड़ी के टुकड़े किसी तरह भाग्यवशात् मिल जाते हैं और हवा तथा ज्वार के कारण इधर-उधर बिखर जाने से देर तक साथ नहीं रह सकते उसी प्रकार पत्नी, पुत्र, सम्बन्धी, धन—सब कुछ जिन्हें हम अपना प्रिय कहते हैं और जिन को हम आज प्राप्त करते हैं, अपने

---

१. II, 64। Griffith द्वारा अनूदित (अंग्रेजी में)।

२. II, 94। प्रकृति का उत्कृष्ट वर्णन। रामायण में इन की कमी नहीं है।

पास रखते हैं, जिन का भोग करते हैं—वे सब कल हम से छिन जाते हैं। जैसे सड़क पर खड़ा हो कर मैदान से धीरे-धीरे गुजर कर ओझल होते हुए किसी कारवां को देख कर आदमी चिल्ला पड़ता है : "मैं तुम्हारे साथ चलूँगा", उसी तरह मनुष्य को अपने पूर्वजों के द्वारा चले गए मार्ग पर चलना पड़ता है। चूँकि प्रकृति के नियम से कोई नहीं बच सकता इस लिए अपने भाग्य पर क्यों दुःखी हुआ जाय ?"[1]

सलाहकार भी राम से राज्य संभालने को कहते हैं। इन में से एक नास्तिक मत का प्रचारक तथा प्रतिनिधि जाबालि राम के नैतिक आग्रह को दूर करने का प्रयत्न करता है। उसने कहा कि हर व्यक्ति केवल अपने लिए जीता है। माता और पिता के लिए परेशान नहीं होना चाहिए। मृत्यु सब का अन्त है। परलोक की बात धूर्त पुरोहितों ने दान में उपहार प्राप्त करने के उद्देश्य से फैला रखी है। इस लिए राम को अपनी बुद्धि का सहारा लेना चाहिए और गद्दी स्वीकार कर लेनी चाहिए। नास्तिक के इन उपदेशों का राम उत्साह के साथ खंडन करते हैं।[2] धर्मात्मा पुरोहित वसिष्ठ के उपदेश भी राम के मत को नहीं बदल सके। अंत में भरत को विवश हो कर राम के लिए राज-काज चलाने का भार लेने को राजी होना पड़ा। राम ने राज्य-चिह्न के रूप में अपनी पादुका भरत को दी।[3] भरत अयोध्या लौट आए। राम की पादुका राजा के प्रतिनिधि के रूप में सिंहासन पर रख दी गई। भरत ने राम के प्रतिनिधि के रूप में राम के लिए देश का शासन चलाने के निमित्त नन्दिग्राम को अपना निवास बनाया।

---

१. II, 105, 16 आ०। J. Muir द्वारा Metrical Translations from Samskirt Writers, पृ० 41 आ० में अनूदित। इस तरह की उक्तियाँ भारतीय कवियों की समान थाती से ली गई हैं जिस के बारे में कई बार कहा जा चुका है। हम इन को प्रायः शब्दशः महाभारत, पुराण, स्मृति ग्रंथ, (उदा० विष्णुस्मृति, XX, 32), बौद्ध उक्तियों, भर्तृहरि के ग्रंथों आदि में पाते हैं। राम द्वारा कहे सान्त्वना के वचन दशरथ जातक के भी मूल हैं।

२. यहाँ का शब्द नास्तिक शब्द से बिलकुल मिलता है। यहाँ राम के मुँह से कहलवाया गया है "बुद्ध चोर की तरह हैं, समझ रखो कि तथागत नास्तिक हैं।" यह श्लोक, जो सभी संस्करणों में उपलब्ध भी नहीं है, बहुत पहले ही जाली सिद्ध किया जा चुका है। Jacobi (वही, पृ० 88 आ०) पूरे जाबालि-प्रसंग को प्रक्षिप्त मानते हैं। पर A. Hillebrandt का कहना है (Festschrift Kunh, पृ० 23) : "घटना अच्छी तरह वर्णित है तथा भौतिकतावादी और धर्मात्मा राम के बीच इतना प्रभावोत्पादक भेद बतलाया गया है कि मैं इस प्रसंग को जाली नहीं मान सकता।"

३. प्राचीन Norse और जर्मन विधानों में जूते को विधान का प्रतीक मानने के के बारे में मि० Jacob Grimm, Deutsche Rechtsaltertümer, चौथा संस्क०, 1899, I, 213 आ०। A. Holtzmann ने इसी प्रकार की हिब्रू प्रथा के साथ इस प्रथा की तुलना की है, Ruth, 4,7।

तीसरे काण्ड में वनवास का वर्णन है इसलिए इसे अरण्य काण्ड कहा गया है। यहाँ से हम वास्तविकता के संसार को छोड़कर कल्पित कहानी की दुनियाँ में प्रवेश करते हैं और काव्य की समाप्ति के पहले हमें इससे छुटकारा नहीं मिलता। दूसरा काण्ड एक भारतीय राजा के दरबारी जीवन को उपस्थित करता है। इसका आरम्भ एक ऐसे दरबारी साजिश से होता है जो भारत में अनेक बार घटित हो चुकी है। इसमें शायद एक मात्र कल्पित तत्त्व दो भाइयों—राम और भरत—की अति-शयोक्ति-पूर्ण उदारता है। पर तीसरा काण्ड काल्पनिक तथा राक्षसी जीवों के साथ राम के युद्धों और साहसपूर्ण कार्यों से आरम्भ होता है।

जब निर्वासित लोग दंडकारण्य में काफी दिन रह चुके तो वहाँ के मुनियों ने राक्षसों से उनकी रक्षा करने की प्रार्थना राम से की। राम ने उनकी रक्षा का वचन दिया और तब से वे लगातार इन दुष्ट राक्षसों के साथ युद्ध में लगे रहे। नर-भक्षी विराध राक्षस पहले मारा गया।[1] रावण की बहन शूर्पणखा का मिलना इन निर्वासितों के भविष्य का निर्णायक बना। यह राक्षसी राम से प्रेम करने लगी और उनसे भद्दा प्रस्ताव किया। राम ने उसको लक्ष्मण के पास भेज दिया जो अभी तक अविवाहित थे।[2] लक्ष्मण ने घृणा से उसके प्रस्ताव को ठुकरा दिया। क्रुद्ध होकर वह सीता को खाने ही चली थी कि लक्ष्मण ने उसके नाक-कान काट लिए। चिल्लाती हुई शूर्पणखा अपने भाई खर के पास दौड़ी। खर ने पहले चौदह फिर चौदह हजार राक्षसों के साथ राम पर आक्रमण किया पर राम ने सबको मार डाला। खर के भी मार डाले जाने के बाद शूर्पणखा समुद्र पार के काल्पनिक देश लंका को भागी[3] और लंका के राजा, दस सिरों वाले अपने भाई रावण को राम से बदला लेने को उकसाया। इसी प्रसंग में उसने बड़े आकर्षक रूप में सीता के अद्भुत सौन्दर्य का भी वर्णन किया और रावण को सीता को वश में करके अपनी पत्नी बनाने को उभारा। तब रावण उठा और अपने सोने के रथ पर आकाश मार्ग से उड़कर वह समुद्र के पार आया और अपने मित्र राक्षस मारीच से मिला जो वहाँ मुनि के रूप में रहा करता था।

---

१. यहाँ फिर कई तरह के आख्यान आते हैं (उदा० ऋषि अगस्त्य का आख्यान) जैसा महाभारत के पहले पर्व में है।

२. यह श्लोक प्रथम कांड के जाली होने के अनेक प्रमाणों में से एक है। प्रथम काण्ड में कहा गया है कि राम के विवाह के साथ-साथ राम के भाइयों का भी विवाह हुआ।

३. यह लंका सिलोन नहीं है—जैसा कि प्रायः माना जाता है। बहुत बाद में सिलोन को लंका से अभिन्न माना जाने लगा। देखिए Jacobi, Rāmāyaṇa, पृ० 90 आ०। M. V. Kibe ने Rawana's Lanka Discovered, दूसरा संस्क०, 1920 में लंका की भौगोलिक स्थिति निश्चित करने का प्रयत्न किया है।

मारीच की सहायता से रावण सीता को उनके रक्षकों से अलग करने और चुरा कर भगा ले जाने में सफल हुआ। सीता को रावण अपने रथ पर बैठा कर आकाश मार्ग से ले चला। सीता सहायता के लिए चिल्लाती रहीं। दशरथ का पुराना मित्र गीध जटायु उड़कर आया और रावण का रथ तोड़ने में सफल हुआ पर अन्त में रावण उसपर विजय पाने में सफल हो गया। रावण ने सीता को हाथ में पकड़ा और उड़ चला। उड़ाकर ले जाते समय सीता के बालों से फूल झड़े और पैर की पायजेब जमीन पर गिर गई। हवा के झोंकों से आवाज करते वृक्ष मानों सीता से कह रहे थे 'डरो मत !', कमलों ने मानों अपनी प्रिय सखी के दुःख से अपना सिर झुका लिया, सिंह आदि जंगली जन्तु मानों क्रोध में भर कर सीता की छाया के पीछे दौड़े, झरनों के रूप में आँसू बहाते और अपनी चोटियों की बाँह ऊपर उठाए पर्वत मानों सीताके दुःख में विह्वल थे। सूर्य की किरणें भी मन्द पड गई और और चुराई जाती सीता को देखकर सूर्य का गोला भी निस्तेज हो गया; मानों वह कह रहा हो 'यदि राम की पत्नी को रावण हर ले जा रहा है तो फिर न्याय, सत्य, धर्म और निरीहता समाप्त हो गई' (III 52, 34-39)। पर रावण हरी गई सीता के साथ उड़ता हुआ समुद्र के पार लंका में पहुंच गया जहाँ उसने सीता को अपने रनिवास में रख दिया। सीता को अपना भवन दिखाया, सारे वैभव दिखाए और अपनी अतुलनीय संपत्ति और विभव का वर्णन किया। उसने अनुरोध-भरे शब्दों में सीता से अपनी पत्नी बन जाने का आग्रह किया। पर सीता ने क्रोध में भरकर उत्तर दिया कि वह राम से अपनी श्रद्धा नहीं हटा सकती और कभी भी रावण को अपना शरीर न छूने देगी। रावण ने धमकाया कि यदि वह अपने-आप को बारह महीनों के भीतर समर्पित नहीं कर देती तो वह रसोइयों से उसके टुकड़े करवा कर उसका सबेरे का नाश्ता कर डालेगा। इसके बाद रावण ने सीता को एक नकली गुफा में ले जा कर रख दिया और राक्षसियों का उस पर कडा पहरा बिठा दिया।

राम और लक्ष्मण लौटकर आए तो कुटी को सूनी पाया। जंगल में वे सीता को व्यर्थ में ढूँढ़ते रहे। राम कातर होकर विलाप करने लगे, उन्होंने वृक्षों, नदियों, पहाड़ों और पशुओं से पूछा पर किसी ने सीता का पता नहीं दिया। अन्त में उन्हें वे फूल और आभूषण मिले जो ले जाए जाते समय सीता के शरीर से गिरे थे। आगे चल कर उन्हें रावण का टूटा रथ, बिखरे आयुध और युद्ध के अन्य चिह्न मिले। राम को विश्वास हो गया कि राक्षसों ने सीता को मार डाला और पागल होकर उन्होंने सारे संसार को नष्ट कर डालने की अपनी इच्छा घोषित की। वे आकाश को बाणों से भर देंगे, हवा को रोक देंगे, सूर्य की किरणों का नाश करके सारी धरती को अन्धकार में डुबो देंगे, पहाड़ों की चोटियों को काटकर गिरा देंगे, तालाबों को सुखा डालेंगे, समुद्र का नाश कर देंगे, पेड़ों को उखाड़ डालेंगे, यहाँ तक कि देवताओं का भी नाश कर डालेंगे यदि वे उनकी प्रिया सीता को वापस नहीं देते। बड़ी कठिनाई से क्रुद्ध राम को शान्त करने में तथा सीता को ढूँढ़ने के लिए उन्हें राजी करने में

लक्ष्मण सफल हुए। इसके बाद खून में लथपथ गीध जटायु उन्हें मिला। मरते हुए भी उसने जो कुछ हुआ था उसे बताया पर बात पूरी करने के पहिले ही वह मर गया। दक्षिण की ओर चलते हुए दोनों भाइयों का सामना चिल्लाते हुए सिर-विहीन राक्षस कबन्ध से हुआ और उन लोगों ने एक भारी शाप से उसको छुटकारा दिलाया। इसके बदले में कबन्ध ने राम को वानर-राज सुग्रीव से मित्रता स्थापित करने की सलाह दी। यह सुग्रीव सीता को ढूँढ़ निकालने में राम का सहायक हो सकता था।

चौथे किष्किन्धाकांड में सीता को प्राप्त करने के लिए राम की वानरों से मैत्री वर्णित है।

दोनों भाई पंपा सरोवर पहुँचे। उस सरोवर को देख राम दुःखी हो गए क्योंकि उस समय वसन्त ऋतु थी और प्रकृति की प्रफुल्लता के दर्शन से दूरस्थ प्रियतमा के सान्निध्य की तीव्र इच्छा उनके मन में जागी।[1] यहाँ उनकी भेंट वानर-राज सुग्रीव से हुई। सुग्रीव ने उनको बताया कि उसके भाई वाली ने सुग्रीव से उसकी पत्नी और राज्य छीन लिया है और उसे राज्य से बाहर निकाल दिया है। राम ओर सुग्रीव गहरी मित्रता के बन्धन में बँध गए। राम ने वाली के विरुद्ध सुग्री को सहायता का वचन दिया और सुग्रीव ने सीता को ढूँढ़ने में राम की सहायता करने की प्रतिज्ञा की। वाली के निवास-स्थान किष्किन्धा[2] के बाहर दोनों वानर भाइयों में युद्ध हुआ। राम सुग्रीव की सहायता को आए और वाली को मार डाला। वानर सुग्रीव को राजा बनाया गया और वाली का पुत्र अंगद युवराज बना।

सुग्रीव के मंत्रियों में वायु देवता के पुत्र हनुमान्[3] सबसे अधिक बुद्धिमान् थे। सुग्रीव को उनके ऊपर सबसे अधिक भरोसा था और उनको सीता को ढूँढ़ने का काम सौंपा गया। अंगद के नेतृत्व में बड़ी वानर सेना के साथ चतुर हनुमान् दक्षिण की ओर चले। कई साहसिक कर्मों के अनन्तर गीध जटायु के भाई संपाती से उनकी भेंट हुई। संपाती ने उन वानरों से बताया कि कैसे एक बार अपने भाई के साथ सूर्य तक उड़ान भरने की एक प्रतियोगिता में[4] उसके पंख झुलस गए और अब उसे असहाय होकर विन्ध्यपर्वत पर रहना पड़ रहा है। पर उसने देखा है कि रावण सीता को चुरा कर ले गया है और उन्हें लंका में रखे हुए है। उसने वानरों को लंका की स्थिति बताई और

१. पूरा का पूरा प्रथम सर्ग एक विलाप है और परवर्ती आलंकारिक कविता की शैली में हम इसे 'वसन्त में प्रिया की कामना' कह सकते हैं।

२. इसीलिए इस चौथे कांड का नाम किष्किन्धाकाण्ड पड़ा।

३. इन्हें हनूमान् भी कहा जाता है। IV, 66, 24 के अनुसार इन्द्र ने अपने वज्र से इनकी डाढ़ी तोड़ दी थी अतः इनका नाम हनुमान् पड़ा।

४. Icarus की तरह। पहले संक्षेप में यह कथा (IV, 85) कही गई है, बाद में (IV, 59-63) पुराणों की शैली में विस्तार से।

वे वानर समुद्र तट पर उतर पड़े। पर जब उन्होंने अगाध समुद्र को सामने उफनते देखा तो उस पार पहुँचने की उनकी आशा जाती रही। पर अंगद ने वानरों से निराश न होने को कहा "क्योंकि जैसे क्रुद्ध सांप बच्चे को मार डालता है उसी प्रकार निराशा आदमी को खा जाती है"(IV, 64, 6)। उन्होंने एक साथ मिलकर मंत्रणा की कि कौन सबसे अधिक कूद सकता है और उसके बाद पता चला कि हनुमान् से अधिक कूदने का किसी में सामर्थ्य नहीं है। इसके बाद हनुमान् महेन्द्रपर्वत पर चढ़ गए और समुद्र के पार कूद कर जाने के लिए तयार हो गए।

पाँचवें कांड में लंका के अद्भुत द्वीप का, नगर का, रावण के उत्कृष्ट महल और रनिवास का वर्णन है। इसमें बतलाया गया है कि कैसे हनुमान् ने सीता को राम का संदेश दिया और साथ ही शत्रु की शक्ति का भी पता लगाया। इस कांड का नाम शायद सुन्दरकांड इसलिए पड़ा कि इसमें अनेक काव्यात्मक वर्णन हैं या फिर इसका कारण यह रहा हो कि अन्य कांडों की अपेक्षा इस कांड में कहीं अधिक अविश्वसनीय कथाएँ वर्णित हैं। यदि रामायण का उत्तरार्ध एक "रोमांटिक" कविता है तो यह पाँचवाँ कांड सबसे अधिक रोमांटिक है और भारतीय रुचि के लिए रोमांटिक वस्तु सर्वदा अति सुन्दर होती है।

हनुमान् ने इतनी जोर की छलांग लगाई कि महेन्द्र पर्वत जड़ से हिल गया और पर्वत पर रहनेवाले सारे प्राणी भयभीत हो गए। वे हवा में उछले और समुद्र के पार उड़ चले। **चार दिनों** की उड़ान के बाद लंका में पहुँचे। इस बीच उन्होंने कई साहसपूर्ण अद्भुत कार्य किए। एक पर्वत पर चढ़कर उन्होंने लंका का निरीक्षण किया जो करीब-करीब अभेद्य दिखाई दी। वे बिल्ली-जितना[२] रूप धारण करके सूर्यास्त के बाद नगर में घुसे। उन्होंने पूरी राक्षस-नगरी घूम कर देखी, रावण का भवन तथा वह अद्भुत पुष्पक विमान भी देखा जिस पर चढ़कर रावण हवा में उड़ता था। वे रावण के अंतःपुर में भी घुसे जहाँ उन्होंने सुन्दर स्त्रियों के बीच वीर राक्षस-राज रावण को सोता हुआ देखा[३]। लंबी, निष्फल खोज के बाद अंत में दुःख से कृश सीता

---

१. ऐसा Jacobi, Rāmāyaṇa, पृ० 124 के अनुसार है।

२. दूसरी व्याख्या के अनुसार 'मक्खी-जितना'। हनुमान् स्वेच्छा से अपना आकार बदल सकते थे।

३. अन्तःपुर का रात्रि-कालीन दृश्य (V, 9-11) अलंकृत कविता की शैली में विस्तार से वर्णित है। यह बुद्ध के आख्यान के उस दृश्य का स्मरण दिलाता है जहाँ राजकुमार सिद्धार्थ स्त्रियों से घिरे, मध्य रात्रि में जागते हैं और ऐन्द्रिय सुख से उनको वितृष्णा हो जाती है। परिस्थिति और वर्णन की समानता काफी ध्यान देने योग्य है। इससे इस बात की पुष्टि होती है कि यह अश्वघोष के बुद्धचरित (V, 57 आ०) के दृश्य का अनुकरण है। E. B. Cowell ने ने बुद्ध चरित के अपने संस्करण की भूमिका में ठीक ही कहा है कि यह दृश्य

अशोक-वाटिका में मिलीं। उन्होंने अपने को राम का मित्र और दूत बताया। सीता ने हनुमान् को बताया कि रावण ने उन्हें खा डालने की धमकी दी है और यदि राम ने उनका उद्धार नहीं किया तो वे दो महीनों के बाद अवश्य मर जाएँगी। हनुमान् ने उनको आश्वासन दिया कि राम अवश्य उनका उद्धार करने आएँगे।[1]

इसके बाद हनुमान् पर्वत पर लौट आए, समुद्र के पार उड़कर वापस गए और प्रतीक्षा करते वानरों से उन्होंने लंका के अपने अनुभव सुनाए। तदनन्तर राम के पास जाकर उन्होंने सीता के पता लगने का समाचार दिया और सीता का सन्देश भी राम को बताया।

छठे कांड में राम-रावण के युद्ध का वर्णन है अतः इसे युद्धकांड कहा जाता है और सारे कांडों में यह सबसे बड़ा है।

राम ने सफलता पूर्वक अपना काम करने के लिए हनुमान् की सराहना की और उन्हें गले लगाया। पर समुद्र के पार जाने की कठिनाई का ध्यान आते ही उनको निराशा होने लगी। सुग्रीव ने लंका तक पुल बाँधने की सलाह दी। हनुमान् ने रावण के नगर और इसकी किलेबन्दी का ठीक-ठीक ब्यौरा दिया और बतलाया कि वानर-सेना के प्रमुख वीर इसको जीत सकते हैं। तब राम ने आज्ञा दी कि सेना कूच करने के लिए तयार हो जाय। शीघ्र ही विशाल वानर-सेना दक्षिण दिशा में समुद्र के किनारे की ओर चल पड़ी।

बुद्ध-आख्यान का आवश्यक अंग है जब कि रामायण में यह अनावश्यक विस्तार है। वस्तुतः यह अंश वाल्मीकि का नहीं है, यह अनुकरण किसी परवर्ती क्षेपक के लेखक की कृति है।

१. इसके साथ ही हनुमान् का उद्देश्य पूरा हो जाता है। बाद का वर्णन (41–55) निस्सन्देह प्रक्षिप्त है। शत्रु के बल की थाह लगाने के लिए हनुमान् अशोक वाटिका का ध्वंस करके झगड़ा मोल लेते हैं। हजारों राक्षसों के साथ घोर युद्ध में वे अकेले ही विजय प्राप्त करते हैं। पर अन्त में उनको बाँध कर रावण के सामने ले जाया जाता है। हनुमान् अपने-आप को राम का दूत घोषित करते हुए सीता को लौटाने की मांग करते हैं। रावण उनको मारने का निश्चय करता है पर दूत होने के नाते हनुमान् को छोड़ देने का लोग आग्रह करते हैं। पर उनको दंड देने के लिए वह कपड़े के चीथड़े तेल में डुबोकर उनकी पूँछ में बंधवा देता है और उसमें आग लगवा देता है। सीता को यह बात मालूम होती है और वे अग्नि-देवता से हनुमान् को न जलाने की प्रार्थना करती हैं। जलती हुई पूँछ लेकर हनुमान् एक भवन से दूसरे भवन पर उछलने लगते हैं और इस तरह सारी लंका में आग लग जाती है पर उनको स्वयं कोई नुकसान नहीं होता। इस प्रसंग का जाली होना निर्विवाद रूप से Jocobi ने (वही, पृ० 31 आ० में) सिद्ध कर दिया है।

जब वानर-सेना के अभियान का समाचार लंका में पहुँचा तब रावण ने बड़े और शक्तिशाली राक्षसों की एक सलाहकार परिषद् बुलायी। सभी सम्बन्धी और सलाहकारों ने बड़े गर्वपूर्ण शब्दों में रावण को लड़ने की राय दी पर रावण के भाई विभीषण ने असंगल शकुनों की तरफ इशारा करते हुए उसे सीता को वापस कर देने की सलाह दी। इस पर रावण को बड़ा गुस्सा आया और उसने विभीषण को अनभल चाहने का दोषी ठहराया। उसने कहा कि राजा और वीरों के संबंधी ही उनके सबसे बड़े शत्रु होते हैं। अपने भाई से बुरी तरह अपमानित होकर विभीषण ने रावण को त्याग दिया और चार राक्षसों के साथ समुद्र पार उड़कर राम से जा मिला। विभीषण की सलाह पर राम ने समुद्र-देवता से समुद्र को पार करने में सहायता देने की प्रार्थना की। समुद्र ने स्वर्ग के सुप्रसिद्ध कारीगर विश्वकर्मा के पुत्र वानर नल को बुलाया और समुद्र पर पुल बाँधने को कहा। राम की आज्ञा से वानर लोग चट्टानें और पेड़ उखाड़ लाए और कुछ ही दिनों में समुद्र पर पुल बनकर तयार हो गया। सारी सेना उस पर से होकर लंका में पहुँच गई।

रावण का नगर वानर-सेना से घिर गया। रावण ने युद्ध के लिए अभियान की आज्ञा दी। युद्ध शुरू हुआ। दोनों ओर के मुख्य वीरों में द्वन्द्व युद्ध भी हुआ। लक्ष्मण, हनुमान्, अंगद और रीछों के राजा जाम्बवान् राम के पक्ष के प्रमुख योद्धा थे। रावण के पक्ष में उसका पुत्र इन्द्रजित् सबसे प्रमुख योद्धा था। इन्द्रजित् सभी कूट-कलाओं में निपुण था और उसको अन्तर्धान हो जाने का तरीका मालूम था।

एक बार उसने राम और लक्ष्मण पर खतरनाक वार किया। पर ऋक्ष-राज जाम्बवान् की सलाह पर रात में हनुमान् विशेष रूप से विशल्य करने की शक्ति वाली चार औषधियाँ लाने कैलास पर्वत पर गए। चूँकि ये औषधियाँ छिपी हुई थीं इसलिए हनुमान् ने पर्वत की पूरी चोटी उखाड़ ली और युद्धभूमि में ले आए। इन औषधियों के गंध से राम, लक्ष्मण और अन्य सभी घायल लोग तुरन्त ठीक हो गए। तब हनुमान् पर्वत को फिर अपने स्थान पर रख आए।

दूसरी बार जादूगर इन्द्रजित् अपने रथ पर सीता की जादू से बनी मूर्ति ले कर आया और हनुमान्, लक्ष्मण तथा वानरों के समक्ष उस का अपमान किया और उस का सिर काट डाला। भयभीत हो कर हनुमान् ने सीता के मारी जाने की खबर राम को दी। राम बेहोश हो गए। लक्ष्मण विलाप करने लगे और भाग्य को कोसते हुए कहने लगे कि भाग्य गुणों का साथ नहीं देता (VI 83, 4 आ०)। पर विभीषण ने उन्हें बताया कि पूरी घटना इन्द्रजित् द्वारा फैलायी गई माया है। अन्त में घोर द्वंद्व युद्ध के बाद लक्ष्मण ने इन्द्रजित् को मार डाला।

अपने पुत्र की मृत्यु पर बहुत क्रुद्ध हो कर रावण स्वयं युद्ध-भूमि में आया। राम और रावण के बीच भयानक युद्ध शुरू हुआ जो रात-दिन चलता रहा। देवता लोग राम की सहायता के लिए आए; खास कर इन्द्र ने अपना रथ और आयुध राम को दिया। पर जितनी बार राम रावण का सिर काटते उतने ही नये सिर फिर पैदा

हो जाते । अन्त में उन्होंने ब्रह्मास्त्र से रावण का हृदय बेध दिया । वानरों की सेना में बड़ा आनन्द छा गया और राक्षस लोग इधर-उधर भागने लगे ।

रावण को विधिवत् गाड़ दिया गया और राम ने विभीषण को लंका का राजा बनाया ।

इस के बाद ही राम ने सीता को बुलवाया और सीता से विजय का आनन्दपूर्ण समाचार कहा । पर वानरों और राक्षसों के सामने ही उन्होंने सीता का परित्याग कर दिया । उन्होंने कहा कि जो बदनामी उन्हें सहनी पड़ी उस का बदला ले लिया । अब उनसे राम को कुछ नहीं लेना-देना है । जो स्त्री पर पुरुष की गोद में बैठ चुकी है, पर पुरुष ने वासनापूर्ण आँखों से जिस स्त्री को देख लिया है, उस को राम अपनी पत्नी के रूप में कभी नहीं स्वीकार कर सकते । इस पर सीता ने राम के निराधार संदेह का विरोध किया और लक्ष्मण से चिता बनाने को कहा । अब उन को अग्नि में प्रवेश कर जाने के अलावा दूसरा चारा न था । राम ने आज्ञा दे दी, चिता बनाई गई और उसमें आग लगा दी गई । सीता अपनी शुद्धता के लिए अग्नि को साक्षी बना कर आग में कूद पड़ीं । तब जलती चिता से अग्नि-देव सुरक्षित सीता के साथ प्रकट हुए और उन्हें राम को सौंपते हुए यह विश्वास दिलाया कि सीता सदा राम में अनुरक्त रही हैं और रावण के घर रहते हुए भी ये शुद्ध और पवित्र बनी रहीं हैं । इस पर राम ने बतलाया कि स्वयं उन्हें सीता की शुद्धता के बारे में संदेह नहीं रहा पर लोगों के सामने सीता की शुद्धता सिद्ध करने के लिए वैसा करना आवश्यक था ।

इस के बाद हनुमान् तथा अन्य वानरों के साथ राम आदि अयोध्या लौटे । वहाँ भरत, शत्रुघ्न और माताओं ने बाँहें फैला कर उनका स्वागत किया । जनता के उल्लास के साथ उन्होंने नगर में प्रवेश किया । राम का राज्याभिषेक हुआ और अपनी प्रजा की खुशहाली के लिए वे राज्य करने लगे ।

वास्तव में इस के साथ ही राम की कथा समाप्त हो जाती है । इस में संदेह को कोई स्थान नहीं है कि मूल काव्य का अंत इसी छठे कांड के साथ होता था और सातवें उत्तर कांड में महाभारत और पुराणों की तरह के आख्यान आते हैं जिनका मूल राम-कथा से कोई सम्बन्ध नहीं है । पहले के सर्गों में राक्षसों की उत्पत्ति तथा इन्द्र का रावण के साथ युद्ध[1] वर्णित है । इस के बाद हनुमान् के बाल्य काल की कथा आती है (VII, 35 आ०) । इस कांड के एक तिहाई भाग में ही राम-सीता की कथा वर्णित है जो निम्नलिखित है :

एक दिन राम को समाचार मिला कि लोग रावण की गोद में बैठ लेने के बाद भी सीता को उन का स्वीकार कर लेना अच्छा नहीं समझते । इस से देश की स्त्रियों के चरित्र पर बुरा प्रभाव पड़ने का भय है । आदर्श राजा राम इस से बड़े दुःखी हुए । वे लोगों के सामने बुरा आदर्श रख रहे हैं इस अपवाद को राम सहन न कर

१. VII, 1-34 । Jacobi इस अंश को "Rāvaneïs" कहते हैं ।

सके। उन्होंने अपने भाई लक्ष्मण से सीता को ले जाकर जंगल में छोड़ आने को कहा। भरे दिल से लक्ष्मण ने सीता को रथ पर बिठाया, गंगा के किनारे ले गए, उस पार पहुँच कर लक्ष्मण ने सीता से बात खोल कर कही कि लोगों के संदेह के कारण राम ने उन्हें त्याग दिया। बड़ी दुःखी हो, भाग्य के प्रति अपने को समर्पण कर के सीता ने राम को केवल प्रणाम ही कहलवाया। जल्दी ही जंगल में विलाप करती सीता को कुछ मुनि-कुमारों ने देखा और उन को महर्षि वाल्मीकि के आश्रम पर लिवा ले गए। वाल्मीकि ने उन को ऋषि पत्नियों की देख-रेख में कर दिया। कुछ समय बाद आश्रम में ही सीता ने जोड़वे बच्चों कुश और लव को जन्म दिया।

कई वर्ष बीत गए। बच्चे बड़े हुए और मुनि तथा गायक वाल्मीकि के शिष्य बने। इस समय राम ने एक अश्वमेध यज्ञ का आयोजन किया। इस में वाल्मीकि और उन के शिष्य भी आए। यज्ञ की सभा में उन्होंने स्व-रचित रामायण को गाने की आज्ञा अपने दोनों शिष्यों को दी। सब ने एकाग्र हो कर अद्भुत गान सुना। शीघ्र ही राम को पता चल गया कि गाने वाले दोनों बालक, कुश और लव[1], सीता के पुत्र हैं। उन्होंने वाल्मीकि से कहला भेजा कि सीता यज्ञ की सभा के सामने शपथ-पूर्वक अपने को शुद्ध घोषित कर सकती है। दूसरे दिन वाल्मीकि सीता को साथ लेकर आए। गम्भीर स्वर में महर्षि ने घोषित किया कि सीता निरपराध और शुद्ध हैं और उन के दोनों पुत्र कुश और लव राम के ही पुत्र हैं। इस पर राम ने घोषित किया कि यद्यपि वे वाल्मीकि के वचनों से संतुष्ट हैं पर फिर भी वे चाहते हैं कि सीता स्वयं शपथपूर्वक अपने को शुद्ध प्रमाणित करें। सारे देवता उस समय स्वर्ग से उतर आए। पर सीता ने आँखें नीची किए हाथ जोड़ कर कहा "यदि मैंने सचमुच एक बार भी राम के अलावा किसी अन्य पुरुष के बारे में नहीं सोचा हो तो पृथ्वी माता मुझे अपनी गोद में ले लें। यदि सचमुच में मैंने मन, वचन और कर्म से राम के प्रति ही श्रद्धा रखी हो तो पृथ्वी माता मुझे अपनी गोद में ले लें। यदि यहाँ मैंने सच कहा हो, राम के अतिरिक्त किसी अन्य पुरुष को न जाना हो तो पृथ्वी माता मुझे अपनी गोद में ले लें।" शपथ समाप्त ही हुआ था कि पृथ्वी से एक दिव्य सिंहासन निकला जो चार नागों के सिर पर रखा हुआ था, पृथ्वी माता उस पर बैठी हुई थीं। उन्होंने सीता को गोद में ले लिया और नीचे चली गयीं। राम ने व्यर्थ में ही पृथ्वी से सीता को वापस कर देने की प्रार्थना की। ब्रह्मा आए और उन्होंने स्वर्ग में पुनर्मिलन की आशा दिला कर राम को सान्त्वना दी। कुछ दिनों बाद ही राम ने अपने दोनों पुत्रों, कुश और लव, को राज्य सौंप दिया और स्वयं स्वर्ग सिधार गए। वहाँ वे पुनः विष्णु-रूप हो गए।

---

१. घूम-घूम कर बाजे के साथ इतिहास-कथा का जीविका के लिए गान करने वाले कुशीलव कहे जाते थे। कुश और लव ये नाम कुशीलव शब्द की एक तरह से व्युत्पत्ति बताने के लिए कल्पित कर लिए गए थे। मि० Jacobi, वही, पृ० 62 आ०, 67 आ०।

सातवें कांड का यह कथा-सूत्र बार-बार अनेक पौराणिक कथाओं और आख्यानों के क्षेपकों से टूट जाता है। यहाँ फिर हमें ययाति और नहुष के प्रसिद्ध आख्यान मिलते हैं (VII, 58 आ०), इन्द्र के द्वारा वृत्र के वध की कथा, जिसमें इन्द्र को ब्रह्महत्या का पाप लगना बताया गया है (VII, 84-87), मिलती है, मित्र और वरुण देवों की प्रिया उर्वशी द्वारा वसिष्ठ और अगस्त्य ऋषियों की अद्भुत ढंग से उत्पत्ति की कथा मिलती है (VII, 56 आ०), राजा इल इला नामक स्त्री बन कर कैसे पुरूरवा को पैदा करते हैं इस की कथा भी (VII, 87-90) यहाँ प्राप्त होती है। कई सच्ची ब्राह्मण-कथाएँ अतिशयोक्ति-पूर्ण ढंग से कही गई हैं जिन की महाभारत के तेरहवें पर्व की कथाओं से तुलना की जा सकती है। ऐसी एक कथा शूद्र जाति के शम्बूक की है। राम उसका सिर काट लेते हैं और इसके लिए देवता लोग उन की प्रशंसा करते हैं। कारण यह है कि शूद्र को तपस्या नहीं करनी चाहिए। दूसरी कथा एक देवता की है जिस को अपना ही मांस खाने को विवश होना पड़ता है क्योंकि पूर्व जन्म में उसने तपस्या की पर ब्राह्मणों को दान नहीं दिया (VII, 73-81)। इसी प्रकार की अन्य भी कथाएँ हैं। पूरा का पूरा यह कांड महाभारत के आधुनिकतम भाग-जैसा है।

रामायण में असली और नकली अंश[1]

इस में संदेह नहीं हो सकता कि रामायण का समूचा सातवां काण्ड बाद में जोड़ा गया है। बहुत पहले ही से इस बात को भी मान लिया गया है कि पूरा का पूरा पहला काण्ड वाल्मीकि के मूल ग्रंथ का भाग नहीं रहा होगा। इस काण्ड में न केवल अनेक अन्तर्विरोध ही हैं अपितु भाषा और शैली भी दूसरे काण्ड से लेकर छठे काण्ड तक की भाषा-शैली से निम्न कोटि की हैं। साथ ही काव्य के असली भागों में पहले काण्ड की घटनाओं की ओर कोई इशारा नहीं मिलता। वस्तुतः इस पहले काण्ड में ऐसी बातें हैं जो बाद के काण्डों के कथनों के विरुद्ध पड़ती हैं।[2]

केवल पहले और सातवें काण्डों में ही राम को देवता, विष्णु का अवतार, माना गया है। कुछ ऐसे प्रकरणों के अलावा, जो निस्सन्देह प्रक्षिप्त हैं,[3] दूसरे काण्ड से

१. पहले पहल रामायण की समस्याओं पर A.A. Weber ने (Uber das Rāmāyana, ABA, 1870 में) विचार किया। इन समस्याओं पर मुख्य पुस्तक H. Jacobi की Das Rāmāyaṇa, Geschichte und Inhalt (Bonn, 1893) है। दे० C. V. Vaidya, The Riddle of the Rāmāyaṇa, बम्बई और लंडन, 1906 तथा Dineshchadra Sen, The Bengali Ramayanas, कलकत्ता, 1920 भी।

२. उदाहरण के लिए लक्ष्मण का विवाह।

३. उदाहरणार्थ छठे काण्ड के अन्त में जब सीता चिता पर चढ़ती हैं तो वहाँ पर सारे देवता आते हैं और विष्णु के रूप में राम की वंदना करते हैं।

छठे काण्ड तक राम सर्वदा मनुष्य के रूप में आते हैं। महाकाव्य के सारे निर्विवाद रूप से असली भागों में राम के विष्णु के अवतार होने का कोई भी संकेत नहीं मिलता। असली भागों में, जहाँ पुराण-कल्पना का सहारा लिया गया है, विष्णु को नहीं बल्कि वेदों की तरह इन्द्र को सब से बड़ा देवता माना गया है।

पहले और सातवें काण्डों की यह भी विशेषता है कि मुख्य कथा-सूत्र बार-बार टूट जाता है (जैसे कि हमने देखा है) तथा महाभारत और पुराणों की तरह अनेक ब्राह्मण-कथाएँ और आख्यान घुसा दिए गए हैं। दूसरे से छठे काण्डों के बीच भी (उदाहरण के लिए तीसरे काण्ड के आरम्भ में) बहुत थोड़े अंश ऐसे मिलेंगे जहाँ यह बात मिलती है। इन काण्डों में अनेक परिवर्तन और परिवर्धन हुए हैं और ये साधारणतः अलग-अलग किस्मों के हैं। ये परिवर्तन-परिवर्धन गायकों द्वारा किए गए हैं और सुन्दर तथा लोक-प्रिय अंशों से इन का सम्बन्ध है। हमें कल्पना करनी ही होगी कि शायद शताब्दियों तक उत्तर काण्ड के कुश और लव जैसे घुमन्तू गायकों की टोलियों में रामायण मौखिक परम्परा द्वारा जीवित रहा। ये गायक इतिहास-काव्य के इन गीतों को अपनी सम्पत्ति समझते थे और इन के साथ मनमानी करते थे। यदि उन गायकों ने देखा कि श्रोता लोग सीता, दशरथ या कौशल्या के मर्मस्पर्शी विलापों से प्रभावित हो रहे हैं तो उन्होंने अनेक श्लोक अपनी ओर से बना कर जोड़ दिए जिस से गान को कुछ देर और बढ़ाया जा सके। यदि युद्ध-प्रिय जनता युद्ध के दृश्यों की सराहना करती है तो इन गायकों को द्वन्द्व युद्ध के लिए अधिकाधिक नये वीरों को जुटाने, हजार-दस हजार राक्षसों और वानरों को मरवाने अथवा पूर्व-वर्णित घटना को थोड़े परिवर्तन के साथ दुहराने में कोई कठिनाई नहीं हुई। यदि श्रोता-गण हास्य-पूर्ण दृश्यों में रस लेते हैं, खास कर उन दृश्यों में जहाँ वानर आते हैं, तो गायकों को न केवल ऐसे दृश्यों को बढ़ाने में ही बल्कि नये दृश्य गढ़ने में भी हिचकिचाहट नहीं हुई। यदि उन गायकों के सामने विद्वान् ब्राह्मणों का समूह रहा तो उन्होंने उन की शाबाशी पाने के लिए उपदेशात्मक अंशों का विस्तार कर दिया, नयी आचार-परक उक्तियाँ तथा अन्यत्र कहीं से लिए अंश जोड़ दिए। कुछ उत्साही गायकों ने प्रकृति-वर्णन का विस्तार किया। ये प्रकृति-वर्णन प्राचीन असली रामायण में शायद प्रचलित थे पर जो अंश बढ़ाया गया वह दरबारी अलंकृत कविता की शैली का है।[१] शायद महाभारत की तरह रामायण को एक निश्चित रूप तभी प्राप्त हुआ जब यह लिपि-बद्ध कर लिया गया।[२] पर यह तभी हुआ होगा जब

---

१. श्लोक छन्द बनाना बड़ा आसान है जो व्याख्यान के लिए तो उपयुक्त है पर असली रूप बनाए रखने की दृष्टि से वह अनुपयुक्त है। संस्कृतज्ञ भारतीय के लिए, जो थोड़ा पढ़ा-लिखा है, श्लोक बना डालना बड़ा आसान काम है।

२. व्याख्याताओं का कार्य, जिस से ग्रंथ का रूप स्थिर रखने में मदद मिलती है, बहुत बाद में शुरू हुआ।

कि यह काव्य प्रसिद्ध और लोकप्रिय हो चुका होगा, लोग इस के पठन और श्रवण में पुण्य की प्राप्ति मानते रहे होंगे तथा इस की प्रति-लिपि करने वाले को स्वर्ग मिलने की आशा दी गई होगी।[१] "आयु, धन, यश, अच्छे भाई और बुद्धि"[२] देने वाले इस उत्कृष्ट और पूज्य काव्य की जितनी अधिक प्रतिलिपियाँ कोई करे स्वर्ग में उस का स्थान उतना ही निश्चित होगा। इसलिए लिखित काव्य का पहले उपयोग करने वाले संग्रह-कर्ताओं और सम्पादकों ने परम्परागत विषय को आलोचनात्मक दृष्टि से नहीं देखा। उन्होंने असली को नकली अंशों से अलग करने की कोशिश नहीं की। इस के विपरीत उन्होंने "रामायण" शीर्षक के अन्तर्गत जो कुछ भी मिला सबका स्वागत किया।

पर हम रामायण के "अधिक या कम" निश्चित रूप की चर्चा तो कर ही सकते हैं। क्यों कि जिन-जिन हस्तलिखित पोथियों में यह महाकाव्य हमारे पास आया वे पोथियाँ एक-दूसरे से बड़ी भिन्न हैं। कम से कम **तीन पृथक् रूप** इस रामायण के पाठों के मिलते। ये रूप भारत के तीन अलग-अलग क्षेत्रों से सम्बन्धित हैं। ये रूप न केवल कुछ श्लोकों के अलग-अलग पाठों के कारण आपस में भिन्न हैं अपितु इन रूपों में से प्रत्येक में श्लोक, लम्बे प्रकरण और पूरे के पूरे सर्ग भी ऐसे मिलते हैं जो दूसरे रूपों में नहीं मिलते। यह तथ्य भी उन में भेद का कारण है। अलग-अलग रूप में श्लोकों का क्रम भी बहुधा भिन्न मिलता है। (उत्तर तथा दक्षिण भारत में) बहु-प्रचलित रूप वह है जिसे Jacobi ने 'C' रूप कहा है और कई बार बम्बई से यह प्रकाशित हो चुका है।[३] यूरोप में जो एक-मात्र पूर्ण रूप प्रकाशित हुआ है वह **बंगाली** रूप है। G. Gorresio ने इसे प्रकाशित कराया[४] है। उत्तर-पश्चिम भारत के रूप

---

१. VI, 128,120 : राम के प्रति श्रद्धा-पूर्ण मन से जो ऋषि द्वारा निर्मित संहिता की प्रतिलिपि करता है उसे इन्द्र के स्वर्ग में स्थान मिलता है।

२. VI, 128, 122।

३. मैं के० पी० परब द्वारा निर्णय सागर प्रेस, बम्बई से सन् १९०२ में प्रकाशित संस्करण से उद्धरण देता हूँ। इस रूप को उत्तर भारतीय रूप कहना गलत है क्यों कि दक्षिण भारतीय हस्तलेखों में भी यही पाठ मिलता है। दे० Winternitz, Catalogue of South Indian Sanskrit Manuscripts, London, 1902 पृ० 67; Winternitz तथा A. B. Keith, Catalogue of Sanskrit MSS. in the Bodleian Library, II पृ० 145 आ०।

४. Turin, 1843-1867। देखिए इस संस्करण के बारे में E. Windisch, Geschichte der Sanskrit Philologie (Grundriss I, 1 B) पृ० 145 आ०। लैटिन अनुवाद के साथ पहले दो कांड Schlegel ने 1829, 1838 में प्रकाशित किए। बंगाली हस्त-लेख का तुलनात्मक पाद-टिप्पणियों के

का पाठ लाहौर में प्रकाशित हो रहा है।[१] इन रूपों में इतने बड़े भेद का कारण यह तथ्य है कि बहुत दिनों तक यह रामायण मौखिक परम्परा में ही जीवित था। यह सोचा जा सकता है कि गायकों की याददाश्त में श्लोकों का क्रम बिगड़ गया, शब्द-योजना बहुधा बदल गई और अलग-अलग क्षेत्र के गायकों ने अलग-अलग परिवर्धन और विस्तार किए।

ये सारे रूप इस बात में समान हैं कि उन सब में सातो कांड मिलते हैं और नकली अंश असली अंशों के साथ-साथ दिए गए हैं। इस कारण कोई भी रूप रामायण का मूल पाठ उपस्थित नहीं करता। पर किसी रूप में किसी अंश का अभाव उस अंश के असली होने में संदेह का कारण बन सकता है। सब कुछ मिलाकर रामायण में क्या नकली और बाद का है इस को ढूँढ़ निकालना महाभारत की अपेक्षा आसान है। Jacobi ने स्वयं अपनी पुस्तक Das Rāmāyaṇa में निर्विवाद रूप से अनेक अंशों को परिवर्धन तथा विस्तार सिद्ध कर दिया है। आलोचनात्मक ढंग से रामायण के मूल रूप का निर्माण करने के प्रयत्न में शायद यथास्थित रामायण के २४००० श्लोकों में से एक चौथाई श्लोक ही "असली" प्रमाणित हों तथापि इस से आलोचना की प्रामाणिकता पर कोई असर नहीं पड़ेगा।[२] भारतीय इतिहास-काव्यों में नकली अंशों की भरमार होने की वजह से, उन के अध्ययन में आनन्द आने पर भी, हमें निराशा होती है। ग्रीक और भारतीय इतिहास-काव्यों की कला की दृष्टि से तुलना करने पर यदि भारतीय इतिहास-काव्य अपेक्षाकृत निम्न कोटि के मालूम पड़ते हैं तो इस का दोष अपने परिवर्तनों और परिवर्धनों के द्वारा प्राचीन गीतों को बिगाड़ डालने वाले श्लोककारों पर अधिक है बनिस्वत प्राचीन भारत के कवियों के। Friedrich Rückert जब रामायण को "रूपहीन, उद्वेग उत्पन्न करने वाला शब्दाडंबर" कह कर इस की निन्दा करता है तो इस का दोष वाल्मीकि को नहीं बल्कि

साथ प्रकाशन पण्डित रसिकलाल भट्टाचार्य ने "पण्डित" (N. S. Vols. 28-34) में किया है। C और B (बंगाली) रूपों का तुलनात्मक अध्ययन M. Vallauri, ने GSA I., 25, 1912. पृ० 45 आ० में किया है।

१. पण्डित राम लभाया द्वारा सम्पादित, डी० ए० वी० कालेज, लाहौर के अनुसंधान विभाग द्वारा १९२३ और बाद में प्रकाशित। मि० Hans Wirtz, Die Westliche Recension des Rāmāyaṇa, Diss, Bonn. 1894; S. Levi, J A. 1918, N. II, t XI, पृ० 5 आ०। जब तीनों रूपों का आलोचनात्मक सम्पादन हो जाएगा तभी हम यह निर्णय कर सकेंगे कि उन में से किस में सब से अधिक प्रामाणिक पाठ मिलता है।

२. ZDMG, Vol. 51, 1897, पृ 605 आ० में Jocobi ने रामायण के एक अंश की आलोचनात्मक परीक्षा की है। वहाँ ६०० श्लोकों में से एक चौथाई भी असली नहीं बचे।

वाल्मीकि की नकल करते वालों को है। सब कुछ होने पर भी शायद वह जर्मन कवि ठीक ही कहता है कि भारतीय कविता का सौन्दर्य **अन्यत्र** ढूंढना चाहिए। वह कहता है : "रामायण जिस अविश्वसनीय ढंग से मुँह बनाता है, जो रूप-हीन उद्वेग उत्पन्न करने वाला शब्दाडंबर यह उपस्थित करता है—होमर ने तुम्हें उन सब का तिरस्कार करना सिखाया है। पर (रामायण—जैसे) उच्च विचार और गहरी अनुभूतियाँ तुम्हें इलियद में नहीं दिखाई देंगी।"[1]

रामायण का रचना-काल[2]

रामायण में असली और नकली अंशों के प्रश्न के साथ इस के रचना-काल का प्रश्न भी जुड़ा हुआ है। इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए यह वस्तुतः आवश्यक है कि दूसरे से छठे कांडों में सुरक्षित मूल कविता तथा पहले एवं सातवें परवर्ती कांडों की कविता में कितने समय का अन्तर है इस के बारे में हम अपनी धारणा बना लें।

हमने देखा कि असली कांडों में राम केवल मानव हैं, पर पहले और सातवें कांडों में ही (तथा दूसरे कांडों के कुछ प्रक्षिप्त अंशों में भी) राम विष्णु के अवतार के रूप में सामने आते हैं।[3] रामायण ने ही राजा राम को राष्ट्रीय नायक बनाया। मानव राम से देव तुल्य राष्ट्रीय नायक राम और अन्त में सर्वव्यापी विष्णु राम तक का विकास अवश्यमेव लम्बे अर्से में ही हुआ होगा। इस के साथ रामायण के पहले और सातवें कांडों में कवि वाल्मीकि को अरण्य-निवासी धर्मात्मा ऋषि तथा राम का सम-सामयिक बतलाया गया है। अतः इन परवर्ती कांडों के कवियों के मन में वाल्मीकि एक पौराणिक व्यक्ति बन गए रहे होंगे। इन सब बातों से तो यही सम्भव मालूम पड़ता है कि रामायण के असली और नकली अंशों में शताब्दियों का अन्तर रहा होगा।

यहाँ हमें यह जोड़ देना चाहिए कि महाभारत को न केवल राम का आख्यान मालूम था बल्कि वाल्मीकि-कृत रामायण तथा विष्णु के अवतार राम का भी उसे पता था। वाल्मीकि का प्राचीन ऋषि के रूप में उल्लेख भी महाभारत में किया गया है। ऊपर कहा जा चुका है कि महाभारत का रामोपाख्यान शायद स्वतन्त्र संक्षिप्त रूप है और, हम इतना और जोड़ दें कि, यह संक्षिप्त रूप काफी परवर्ती रामायण का है जो वर्तमान रामायण के निकट था। क्यों कि रामोपाख्यान के लेखक की दृष्टि में राम मानव-रूप-धारी विष्णु बन चुके थे[4], उस लेखक को पता था कि हनुमान् ने लंका

१. F. Rückest, Poetische Tagebuch, Frankfurt, 1888, पृ० 99।
२. मि० Jocobi, वही, पृ० 100 आ०; A. B. Keith, JRAS., 1915, पृ० 318 आ०।
३. Jacobi, वही, पृ० 65।
४. महाभा० III, 147, 31; 276,5 आ०।

को जलाया, (यह अंश जाली सिद्ध हो चुका है[१]) । वह लेखक सातवें कांड के रावण-सम्बन्धी अंश से भी परिचित था ।[२] महाभारत में द्रौपदी के हरण से दुःखी युधिष्ठिर को सान्त्वना देने के लिए राम-कथा कही गई है । पर द्रौपदी-हरण का सारा प्रसंग निश्चय ही रामायण के सीता-हरण की नकल है । रामायण में सीता-हरण आख्यान और काव्य का मूल है जब कि महाभारत में द्रौपदी के हरण का आख्यान के प्रसंग में बिलकुल महत्त्व नहीं है । दोनों इतिहास-काव्यों में अलग-अलग अंशों में महत्त्वपूर्ण समानता भी बतलायी गई है यथा अर्जुन और राम के चरित्रों में । बारह से चौदह वर्षों का वनवास, धनुष का झुकाना, देवताओं से दिव्य अस्त्रों की प्राप्ति[३]—ये बातें ऐसी हैं जिन में एक काव्य का दूसरे काव्य पर प्रभाव सम्भव है, पर इसे शायद ही सिद्ध किया जा सके । फिर भी, अधिक सम्भव है कि महाभारत ने रामायण से बातें ग्रहण की हों न कि रामायण ने महाभारत से । क्यों कि रामायण को पांडवों के आख्यान या महाभारत के वीरों का ज्ञान नहीं है[४] लेकिन, जैसा कि हमने देखा, महाभारत न केवल रामोपाख्यान को ही जानता है बल्कि रामायण का भी उसे ज्ञान है । हरिवंश में तो रामायण को नाट्य-रूप से मंच पर प्रस्तुत करने का भी उल्लेख है । पर इस से अधिक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि महाभारत (VII, 143,66) "वाल्मीकि द्वारा गाए गए एक श्लोक" का उद्धरण देता है जो हमारे रामायण में (VI, 81, 28) मिलता है । महाभारत में अनेक स्थानों पर वाल्मीकि का वसिष्ठ तथा अन्य प्राचीन ऋषियों के साथ महर्षि और आदरणीय ऋषि के रूप में उल्लेख किया गया है ।[५] एक स्थान पर वाल्मीकि युधिष्ठिर को बतलाते हैं कि धर्मात्मा मुनियों के साथ किसी विवाद में उन्हें ब्राह्मण घाती कह कर दोषी ठहराया गया । इस से उन को ब्रह्म-हत्या का पाप

---

१. महाभा० III, 148,9 ।

२. Jacobi, वही, पृ० 73 आ० । महाभारत VII, 59 तथा XII, 29,51 आ० में भी संक्षेप में राम-कथा का वर्णन है । इस स्थान के कुछ श्लोक रामायण, VI, 128, 95 आ० से मिलते हैं । यहाँ राम की प्रजा की स्वर्ग-तुल्य स्थिति का निर्देश है, जो राम "दस हजार दस सौ वर्षों" तक राज्य करते रहे ।

३. मि० A. Holtzmann, Das Mahābhārata, IV, 68 आ०; E. Windisch, LZB, 1879, No. 52, Col 1709 ।

४. यह सही है कि रामायण के कवि को सावित्री तथा नल (रामा० II, 30, 6; V, 24, 12) की कविताएँ ज्ञात थीं पर यह निश्चित नहीं कि वह कवि इन को महाभारत के अंग के रूप में जानता था (जैसा कि Hopkins ने Great Epic, पृ० 78 note में माना है ।

५. महाभा० I, 2, 18; II, 7, 16; V, 83,27; XII, 207,4; हरिवंश, 268, 14539 ।

लग गया। इस पाप को दूर करने के लिए उन्हें शिव की पूजा करनी पड़ी[1]। उन सारी बातों की वजह से हमारा Jacobi के साथ एकमत होना न्याय-संगत है कि "महाभारत को अन्तिम रूप मिलने के पहले ही रामायण को **प्राचीन** ग्रंथ के रूप में प्रसिद्धि प्राप्त हो चुकी थी" (वही, पृ० 71)। यदि हम कहें तो "अवनति की प्रक्रिया", अर्थात् नकली अंश के द्वारा असली अंश का ढक दिया जाना, पूरे महाभारत में व्याप्त हो गई थी, पर रामायण में यह प्रक्रिया शुरू में ही रोक दी गई जिस से केवल पहला और सातवाँ कांड तथा अन्य कांडों के कुछ भाग ही प्रभावित हो पाए।

पर यदि ईसा की चौथी शताब्दी में ही महाभारत को उस का वर्तमान रूप मिल चुका था (दे० महाभारत के रचनाकाल का प्रकरण) तो रामायण को "अन्तिम" रूप कम से कम उस काल से एक या दो शताब्दियों पूर्व ही प्राप्त हो चुका होगा (यहां "अन्तिम" शब्द को सीमित अर्थ में लेना होगा)।

पर, इस से इन दोनों इतिहास-काव्यों में कौन प्राचीनतर है इस प्रश्न का कुछ भी समाधान नहीं होता। हमने महाभारत और रामायण के इतिहास के बारे में जो कुछ कहा है उस से इतना तो स्पष्ट है कि यह प्रश्न अपने आप में बिलकुल अर्थहीन है। पर इस प्रश्न को तीन प्रश्नों के रूप में परिवर्तित किया जा सकता है। वे हैं : (१) **जिस रूप में ये काव्य आज हमें प्राप्त हैं** उसी रूप में इन दोनों में से कौन प्राचीनतर है? (२) वीर-गीतों तथा उपदेशात्मक कविताओं को मिला कर जितने समय में मूल महाभारत धीरे-धीरे महान् संग्रह बना उस समय का रामायण के प्राचीनतर कांडों में छोटे-बड़े परिवर्तनों तथा पहले और सातवें कांडों के प्रक्षेप से जितने समय में **वाल्मीकि की प्राचीन कविता** वर्तमान रामायण के रूप में आई उस समय से क्या सम्बन्ध है? (३) पहले महाभारत-काव्य का अस्तित्व प्रकाश में आया या रामायण-काव्य का?

इन तीनों प्रश्नों में से सिर्फ पहले प्रश्न का ही निश्चित उत्तर दिया जा सकता है। हम कह सकते हैं कि अपने वर्तमान रूप में रामायण महाभारत के वर्तमान रूप से प्राचीन है। दूसरे प्रश्न के उत्तर में हम मान सकते हैं कि चूंकि रामायण महाभारत की अपेक्षा छोटा है इस लिए इस के क्रमिक विकास होने में महाभारत की अपेक्षा कम

---

१. महाभा० XIII, 18, 8। अध्यात्म रामायण के अनुसार अपनी युवावस्था में वाल्मीकि डाकुओं के बीच रहा करते थे यद्यपि वे जन्म से ब्राह्मण थे। वही परम्परा बंगाली रामायण में भी मिलती है। मि० Jacobi, वही, पृ० 66 note; L. Ibbetson तथा A. K. Majumdar, Ind. Ant, 24, 1895, पृ० 220; 31, 1902, पृ० 351; D. ch. Sen, Bengali Ramayanas, पृ० 125 (इसी तरह का एक मुसलमानों का आख्यान, पृ० 127 आ०)। बाल्मीक अर्थात् वाल्मीकि की एक संत के रूप में पूजा पूर्व पंजाब के मेहतर जाति के लोग करते हैं, दे० R. C. Temple, The Legends of the Punjab, I (1884), पृ० 529 आ०।

समय लगा होगा। यह पहले ही बतलाया जा चुका है कि रामायण के दो जाली कांड महाभारत से काफी मिलते हैं तथा दोनों में एक-जैसी ब्राह्मण-कथाएँ और आख्यान आते हैं। दोनों ग्रंथों में जो कथाएँ समान हैं वे इतने परिवर्तनों के साथ कही गई हैं कि हमें विवश हो कर यह कहना पड़ता है कि वे कथाएँ ब्राह्मणों की मण्डलियों में मौखिक परम्परा द्वारा आगत इतिहास-रूपी एक ही स्रोत से ली गई हैं, न कि एक काव्य ने दूसरे से उन्हें उधार लिया है। साथ ही रामायण और महाभारत के सभी भागों में अनेक वाक्यावलियां, पाद, मुहावरे और पूरे के पूरे श्लोक समान हैं[1] तथा भाषा, शैली और छंदों की दृष्टि से दोनो ग्रंथों में बहुत अधिक एक-रूपता भी है।[2] इन तथ्यों से हम यह निष्कर्ष निकालते हैं कि रामायण के विकास का काल महाभारत के अपेक्षाकृत लंबे विकास-काल के अन्तर्गत आता है।

तीसरा और सब से महत्त्वपूर्ण प्रश्न है : दोनों इतिहास-काव्यों के मूल रूपों में से किस का मूल-रूप अधिक प्राचीन है ? इस का उत्तर एक प्रस्तुति के रूप में ही दिया जा सकता है। हिन्दू लोग रामायण को महाभारत से प्राचीन बतलाते हैं क्यों कि विष्णु के अवतारों की परम्परागत सूची में राम का अवतार कृष्ण के पहले आता है।[3] इस तर्क में कोई दम नहीं है क्यों कि प्राचीन और असली रामायण में, जैसा कि हमने देखा है, राम अवतार के रूप में आते ही नहीं। पर यह एक सत्य है कि पाणिनि के व्याकरण में वासुदेव (कृष्ण), अर्जुन और युधिष्ठिर का निर्देश है पर राम का निर्देश न तो पाणिनि या पतंजलि ने किया है और न तो ईसा के पूर्व के शिला-लेखों में ही राम का निर्देश मिलता है[4]। यह भी सम्भव है कि अवतारवाद कृष्ण-संप्रदाय से उत्पन्न हुआ और मानव राम को विष्णु के अवतार के रूप में बदला जाना कृष्ण के अवतार के साम्य पर हुआ[5]।

---

१. इस की सिद्धि E. W. Hopkins ने American Journal of Philogy, Vols, XIX, पृ० 138 तथा XX, पृ० 22 आ० में एवं अपनी पुस्तक The Great Epic of India, पृ० 58 आ०, 403 आ० में विशेष रूप से की है।

२. दोनों काव्यों में श्लोक के स्वरूप के बारे में दे० Jacobi; वही, पृ० 24 आ० तथा गुरुपूजाकौमुदी, पृ० 50 आ०।

३. पुराणों के अनुसार राम कृत युग में पैदा हुए पर द्वापर युग में आकर ही कृष्ण की उत्पत्ति हुई। मि० A. Govindācārya Svāmin को JBRAS, 23, 1911-12, पृ० 244 आ० में।

४. R. G. Bhandarkar, Early History of the Deccan, दूसरा संस्क०, बम्बई, 1895, पृ० 10; Vaiṣṇavism etc. पृ० 46 आ०।

५. Jacobi, ERE, VII, 194 आ० में। R. Chanda, The Indo-Aryan Races, I, 1916, पृ० 68 आ०, 111 आ०।

कुछ विद्वान्[1] दोनों काव्यों में रामायण को प्राचीन घोषित करते हैं क्यों कि रामायण में सती प्रथा का उल्लेख नहीं है, जब कि महाभारत में इस का उल्लेख मिलता है। पर सत्य तो यह है कि महाभारत के प्राचीन अंशों में सती-प्रथा के उल्लेख का वैसा ही अभाव है जैसा रामायण के प्राचीन अंशों में जब कि रामायण के परवर्ती अंशों में इस प्रथा की ओर इशारा है, यद्यपि यह इशारा महाभारत की अपेक्षा कम है[2]। Jacobi (वही, पृ० 78, 81, आ०) रामायण के प्राचीनतर होने के बारे में इतने आश्वस्त हैं कि वे महाभारत को वाल्मीकि की काव्य-कला के प्रभाव में लिखा गया मान लेते हैं। मुझे यह बात तथ्यों की उपेक्षा लगती है और वस्तुतः इस मान्यता का तथ्यों से विरोध दिखाई देता है। एकाधिक बातों में महाभारत की अपेक्षा रामायण में काव्य-कला का अधिक विकास दिखाई देता है। महाभारत में अब भी "युधिष्ठिर उवाच", "कुन्ती उवाच", "दुर्योधन उवाच" आदि गद्यात्मक वाक्यावली (अनेक पात्रों की उक्ति को उपस्थित करने के लिए) मिलती है जो स्पष्ट ही प्राचीन गीति-नाट्य का अवशेष है। पर रामायण में वक्ता सर्वत्र श्लोकों में ही उपस्थित किए गए हैं[3]। यह भी बतलाया जा चुका है कि किस हद तक रामायण में परवर्ती अलंकृत काव्य-शैली का दर्शन होता है। वस्तुतः यह कहना कठिन है कि दोनों में से कौन पुराना है और किन अंशों को बाद में जोड़ा गया है। फिर भी रामायण की यह विशेषता, जो महाभारत को इस से अलग करती है और इसे कालिदास के काव्यों के अधिक निकट लाती है, हमें रामायण को अधिक प्राचीन मानने से रोकती है[4]।

एक दूसरी भी बात है। रामायण की अपेक्षा महाभारत अधिक अनगढ़ लगता है। पूरे महाभारत में—खास करके काव्य की केन्द्र-भूत पांडवों की कथा और महायुद्ध की कथा में – हमें रामायण की अपेक्षा कम सभ्य व्यवहार और अधिक युद्धोचित प्रवृत्ति का दर्शन होता है। रामायण के युद्ध-दृश्यों की तुलना में महाभारत के युद्ध-दृश्य बहुत भिन्न दिखाई देते हैं। महाभारत के युद्ध-दृश्यों को पढ़ कर हमें यह अनुभव होता है

---

१. Jacobi, वही, पृ० 107 आ० और उन के पहले Schlegel, Monier Williams तथा J. Joliy, Recht und Sitte, पृ० 68 में।

२. मि० Winternitz, Die Frau in den indischen Religionen, I, 1920, पृ० 58 आ०; J.J. Meyer, Das weib im altindischen Epos, पृ० 307 आ०।

३. पुराणों में यह गद्य अंश प्राचीनता का बोध कराने के लिए ही गृहीत है।

४. [E. W. Hopkins (Cambridge History, I, पृ० 251) का रामायण के बारे में कहाना है कि "कथा के रूप में इस के मूल का जो भी काल रहा हो पर कला-कृति के रूप में यह महाभारत के बाद का है।" मि० Oldenberg, Das Mahābhārata, पृ० 53 आ० तथा H. Raychaudhuri, Calcutta Review, Mar. 1922, पृ० 1 आ०।

कि कवि स्वयं क्षत्रिय जाति का था और उसने अपनी आँखों से रक्त-रंजित युद्ध-क्षेत्र देखा था जब कि रामायण के ये दृश्य ऐसे मालूम पड़ते हैं कि मानों कवि के ज्ञान का आधार सिर्फ सुनी-सुनायी बातें ही हैं। राम और रावण, लक्ष्मण और इन्द्रजित् के बीच उतनी तीव्र घृणा या रोष नहीं दिखाई देता जितना महाभारत में वर्णित अर्जुन और कर्ण, या भीम और दुर्योधन के युद्ध में दिखाई देता है। रामायण की सीता जब चुरा ली जाती हैं और रावण द्वारा परेशान की जाती हैं अथवा राम के द्वारा त्याग दी जाती हैं तो उन के आक्रोश में या दोषारोपण में एक प्रकार की शान्ति और निरीहता बनी रहती है। उनकी उक्तियों में वह तीव्रता नहीं मिलती जो महाभारत की द्रौपदी की उक्तियों में मिलती है। कुन्ती और गान्धारी भी क्षत्रिय जाति की सच्ची वीर-माताएँ हैं जब कि रामायण की कौसल्या और कैकेयी की तुलना श्रेण्य नाटकों की बँधे-बँधाए ढर्रे पर चलनेवाली रानियों के साथ की जा सकती है। इससे यह मालूम पड़ता है कि महाभारत अधिक खूंखार और लड़ाकू युग की रचना है पर रामायण में अधिक सुसंस्कृत सभ्यता के चिह्न मिलते हैं। दोनों काव्यों के स्पष्ट भेद को बतलाने के लिए यदि हम मान लें कि महाभारत में **पश्चिमी** भारत की अपेक्षा-कृत अनगढ़ सभ्यता प्रतिबिम्बित है और रामायण में **पूर्वी** भारत की अधिक सुसंस्कृत सभ्यता तथा ये दोनों काव्य दो अलग **युगों** की कविता का नहीं बल्कि भारत के दो भिन्न क्षेत्रों का प्रतिनिधित्व करते हैं तो बात दूसरी है। पर इस दृष्टि-कोण से भी यह मानना कठिन है कि महाभारत वाल्मीकि की काव्य-कला के प्रभाव से ही एक इतिहास-काव्य बना।

इसमें संदेह नहीं कि महाभारत पश्चिमी भारत से तथा रामायण पूर्वी भारत से संबंधित है। महाभारत में पश्चिम के लोग मुख्य भाग लेते हैं जब कि रामायण की मुख्य घटनाएँ कोसल प्रदेश में घटती हैं, परम्परा के अनुसार वाल्मीकि को वहाँ का निवासी कहा गया है और बहुत सम्भव है कि वाल्मीकि वास्तव में वहाँ रहे हों[१]। पर पूर्वी भारत में बौद्ध धर्म पैदा हुआ और कोसल के पास मगध प्रदेश में ही पहले-पहल इसका प्रचार हुआ। इसलिए कहीं अधिक महत्त्व का प्रश्न है कि रामायण और बौद्धधर्म में क्या संबंध है?

ऊपर पहले ही कहा जा चुका है कि प्राचीनतम बौद्ध साहित्य में अब भी हमें आख्यान-काव्य के उदाहरण मिलते हैं जिसमें इस इतिहास-काव्य का पूर्व-रूप दिखाई देता है। T. W. Rhys Davids[२] ने इससे यह निष्कर्ष निकाला है कि इन बौद्ध आख्यान-काव्यों की उत्पत्ति के समय काव्य के रूप में रामायण का अस्तित्व नहीं हो सकता। इस पर आपत्ति उठाई जा सकती है कि शायद प्राचीन आख्यान-काव्य इन आख्यानों से उत्पन्न नये साहित्यिक काव्य-रूप के साथ-साथ ही रहे हों जैसे कि आधुनिक साहित्य में भी आख्यान और काव्य साथ-साथ वर्तमान मिलते हैं। सब

---

१. Jacobi, वही; पृ० 66 आ०; 69।

२. Buddhist India, London, 1903, पृ० 183।

कुछ होते हुए भी यह ध्यान देने योग्य बात है कि पूरे के पूरे आरम्भिक बौद्ध साहित्य में बौद्ध आख्यानों के सिवा और कोई आख्यान नहीं मिलते जब कि बौद्ध-काव्य शताब्दियों बाद ही लिखा गया। यह और भी महत्त्वपूर्ण है कि त्रिपिटक में एक दसरथ जातक[1] मिलता है जिसमें बतलाया गया है कि कैसे भरत दशरथ की मृत्यु का समाचार लाते हैं जिस पर राम, लक्ष्मण और सीता से, पानी में घुसकर मृत के लिए तर्पण करने को कहते हैं। इस पर बातचीत शुरू होती है और भरत राम से पूछते हैं कि इससे आपको दुःख क्यों नहीं हुआ[2]। राम सान्त्वना-पूर्ण लम्बी वक्तृता देते हुए बतलाते हैं कि मृत के लिए रोना व्यर्थ है क्योंकि सभी मरते हैं। जातक की बारह प्राचीन गाथाओं में से केवल एक ही गाथा हमारे रामायण में मिलती है[3]। इस तथ्य से सिद्ध होता है कि रामायण इन गाथाओं का स्रोत नहीं हो सकता बल्कि ये गाथाएं किसी प्राचीन राम-आख्यान पर आधारित हैं। इसी जातक ग्रंथ में एक सामजातक[4] भी है जिसे शायद हम दशरथ द्वारा रामायण (II, 75 आ०) में कही

१. इस जातक (सं० ४६१) का पालि पाठ अंग्रेजी अनुवाद के साथ पहले V. Fausboll ने Copenhagen से 1871 में प्रकाशित किया। इस का विस्तृत अध्ययन Weber ने, वही, 1 आ० में; Jacobi ने वही, 84 आ० में; E. Senart ने Essai sur la ligende du Buddha, दूसरा संस्क०, 1882, पृ० 317 आ० में; Lüders ने NGGW, 1897, 1 पृ० 40 आ० में; D. Ch. Sen ने The Begali Ramayanas, पृ० 9 आ० में; G. A. Grierson ने JRAS, 1922, 135 आ० में; N. B. Utgikar ने JRAS के Centenary Supplement में, 1924, पृ० 203 में, किया है। सिर्फ जातक की गाथाएँ ही त्रिपिटक के अंग हैं। गद्य भाग टीकाकारों का (पांचवी ईसवी सदी के आस-पास) जाल है और दिनेशचन्द्र सेन तथा अन्य लोगों द्वारा इस कथा के आधार पर निकाला गया निष्कर्ष गलत है।

२. यहाँ हम देखते हैं कि बौद्ध प्रवृत्ति के अनुसार जातक-गाथाओं को फिर से ढाला गया है। रामायण में सांत्वना के वचन बोलने के पहले राम अपने पिता की मृत्यु का समाचार सुन कर बहुत रोते हैं, दे० रामायण, II, 102-105। शायद यही बात प्राचीन आख्यान में भी थी।

३. राम के सान्त्वना-वक्तव्य के अन्य श्लोकों का समानान्तर (रामायण,II,105,21; 22) Lüders ने (ZDMG., 58, 1904, 713 आ० में) ३२८ वें जातक की २-४ गाथाओं में ढूंढ निकाला है। दसरथ जातक की टीका में राम के दस हजार वर्षों के राज्य के बारे में एक गाथा आती है जो रामायण, VI, 128; 104 से मिलती है। राम-आख्यान की ओर संकेत ५१३वें जातक की १७वीं गाथा में भी मिलता है।

४. ५४० वाँ जातक तथा महावस्तु, II, 209 आ०। मि० Charpentier,

गई मृगया में मारे गए मुनि-बालक की कथा का (श्रवण कुमार के वध की कथा) एक प्राचीन रूप मान सकते हैं। कुछ दूसरे भी जातक हैं जिनके अंश हमें रामायण की याद दिलाते हैं पर इनमें शाब्दिक एक-रूपता नहीं के बराबर है[1]। यह भी ध्यान देने योग्य है कि दैत्यों और कल्पित पशुओं की अनेक कथाएं उपस्थित करनेवाले पूरे के पूरे जातक-साहित्य में राक्षस रावण, हनुमान् और वानरों की कोई चर्चा ही नहीं मिलती। इन सारी बातों से तो यही सम्भव लगता है कि जिस समय त्रिपिटक अस्तित्व में आए (ई० पू० चौथी और तीसरी शताब्दियों में) उस समय राम के आख्यान और शायद उन आख्यानों की एक माला वर्तमान थी, पर राम-काव्य-जैसी कोई वस्तु तब तक अस्तित्व में नहीं आई थी[2]।

दूसरा प्रश्न है कि क्या रामायण में बौद्ध-धर्म के चिह्न ढूंढ़े जा सकते हैं। शायद इसका उत्तर एकदम नकारात्मक होगा। क्योंकि रामायण में केवल एक ही ऐसा स्थल मिलता है जहाँ बुद्ध का उल्लेख है और वह निश्चित रूप से जाली है। परन्तु बौद्ध धर्म के साथ एक दूरारूढ़ संबंध हो सकता है। Weber को फिर भी विश्वास था कि रामायण "धर्मात्मा राजा राम के एक प्राचीन बौद्ध आख्यान पर आधारित है जिसके अनुसार क्षमा के बौद्ध आदर्श का राम में आधान किया गया है[3]।" ऐसी बात नहीं हो सकती। फिर भी, राम की अत्यधिक नम्रता, मृदुता और शान्ति बौद्ध प्रभावों से प्रभावित होकर चित्रित की गई हो, इस मत को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। कम से कम यह समझ में आनेवाली बात है कि बौद्ध धर्म से पूर्ण प्रभावित प्रदेश में एक अबौद्ध ने काव्य रचा जिसका नायक सारे राक्षस-युद्धों के बावजूद बुद्ध द्वारा अनुमोदित चरित्रवाला एक साधु पुरुष था, न कि कोई योद्धा वीर। यह लगता है कि ईसा-पूर्व चौथी और तीसरी शताब्दी के प्राचीन बौद्ध ग्रंथों के लेखकों को

WZKM; 24, 1910, 397; 37, 1913, 94; Oldenberg, NGGW; 1918, 456 आ०; D. Ch. Sen, वही, पृ० 15 आ०।

१. वेस्सन्तर जातक के कुछ दृश्य रामायण की याद दिलाते हैं पर रामायण और जातक गाथाओं में एक भी शाब्दिक समानता का उदाहरण नहीं मिलता। ५१९ वें जातक में एक गाथा आती है जिस में कहा गया है कि पतिव्रता संबुला को एक दैत्य ने अपने बीमार पति को छोड़ कर अपने साथ चलने को तैयार करने की कोशिश की। उसने वही धमकी दी जो रामायण, V, 22, 9 में रावण ने सीता को दी थी अर्थात् यदि संबुला नहीं चाहती तो वह उस का सबेरे के जल-पान के रूप में भोजन कर जाएगा। मि० D. Ch. Sen, वही. पृ० 18 आ०। जातक गाथाओं में भी पूर्व-वर्ती और परवर्ती अंश हैं और कुछ अंश रामायण के भी हो सकते हैं।

२. मि० T.W. Rhys Davids, Buddhist India, पृ० 183।

३. Uber Das Rāmāyaṇa, पृ० 6 आ०।

रामायण का पता न था। पर वे उन आख्यानों को जानते थे जिनके आधार पर वाल्मीकि ने अपना काव्य रचा। दूसरी ओर कम-से-कम अप्रत्यक्ष रूप में रामायण बौद्ध धर्म से प्रभावित हुआ। शायद इसके आधार पर हम यह अनुमान कर सकते हैं कि रामायण उस समय रचा गया होगा जब बौद्ध धर्म पूर्वी भारत में फैल चुका था और बौद्धों के धर्म-ग्रंथ लिखे जा रहे थे।

उक्त बात इस स्थिति से भी मेल खाती है कि बौद्ध पालि साहित्यके छंदों की अपेक्षा रामायण के छंद (श्लोक) बाद में विकसित हुए हैं जो महाभारत के परवर्ती अंशों के बहुत निकट हैं[1]।

H. Jacobi ने **भाषा** के आधार पर रामायण को बुद्ध के पूर्वकाल का होना सम्भव माना है। इस इतिहास-काव्य की भाषा प्रचलित संस्कृत है। ईसा-पूर्व २६० के आस-पास अशोक ने अपनी प्रजा को सम्बोधित करते हुए अपने शिला-लेखों में संस्कृत का नहीं बल्कि पालि-जैसी बोलियों का प्रयोग किया। बुद्ध ने भी ई० पू० छठीं और पाँचवीं शताब्दियों में संस्कृत की बजाय प्रचलित भाषा में अपना उपदेश दिया। Jacobi ने कहा[2] कि लोकप्रिय इतिहास-काव्यों की रचना किसी अप्रचलित या "मृत" भाषा में नहीं बल्कि लोक-प्रचलित किसी जीवित भाषा में ही की जा सकती है। चूँकि अशोक और बुद्ध के समय में भी संस्कृत जनता की भाषा नहीं रही इसलिए लोकप्रिय काव्य (अपने मूल रूप में) बुद्ध से पूर्व के काल में ही लिखे गए जब संस्कृत एक जीवित भाषा थी। इस मत के विरुद्ध यह कहा जा सकता है कि भारत में संस्कृत सर्वदा **साहित्यिक भाषा** के रूप में लोक-प्रचलित भाषाओं के साथ-साथ जीती रही है और दूर-दूर तक लोग इसको समझते रहे हैं पर बोल-चाल में इसका व्यवहार नहीं करते थे। यह कोई अजनबी बात नहीं है कि जिस समय बौद्ध और जैन भिक्षु लोक-प्रचलित बोलियों में रचनाएं करते और उपदेश देते थे उसी समय संस्कृत में महाकाव्य भी लिखे और सुने जाते थे। भारत में आज तक एक ही प्रदेश में दो या अधिक भाषाओं का एक साथ प्रचलन कोई आश्चर्यजनक बात नहीं है। उत्तरी भारत के एक बड़े भाग में आज भी (संस्कृत के अलावा) एक **आधुनिक भारतीय** साहित्यिक भाषा प्रचलित है जो बोल-चाल की भाषा से बहुत भिन्न है[3]। इसलिए यदि रामायण या महाभारत के श्लोकों को पालि या प्राकृत में, बौद्ध या जैन ग्रंथों में, हम यत्र-तत्र उल्लिखित पाते हैं तो इसका मतलब यह नहीं है

---

१. मि० H. Oldenberg की गुरुपूजाकौमुदी. पृ० 9 आ० में तथा E. W. Hopkins, Great Epic, पृ 236 आ०। Jacobi, वही, पृ० 93 तथा Keith, JRAS; 1915, पृ० 321, 324 आ० में इस तर्क को निस्सार बताते हैं।

२. Jacobi, वही, पृ० 116 आ०।

३. मि० Grierson, JRAS; 1906, पृ० 441 आ०।

कि संस्कृत श्लोक प्रचलित भाषा से अनूदित किए गए हैं। ये पूरे के पूरे काव्य मूलतः लोक-प्रचलित भाषा में लिखे गए थे, बाद में उनका संस्कृत में अनुवाद कर दिया गया—यह कुछ प्रमुख विद्वानों का मत है जो पहले मत से अधिक प्रमाण-हीन है। यह बड़ी असम्भव बात लगती है कि ऐसा अनुवाद हुआ हो पर उसका कहीं कोई उल्लेख न मिले। Jacobi[1] ने बड़े विश्वसनीय ढंग से यह दिखा दिया है कि यह प्रस्तुति अन्य कारणों से भी कितनी अग्राह्य है। पर जब वे "लोक-प्रचलित काव्य को जनता की भाषा में ही निबद्ध होना चाहिए" इस मत के विरोध में यह तथ्य उपस्थित करते हैं कि "इलियद और ओदीसी के गीत भी होमरी भाषा में उपस्थित किए गए थे यद्यपि श्रोताओं की भाषा इससे काफी भिन्न थी", तथा जब वे इस तथ्य पर जोर देते हैं कि भारत में "राष्ट्र" शब्द का वही अर्थ नहीं है जो अर्थ हम इससे समझते हैं तो वे स्वयं अपने ही उस मत का खण्डन करते हैं जिसके अनुसार रामायण उस समय की रचना होनी चाहिए जब संस्कृत लोक-भाषा थी और इसलिए रामायण को बुद्ध के पूर्व की रचना माना जाय[2]।

१. ZDMG; 48, 1894, पृ० 407 आ०। ये महाकाव्य मूलतः प्राकृत में लिखे गए थे—यह मत पहले-पहल A. Barth ने (Revue Critique, 5 avril 1886) प्रचलित किया तदनन्तर विस्तार से उस का मंडन किया (RHR; t. 27, 1893, पृ० 288 आ; t. 45, 1902, पृ० 195 आ०: Oeuvris II, 152 आ०, 397 आ०)। मि० Grierson, Ind. Ant. 23, 1894, पृ० 55 भी।

२. इन इतिहास-काव्यों की रचना के समय संस्कृत जीवित भाषा थी या नहीं इस प्रश्न पर बहुत विवाद हुआ है। यह तथ्य है कि हमारे सारे प्राचीन शिलालेख (३०० ई० पू० से प्रारम्भ करके) प्रचलित बोलियों में लिखे गए हैं। सिर्फ ईसवी सदियों के शिला-लेख ही संस्कृत में भी मिलते हैं (मि० R. O, Franke, Pali Und Samskrit, Strassburg, 1902, तथा T. W. Rhys Davids, Buddhist India, पृ० 148 आ०)। पर इन शिला-लेखों से केवल यही सिद्ध होता है कि ईसा-पूर्व के काल में राज-काज में अभी संस्कृत का अधिक प्रयोग नहीं होता था। पर साहित्यिक भाषा के रूप में संस्कृत के प्रयोग के विरुद्ध इनके आधार पर कुछ नहीं कहा जा सकता। R. G. Bhandarkar (JBRAS., 16, 1885, 268 आ०, 327 आ०) ने बतला दिया है कि वैयाकरण पाणिनि, कात्यायन और पतंजलि के काल में संस्कृत किसी भी तरह "मृत" भाषा नहीं थी। दे० E. J. Rapson तथा F. W. Thomas, JRAS, 1904, पृ० 435 आ०, 460 आ०, 747 आ० भी। जब इतिहास-काव्य अस्तित्व में आए उस समय संस्कृत साहित्यिक भाषा थी जिसे बहुत लोग समझते थे और कुछ हद तक बोली भी जाती थी—इस मान्यता के विरुद्ध Rhys Davids, Grierson तथा Fleet की

ईसवी सन् के प्रारम्भ की शताब्दियों में बौद्ध लोग भी संस्कृत का प्रयोग करते थे। बौद्ध महाकवि अश्वघोष-रचित बुद्धचरित संस्कृत में लिखा गया एक काव्य है। यह निश्चित है कि वाल्मीकि की कविता इसका आदर्श थी[1]। दूसरी ओर रामायण के एक जाली अंश में हमें एक दृश्य[2] मिलता है जो बहुत सम्भव है कि बुद्धचरित में प्राप्त इसी प्रकार के एक दृश्य की नकल हो। अश्वघोष कनिष्क के समकालीन थे इसलिए हम निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि ईसा की दूसरी शताब्दी के प्रारम्भ में[3] रामायण को आदर्श काव्य माना जाने लगा था पर उस समय तक इसको ऐसा अंतिम रूप नहीं मिल सका था जिसमें क्षेपक न जोड़े जा सकें। पर दूसरी शताब्दी के अंत तक इसको अंतिम रूप मिल गया होगा जैसा कि रामायण और महाभारत के संबंध के बारे में विचार करते हुए पहले ही कहा जा चुका है।

कुमारलात की कल्पनामंडितिका[4] में, जो शायद दूसरी शताब्दी ईसवी के अंत में लिखी गई थी, रामायण के सार्वजनिक पाठ का उल्लेख मिलता है। ईसा की तीसरी शताब्दी की कही जानेवाली बौद्ध कथाओं के चीनी अनुवादों में राम-कथा बौद्ध

आपत्तियाँ (JRAS., 1904, पृ० 457 आ०, 471 आ०, 481 आ०) कुछ भी नहीं सिद्ध करतीं। मि० Keith तथा Grierson, JRAS. 1906, पृ० 1 आ०, 441 आ०; 1915, 318 आ०; Windisch, OC., XIV, Paris, 1, 257, 266। नाटकों में सूत केवल संस्कृत बोलते हैं—इस तथ्य से भी सिद्ध होता है कि सूत-काव्य अर्थात् इतिहास-काव्य संस्कृत में ही लिखा गया था। रामायण की भाषा में असंस्कृत प्रयोगों के बारे में दे० T. Michelson, JAOS., 25, 1904, 89 आ० तथा Transactions and Proceedings of the American Philological Association, 34, पृ० xl आ०; M. A. Roussel, JA., 1910, s. 10, t. XV, पृ० 1 आ०; Keith, JRAS., 1910, पृ० 1321 आ०।

१. मि० A. Gawronski, Studies about the Samskrit Buddhist Literature; W. Krakowie, 1919 (Prace Komiji Orj, Pol, Akad, Um. No. 2) पृ० 27 आ०।

२. रात्रि-कालीन दृश्य (ऊपर वर्णित)।

३. कनिष्क के काल के बारे में बहुत कुछ लिखा गया है पर अभी तक इसका ठीक निर्णय नहीं हो सका है। पर इस सिद्धान्त के पक्ष में अधिक प्रमाण मिलते हैं कि उसने ईसा की दूसरी शताब्दी के पूर्वार्ध में राज्य किया। मि० Smith, Early History, पृ० 271 आ०, 276 note।

४. "अश्वघोषकृत सूत्रालंकार" के नाम से Ed. Huber द्वारा चीनी भाषा से अनूदित, Paris, 1908, पृ० 126।

उद्देश्यों के अनुकूल बनाकर कही गई है[1]। चीनी स्रोतों से हमें यह भी पता चलता है कि बौद्ध दार्शनिक वसुबन्धु के समय में (ईसा की चौथी शताब्दी में) रामायण भारत के बौद्धों की मंडली में भी सुप्रसिद्ध और प्रचलित काव्य-ग्रंथ था[2]। ईसा की प्रथम शताब्दी के उत्तरार्ध में ही जैन आचार्य विमल सूरि ने रामकथा को अपने प्राकृत काव्य पउमचरिय (पद्मचरित) में ढाला था तथा इस कथा को जैनधर्म और दर्शन के अनुरूप बनाया था[3]। उस समय सुप्रसिद्ध वाल्मीकि के काव्य के के स्थान पर जैनधर्म के अनुयायियों को दूसरा काव्य देना ही उनका लक्ष्य था। करीब ६०० ई० में हिन्दू धर्म के पवित्र ग्रंथ के रूप में रामायण की प्रसिद्धि सुदूर कंबोडिया में हो चुकी थी क्योंकि एक शिलालेख के अनुसार किसी सोमशर्मा ने "रामायण, पुराण और सम्पूर्ण भारत" एक मंदिर को दान में दिये थे।[4]

---

१. मि० S, Lévi, Album Kern, पृ० 279 आ०; Ed. Chavannes, Cinq cents contes, III; Ed. Huber, BEFEO., 4, 1904, 698 आ०।

२. दे० K. Watanabe, JRAS., 1907, पृ० 99 आ०।

३. इस काव्य के अंतिम पद्यों के अनुसार ही इसकी रचना महावीर के बाद ५३० वें (करीब ६२ ई०) वर्ष में हुई। E, Leumann (पउमचरिय के बारे में मूल्यवान् सूचना देने के लिए मैं जिनका ऋणी हूँ) इस काल को अखंडनीय मानते हैं। H. Jacobi (ERE, VII, पृ० 467) का कहना है कि इसकी रचना ईसा की तीसरी सदी में हुई। राम-कथा के परवर्ती जैन रूप (गुणाढ्यकृत उत्तर पुराण के ८६ वें पर्व में तथा हेमचन्द्र-कृत षष्टिशालाकापुरुष-चरित्र के ७वें पर्व में) पउमचरिय पर आधारित हैं। हेमचन्द्र के "जैन रामायण" के लिए दे० दिनेशचन्द्र सेन, Bengali Ramayanas, पृ० 26 आ०। (जैन रामायण का प्रभाव बंगाली रामायणों पर पड़ा, जैसा कि सेन ने वहीं पृ० 204 पर तथा आगे कहा है)। पर रावण को महात्मा और मुनि बताना; सीता को रावण की पुत्री कहना—बौद्ध और जैन राम-कथा की इन बातों को प्राचीन परम्परा का द्योतक नहीं कहा जा सकता जैसा दिनेशचन्द्र सेन ने कहा है। अद्भुतोत्तरखंड में भी सीता रावण की पत्नी मंदोदरी की पुत्री कही गई है। पर यह बात सीता की शक्ति के रूप में पूजा करने के निमित्त बहुत बाद में रामायण के परिशिष्ट के रूप में जोड़ी गई। काश्मीर के शाक्तों में यह मान्यता प्रचलित है। मि० Weber, HSS., Verz. I, पृ० 123 आ०; Eggeling, Ind. Off, Cat, VI, पृ० 1183; D. Ch. Sen, वही, पृ० 35, 59, 227 आ०; Grierson, JRAS., 1921, पृ० 422 आ०।

४. दे० A. Barth, Inscriptions Sanscrites du Cambodge (Natices et extraits des MSS. de la bibliothéque

प्राचीन काव्य अश्वघोष का आदर्श था और इसलिए अश्वघोष के काफी पहले ही इसकी रचना हो चुकी थी। यह बात प्राचीन और असली रामायण में ग्रीक प्रभावों के तथा ग्रीक लोगों के बारे में ज्ञान के नितान्त अभाव से भी मेल खाती है। यवनों के (आयोनियनों) प्रति दो संकेतों को जाली सिद्ध किया जा चुका है। एक बार Weber ने कहा था कि वाल्मीकि की कविता पर होमर की कविता का कुछ प्रभाव है। यह बात तो पैदा ही नहीं होती। सीता-हरण और हेलेन के अपहरण के बीच, लंका पर आक्रमण और ट्राय पर चढ़ाई के बीच दूर का भी संबंध नहीं है। राम द्वारा धनुष का झुकाया जाना युलिसिस द्वारा धनुष के झुकाये जाने के समान लगता है पर यह समानता दूरारूढ़ है[1]।

काव्य के रूप में रामायण वेदों से बहुत दूर है और राम-कथा भी वैदिक साहित्य के साथ काफी कमजोर सूत्रों से बंधी है। उपनिषदों में जिन विदेह के राजा जनक का उल्लेख आता है[2] क्या वे ही सीता के पिता हैं इस प्रश्न का अभी तक समाधान नहीं हो सका है। Weber[3] ने रामायण और यजुर्वेद में थोड़े से संबंधों की ओर ध्यान आकर्षित किया है। काव्य की नायिका सीता शायद राम-आख्यान के प्राचीनतम तत्त्वों से संबंधित हैं। उनके नाम का अर्थ है "जोत की लकीर", वे धरती से निकलती हैं, धरती माता उन्हें फिर अपने में ले लेती हैं। यद्यपि इनमें से अंतिम बात परवर्ती सातवें कांड में ही मिलती है तथापि यह काफी पुरानी हो सकती है। धरती को कृतार्थ करने के प्रसंग में ऋग्वेद में (IV, 57, 6) खेती की देवी सीता की प्रार्थना की गई है। इस तरह सीता बहुत ही प्राचीन हैं और वैदिक युग में भी बहुत पहले के काल में उनको ले जाया जा सकता है। गृह्यसूत्रों में प्रार्थना-मंत्र आते हैं जिनमें सीता का सजीव चित्रण मिलता है—"कमल का मुकुट धारण किए हुए, अंग-

---

nationale, t. XXVII, 1, Paris, 1885), पृ० 29 आ०। प्राचीन जावानी रामायण के बारे में दे० R. Friederich, JRAS., 1876, पृ० 172 आ० तथा H. Kern, Verspreide Geschriften, Vol. 9, पृ० 251 आ०, 297।

१. दे० Jacobi, वही, पृ० 94 आ०।

२. प्राचीन उपनिषदों में राम का उल्लेख नहीं है। रामपूर्वतापनीय उपनिषद् तथा रामोत्तरतापनीयोपनिषद् (The Vaiṣṇava Upaniṣadaḥ··· संपा० महादेव शास्त्री, अडयार, 1923, पृ० 306 आ०; 326 आ०; Deussen, Sechzig Upanishads, पृ० 802 आ०, 818 आ०) बहुत बाद के हैं जो नाम-मात्र के उपनिषद् हैं। उनमें राम को विष्णु का अवतार मानकर पूजा गया है।

३. Uber das Rāmāyana, पृ० 8 आ०।

प्रत्यंग में दीप्ति से युक्त' 'काली आँखोंवाली" आदि ।[1] फिर भी Weber[2] का कहना शायद ठीक है कि धरती की देवी सीता के इस वैदिक रूप में "तथा राम-आख्यान में उपस्थापित उनके रूप में बड़ा भारी अंतर है।" वैदिक युग में राम और सीता के गीत वर्तमान थे इसका कोई संकेत नहीं मिलता। Jacobi के साथ यदि हम राम-रावण युद्ध को प्राचीन इन्द्र-वृत्र युद्ध की कथा का दूसरा रूप मान भी लें[3] तब भी वेद और रामायण के बीच की लंबी-चौड़ी खाई नहीं पाटी जा सकती।

रामायण के रचना-काल के सम्बन्ध से अपनी उपलब्धियों को यदि हम संक्षेप में कहना चाहें तो यों कह सकते हैं कि :—

१. रामायण के परवर्ती भागों (खासकर पहला और सातवाँ कांड) और दूसरे से छठे कांडोंवाले असली रामायण के बीच समय की लंबी दूरी है।

२. परवर्ती अंशों सहित पूरा रामायण उस समय प्राचीन और प्रसिद्ध ग्रन्थ बन चुका था जब कि महाभारत अपने वर्तमान रूप में नहीं आया था।

३. यह संभव है कि ईसा की दूसरी शताब्दी के अंत तक रामायण को उसका वर्तमान परिमाण और विषय-वस्तु प्राप्त हो चुके थे।

४. पर महाभारत का प्राचीनतर केन्द्र शायद प्राचीन रामायण के केन्द्र से पुराना है।

५. वेद में हमें राम-काव्य का कोई चिह्न नहीं मिलता और राम-आख्यान का धुँधला-सा ही आभास प्राप्त होता है।

६. त्रिपिटक के प्राचीन बौद्ध ग्रन्थों से रामायण का कोई आभास नहीं मिलता पर उनमें हमें राम-सम्बन्धी उन गीतों का चिह्न मिलता है जिनमें राम-आख्यान गाये जाते रहे।

७. रामायण में बौद्ध धर्म का स्पष्ट प्रभाव नहीं मिलता पर राम के चरित्र-चित्रण पर बौद्ध प्रभाव ढूँढा जा सकता है।

८. रामायण पर ग्रीक प्रभाव का कोई प्रश्न ही नहीं उठता और असली रामायण को ग्रीक लोगों का पता ही नहीं था।

९. यह संभव है कि मूल रामायण ईसा-पूर्व तीसरी शताब्दी में वाल्मीकि के द्वारा रचा गया और उसका आधार प्राचीन आख्यान थे।

---

१. कौशिकसूत्र 106। दे० A. Weber "Omina und Portenta" (ABA. 1858, पृ० 368 आ०)।

२. "Episches im Vedischen Ritual" (SBA., 1891, 818)।

३. मैं J. v. Negelein द्वारा अविश्वसनीय ढंग से प्रतिपादित बातों को नहीं समझ सका हूँ। उनका कहना है कि "राम-सीता आख्यान की रूप-रेखा" उन्हें वेदों में मिलती है (WZKM., 16, 1902, पृ० 226 आ०)।

पुराण और भारतीय साहित्य में उनका स्थान[1]

भारतीय साहित्य के इतिहास में विषय-वस्तु तथा कालक्रम की दृष्टि से पुराणों का ठीक-ठीक स्थान निर्धारित करना कठिन है। वस्तुतः पुराण धार्मिक साहित्य के अंग हैं और परवर्ती भारतीय धर्म, (जिसे साधारणतः हिन्दूधर्म[2] कहते हैं और जिसका

---

१. पुराणों का गहरा अध्ययन करनेवाले पहले व्यक्ति थे H. H. Wilson (अपनी पुस्तक "Essays on Sanskrit Literature" में जो पहली बार 1832 में प्रकाशित हुई तथा विष्णु पुराण की अपने अनुवाद की भूमिका और टिप्पणियों में)। उनसे पहले Vans Kennedy ने Researches into the Nature and Affinity of Ancient and Hindu Mythology, London, 1831 लिखी। पुराण-साहित्य की खोज में Eugène Burnouf (भागवत पुराण के संस्करण एवं अनुवाद की भूमिका में) तथा हस्तलिखित पोथियों की सूची तैयार करनेवालों–खासकर Th. Aufrecht (Bodl. Cat, पृ० 7 आ०) और Julius Eggeling (Ind. Off. Cat. Part VI, London, 1899) ने भी बहुमूल्य योग दिया। पुराणों की खोज में Wilson की सेवाओं के लिए मि० Windisch, Geschichte der Sanskrit Philologie. पृ० 41 आ०। पुराणों के बारे में अधुनातन खोजों के लिए दे० R. G. Bhandarkar, A Peep into the Early History of India, JBRAS., 20, 1900, 403 आ०, नया संस्क० 1920, पृ० 66 आ०; W. Jahn Festschrift Kunh, पृ० 305 आ०; F. E. Pargiter, ERE, X, 1918, 448 आ०; Ancient Indian Historical Tradition, London 1922, पृ० 15 आ०; J. N. Farquhar, An Outline of the Religious Literature of India, London, 1920, पृ० 136 आ०; E. J. Rapson, Cambridge History, I पृ० 296 आ०।

२. इस धर्म के बारे में मि० A. Barth, Religions of India, 2nd. ed. London, 1889, पृ० 153 आ०; Monier Williams, Brahmanism and Hinduism, London, 1891; E. W. Hopkins. Religions of India, Boston, 1895, पृ० 434 आ०; Sir Charles Eliot, Hinduism and Buddhism, London, 1921, Vol, II; H. v. Glasenapp, Der Hinduismus, Munich, 1922।

विष्णु तथा शिव की पूजा में पर्यवसान होता है) के लिए इनका वही स्थान है जो प्राचीनतम धर्म या ब्राह्मणवाद के लिए वेदों का। दूसरी ओर पुराणों का इतिहास-काव्यों की रचनाओं से कितना गहरा सम्बन्ध है यह बात पिछले प्रकरणों में पुराणों के बार-बार निर्देश से पूरी तरह अनुमानित हो चुकी होगी। वस्तुतः महाभारत के अधिकांश भाग और करीब-करीब पूरा का पूरा हरिवंश पुराणों से अतिरिक्त कुछ भी नहीं हैं। रामायण के परवर्ती काण्ड और सर्ग भी पुराणों की विशेषताओं से युक्त हैं। इसके अलावा पुराण निस्सन्देह बड़े प्राचीन काल से चले आ रहे हैं और उनका मूल वैदिक साहित्य में हैं। ऋग्वेद के सूक्तों और ब्राह्मण ग्रन्थों में जिन आख्यानों से हम परिचित हो चुके हैं ऐसे अनेक आख्यान पुनः पुराणों में उपलब्ध होते है।[1] पर यह बात भी उतनी ही निस्सन्देह है कि 'पुराण' शीर्षक के अन्तर्गत जो रचनाएँ हमारे सामने वर्तमान हैं वे परवर्ती काल की हैं और आज तक भी ऐसी रचनाएँ की जाती हैं जिनको 'पुराण' का नाम दे दिया जाता है अथवा उनको प्राचीन पुराणों का अंश करार दिया जाता है। "पुरानी बोतलों में नयी शराब" की जो बात मैंने पहले भूमिका में कही है वह इन रचनाओं पर खास तौर से लागू होती है। इस साहित्य की अधुनातन कृतियों तक का बाह्य आकार तथा आदि-कालिक विधान प्राचीनतम पुराणों-जैसा है।

'पुराण' शब्द का अर्थ मूलतः **पुराणम् आख्यानम्** ही रहा है[2]। प्राचीनतर साहित्य में, ब्राह्मणों, उपनिषदों तथा प्राचीन बौद्ध ग्रंथों में इस शब्द का प्रयोग साधारणतः **इतिहास** के सम्बन्ध में हुआ है। पर पहले ही कहा जा चुका है कि 'इतिहास और पुराण' अथवा 'इतिहास-पुराण', प्राचीन काल में जिनका बहुधा उल्लेख किया गया है, किसी वास्तविक ग्रन्थ का निर्देश नहीं करते। हमारे सामने वर्तमान इतिहास-काव्यों या पुराणों के बारे में तो यह और भी लागू नहीं होता। दूसरी ओर जब अथर्ववेद में[3] चारों वेदों के अलावा 'पुराण' की भी गणना की गई तब शायद निश्चित

---

१. पुरूरवा और उर्वशी, सरण्यू (दे० A. Blau, ZDMG, 62, 1908, 337 आ०), मुद्गल (दे० Pargiter, JRAS, 1910, पृ० 1328 आ०), वृषाकपी (दे० Pargiter, JRAS., 1911, 803 आ०) आदि की कथाएँ इसके उदाहरण हैं।

२. कौटिलीय अर्थशास्त्र (I, 5) इतिहास का लक्षण बताते हुए पुराण और इतिवृत्त को इतिहास के विषयों में गिनता है। इतिवृत्त का अर्थ 'ऐतिहासिक घटना' ही हो सकता है और पुराण का अर्थ सम्भवतः 'पुरातन आख्यानों से सम्बन्धित एवं पारम्परिक विषय' रहा होगा।

३. XI, 7, 24। अथर्व० V, 19, 9 में ऋषि नारद को इस ढंग से संबोधित किया गया है कि मानों किसी पुराण-संवाद से वह श्लोक लिया गया हो। मि० M. Bloomfield, SBE, 42, पृ० 435।

ग्रंथों की ओर संकेत रहा हो। सूत्र-साहित्य में ही आकर वास्तविक पुराणों के अस्तित्व का निश्चित प्रमाण मिलता है अर्थात् ऐसी रचनाओं का प्रमाण मिलता है जिनकी विषय-वस्तु वर्तमान पुराणों से करीब-करीब मिलती है। सुरक्षित धर्म-सूत्रों में प्राचीनतम माने जानेवाले गौतमधर्मसूत्र[1] में बतलाया गया है कि न्यायपूर्वक शासन करने के लिए राजा वेदों, धर्म-सूत्रों, वेदाङ्गों तथा "पुराणों" को अपना प्रमाण माने। यहाँ पर 'वेद' की तरह 'पुराण' शब्द भी साहित्य की एक विधा का ही वाचक है। इससे भी अधिक महत्त्व की बात है कि एक अन्य धर्म-सूत्र में—आपस्तम्बीय-धर्मसूत्रों में—न केवल 'पुराण' से वे उद्धरण ही दिए गए हैं बल्कि तीसरे उद्धरण को किसी 'भविष्यत् पुराण' से लिया बताया गया है। यह सही है कि यह तीसरा उद्धरण उक्त नाम से प्रचलित वर्तमान पुराण में नहीं मिलता और न ही पहले के दो उद्धरण शब्दशः हमारे पुराणों में प्राप्त होते हैं। पर हमारे पुराणों में उनसे मिलते-जुलते अंश अवश्य हैं।[2] पूर्वोक्त धर्म-सूत्रों को ईसापूर्व पाँचवीं या चौथी शताब्दी का मानने के लिए काफी दृढ़ आधार हैं अतः उस पुरातन काल में भी हमारे पुराणों से मिलते-जुलते ग्रंथ अवश्य वर्तमान रहे होंगे।[3] बहुत संभव है कि हमारे वर्तमान पुराण उन्हीं-जैसी किन्हीं प्राचीनतर रचनाओं के पुनः संस्करण हों। इन रचनाओं में धर्मोपदेश-परक सामग्री रही होगी जिसमें सृष्टि,

---

१. XI, 19। यही बात कई शताब्दियों बाद के बृहस्पति धर्मसूत्रों (SBE, Vol. 33, पृ० 280) और याज्ञवल्क्य, I, 3 में भी मिलती है। इनसे भी बाद के धर्मशास्त्रीय ग्रन्थों में धर्म के प्रमाणों में न केवल पुराणों की गिनती ही की गई है बल्कि अनेक स्थानों पर उनको उद्धृत भी किया गया है। मि० Jolly, Recht und Sitte (Grundriss, II, 8) पृ० 30 आ०। धर्मशास्त्री कुल्लूक (मनुस्मृति I, 1) "महाभारत से" श्लोक उद्धृत करते हैं: "पुराण, मनु का धर्मशास्त्र, वेदाङ्गों-सहित वेद और आयुर्वेद ये चार शब्द प्रमाण से सिद्ध हैं। इनका तर्क से खण्डन नहीं किया जा सकता।" महाभारत के वर्तमान संस्करणों में यह श्लोक मुझे नहीं मिल सका।

२. मि० G. Bühler, Ind. Ant.,25, 1896, पृ० 323 आ० तथा SBE., Vol. 2, द्वि० सं०, 1897, पृ० xxix आ०; Pargiter, Anc. Ind. Hist. Trad., पृ० 43 आ०।

३. इन उद्धरणों से यह निष्कर्ष नहीं निकलता कि उस समय के पुराणों में धर्म-सम्बन्धी अंश अलग रहे होंगे, जैसा कि आज के पुराणों में है। हम इतना ही मान सकते हैं कि प्राचीन ज्ञान के साथ ही अनेक प्रकार के प्राचीन विधि-संबंधी सिद्धान्त और कथन भी इन पुराणों में थे। मि० Pargiter, Anc. Ind. Hist., Trad., पृ० 48 आ०। कौटिल्य अर्थशास्त्र का कहना है कि कुमार्ग पर चलने वाले राजकुमारों को पुराणों के माध्यम से शिक्षा देनी चाहिए ((V, 6,) और राज्य के अधिकारियों में 'पौराणिक' की गणना भी अर्थशास्त्र (V, 3) में की

देवताओं, वीरों, ऋषियों तथा मानव जाति के प्राचीन पुरखों के चरित सुप्रसिद्ध राजवंशों का आरम्भ आदि विषयों से सम्बन्धित प्राचीन परम्पराओं का संग्रह किया गया रहा होगा।

पुराणों के साथ महाभारत के सम्बन्ध[1] से भी यह लक्षित है कि पुराण बड़े प्राचीन काल से चले आ रहे हैं और महाभारत को अन्तिम रूप दिए जाने से बहुत पहले ही इनका अवश्यमेव अस्तित्व था। हमारा महाभारत न केवल अपने-आप को पुराण कहता है बल्कि इसका प्रारम्भ भी पुराणों—जैसे ढंग से होता है। सूत लोमहर्ष के पुत्र उग्रश्रवा इसके वक्ता के रूप में आते हैं। इन उग्रश्रवा को 'पुराणों को अच्छी तरह जाननेवाला' कहा गया है और उनसे कथा कहने की प्रार्थना करते हुए शौनक कहते हैं: "आप के पिता ने एक बार सम्पूर्ण पुराण का अध्ययन किया;··· पुराण में देवताओं की कथाएँ तथा ऋषियों की वंश-परम्पराएँ कही गई हैं और हमने बहुत पहले आपके पिता से उन्हें सुना था।" महाभारत में बहुधा आख्यानों को "पुराण में ऐसा सुना जाता है" इन शब्दों के साथ उपस्थित किया गया है। "पुराणों को जानने वालों द्वारा गाई गई" गाथाओं और श्लोकों को, खासकर वंशावली सम्बन्धी श्लोकों को, उद्धृत किया गया है। गद्य में लिखित एक सृष्टि-वर्णन (महाभा० XII, 342) को "पुराण" कहा गया है। जनमेजय का नागयज्ञ "पुराण में" विहित है और पुराणज्ञ इसका अनुमोदन करते हैं।[2] "वायु द्वारा कथित" पुराण में विश्व के भूत और भविष्य कालों का वर्णन किया गया है तथा हरिवंश में न केवल किसी वायु-पुराण का उद्धरण ही दिया गया है बल्कि उसके उद्धरण शब्दशः वर्तमान वायुपुराण से मिलते भी हैं। अनेक आख्यान, कथाएँ तथा उपदेशात्मक अंश पुराणों तथा इतिहास-काव्यों में समान हैं। Lüders ने[3] सिद्ध कर दिया है कि महाभारत की अपेक्षा पद्मपुराण में ऋष्यश्रृंग के आख्यान का अपेक्षाकृत अधिक प्राचीन रूप मिलता है। महाभारत के एक श्लोक में, जो भले ही बहुत बाद में जोड़ा गया हो[4] फिर भी, अठारह पुराणों की चर्चा की गई है। इन बातों के आधार पर

गई है। पर इस बात को ई० पू० चौथी सदी में पुराणों के निश्चित अस्तित्व का प्रमाण मानने के बारे में मैं Pargiter (वही, पृ० 54 आ०) से सहमत नहीं हो सकता क्योंकि मैं कौटिलीय को तीसरी या चौथी सदी ईसवी की रचना मानता हूँ।

१. मि० A. Holtzmann, Das Mahābhārata, IV, पृ० 29 आ० तथा E.W. Hopkins, The Great Epic of India, पृ० 47 आ०।

२. महाभा० III, 191, 16। जैसा कि Hopkins ने (वही, पृ० 48 आ० में) बतलाया है वायुपुराण के वर्णन महाभारत में दिए वर्णनों से प्राचीन हैं।

३. NGGW., 1897, भाग I, पृ० 8 आ०।

४. XVIII, 6, 65। दूसरा श्लोक, XVIII, 5, 46, सारे संस्करणों में नहीं मिलता।

ऐसा मालूम होता है कि साहित्य की एक विधा के रूप में पुराण महाभारत को अन्तिम रूप दिए जाने के बहुत पहले से वर्तमान थे और वर्तमान पुराणों में बहुत कुछ ऐसा है जो वर्तमान महाभारत से काफी पुराना है।

महाभारत पुराणों से प्राचीन है और पुराण महाभारत से प्राचीन हैं यह कथन विरोधाभास-मात्र है। क्योंकि पुराण उसी तरह एक-रूपता से हीन हैं जैसे महाभारत तथा इन पुराणों में भी पूर्ववर्ती और परवर्ती रचनाएँ एक साथ मिलती हैं। जहाँ विभिन्न पुराण परस्पर तथा महाभारत करीब शब्दशः एक रूप हैं वहाँ अधिक सम्भव है कि ये अंश किसी समान प्राचीन स्रोत से लिए गए हों। यह कथन उचित नहीं लगता कि उनमें से एक रचना दूसरे पर आधारित है।[1] एक ओर तो यह प्राचीन स्रोत मौखिक परम्परा के रूप में था जिसमें वैदिक युग से चली आनेवाली ब्राह्मण-परम्परा तथा भाट-कविता की क्षत्रिय परम्परा समन्वित थी[2] तथा दूसरी ओर कुछ निश्चित ग्रन्थों के रूप में था जो वर्तमान पुराणों से शायद आकार में काफी छोटे थे। शायद शुरू से ही इनकी संख्या अठारह नहीं थी। विष्णु पुराण के एक उल्लेख से पता चलता है कि शायद केवल चार पुराण ही शुरू में थे।[3] कई विद्वान् मानते हैं[4] कि सारे पुराण किसी एक मूल पुराण से निकले हैं—पर यह बात वस्तुतः बहुत असम्भव मालूम पड़ती है। जैसे कोई एक मूल ब्राह्मण नहीं था जिससे सारे ब्राह्मण ग्रन्थ निकाले, या कोई एक मूल उपनिषद् नहीं था जिससे सारे उपनिषद् निकाले उसी प्रकार कोई एक मूल पुराण भी नहीं था। जैसा कि हमने ऊपर देखा है, जब प्राचीन ग्रन्थ यत्र-तत्र पुराण का उल्लेख करते हैं तो उनका मतलब होता है 'प्राचीन परम्परा' अथवा 'पुराना साहित्य'। यह बात वैसी ही है जैसे 'वेद', 'श्रुति' या 'स्मृति' शब्द का एकवचन में प्रयोग। हमारे पुराण स्वयं प्राचीन ग्रंथ नहीं हैं जिन्हें प्राचीन काल में भी पुराण कहा जाता था। यह बात इस तथ्य से अनुमानित होती है कि किसी भी पुराण की विषय-वस्तु उसमें उल्लिखित पुराण-लक्षणों से मेल नहीं खाती। इस निश्चय ही प्राचीन लक्षण

---

१. पर हम यह अस्वीकार नहीं करना चाहते कि छिट-फुट स्थानों पर एक पुराण ने दूसरे पुराण की नकल की हो।

२. पर मुझे सन्देह है कि Pargiter द्वारा स्वीकृत क्षत्रिय और ब्राह्मणों की परम्पराओं में निश्चित पार्थक्य की बात मानना कहाँ तक संगत है।

३. III, 6। इसके अनुसार सूत रोमहर्षण और उनके तीन शिष्यों ने चार मूल पुराण-संहिताएँ लिखीं। भागवतपुराण, XII, 7 भी यही कहता है। मि० Burnouf, Bhāgavata-Purāṇa, I, Preface, पृ० XXXVii आ०। पर इन आख्यानों पर अधिक भरोसा नहीं किया जा सकता।

४. A. M. T. Jackson, JBRAS., 21, 1905, Extra Number, पृ० 67 आ०; A. Blau, ZDMG., 62, 1908, 337; Pargiter, Anc. Ind. Hist. Trad. 35, आ०, 49 आ०।

के अनुसार[1] प्रत्येक पुराण में 'पाँच विशेषताएँ' होनी चाहिए (पंच लक्षण)। यथा—इसमें पाँच विषय होने चाहिए : (१) सर्ग, 'सृष्टि', (२) प्रतिसर्ग, 'पुनः सृष्टि' अर्थात् विश्व का समय-समय पर होनेवाला प्रलय और नये सिरे से निर्माण, (३) वंश, 'वंशावली' अर्थात् देवों और ऋषियों की वंशावली, (४) मन्वन्तराणि, एक मनु का काल अर्थात् ऐसा कालखंड जिसके आदि—पुरुष कोई एक मनु हैं, (५) वंशानुचरित, 'वंशों का इतिहास' अर्थात् पूर्व-कालिक तथा पर-कालिक वे वंश जिनके मूल-पुरुष सूर्य (सूर्यवंश) और चन्द्र (चन्द्रवंश) हैं। जो पुराण आज हमारे सामने हैं उनकी विषय-वस्तु में ये पाँच बातें आंशिक रूप में ही मिलती हैं। कुछ में 'पाँच लक्षणों' से कहीं अधिक बातें मिलती हैं तो कुछ अन्य इन बातों को शायद ही अपनाते हों क्योंकि उनमें विभिन्न प्रकार की अन्य बातें लिखी गई हैं। हमारे सारे पुराणों की खास बात यह है कि उन सब में साम्प्रदायिक विशेषता मिलती है अर्थात् वे किसी-न-किसी देवता—विष्णु या शिव—को समर्पित हैं। यह बात प्राचीन लक्षण में नहीं आती।[2] इनमें से अधिकांश कृतियों में वर्णाश्रम-धर्म के सामान्य आचार, विशेषतः श्राद्ध,[3] शिव या विष्णु के सम्मान में किए जाने वाले विशेष व्रत-उत्सव आदि के बारे में कई प्रकरण लिखे गए हैं। बहुधा सांख्य और योग दर्शनों से सम्बन्धित अंश भी आते हैं।

जिन पुराणों में प्राचीन रूप सुरक्षित हैं उनमें हमें 'पाँच लक्षणों' के अनुसार सृष्टि-विद्या तथा आदि युग के इतिहास से सम्बन्धित प्रकरण प्राप्त होते हैं। प्राचीन राजघरानों की वंशावली भी मिलती है—इसका आरम्भ इस वंश के पहले राजा से होता है जो सूर्य और चन्द्र से सम्बन्धित है और यह वंश-वर्णन महाभारत के महायुद्ध में भाग लेनेवाले वीरों तक चलता है। चूँकि हमारे पुराण व्यास द्वारा रचित माने गए हैं जो भारत-युद्ध के वीरों के समकालीन थे और कलि युग के आरम्भ में वर्तमान थे, इसलिए 'भूत-काल' का इतिहास पाण्डवों की मृत्यु के साथ ही या उसके थोड़े बाद

---

१. विशेष महत्त्व के पुराणों, प्राचीन भारतीय कोश—अमरकोश—तथा अन्य कोशों में यह मिलता है।

२. ब्रह्मवैवर्तपुराण में कहा गया है कि ये "पाँच लक्षण" केवल उपपुराणों के हैं। महापुराणों के दस लक्षण हैं जिनमें 'विष्णु तथा अन्य देवताओं की स्तुति' भी शामिल है। इसी तरह भागवत्त पुराण दो स्थानों पर (II, 10, 1 तथा XII, 7, 8 आ०) दस लक्षणों का उल्लेख करता है। (दे० E. Burnouf, The Bhāgavata, Purāṇa, t. I, Prêf., पृ० xlvi आ०)। पर ये लक्षण भी वर्तमान पुराणों के विषय से आंशिक रूप में ही मिलते हैं।

३. इस बात पर प्रायः पुराण परवर्ती धर्म-शास्त्रीय ग्रंथों से शब्दशः मिलते हैं। मि० W. Caland, Altindischer Ahnenkult, पृ० 68, 79, 112।

के काल के साथ समाप्त हो जाता है।[1] पर कई पुराणों में[2] भूतकाल के राज-वंशों के बाद भविष्यवाणी के रूप में भविष्य में आनेवाले राजाओं की भी सूचियाँ मिलती हैं[3]। कलियुग के राजाओं की इन सूचियों में अन्य राजाओं के साथ शिशुनाग, नन्द, मौर्य, शुंग, आन्ध्र, तथा गुप्त वंशों के राजाओं की भी सूची प्राप्त होती है जो इतिहास में सुप्रसिद्ध हैं। शुंगवंशियों में बिंबिसार और अजातशत्रु का भी उल्लेख है जो जैन और बौद्ध ग्रंथों में महावीर तथा गौतमबुद्ध (ई० पू० ६ठी से ५वीं शताब्दी के बीच) के समकालिक बताए गए हैं। मौर्य चन्द्रगुप्त, जो ३२२ ई० पू० में राजगद्दी पर बैठा, के साथ तो हम इतिहास के स्पष्ट आकाश में आ जाते हैं। यद्यपि कलियुग के इन राजाओं की सूचियाँ सावधानी और विवेक के साथ ही ऐतिहासिक स्रोतों के रूप में काम में लाई जा सकती हैं[4] तथापि Smith ने दिखा दिया है कि मौर्य वंश

---

१. जब कलियुग का प्रचलन हो गया तो भारतीयों ने इस युग के प्रारम्भ को किसी प्रमुख 'ऐतिहासिक' घटना से जोड़ना चाहा। इसके लिए उन्होंने भारत-युद्ध का उपयोग किया। पर ज्योतिषियों का एक सम्प्रदाय ऐसा था (वराहमिहिर, मृत्यु सं० ५८७ ई०, जिनके साथ इतिहासकार कल्हण भी सहमत हैं) जो कलियुग का आरम्भ महाभारत के युद्ध से नहीं मानता था। बल्कि वह सम्प्रदाय इस युद्ध को कलियुग के ६५३ वें वर्ष में लड़ा गया (२४४९ ई० पू०) मानता था। आइहोल शिलालेख में (६३४ ई०) 'भारत-युद्ध के बाद' का काल उल्लिखित है। मि० J. F. Fleet, JRAS., 1911, 675 आ०। भारत-युद्ध में लड़नेवाले वीरों को अपना पूर्व पुरुष मानने की चाह भारतीय राजाओं को उतनी ही थी जितनी ट्रोजन-युद्ध के वीरों के वंशधर के रूप में अपने को सिद्ध करने की चाह यूरोप के राजाओं में। मि० Rapson, Cambridge History, I, पृ० 307। भारत युद्ध का कलियुग के प्रारम्भ से सम्बन्ध की कल्पना के आधार पर Pargiter की तरह काल-क्रम सम्बन्धित निष्कर्ष निकालने की बात को मैं ऐतिहासिक आलोचना के एकदम विरुद्ध मानता हूँ (Anc. Ind. Hist. Trad, पृ० 175 आ०)।

२. मत्स्य, वायु, ब्रह्माण्ड, भविष्य, विष्णु, भागवत तथा गरुड़पुराण।

३. रामायण IV, 62, 3 में पुराण का अर्थ है "प्राचीन काल में की गई भविष्य वाणी।"

४. राजाओं की इन सूचियों की आलोचना कर Pargiter ने अपनी पुस्तक The Purāṇa Texts of the Dynasties of the Kali Age, लंदन, 1913 के द्वारा महत्त्वपूर्ण सेवा की है। संभव है कि इन भविष्यवाणियों के स्रोत प्राचीन लेख और इतिहास रहे हों; इसलिए पुराणों में हम भविष्यकथन वाले भविष्यत् काल के प्रयोग के स्थान पर 'अभवत्', 'स्मृत' जैसे प्रयोग भी बहुधा पाते हैं। (मि० Pargiter, वही, पृ० ix)। Pargiter इस प्रस्तुति

के बारे में (३२६-१८५ ई० पू०) विष्णुपुराण अधिक विश्वसनीय है, तथा आन्ध्रवंश के बारे में (जो २२५ ई० के बाद समाप्त हो गया) मत्स्य पुराण भी अधिक विश्वसनीय है[1]। वायुपुराण चन्द्रगुप्त प्रथम (करीब ३२०-३३० ई०) के काल की गुप्तों की राज्य-व्यवस्था का वर्णन करता है। राजाओं की सूचियों के अंत में ये पुराण आभीर, गर्दभ, शक, यवन, तुषार, हूण आदि शूद्र और म्लेच्छ राजाओं की वंशावलियाँ देते हैं जो पूर्वोक्त राजाओं के समकालीन थे और इनके बाद कलियुग के भावी पतन का वर्णन दिया गया है। ये भविष्यवाणियाँ हमें करीब ४९५ ई० में उत्तरी पंजाब पर किए गए बर्बरों के आक्रमण के चीनी यात्री सुंग युन[2] द्वारा दिए गए वर्णनों की याद दिलाती हैं। हूण सरदार तोरमाण (करीब ६०० ई०) तथा मिहिरकुल (करीब ५१५ ई०) "बर्बर लुटेरों से आकीर्ण राज्य पर यमराज की तरह" शासन करते थे, हजारों हत्यारे दिन-रात उन्हें घेरे रहते थे, वे स्त्रियों और बच्चों पर भी दया न करते—इन बातों के कल्हण[3] द्वारा किए गए वर्णनों की भी हमें इन भविष्यवाणियों को पढ़कर याद आती है। साथ ही ईसा की पहली शताब्दी के सुदूर प्राचीन काल में भी विदेशी राजवंश भारत में बहुधा शासन कर रहे थे। यह संभव है कि हमें कलियुग की विपत्तियों से सम्बन्धित भविष्यवाणियों का इन अनेक बर्बर आक्रमणों तथा विदेशी शासनों की गूँज के रूप में व्याख्यान करना पड़े। पर यह सामग्री इतनी अस्पष्ट है कि इसके आधार पर पुराणों की उत्पत्ति के काल के बारे में निरापद निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता। हम निरापद रूप से इतना ही निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि अपेक्षाकृत प्राचीन पुराण सातवीं शताब्दी के पहले अवश्य अस्तित्व में आ गए रहे होंगे क्योंकि न तो इसके बाद के राजवंशों का या न ही हर्ष जैसे प्रसिद्ध राजाओं का सूची में उल्लेख मिलता है।

एक सिद्धान्त के अनुसार अपेक्षाकृत प्राचीन पुराण करीब-करीब अपने वर्तमान रूप में ईसा की प्रारम्भिक शताब्दियों में ही लिखे जा चुके थे। पुराणों एव ईसा की प्रारम्भिक शताब्दियों में लिखे गए बौद्धों के महायान ग्रंथों में ध्यान देने योग्य समान-

---

के लिए अच्छा कारण देते हैं कि ये स्रोत मूलतः प्राकृत में लिखे गए थे। पर इससे हमें एकाएक यह निष्कर्ष नहीं निकाल लेना चाहिए कि पूरे पुराण प्राकृत से अनूदित हैं। Pargiter के मत का विरोध A. B. Keith ने, JRAS., 1914, 1021 आ० में तथा 1915, 328 आ० में किया है।

१. Early History, पृ० 11 आ०; ZDMG., 56, 1902, 654, 672 आ०; 57, 1903, 607 आ०। मि० D. R. Bhandarkar, JBRAS., 22, 155 आ०।

२. मि० S. Beal, Buddhist Records of the World, I, पृ० C; Smith, Early History, पृ० 328।

३. राजतरंगिणी, I, 289 आ०; मि० Smith, वही, 328 आ०, 333 आ०।

ताओं के आधार पर यह सिद्धान्त आधारित दिखाई देता है। ललितविस्तर न केवल अपने को "पुराण" ही कहता है बल्कि इसमें बहुत-सी बातें पुराणों-जैसी हैं भी। सद्धर्मपुण्डरीक, कारण्डव्यूह तथा महावस्तु के भी कुछ अंश न केवल अत्यधिक अतिशयोक्तियों के कारण बल्कि भक्ति की प्रशंसा की हद कर देने के कारण भी हमें साम्प्रदायिक पुराणों की याद दिलाते हैं। दिगम्बर जैन भी सातवीं शताब्दी के बाद से पुराण लिखने लगे थे।[1]

पश्चिमी विद्वानों की सामान्य धारणा थी कि हमारे पुराण संस्कृत साहित्य की अधुनातन रचनाएँ हैं जो अब से पहले के एक हजार वर्षों में उत्पन्न हुई हैं।[2] अब यह मत मान्य नहीं रहा। कारण यह है कि कवि बाण (करीब ६२५ई०) को पुराणों का पता था और अपने ऐतिहासिक उपन्यास हर्षचरित में उन्होंने बताया है कि कैसे उन्होंने अपने गाँव में वायुपुराण की हुई एक कथा में श्रोता के रूप में भाग लिया था। दार्शनिक कुमारिल (७०० ई० के लगभग) पुराण को धर्म का प्रमाण मानते थे। शंकर (नवीं शताब्दी) और रामानुज (बारहवीं शताब्दी) अपने दार्शनिक सिद्धान्तों के समर्थन में पुराणों को प्राचीन और पवित्र ग्रन्थों के रूप में उद्धृत करते हैं। एक महत्त्वपूर्ण बात यह भी है कि अरब का यात्री अलबेरूनी (करीब १०३०ई०) पुराणों से पूर्ण परिचित था और उसने अठारह पुराणों की सूची भी दी है। उसने न केवल आदित्य, वायु, मत्स्य और विष्णु पुराणों से उद्धरण ही दिए बल्कि एक परवर्ती पुराण विष्णुधर्मोत्तर का उसने बड़ी बारीकी से अध्ययन भी किया[3]। पुराण अति आधुनिक हैं—यह गलत

---

१. रविषण ने ६६० ई० में पद्मपुराण लिखा। दे० Pargiter को भी मार्कण्डेय पुराण के अनुवाद में पृ० xix पर।

२. H. H. Wilson ने सर्वप्रथम इस मत का प्रतिपादन किया और बहुधा उनके बाद इसको दुहराया गया। वे कलियुग के वर्णन में मुसलमानों के आक्रमण की छाया पाते हैं। Vans Kennedy (दे० Wilson, Works X, 257आ०) ने पहले ही पुराणों की अधिक प्राचीनता के मत का जोर देकर प्रतिपादन किया था।

३. मि० G. Bühler, Ind. Ant. 19, 1890, 382 आ०; 25, 1896, 328 आ; P. Deussen, System des Vedānta, Leipzig, 1883, पृ० 36; Smith, Early History पृ० 22 आ०। गुप्त लिपि में लिखी स्कन्दपुराण की एक हस्तलिखित पोथी को हरप्रसाद शास्त्री ने (JASB., 1893, पृ० 250) सातवीं शताब्दी के मध्य का माना है। ईसा-पूर्व पाचवीं शताब्दी के भूमिदान-पत्रों में जो श्लोक उद्धृत हैं वे Pargiter (JRAS., 1912, 248 आ०; Anc. Ind. Hist. Trad. पृ० 49) के अनुसार केवल पद्म, भविष्य और ब्रह्म पुराणों में मिलते हैं अतः उनका निष्कर्ष है, कि ये पुराण प्राचीनतर हैं। पर अधिक सम्भव यह है कि लेखों और पुराणों के ये

धारणा पूर्वप्रचलित उस विचार से सम्बन्धित है जिसके अनुसार विष्णु और शिव की पूजा का प्रतिपादन करनेवाला पुराणधर्म अपेक्षाकृत आधुनिक माना गया है। इधर की खोजों से सिद्ध हो गया है कि किसी भी हालत में विष्णु और शिव के भक्तों के संप्रदाय ईसा-पूर्व और शायद बुद्ध-पूर्व कालमें भी वर्तमान थे।[१]

स्वयं सनातनी हिन्दू पुराणों को अत्यधिक प्राचीन मानते हैं। उनका विश्वास है कि वेदों के संग्राहक तथा महाभारत के लेखक व्यास ही, जो कलियुग के आरम्भ में[२] वर्तमान थे, अठारह पुराणों के भी रचयिता थे। पर ये व्यास परमेश्वर विष्णु के अवतार थे और (विष्णुपुराण का कहना है कि) "दूसरा कौन महाभारत की रचना कर सकता था ?" उनके शिष्य सूत लोमहर्षण थे जिनको व्यासने पुराणों का अध्यापन किया[३]। इस प्रकार पुराणों की उत्पत्ति दैवी है। वेदान्ती शंकर देवताओं के वैयक्तिक अस्तित्व की सिद्धि के लिए इतिहास और पुराण का सहारा लेते हैं क्योंकि उनका कहना है कि ये इतिहास और पुराण केवल वेदों पर आधारित न होकर देवताओं से साक्षात् सम्बन्ध रखनेवाले व्यास-जैसे लोगों के प्रत्यक्ष पर भी आधारित हैं।[४] पर पुराणों की प्रामाणिकता वेदों की प्रामाणिकता-जैसी नहीं हो सकती। कुछ हद तक इतिहास और पुराण वेदों के पूरकमात्र हैं। इनका मुख्य उद्देश्य स्त्रियों तथा शूद्रों को, जिनको वेदाध्ययन का अधिकार नहीं था, शिक्षा देना था। एक प्राचीन श्लोक में कहा गया है : "इतिहास और पुराण के द्वारा वेदका उपबृंहण करना चाहिए : क्योंकि अल्पज्ञ मनुष्य

श्लोक प्राचीन धर्मशास्त्रों से लिए गए हों। मि० Keith, JRAS., 1912, 248 आ०, 756 तथा Fleet, वही, 1046 आ०। स्वयं Fleet का विश्वास है कि कुछ पुराणों में ग्रहों की गणना सूर्य से आरम्भ करके उसी क्रम में की गई है जिस क्रम में सप्ताह के दिन आते हैं। इस तथ्य से काल-क्रम के सम्बन्ध में अनुमान लगाया जा सकता है जो ६०० ई० के बाद की तरफ इशारा करता है। पर इस तरह के तर्क अलग अलग अध्यायों के बारे में निर्णायक हो सकते हैं, पूरे पुराण-ग्रंथ के बारे में नहीं।

१. मि० G. Bühler, Ep. Ind. II, 1894, पृ० 95। कडफिसीस द्वितीय (करीब ७८ ई०) इतना कट्टर शिव भक्त था कि उसने अपने सिक्कों पर शिव का चित्र खुदवाया था (V. A. Smith, वही, पृ० 318)।

२. ऐसा मत महाभारत X II, 349 और वेदान्त सूत्र III, 3, 32 पर शांकर भाष्य के अनुसार।

३. विष्णुपुराण III, 4 और 6। लोमहर्षण (या रोमहर्षण) इस नाम की व्युत्पत्ति वायुपुराण I, 16 में यों दी है—"जो अपने सुन्दर वर्णनों से आनन्द की सृष्टि करके श्रोताओं के रोएँ (लोम) खड़े (हर्षण) कर देता था।"

४. वेदान्त सूत्र, I, 3, 33। SBE. Vol. 34, पृ० 222। शंकर ने जोड़ा है कि "आज मनुष्य लोग देवताओं से बात नहीं करते इस तथ्य के कथमपि यह नहीं निकलता कि प्राचीन काल में भी ऐसी बात नहीं रही होगी।

से वेद को भय लगता है कि कहीं यह व्यक्ति उस पर प्रहार न कर बैठे।"[1] रामानुज का कहना है कि केवल वेद के द्वारा ही ब्रह्म का परम ज्ञान प्राप्त हो सकता है[2] और इतिहास तथा पुराण केवल पाप से मुक्ति दिलाते हैं। अतः पुराण दूसरी श्रेणी के धर्म-ग्रन्थ हैं। इसकी व्याख्या बड़ी आसान है। मूलतः पुराण कर्मकाण्डियों का साहित्य था ही नहीं। निस्सन्देह सूत लोग ही प्राचीनतम पुराण-कविता तथा इतिहास-काव्य के कर्ता और वाहक थे।[4] यह बात उस स्थिति से भी प्रमाणित होती है कि करीब सभी पुराणों में सूत लोमहर्षण या उनके पुत्र उग्रश्रवा "सौति" (सूतके पुत्र) प्रवक्ता हैं। यह निर्देश इतना अधिक है कि पुराणों में सूत और सौति शब्द व्यक्ति-वाचक संज्ञाएँ बन गए हैं। पर सूत ब्राह्मण नहीं थे और वेद से उनका कोई मतलब नहीं था।[5] हमें पता नहीं कि सूत-कविता की यह परम्परा कब समाप्त हुई पर तब भी यह साहित्य वेदज्ञ विद्वान् ब्राह्मणों के हाथमें न जाकर निम्न श्रेणी के उन पुरोहितों के हाथमें गया जो मन्दिरों और तीर्थों में रहा करते थे। इन अपेक्षाकृत अशिक्षित मन्दिर के पुजारियों ने अपने मन्दिर में पूजे जानेवाले देवताओं की स्तुति के उद्देश्य से इस साहित्य का उपयोग किया और बादमें उन मन्दिरों और तीर्थों की प्रशंसा के निमित्त भी इस साहित्य का उन्होंने उपयोग किया जिनकी वे देख-भाल किया करते थे और प्रायः उन्हीं के द्वारा वे धन कमाते थे।[6] इसके बावजूद

---

१. रामानुज (SBE., Vol. 48, पृ० 91) ने इस श्लोक को पुराणश्लोक के रूप में उद्धृत किया है। यह श्लोक वायुपुराण, I, 201; महाभारत, I, 1,267 तथा वासिष्ठ धर्मसूत्र 27, 6 में मिलता है।

२. SBE., Vol. 48, पृ० 338 आ०।

३. इसकी बड़ी स्पष्ट व्याख्या रामानुज ने (वेदान्त सूत्र II, 1, 3 पर) की है। वे कहते हैं कि वस्तुतः पुराण विधाता हिरण्यगर्भ द्वारा कहे गए हैं पर वे स्वयं हिरण्यगर्भ की तरह ही रजोगुण और तमोगुण से मुक्त नहीं हैं अतः उनमें भ्रान्ति सम्भव है।

४. वायु और पद्मपुराणों के अनुसार देवताओं, ऋषियों और प्रसिद्ध राजाओं की वंशावलियों को सुरक्षित रखना सूतों का काम है। मि० Pargiter, Anc. Ind. Hist. Trad., पृ० 15 आ०। इस तरह आज भी भाट लोग क्षत्रियों की वंशावलियाँ सुरक्षि रखते हैं; दे० C. V. Vaidya, History of Mediaeval Hindu India, II, पूना, 1924, पृ० 260 आ०।

५. वायुपुराण, I, 33 का करना है कि "सूत को वेदाध्ययन का अधिकार नहीं है।" भागवत पुराण, I, 4, 13 के अनुसार सूत "वेद को छोड़ कर बाकी के सारे साहित्य से" परिचित हैं। मि० E. Burnouf, La Bhāgavata-Purāṇa I, पृ० XXIX तथा l iii आ०।

६. मनुस्मृति III, 152 के अनुसार वैद्य तथा मांस का व्यापार करनेवालों की तरह मंदिर के पुरोहितों (देवलक) को भी यज्ञों में नहीं निमंत्रित किया जा

आज भी पुराणों की पवित्रता में हिन्दू लोग कितनी दृढ़ता से विश्वास करते हैं यह बात स्टाकहोम (१८८९) में हुए प्राच्यविदों के कांग्रेस में मणिलाल एन्० द्विवेदी के दिए गए भाषण से भली-भाँति जानी जा सकती है।[४] पाश्चात्य शिक्षा में शिक्षित होने के कारण उन्होंने नृतत्त्वविज्ञान और भूगर्भशास्त्र, Darwin और Haeckel, Spencer तथा Quatrefages की चर्चा की। पर इस चर्चा का उद्देश्य पुराणों की जीवन-सम्बन्धी दृष्टि और सृष्टि के सम्बन्ध में उनके मतों को वैज्ञानिक दृष्टि से सत्य सिद्ध करना था। द्विवेदी को उनमें सिर्फ परम सत्य तथा गूढ़तम ज्ञान दिखाई देता है बशर्ते कि उनको ठीक-ठीक प्रतीकात्मक रूप से समझा जाय।

इतिहासज्ञों तथा प्राचीनताके अन्वेषकोंके लिए पुराण उनकी वंशावलियोंके कारण राजनीतिक इतिहास की दृष्टिसे बड़े महत्व के हैं भले ही उनका उपयोग बड़ी सावधानी तथा विवेक के साथ ही किया जा सकता हो।[५] धर्म के इतिहास की दृष्टि से तो उनका मूल्य आँका ही नहीं जा सकता और सिर्फ इस दृष्टि से भी उनका ठीक अध्ययन होना चाहिए जो कि आज तक नहीं हो सका है। ये पुराण हिन्दू धर्म के सभी अंगों और स्तरों का—पुराण-कथाओं, मूर्तिपूजा, सेश्वरवाद और एकेश्वरवाद, ईश्वर-भक्ति, दर्शन आर पूर्वाग्रह, उत्सव आर त्योहार, तथा आचार का—किसी अन्य ग्रन्थ की अपेक्षा हमें कहीं अधिक गहन ज्ञान प्रदान करते हैं।[६] दूसरी ओर साहित्यिक कृति के रूप मे वे सुन्दर भी नही कहे जा सकते। हर माने में वे आकार तथा अनुपात पर ध्यान नहीं देते। भाषा के प्रयाग में असावधानी है और श्लोकों की निम्नकोटि जिसमें छन्दके अनुरोध से प्रायः व्याकरण को तिलाञ्जलि दे दी गई है— ये ऐसी बातें हैं जो इनमें प्राप्त होती हैं और विषयवस्तु के घपले तथा सीमाहीन अतिशयता के कारण हैं। अतिशयता के कुछ उदाहरण देखिए। ऋग्वेद में तो उर्वशी पुरूरवा के साथ चार वर्षों तक रही बताई गई है पर विष्णुपुराण के अनुसार दोनों प्रेमी ६१००० वर्षों तक

सकता। इतिहासकार कल्हण इन पुरोहितों से खुले रूप में घृणा करता है। (मि० M. A. Stein, Kalhaṇa's Rājataraṅgiṇī··अनूदित··Westminister, 1900, Vol, I Introduction, पृ० 19 आ०।)इतिहास-काव्यों तथा पुराणों का पाठ आज विशेष पाठक या कथक कहते हैं जो जाति से ब्राह्मण होते हैं।

१. OC, VIII, Stockholm, II, पृ० 199 आ०।

२. इतिहास के स्रोत के रूप में इन पर इतना विश्वास नहीं किया जा सकता जितना F. E. Pargiter उनपर करते हैं (JRAS., 1914, 267 आ०; Bhandarkar Com. Vol., पृ० 107 आ० तथा Anc. Ind. Hist. Trad. पृ० 77 आ०, 119 आ०।)

३. मि० Pargiter, ERE., X. पृ० 451 आ० तथा J. N. Farquhar, Outline of the Religious Literature of India, पृ० 136 आ०।

आनन्द मनाते रहे। प्राचीन पुराणों में सिर्फ सात नरक माने गए हैं पर भागवत पुराण "सैकड़ों-हजारों" नरकों की बात बतलाता है और गरुड़ पुराण नरकों की संख्या ८,४००,०००[१] बतलाता है। यह एक सामान्य नियम माना जा सकता है कि जो पुराण जितना बादका है उसमें अतिशयता उतनी ही सीमाहीन है। यह बात भी इस ओर इशारा करती है कि पुराणों की परम्परा चलानेवाले लोग निम्न श्रेणी के साहित्यकार थे जो हीन कोटि के अशिक्षित पुरोहित वर्ग से संबंधित थे। फिर भी राजाओं की अनेक प्राचीन कथाएँ, अनुवंश श्लोक तथा गाथाएँ मूल सूतकविता से ज्यों-की-त्यों वर्तमान ग्रन्थों में ले ली गई हैं। सौभाग्य से हर कहीं से विना चुनाव के विषयों को एकत्र करनेवाले पुराणों के संग्रहकर्ताओं ने सुन्दर वस्तुओं का भी निरादर नहीं किया और अपने ग्रन्थों में आकार तथा विषयों के कारण उपनिषदों की याद दिलानेवाले अनेक संवादों तथा प्राचीन मुनि-कविता से ली गई महत्त्वपूर्ण अनेक कथाओं को भी स्थान दिया। इस तरह महत्त्वपूर्ण पुराणों तथा उनकी विषय-वस्तु के निम्नलिखित संक्षिप्त सर्वेक्षण से स्पष्ट हो जाएगा कि पुराण-साहित्य की मरुभूमि में भी हरे-भरे प्रदेशों की कमी नहीं है।

पुराण–साहित्यका सर्वेक्षण

वर्तमान पुराणों में ही "व्यास द्वारा निर्मित" पुराणों की संख्या एकमत से अठारह मानी गई है। इन पुराणों के नामों के बारे में भी प्रायः पूर्ण ऐकमत्य है। बहुत से पुराण तो पुराणों की गणना के क्रम में भी एकमत हैं, यथा—

१. ब्राह्म	१०. ब्रह्मवैवर्त
२. पाद्म	११. लिङ्ग
३. वैष्णव	१२. वाराह
४. शैव या वायवीय	१३. स्कान्द
५. भागवत	१४. वामन
६. नारदीय	१५. कौर्म
७. मार्कण्डेय	१६. मात्स्य
८. आग्नेय	१७. गारुड
९. भविष्य या भविष्यत्	१८. ब्रह्माण्ड[२]

१. Scherman, Visionslitteratur, पृ० 32 आ०।

२. इस प्रकार की सूची विष्णु० III, 6; भागवत० XII, 13 (थोड़े-से परिवर्तित रूप में XII, 7, 23 आ० में भी); पद्म० I, 62; वराह० 112; मत्स्य० 53; अग्नि० 272 तथा मार्कण्डेय पुराण के अन्त में दी हुई है। पद्म० IV, III, VI, 219 और कूर्म I, 1 में सिर्फ इतना भेद है कि वे नं० ९ के बाद नं० ६ को रखते हैं। पद्म० IV, iii १२–१६ के स्थान पर १६, १३, १२, १५, १४इस क्रम से रखता है। पद्म० V1, 263 में १३–१७ के स्थान पर १७, १३, १४, १५, १६ यह क्रम है। सौर पुराण, IX, 6 आ० में क्रम यों है: ५, ८,

यह विचित्र बात है कि अठारह पुराणों की यह सूची हरेक पुराण में दी हुई है मानों कि कोई पुराण पहले और कोई बाद में नहो लिखा गया बल्कि जब अलग-अलग पुराण रचे गए उस समय भी सारे-के-सारे पुराण पहले से ही वर्तमान थे। पुराणों के श्रवण और पठन से होनेवाले ऐहलौकिक तथा पारलौकिक फलों का सार पुराणों में बहुत बढ़ा-चढ़ाकर वर्णन किया गया है। कुछ स्थानों पर[१] अनेक पुराणों का परिमाण (श्लोक-संख्या) बतलाया गया है पर जो पाठ हमारे सामने हैं वे अधिकतर छोटे हैं। पद्मपुराण (I, 62) के एक प्रकरण में विष्णु के शरीर के अंगों के रूप में अठारह पुराणों की गिनती की गई है (ब्रह्मपुराण उनका सिर है, पद्मपुराण हृदय है आदि आदि) और इस प्रकार सभी पर धर्म-ग्रन्थ की मुहर लगा दी गई है। पर उसी ग्रन्थ के एक अन्य भाग में वैष्णवधर्म की दृष्टि से तीन गुणों के आधार पर पुराणों का वर्गीकरण किया गया है। इस वर्गीकरण के अनुसार केवल वैष्णव पुराणों (विष्णु, नारद, भागवत, गरुड, पद्म और वाराह) में सत्त्व गुण हैं और वे मोक्ष की ओर ले जाते हैं; ब्रह्मा-संबंधी पुराणों (ब्रह्माण्ड, ब्रह्मवैवर्त, मार्कण्डेय, भविष्य, वामन, और ब्रह्म) में रजोगुण है और उनसे केवल स्वर्ग प्राप्त होता है; शिव की स्तुति करनेवाले पुराण (मत्स्य, कूर्म, लिङ्ग, शिव, स्कन्द और अग्नि) तमोगुण से युक्त माने गए हैं और वे

७, ९, ६ जो ५–९ के स्थान पर है। लिङ्ग पुराण (दे० Aufrecht, Bodl. Cat; पृ० 44) में क्रम यों है : १–५, ९, ६, ७, ८, १०, ११, १२, १४–१७, १३, १८। वायु पुराण, 104, 1 आ०, में क्रम बिलकुल भिन्न है : मत्स्य, भविष्य, मार्कण्डेय, ब्रह्मवैवर्त, ब्रह्माण्ड, भागवत, ब्रह्म, वामन, आदिक, अनिल (वायु), नारदीय, वैनतेय (गरुड), पाद्म, कूर्म, शौकर (सौकर ? वाराह), स्कान्द। यद्यपि "अठारह पुराण कहे गये हैं" तथापि १६ की ही गणना है। शायद एक श्लोक छूट गया है। पुराण-संहिता-सिद्धान्तसार में ऐसी ही सूची के लिए दे० F.R. Gambier-Parry, Catalogue of Sanskrit MSS. purchased for the Max Müller Memorial Fund, Oxford, 1922, पृ० 43। देवीभागवत पुराण की सूची (Burnouf द्वारा Bhāgavata-Pur., Préface, I, पृ० lxxxvivi में उद्धृत) भी मत्स्य से शुरू होती है पर है यह इससे भिन्न। अलबेरूनी (Sachau, I, पृ० 130) ने अठारह पुराणों की एक सूची दी है जो उसे विष्णु पुराण से पढ़कर सुनाई गई थी। यह हमारी सूची से मेल खाती है और एक दूसरी सूची जो उसे लिखाई गयी थी काफी भिन्न है। साधारण सूची से एकदम भिन्न प्रकार की सूची बृहद्धर्मपुराण, 25, 18 आ० में दी हुई है।

१. मत्स्य० 53, 13 आ०; भागवत० XII, 13; वायु० 104, 1-10; अग्नि० 272।

२. पद्मपुराण, उत्तराध्याय, 263, 81 आ० में।

३. ऊपर देखें।

नरक की ओर ले जाते हैं। हमारे वर्तमान पुराण इस कृत्रिम वर्गीकरण से आंशिक रूप में ही मेल खाते हैं।[१] ये सारी बातें इस तथ्यकी ही पुष्टि करती हैं कि कोई पुराण अपने मूल रूप में हमारे सामने नहीं आया।

महापुराण कहे जाने वाले इन अठारह पुराणों के अलावा कुछ पुराणों में तथा-कथित उपपुराणों की भी चर्चा आई है और कहीं-कहीं उनकी संख्या भी अठारह दी गई है[२]। पर जहाँ महापुराणों की गणना में उनके नामों के बारे में प्रायः पूर्ण ऐकमत्य है वहीं उपपुराणों के नामों के बारे में ऐसी बात नहीं मिलती। स्पष्ट ही अठारह पुराणों के अस्तित्व के बारे में एक निश्चित परम्परा थी पर कोई भी आधुनिक धार्मिक ग्रंथ उपपुराण कहा जा सकता है—यदि उसका लेखक अपनी कृति को अठारह पुराणों में से किसी एक का अंग घोषित नहीं करना चाहता। तीर्थोंके माहात्म्यों के संबंध में तो खास कर यह बात लागू होती है[३]। पर अनेक स्तोत्र (विष्णु या शिव के, पर अन्य देवताओं के भी), कल्प तथा आख्यान या उपाख्यान अपने-आपको किसी प्राचीन पुराण का ही अंग बताते हैं।

अब हम अठारह पुराणों के विषय का संक्षिप्त सारांश दे रहे हैं। जिनमें से बहुत महत्त्व के पुराणों की ही हम थोड़ी विशेष चर्चा यहाँ पर पाएँगे।

१. ब्राह्म या ब्रह्मपुराण[४]

सारी सूचियों में इसे पहला स्थान दिया गया है और इसलिए कभी-कभी इसे "आदिपुराण" कहा जाता है[५]। भूमिका में कहा गया है कि नैमिषारण्य में ऋषियों के

---

४. उदाहरणार्थ तामस कहकर निन्दित किए गए मत्स्य पुराण में हमारे सामने शैव और वैष्णव दोनों प्रकार के प्रकरण हैं। ब्रह्मवैवर्त ब्रह्मा की बजाय कृष्ण-परक है; ब्रह्मपुराण सूर्य, विष्णु और शिव की पूजा प्रतिपादित करता है; मार्कण्डेय और भविष्य तो साम्प्रदायिक हैं ही नहीं आदि। पुराणों का उक्त वर्गीकरण यह भी बतलाता है कि हम "अठारह पुराणों की एक संहिता" की बात शायद ही सोच पाएँ (दे० Farquhar, Outline, पृ० 225) क्योंकि पुराण एक धर्म के ग्रंथ नहीं हैं; न तो वे किसी प्रकार एक-रूप हैं। पुराणों की धार्मिक दृष्टि के लिए मि० Pargiter, ERE. X, 451 आ०।

५. पर मत्स्यपुराण में केवल चार उपपुराण निर्दिष्ट हैं पर ब्रह्मवैवर्त में बिना नाम गिनाए अठारह उपपुराणों के अस्तित्व की बात कही गयी है। कूर्मपुराण में उनकी गिनती भी की गयी है।

६. पवित्र ग्रन्थों, क्रियाओं तथा उत्सवों के माहात्म्य अधिक नहीं हैं।

७. अर्थात् ब्रह्मा का पुराण; अन्य सारे दुहरे नाम जैसे वैष्णव-विष्णुपुराण, आदि की इसी तरह व्याख्या है। ब्रह्मपुराण आनन्दाश्रम संस्कृतसिरीज सं० २८ में प्रकाशित है।

८. अन्य पुराण भी हैं जो अपने-आपको "आदिपुराण" कहते हैं। यथा Egge-

पास सूत लोमहर्षण आए और उन्होंने सूत से विश्व की उत्पत्ति और प्रलय की कथा कहने की प्रार्थना की। इस पर दक्ष प्रजापति को ब्रह्मा द्वारा सुनाए गए पुराण को सुनाने के लिए सूत तैयार हो गए। इसके बाद विश्व की सृष्टि, आदिपुरुष मनु तथा उनकी संतान की उत्पत्ति, देवताओं, दैत्यों तथा अन्य प्राणियों का प्रादुर्भाव, सूर्य एवं चन्द्रवंशों के राजाओं का चरित तथा पृथ्वी के और इसके अनेक खंड, नरक और स्वर्ग आदि के वर्णन आते हैं जो न्यूनाधिक रूप से सारे पुराणों में पाए जाते हैं। इस पुराण का बहुत बड़ा भाग तीर्थों के माहात्म्य का वर्णन करता है। ओण्ड्रदेश या उत्कल (आधुनिक उड़ीसा) तथा इसके पवित्र तीर्थों एवं मन्दिरों का वर्णन बड़े विस्तार से किया गया है। चूँकि उत्कल की पवित्रता सूर्य-पूजा के कारण है इसलिए यहाँ पर आदित्यों (प्रकाशके देवताओं) और सूर्य की उत्पत्ति की कथा भी वर्णित है। उत्कल में शिव के द्वारा पावन किए गए एक जंगल के वर्णनके प्रसंग में हिमालय की पुत्री उमा की उत्पत्ति की, शिव के साथ उनके विवाह की तथा अन्य शिव-संबंधी कथाएँ वर्णित हैं। शिवस्तुति का एक अध्याय (३७वाँ अध्याय) भी यहाँ जोड़ा गया है। फिर भी यह पुराण शैव नहीं है क्योंकि मार्कण्डेयाख्यान (अध्याय ५२ आ०) में विष्णु-संबंधी अनेक कथाएँ, पूजाएँ और विष्णु-सम्प्रदाय से सम्बद्ध स्तोत्र दिए गए हैं। यहाँ भी (अध्याय १७८) कण्डु[1] ऋषि की एक मनोहर कथा लिखी गई है जिसके अनुसार वे ऋषि एक अप्सरा के साथ सैकड़ों वर्षों तक प्रेम का मधुर आनन्द लेते रहे। अंत में वे प्रेम के मोह से जागे और उनको ऐसा लगा कि एक दिन के कुछ घंटे ही अभी बीते हैं। एक बड़ा अंश (अध्या० १८०-२१२) कृष्णसे सम्बन्धित है। कृष्णकी बाल्यावस्था, साहसपूर्ण और वीरतापूर्ण कार्यों की सुप्रसिद्ध कथाएँ वर्णित हैं जो शब्दशः विष्णुपुराण से मेल खाती हैं। इस अंश की भूमिका में विष्णु के अवतारों का उल्लेख आया है और इनका २१३ वें अध्याय में विस्तार से वर्णन है। अंत के अध्यायों में श्राद्ध के नियम, धार्मिक जीवन के नियम, वर्णाश्रम धर्म, स्वर्ग के भोग, नरक के दुःख तथा विष्णु की पूजासे होनेवाले पुण्य वर्णित हैं। इसके बाद विश्व के युगों और प्रलयके सम्बन्ध में कुछ अध्याय दिए गए हैं। अंत में सांख्य और योग की व्याख्या तथा मोक्षमार्ग बतलाया गया है।

गंगा के किनारे के पवित्र तीर्थों का माहात्म्य, गौतमीमाहात्म्य, (अध्याय ७०-

---

ling, Ind. Off. Cat., VI, पृ० 1184 आ० में एक उपपुराण का वर्णन करते हैं जो अपने को "आदिपुराण" कहता है और इसमें राधा-कृष्ण की स्तुति है।

१. Lassen के Anthologia Sanscritica में छपा। जर्मन अनुवाद Schlegel Indische Bibliothek, I, 1822, पृ० 257 आ० में तथा फ्रेंच अनुवाद A. L. Chezy ने JAI., 1822, पृ० 1 आ० में किया। यह कथा विष्णुपुराण, I, 15 में भी मिलती है।

१७५) हस्तलिखित पोथियों में बहुधा अलग ग्रन्थ के रूप में मिलता है। ब्रह्मपुराण का उत्तरखंड (अंतिम भाग) किसी-किसी पोथी में मिलता है जो बलजा नदी (मारवाड़-की बनास नदी ?) के माहात्म्य के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है।

ब्रह्मपुराण के रूपमें जो ग्रंथ हमारे सामने है उसका एक छोटा-सा अंश ही प्राचीन और सच्चा पुराण कहा जा सकता है। ईसा की सातवीं शताब्दी के करीब मध्य में ह्वेन सांग को उत्कल में सौ से अधिक बौद्ध विहार मिले थे जिनमें हजारों भिक्षु रहा करते थे। पर उसको उड़ीसा में पचास देव-मंदिर भी मिले थे। उड़ीसा में शैव धर्म छठी शताब्दी में आया और वैष्णव धर्म उसके भी बाद[1]। चूँकि कोणार्क का सूर्य-मन्दिर, जिसकी चर्चा इस पुराणमें आई है, १२४१ ई० के पहले नहीं बना था इसलिए उड़ीसा के तीर्थों से संबंधित इस पुराण का एक बड़ा प्रकरण तेरहवीं शताब्दी के पहले का नहीं हो सकता[2]। पर यह संभव है कि ये माहात्म्य मूल पुराण के अंश न हों।

सौर पुराण को[3] ब्रह्म पुराण का परिशिष्ट या खिल कहा गया है। पर हेमाद्रि ने तेरहवीं शताब्दी में ही इसको प्रमाण के रूप में उद्धृत किया है। इससे सिद्ध होता है कि कोई प्राचीनतर ब्रह्मपुराण रहा होगा। उपपुराणों की सूची में सौरपुराण की गिनती है जो शैवधर्म और खासकर लिङ्गायत सम्प्रदाय के ज्ञान के लिए बड़ा महत्व-पूर्ण है। इसका मुख्य उद्देश्य शिव की स्तुति है। पर अनेक स्थलों पर पुराण को प्रकाशित करने वाले सूर्यदेव को शिव से अभिन्न माना गया है या फिर सूर्यदेव शिव-पूजा करने की संस्तुति करते हैं। शिवपूजा से होनेवाले फलों का वर्णन बहुत बढ़ा-चढ़ा कर किया गया है, शिव और उनके लिंग की पूजा-विधि दी गई है और अनेक शिव संबंधी कथाएँ कही गई हैं। कुछ अध्यायों में वंशावलियाँ भी हैं: यदुवंश के वर्णन के प्रसंग में (अध्याय ३१) उर्वशी के आख्यान का एक रूप दिया गया है[4]।

---

१. दे० Thr Watters, On Yuan Chwangś Travels in India (लंदन, 1905), II, पृ० 193; W. Crooke, ERE, Vol. 9, पृ० 566।

२. दे० Wilson, Works, III, पृ० 18।

३. आनंदाश्रम सं० सि० सं० १८ में, सन् १८८९ में प्रकाशित। इस पुराण का विश्लेषण, उद्धरणों और आंशिक अनुवाद के साथ, W. Jahn ने Das Saurapurāṇam, Strassburg, 1908 में दिया है। कभी-कभी सौर-पुराण को आदित्य पुराण भी कहा जाता है। पर एक दूसरा आदित्य पुराण भी है जो सौर पुराण से भिन्न है पर उससे सम्बन्धित भी है। दे० Jahn, वही, ix, xiv तथा Festschrift Kuhn, पृ० 308 ब्रह्मपुराणको भी कभी-कभी सौरपुराण कहा जाता है। मि० Eggeling, Ind. Off. Cat., VoI, पृ० 1185 आ०।

४. दे० P. E. Povolini, GSAI., 21, 1908, पृ० 291 आ० तथा Jahn, वही, पृ० 81।

दार्शनिक दृष्टि से यह पुराण आस्तिक दर्शनों के बीच का मार्ग अपनाता है। एक ओर तो वेदान्त के अनुसार शिव को आत्मा कहा गया है और दूसरी ओर सांख्य की तरह प्रकृति से सृष्टि की उत्पत्ति बतलाई गई है। तीन अध्याय (३८-४०) मध्व दर्शन के खंडन के लिए लिखे गए हैं जो काल-क्रम की दृष्टि से महत्वपूर्ण है[1]।

२. पाद्म या पद्मपुराण

इस बृहदाकार ग्रंथ के दो रूप मिलते हैं[2]। छपा संस्करण[3], जिसमें छः खंड हैं—आदि, भूमि, ब्रह्म, पाताल, सृष्टि तथा उत्तर—बाद का रूप है। प्राचीन रूप बंगाली हस्तलिखित पोथियों में ही प्राप्त है और उसमें निम्नलिखित पाँच खंड हैं[4]।

प्रथम सृष्टिखंड का आरंभ यथाप्रचलित भूमिका से होता है:[5] लोमहर्षण अपने

---

१. A. Barth को Mélanges Charles de Harlez, Leyden, 1896, पृ० 12 आ० में। चूँकि मध्व का जीवन-काल ११९७-१२७६ था और हेमाद्रि ने १२६० और १३०९ के बीच अपना ग्रंथ लिखा इसलिए सौरपुराण करीब १२३० से १२५० के बीच लिखा गया होगा। पर ३८—४० अध्याय सारी हस्त लिखित पोथियों में नहीं मिलते (दे० संस्करण, पृ० ११२, टिप्पणी तथा Eggeling, Ind. Off. Cat. VI, पृ० 1188। बहुत सम्भव है कि ये बाद में जोड़े गए हों और रचना पहले की हो। मि० Jahn, वही, पृ० xiv।

२. पुराण में ही (V, 1, 54; VI, 219, 28) तथा सूचियों में श्लोकों की संख्या ५५,००० दी हुई है। पर Wilson के अनुसार बंगाली रूप में ४५,००० तथा छपे संस्करण में ४८,४५२ श्लोक हैं।

३. आनन्दाश्रम सं० सि० सं० २८ में सन् १८९४ में बी० एन० माण्डलिक द्वारा चार भागों में प्रकाशित इस संस्करण में भूमिखण्ड के अन्त में एक श्लोक है जिसमें बंगाली पोथियों की तरह उसी क्रम में उन्हीं नामों से खण्डों की गिनती की गयी है। इस प्रकार छपा संस्करण स्वयं यह सिद्ध कर देता है कि बंगाली रूप पहले का है। मि० Lüders, NGGW., 1897, 1, पृ० 81 सृष्टि-खण्ड, 1, 53-60 में पद्मपुराण में पाँच पर्व बताए गए हैं: (१) पौष्करम्, जिसमें सृष्टि का वर्णन है, (२) तीर्थ पर्व, पर्वतों, द्वीपों और समुद्र से सम्बद्ध (३) प्रभूत यज्ञ-दक्षिणा देनेवाले राजाओं से सम्बन्धित पर्व, (४) राजवंशों की वंशवली का पर्व तथा (५) मोक्षपर्व। मूलतः यह भी बंगाली रूप से मिलता है।

४. बंगाली रूप का मेरा वर्णन आक्सफोर्ड की पोथियों पर आधारित है जिन्हें मैंने १८९८ में देखा था तथा Aufrecht, Bodl. Cat. I, पृ० 11 आ० तथा Wilson, Works, III, पृ० 21 आ०; VI, पृ० XXIX आ० पर भी।

५. आनन्दाश्रम संस्करण में भी सृष्टिखंड ऐसे शुरू होता है कि मानों यह पुराण का आरम्भ हो पर यहाँ इसमें ८२ अध्याय हैं जब कि बंगाली रूप में इसमें सिर्फ ४६ (Wilson) या ४५ (Aufrecht) हैं।

पुत्र सूत उग्रश्रवा को नैमिषारण्य में एकत्र ऋषियों को पुराण सुनाने के लिए भेजते हैं। शौनक की प्रार्थना पर वे ऋषियों को पद्मपुराण सुनाते हैं। इसका नाम पद्म-पुराण इसलिए पड़ा कि इसमें सृष्टि के आरंभ में कमल (पद्म) से ब्रह्मा की उत्पत्ति का प्रथम वर्णन है। इसके बाद सूत सृष्टि का उस तरह वर्णन करते हैं जैसा उन्होंने ब्रह्मा के पुत्र पुलस्त्य से सुना था। अन्य पुराणों की तरह यहाँ भी सृष्टि-संबंधी वर्णन लिखे गए हैं। पर इस खंड में विष्णु को प्रथम कारण न मानकर परब्रह्म को ही ब्रह्मा के रूप में प्रथम कारण माना गया है। फिर भी यह खंड प्रकृत्या वैष्णव है और इसमें विष्णु की स्तुति करने वाले आख्यान लिखे गए हैं। सृष्टि के सामान्य वर्णन के बाद सूर्यवंश का वर्णन है। इसी के बीच में पितरों तथा उनके श्राद्ध से संबंधित एक अंश भी जोड़ा गया है[1]। कृष्ण-पर्यन्त चन्द्रवंश भी वर्णित है। देवासुर-संग्राम के वर्णन के बाद एक अध्याय ऐसा आता है जो धर्म के इतिहास की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है[2]। इससे हम एक छोटा अंश यहाँ उद्धृत करते हैं।

पहले असुरों ने देवताओं को हरा दिया। पर देवताओं के गुरु बृहस्पति ने अंत में निम्नलिखित तरीके से देवताओं को विजय दिलाई। असुरों के गुरु शुक्र का वेष बनाकर बृहस्पति असुरों के पास गए और नास्तिकतापूर्ण बातें करके उन्होंने वेदों से असुरों की श्रद्धा हटा दी। उन्होंने असुरों से कहा कि वेद तथा शैव एवं वैष्णव सिद्धान्त हिंसा से भरे हैं और विवाहित आचार्यों ने उनका प्रतिपादन किया है। तब फिर भला उनमें अच्छाई कैसे हो सकती है? अर्धनारीश्वर, प्रेतोंसे घिरे और मुर्दों की माला धारण करनेवाले[3] शिव भला कैसे मुक्तिमार्ग पर चल सकते हैं? हिंसा में रत विष्णु को कैसे मोक्ष मिल सकता है? यदि वृक्षों को काट कर समिधा बनाना, यज्ञीय पशुओं को मारना या मरवाना मोक्ष का मार्ग है तो फिर नरक का कौन सा मार्ग होगा? मैथुन के द्वारा या मिट्टी या भस्म लगाकर मोक्ष कैसे मिल सकता है? सोम ने बृहस्पति की पत्नी तारा के साथ संभोग किया। तारा से उत्पन्न बुध ने उसी के साथ बलात्कार किया। महर्षि गौतम की पत्नी अहल्या के साथ इन्द्र ने व्यभिचार किया। इस पर असुरों ने उनसे यह बताने की प्रार्थना की कि वे किस देवता की शरण में जायँ। बृहस्पति सोच में पड़ गए कि किस तरह असुरों को धर्महीन किया जाय। उनकी सहायता को विष्णु आए। विष्णु ने दो व्यक्ति बनाए : एक दिगंबर जैन साधु और एक रक्ताम्बर बौद्ध भिक्षु। उन्होंने असुरों को जैन और बौद्ध सिद्धान्तों का उप-देश दिया। इस प्रकार जब असुरों ने अपना प्राचीन ब्राह्मणधर्म छोड़ दिया तो इन्द्र को उनका राज्य वापस मिल गया।

---

१. अध्याय ९–११, आनन्दा० संस्क०।

२. V, 13, 316 आ० आनन्दा० संस्क०। मि० विष्णुपुराण, III, 17, 14-18, 33।

३. शिव का एक रूप आधी नारी से युक्त भी है। मनुष्यों के मुण्डों की माला उनका आभूषण और भूतगण उनके परिचर हैं।

इस खंड का एक मुख्य भाग पुष्कर तालाब के बारे में है (जो अजमेर में पोखर नाम से प्रसिद्ध है)[१]। यह ब्रह्मा के कारण पवित्र है और तीर्थ के रूप में उसकी स्तुति की गई है। पुष्कर की स्तुति में अनेक आख्यान दिए गए हैं जिनमें से कई तो विभिन्न प्रसंगों में अन्य पुराणों में भी मिलते हैं। यहाँ पर दुर्गा देवी के सम्मान में कई व्रत और उत्सव भी बताए गए हैं। इसके बाद फिर सृष्टि का प्रसंग चालू होता है। इस खंड की समाप्ति असुर-संहारक विष्णु की कथाओं और स्कंद की उत्पत्ति तथा विवाह की कथाओं के साथ होती है[२]।

द्वितीय भूमिखंड[३] का आरंभ सोमशर्मा की कथाओं से होता है जो बाद में विष्णु-भक्त प्रह्लाद के रूप में पैदा हुआ[४]। इन कथाओं का उद्देश्य यह बतलाना है कि क्यों वह एक ओर तो दैत्यों के कुल में उत्पन्न हुआ और दूसरी ओर वह विष्णु का महान् भक्त बना ? इस खंड में भूमि के वर्णन के अलावा अनेक आख्यान नाना तीर्थों की पवित्रता सिद्ध करने के उद्देश्य से लिखे गए हैं। केवल पवित्र स्थान ही नहीं बल्कि गुरु, पिता या पत्नी भी तीर्थ माने गए हैं। पत्नी भी तीर्थ हो सकती है इस बात को सिद्ध करने के लिए सुकला की एक कथा उदाहरणार्थ दी गई है[५]। उसका पति उसको अभावग्रस्त और दुःखी छोड़ कर तीर्थ-यात्रा पर चला जाता है। कामदेव और इन्द्र उसके सतीत्व का अपहरण करने का निष्फल प्रयत्न करते हैं। वह पातिव्रत्य पर अटल रहती है। जब उसका पति यात्रा से लौटता है तो वह (!) अपनी पत्नी के पुण्य से वरदान पाता है। पुत्र भी तीर्थ हो सकता है यह सिद्ध करने के लिए ययाति और पूरु की कथा दी गई है जिससे हम महाभारत में ही परिचित हो चुके हैं।

तृतीय स्वर्गखंड[६] अनेक देव-लोकों, विष्णु के परमपद वैकुण्ठ, भूतों, पिशाचों, गन्धर्वों, विद्याधरों तथा अप्सराओं के लोकों, सूर्य, इन्द्र, अग्नि, यम आदि के लोकों का वर्णन उपस्थित करता है और इस प्रसंग में अनेक कथाएँ तथा आख्यान भी दिए गए हैं। राजा भरत की चर्चा आ जाने पर शकुन्तला की कथा भी दे दी गई है।

---

१. इसलिए सृष्टिखण्ड को पौष्करखंड भी कहा गया है।

२. आनन्दाश्रम सं० में सृष्टिखण्ड की विषय-वस्तु और भी विचित्र है। अन्य बातों के अलावा इसमें ६१-६३ अध्यायों में गाणपत्य सम्प्रदाय का तथा अन्त में दुर्गा सम्प्रदाय का वर्णन है। जिस आदिखण्ड के साथ इस संस्करण का आरम्भ होता है उसमें अनेक तीर्थों का माहात्म्य भी दिया हुआ है। केवल अन्त के अध्यायों में ही (५०-६०) विष्णुभक्ति और वर्णाश्रम धर्म का विवरण मिलता है।

३. सब कुछ मिलाकर यह आनन्दाश्रम संस्क० के भूमिखंड जैसा ही है।

४. यहाँ पर मान लिया गया है कि प्रह्लाद की कथा (जैसी विष्णु पुराण में वर्णित है) लोगों को ज्ञात है।

५. आनन्दा० संस्क० अध्या० ४१–६०, सुकलाचरित।

६. स्वर्गखंडका पंचानन तर्करत्न द्वारा किया गया एक अंग्रेजी अनुवाद (कलकत्ता, १९०६) है जिसे मैंने नहीं देखा है।

यह कथा महाभारत के अनुसार न होकर कालिदास के नाटक के अधिक निकट है। कालिदास के नाटक की महाभारत तथा पद्मपुराण की कथाओं से तुलना करने से मालूम होता है कि बहुत संभव है कि कालिदास ने पद्मपुराणको अपना स्रोत बनाया हो[१]। अप्सराओं के लोकों के वर्णन के प्रसंग में पुरूरवा और उर्वशी की कथा दी गई है। इतिहास-काव्यों से ज्ञात अनेक अन्य कथाएँ भी इस खंड में आती हैं। वर्णाश्रम-धर्म, विष्णुपूजा की पद्धति तथा कर्मकाण्ड और आचार के बारे में भी इस खंड में प्रचुर सामग्री मिलती है।

चतुर्थ पातालखंड पहले नीचे के लोकों और खासकर नागलोक का वर्णन उपस्थित करता है। रावण की चर्चा हो जाने के फलस्वरूप पूरी राम-कथा कह दी गई है। यह कथा अंशतः रामायण से मिलती है पर बहुधा यह कालिदास के महाकाव्य रघुवंश से भी शब्दशः मिलती है।[२] ऋष्यशृंग की कथा का जो रूप यहाँ दिया गया है वह वर्तमान महाभारत से प्राचीन है[३]। राम-कथा के पहले सूर्य-पुत्र मनु (वैवस्वतमनु) तथा बाढ़ से उनके बचने की कथा से आरंभ करके राम के पूर्वजों की कथा कही गई है। रावण ब्राह्मण था और उसके वध से राम को ब्रह्महत्या का पाप लगा। प्रायश्चित्त के रूप में राम ने अश्वमेध यज्ञ किया। विधि के अनुसार घोड़ को स्वेच्छा से विचरण करने के लिए एक वर्ष की अवधि पर्यन्त छोड़ रखा गया। शत्रुघ्न के नेतृत्व में वीरों की एक सेना उस घोड़ के साथ चली। घोड़ा तथा उसके पीछे चलनेवालों ने पूरे भारत का भ्रमण किया। इस बीच उनके किए गए कार्यों के वर्णनों से इस खंड का अधिकांश भाग भरा हुआ है। अनेक पवित्र स्थानों का वर्णन है, उनसे संबंधित कथाएँ कही गई हैं। चलते-चलते घोड़ा वाल्मीकि के आश्रम में पहुँचा। इस अवसर पर राम-कथा का सीता से संबंधित भाग वर्णित है[४]। इसके बाद

---

१. शर्मा ने Padmapurāṇa and Kālidāsa, कलकत्ता, 1925 में यह बतलाया है। यहाँ प्रो० शर्मा ने बंगाली पोथियों के अनुसार शाकुन्तलोपाख्यान का पाठ भी दिया है। Wilson (Works, III पृ० 40) का मत था कि पुराण ने कालिदास के नाटक का उपयोग किया है।

२. शर्माने, वही, यह सम्भव बतलाया कि यहाँ भी पद्मपुराण कालिदासका उपजीव्य था न कि जैसा Wilson (Works, III) मानते हैं कि पुराण के संग्रहकर्ता ने रघुवंश से सहायता ली। शर्मा ने, वही, इस अध्याय का आलोचनात्मक पाठ प्रकाशित किया है जो आनन्दाश्रम संस्क० में नहीं मिलता।

३. इसे Lüders ने NGGW., 1897, 1, पृ० 8 आ० में सिद्ध कर दिया है। इससे पद्मपुराण के बंगाली रूप की और अधिक प्राचीनता सिद्ध होती है।

४. Wilson (Works, III, पृ० 51) का कहना है कि "कुछ हद तक यह भाग उत्तररामचरित से मिलता है पर इसमें अनेक गद्य और आख्यान जोड़े गए हैं।"

अठारह पुराणों की विस्तृत चर्चा की गई है। यहाँ बतलाया गया है कि व्यास ने पहले पद्मपुराण बनाया, उसके बाद सोलह अन्य पुराण रचे और अंत में भागवत पुराण की रचना की जिसकी विष्णु-भक्तों के परम पवित्र ग्रंथ के रूप में प्रशंसा की गई है। कुछ और अध्यायों के साथ यह खंड समाप्त हो जाता है। ये शायद बहुत बाद में जोड़े गए। इनमें कृष्ण और गोपियों की चर्चा है, राधा की कथा कही गई है। विष्णु-भक्तों के कर्तव्य, शालग्राम-शिला की पवित्रता तथा विष्णु-भक्ति की अन्य बातें भी इनमें बतलाई गई हैं।[1]

पंचम उत्तरखंड (अन्तिम खंड) बहुत ही बड़ा खंड है जिसमें बड़े प्रभावशाली ढंग से वैष्णवधर्म तथा इससे संबद्ध व्रतों-उत्सवों का वर्णन किया गया है। विष्णु को बहुत प्रिय माघ महीने के माहात्म्य से इसका एक बड़ा भाग घिरा हुआ है। इस महीने में स्नान करने से उत्पन्न महापुण्य के प्रमाण के रूप में बड़ी हास्यास्पद कथाएँ कही गई हैं। दूसरे भाग में कार्तिक महीने (मूल में कार्तिकेय मास) का माहात्म्य वर्णित है जिसमें दीपदान को विशेष पुण्य देनेवाला बताया गया है। वैष्णव दृष्टिकोण को विशेष महत्त्व देने के उद्देश्य से उस खंड का लेखक स्वयं शिव को पार्वती के साथ संवाद करते समय विष्णु की स्तुति करता हुआ तथा विष्णु के अवतारों का वर्णन करता हुआ चित्रित करता है। इसमें पूरी राम-कथा संक्षेप में तथा कृष्ण-कथा काफी विस्तार के साथ दुहरायी गई है। जब पार्वती ने पूछा कि नास्तिक कौन है तो स्वयं शिव ने उत्तर दिया कि शैव आचार्य एवं शैव पाशुपत सम्प्रदाय के अनुयायी नास्तिकों में आते हैं। एक अन्य स्थान पर दुर्गा देवी अहिंसा का उपदेश देती हैं जो विचित्र बात है। शिव विष्णु-भक्ति तथा उसके विभिन्न रूपों की व्याख्या करते हैं। इस खंड में भगवद्गीता का माहात्म्य भी बतलाया गया है[2] और प्रत्येक अध्याय के पाठ से होनेवाले पुण्य को बतलाने के लिए अलग-अलग कथा कही गई है। एक अध्याय में विष्णु के सहस्र नामों की गणना है और दूसरे अध्याय में राधा को लक्ष्मी देवी से अभिन्न बतलाते हुए उनके जन्मदिन (जयन्ती) को मनाने की विधि बतलाई

---

१. आनन्दा० संस्क० का पातालखण्ड बंगाली रूप से अंशतः ही मिलता है। अध्यायों का क्रम भिन्न है। इसमें कुछ अध्याय शिव-परक भी हैं (१०५–१११)। छपी पुस्तक में पातालखण्ड के पहले एक छोटा-सा ब्रह्मखण्ड भी है जिसमें विष्णु-सम्बन्धी व्रत के दिनों की चर्चा है। राधाजन्माष्टमी के बारे में जो सातवाँ अध्याय है वह बाद का मालूम पड़ता है। राधा की चर्चा न तो महाभारत तथा हरिवंश में है न रामायण या प्राचीनतर पुराणों में ही। दे० ब्रह्मवैवर्त पुराण का प्रकरण, आगे।

२. आनन्दा० संस्क० अध्याय १७१–१८८, गीतामाहात्म्य। भागवतपुराण का माहात्म्य (अध्या० १८९–१९४) इसके बाद आता है। भागवतमाहात्म्य पोथियों तथा छपे संस्करणों में स्वतन्त्र ग्रन्थ के रूप में भी मिलता है। माघमाहात्म्य तथा उत्तरखण्ड के अन्य भाग भी स्वतन्त्र ग्रन्थ के रूप में मिलते हैं।

गई है। इस खंड का सांप्रदायिक पूर्वाग्रह कैसा है इस बात की पुष्टि के लिए निम्न-लिखित आख्यान से अधिक अच्छा कोई प्रमाण नहीं हो सकता।

एक बार ऋषियों में विवाद उठ खड़ा हुआ कि ब्रह्मा, विष्णु या शिव इनमें से किसकी प्रथम पूजा होनी चाहिए। सन्देह का निवारण करने के लिए ऋषियों ने महर्षि भृगु से देवों के पास जाने की और स्वयं यह निश्चय करने की कि उनमें कौन सबसे बड़ा है, प्रार्थना की। इसके अनुसार भृगु पहले कैलास पर्वत पर शिव के पास गए और शिव के गण नन्दी ने शिव को उनके आने की सूचना दी। पर शिव पार्वती के साथ विहार कर रहे थे इसलिए उन्होंने ऋषि को दर्शन नहीं दिया। इस तरह अपमानित होकर ऋषि ने शिव को लिंग के रूप में बदल जाने[1] का तथा ब्राह्मणों की बजाय नास्तिकों द्वारा पूजे जाने का शाप दे दिया। इसके बाद भृगु ब्रह्मलोक पहुँचे। कमलासन पर बैठे ब्रह्मा देवताओं से घिरे हुए थे। ऋषि ने श्रद्धा से चुपचाप झुक कर प्रणाम किया पर घमंड से भरे ब्रह्मा ने उनका उठ कर स्वागत-सत्कार नहीं किया। क्रुद्ध होकर भृगु ने उनको शाप दिया जिसके अनुसार कोई मनुष्य ब्रह्मा की पूजा न करे[2]। अब ऋषि विष्णुलोक में स्थित मन्दराचल पर पहुँचे। वहाँ उन्होंने शेषनाग पर विश्राम करते हुए विष्णु को देखा। लक्ष्मी उनका पैर दाब रही थीं। उन्होंने विष्णुकी छाती में लात मार कर उन्हें जगाया। विष्णु जागे और लगे ऋषि का पैर सहलाने और कहा कि उनके पैर का स्पर्श होने से वे अपने को बहुत धन्य समझते हैं। विष्णु और उनकी पत्नी झट से उठे और दिव्य माल्य, चन्दन आदि से ऋषि का आदर किया। इस पर ऋषि की आँखों में आनंद के आँसू भर आए और वे "करुणालय" के सामने नत हो गए। विष्णु की सर्वोच्च देवता के रूप में स्तुति करते हुए कहा "केवल आप की ही ब्राह्मण लोग पूजा करेंगे, कोई दूसरा देव पूजा के योग्य नहीं है। ब्रह्मा, शिव और अन्य देवताओं की पूजा नहीं होगी क्योंकि वे रजोगुण तथा तमोगुण से भरे हैं। अकेले आप सत्त्वगुण से पूर्ण हैं जिसकी अग्रजन्मा ब्राह्मण पूजा करेंगे। जो अन्य देवों की पूजा करते हैं उनकी गणना नास्तिकों में हो।" इसके बाद भृगु ऋषियों की सभा में लौट आए और देवताओं से मिलने का परिणाम बतलाया[3]।

उत्तरखंड के एक परिशिष्ट के रूप में क्रियायोगसार[4] (अर्थात् कर्म के द्वारा

---

१. यह अंश शिव के प्रतीक योनि और लिंग की पूजा की ओर संकेत करता है।

२. यह उस तथ्य की ओर इशारा है जिसके अनुसार भारत में ब्रह्मा की पूजा नहीं होती।

३. बंगाली रूप में यह कथा बीच में आती है पर आनन्दा० संस्क० में यह उत्तरखण्ड के अन्त में मिलती है। बंगाली रूप में उत्तरखण्ड में १७४ अध्याय हैं पर संस्करण में २८२ अध्याय हैं।

४. यह ग्रंथ उपपुराणों की सूची में गिना गया है (बृहद्धर्मपुराण, २५, २४)।

योग का सार) का स्थान है। इसमें बतलाया गया है कि विष्णु की पूजा ध्यानयोग की बजाय पवित्र कर्मों से करनी चाहिए—गंगाकी यात्रा और विष्णु-सम्बन्धी उत्सवों को मनाकर विशेष रूप से। गंगा के किनारे विष्णु की पूजा करने से सभी संभव कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं इस बात के प्रमाण में कई हास्यास्पद आख्यान तो बताए ही गए हैं, पर माधव तथा सुलोचना का एक सुन्दर प्रेमाख्यान भी यहाँ वर्णित है[1]।

पद्मपुराण के रचना-काल के बारे में निश्चित रूप से कुछ कहना असंभव है। स्पष्टतः यह एक शिथिल संग्रह है, इसके विभिन्न भाग अलग-अलग काल के हैं। और शायद उनमें शताब्दियों का फरक है। पाँच या छः खंडों की समान यिशेषता है उनका कट्टर सांप्रदायिक रूप क्योंकि सभी में विष्णुपूजा प्रतिपादित है[2]। पुनश्च इन सभी खंडों में विष्णु-पूजा का अपेक्षाकृत आधुनिक रूप—यथा राधा की देवी के रूप में पूजा, शालग्राम शिला की पवित्रता, तुलसी का माहात्म्य आदि—ही मिलता है। इसके आधुनिक अंश भागवत पुराण के बाद के हैं जो पुराण-साहित्य में सबसे आधुनिक है। फिर भी सृष्टि, भूमि, स्वर्ग तथा पाताल खंडों में कोई प्राचीन मूल अवश्य है। इस प्राचीन मूल को ढूँढ़ निकालना भविष्य के अनुसंधान का कार्य है।[3]

३. वैष्णव या विष्णुपुराण[4]

विष्णुभक्तों या वैष्णवों का यह मुख्य ग्रंथ है। वैष्णवों के रामानुज सम्प्रदाय के प्रवर्तक दार्शनिक रामानुज ने अपने वेदान्तसूत्र-भाष्य में इसको प्रमाण-रूप में उद्धृत किया है। इस पुराण में एकमेव सर्वोच्च देवता के रूप में विष्णु की महिमा गाई गई है और सृष्टि के कर्ता तथा पालक विष्णु से ब्रह्मा और शिव को अभिन्न बतलाया गया है। फिर भी यही एकमात्र ऐसा पुराण है जिसमें विष्णु के व्रतों, पूजा-विधियों

इसके कई अंशों का जर्मन अनुवाद A. E. Wollheim da Fonseca ने Mythologie des alten Indien, Berlin, में किया है। इसी लेखक ने इस पुस्तक का विश्लेषण "Jahresbericht der deutschen morgenlāndischen Gesellschraft", 1846, पृ० 153 आ० में दिया है।

१. जर्मन पद्यों में स्वतन्त्र अनुवाद A. F. Graf von Schack ने Stimmen vom Ganges, पृ० 156 आ० में किया है।

२. ब्रह्मा की प्रमुखता बतानेवाला सृष्टिखण्ड इसका अपवाद है।

३. इसके लिए आवश्यक तैयारी के रूप में बंगाली पोथियों के आधार पर पद्मपुराण का आलोचनात्मक संस्करण पहले होना चाहिए।

४. रत्नगर्भ की टीका के साथ बम्बई से शब्द संवत् १८२४ में प्रकाशित। श्रीधर की टीका इससे पुरानी है, रत्न गर्भ ने उनका अनुकरण किया है। दे० Eggeling, Ind. off. Cat. VI, पृ० 1310 H. H. Wilson द्वारा लंदन से 1840 में तथा मन्मथनाथ दत्त द्वारा कलकत्ता से 1894 में अंग्रेजी अनुवाद प्रकाशित।

आदि की कोई चर्चा नहीं है; विष्णु-मन्दिर और विष्णु-तीर्थों का उल्लेख नहीं है। इस बात से इस पुराण की बड़ी प्राचीनता का भान होता है। विष्णुपुराण प्राचीन पुराण-लक्षण के बहुत निकट भी है। इसमें बहुत कम ऐसी बातें हैं जो "पाँच लक्षणों" के अन्तर्गत न आती हों। यह सिर्फ संग्रह न होकर एक-रूपता से युक्त रचना है जब कि अधिकांश अन्य पुराण संग्रह ही हैं। "विष्णुपुराण" यह शीर्षक शायद ही परवर्ती कृतियों, माहात्म्यों आदि के लिए स्वीकृत किया गया हो[1]। इस तथ्य से ज्ञात होता है कि इसमें हमें पुराण-साहित्य की अपेक्षाकृत प्राचीन कृति मिलती है जो सब कुछ मिलाकर कम-से-कम अपने मूल रूप में तो सुरक्षित है।

इस पुराण के विषयों का विस्तृत सारांश पाठकों को संपूर्ण पुराण के विषयों और महत्त्व से अच्छी प्रकार परिचय करा देगा।

इस कृति के छः भाग हैं। इसका आरम्भ वसिष्ठ के पौत्र पराशर और उनके शिष्य मैत्रेय के संवाद से होता है। मैत्रेय अपने गुरु से विश्व की उत्पत्ति और स्वभाव के बारे में प्रश्न करते हैं। इसका उत्तर देते हुए पराशर कहते हैं कि इस प्रश्न से उनको उस बात की याद आ जाती है जो उन्होंने एक बार अपने पितामह वसिष्ठ से सुनी थी। वे जो सुना था उसे दुहराने के लिए तयार होते हैं। उस परम्परा के विपरीत,(जो विष्णुपुराण[2] में ही लिखी गई है) जिसके अनुसार व्यास को पुराणों का लेखक माना जाता है, यहाँ पराशर को ही सीधे-सीधे इस पुराण का लेखक बतलाया गया है।

---

१. Aufrecht, CC. I 591; II, 140; III, 124 में बहुत कम स्तोत्र और छोटे ग्रन्थ ऐसे बताए हैं जो विष्णुपुराण के अंग होने का दावा करते हों। फिर भी यह ध्यान देने की बात है कि मत्स्य और भागवत पुराणों में विष्णुपुराण के श्लोकों की संख्या २३,००० दी हुई है जब कि वास्तव में इसमें ७,००० से भी कम श्लोक हैं। एक बृहद् विष्णुपुराण का भी उल्लेख मिलता है (Aufrecht, CC, I, 591)।

२. अन्य पुराणों की तरह विष्णुपुराण का रचना-काल भी निर्धारित करना कठिन है। यह ईसा की ५ वीं सदी के पहले का नहीं होगा—Pargiter का यह सोचना (Anc. Ind. Hist. Trad. पृ० 80) शायद सही हो। पर मैं नहीं समझता कि यह इस काल के बहुत बाद का है। मि० Farquhar, Outline, पृ० 143। C. V. Vaidya (Hist. of Medi. Hindu India I, 1921, पृ० 350 आ०; JBRAS., 1925, 1 पृ० 155 आ०) यह सिद्ध करने का प्रयत्न करते हैं कि विष्णुपुराण ९ वीं शताब्दी के पहले का नहीं है क्योंकि उनका कहना है कि इस पुराण में उल्लिखित कैलकिल या कैङ्किल यवनों (IV, 24) ने ५७५ से ९०० ई० के बीच आन्ध्र पर राज्य किया। वे यवन करीब ७८२ ई० में प्रताप की चरम सीमा पर थे। पर यह मान्यता एक प्रस्तुति है जो अबतक सिद्ध नहीं हो सकी है।

एक स्तोत्र में विष्णु के माहात्म्य का कीर्तन करने के बाद पराशर विश्व की सृष्टि का वर्णन करते हैं जो प्रायः अधिकांश पुराणों में उसी रूप में मिलता है[1]। यहाँ ध्यान देने की बात यह है कि मूल सांख्य दर्शन के सिद्धान्तों को लोक-प्रचलित काल्पनिक विचारों से मिला दिया गया है। अदिम काल के लोगों में इस तरह की कई समानान्तर बातें हमें मिल सकती हैं।

देवों, दैत्यों, वीरों तथा मानव जाति के आदि पुरुषों की उत्पत्ति के वर्णन के साथ अनेक काल्पनिक कथाएँ, रूपक तथा आदि काल के राजाओं और ऋषियों के आख्यान दिए हुए हैं। इनमें से अनेक आख्यानों से हम महाभारत में ही परिचित हो चुके हैं—यथा समुद्र-मंथन की कथा[2]। यहाँ पर सौभाग्य और सौन्दर्य की देवी श्री का विशेष रूप से काव्यात्मक वर्णन किया गया है। यह वर्णन उस समय का है जब क्षीर सागर के मंथन से तेजोमय सौन्दर्य से युक्त श्री प्रगट होती हैं और विष्णु की भुजाओं में अपने को समर्पित कर देती हैं। एक सुन्दर सूक्त में इन्द्र उनकी स्तुति करते हुए कहते हैं कि वे सारे प्राणियों की माता हैं, सारी सुन्दर और अच्छी वस्तुओं के कारण हैं और सारे सुखों को देनेवाली हैं। जिस प्रकार यह प्रसंग श्री के पति विष्णु की स्तुति में लिखा गया है उसी प्रकार अन्य सारे प्रसंग भी विष्णु से सम्बन्धित हैं जिनकी बहुत बढ़ा-चढ़ा कर स्तुति की गई है। विष्णु की पूजा से जो सिद्धि मिलती है उसके वर्णन में भारतीयों की कल्पना का कोई अन्त नहीं है। एक उदाहरण राजकुमार ध्रुव की कथा है जो अपने भाई के प्रति अधिक प्यार दिखाए जाने के कारण दुःखी होकर बाल्यावस्था में ही विष्णु को प्रसन्न करने के लिए तपस्या में लीन हो जाते हैं। विष्णु को विवश होकर वर देना पड़ता है कि ध्रुव अपने भाई और पिता से भी बढ़कर कुछ बनेंगे। वे ध्रुव को ध्रुवतारा बना देते हैं जो आकाश के सारे तारों से ऊपर तथा उनसे अधिक स्थिर है[3]। विष्णु-भक्ति की महिमा का बड़ा ही सुन्दर वर्णन प्रह्लाद की कथा में हुआ है (I,17-20)। प्रह्लाद को उनका घमण्डी पिता दैत्यराज हिरण्यकशिपु विष्णु-भक्ति से विमुख करने का निष्फल प्रयत्न करता था। प्रह्लाद को कोई शस्त्र न मार सका, साँप और जंगली हाथी, आग, विष, जादू-टोना किसी से उनको कोई हानि न पहुँचाई जा सकी। राजमहल के छज्जे से उनको धकेल दिया गया तो वे धीरे से धरती पर आ गिरे। हाथ-पैर बाँधकर उनको समुद्र में फेंक दिया गया और

---

१. पुराणों में सृष्टि-वर्णनों का तुलनात्मक अध्ययन Wilhelm Jahh ने Uber die kosmogonischen Grundanschauungen in Mānava-Dharma-Śāstram, Leipzig, 1904 में किया है।

२. विष्णुपुराण और महाभारत के समान अंशों का संग्रह A. Holtzmann ने Mahābhārata, IV, 36 आ० में किया है।

३. I, 11 आ०। इस कथा का और विस्तृत रूप भागवत पुराण (IV, 8 आ०) में दिया गया है; Schack की कविता (Stimmen vom Ganges, पृ०9 18 आ० में) इसी पर आधारित है।

उनके ऊपर चट्टानें रख दी गईं पर वे समुद्र की सतह में बैठकर विष्णु की स्तुति करते रहे। उनके बन्धन छूट गए और उन्होंने पहाड़ की चट्टानों को झटक कर दूर कर दिया। जब उनके पिता ने पूछा कि ऐसी अद्भुत शक्ति उन्हें कहाँ से मिली तो प्रह्लाद ने उत्तर दिया :

"पिताजी ! जो कुछ शक्ति मेरे पास है वह न तो मन्त्र-तन्त्र से मुझे मिली है और न ही उसे मेरे स्वभाव से अलग किया जा सकता है। यह तो वह शक्ति है जो उन सारे लोगों में रहती है जिनके हृदय में अच्युत का निवास है। जो दूसरों की बुराई नहीं सोचता बल्कि दूसरों को भी अपने से अभिन्न मानता है वह पापों से मुक्त है क्योंकि पाप का कारण ही नहीं है। पर जो मन, वचन या कर्म से दूसरों को कष्ट देता है वह आगे के जन्म का बीज बोता है और पुनर्जन्म के बाद जो फल उसे मिलता है वह दुःखमय होता है। मैं किसी का बुरा नहीं चाहता, करता और कहता हूँ क्योंकि मैं अपनी ही तरह सारे प्राणियों में केशव का निवास देखता हूँ। आधिदैविक, आधिभौतिक और आध्यात्मिक दुःख मुझे कैसे सता सकते हैं जब कि मेरे हृदय को उसने अच्छी तरह शुद्ध कर दिया है ? जिनको यह ज्ञान हो गया है कि हरि सर्वत्र विराजमान हैं वे ज्ञानी सारे प्राणियों के प्रति प्रेम-भाव को ही अपनाना चाहेंगे।[१]"

विष्णुपुराण के दूसरे भाग में पहले (अध्या० १-१२) संसार का एक अविश्वसनीय वर्णन दिया गया है। सात द्वीपों तथा सात समुद्रों का वर्णन है। इनके मध्य में जम्बुद्वीप है जिसमें सुवर्णमय मेरु पर्वत है जो देवों का निवास-स्थान है। जम्बुद्वीप में भारतवर्ष आता है। इसके खण्डों, पर्वतों तथा नदियों की गिनती की गई है। पृथ्वी के इस वर्णन के बाद पाताल का वर्णन है जहाँ नाग लोग रहते हैं। इसके अनन्तर पाताल से भी नीचे स्थित नरकों का वर्णन है। इसके बाद द्युलोकों का वर्णन दिया गया है। सूर्य, सूर्य का रथ और उनके घोड़े, सूर्य की गति की ज्यौतिष-सम्मत व्याख्या, नक्षत्र-मण्डल तथा वर्षा करने एवं प्राणियों की रक्षा करनेवाला सूर्य—इन बातों का वर्णन है। चन्द्रमा, चन्द्रमा का रथ, घोड़े, इसकी गति, सूर्य और ग्रहों के साथ इसका सम्बन्ध इनका वर्णन आगे बतलाया गया है। इस अंश की समाप्ति पर कहा गया है कि विष्णु के अतिरिक्त संपूर्ण विश्व कुछ भी नहीं है। वही एकमात्र सत्य है।

भारतवर्ष के नाम के प्रसंग में (अध्या० १३-१६) प्राचीन राजा भरत की कथा दी गई है[२]। यह तो उस दार्शनिक संवाद की भूमिका-मात्र है जो उपनिषदों के

---

१. I, 19, 1–91 H. H. Wilson **द्वारा अनूदित (अंग्रेजी)। इसी कथा का एक रूप भागवत पु०** VII, 4-6 **में मिलता है जिस पर** Schack **की कविता (वही, पृ०** 1 **आ० में) आधारित है।**

२. **मि०** Leumann. Die Bharat-Sage, ZDMG., 48, 1894, **पृ०** 65 **आ० तथा** August Blau, Das Bharatopākhyāna des Viṣṇu-Purāṇa, 1903, **पृ०** 205 **आ०।**

प्रसिद्ध सिद्धान्त—सबकी एकता का सिद्धान्त—की वैष्णव-दृष्टि से व्याख्या उपस्थित करता है। कई माने में इस पूरे प्रकरण की शैली उपनिषदों की याद दिलाती है। इस आख्यान का सारांश निम्नलिखित है :

राजा भरत विष्णु के बड़े भक्त थे। एक दिन वे नदी में स्नान करने गए। जिस समय वे स्नान कर रहे थे उसी समय एक गर्भिणी मृगी पानी पीने जंगल से वहाँ आई। उसी समय पास से सिंह के गर्जन का शब्द सुनाई पड़ा। मृगी घबरा गई और डर के मारे उछल कर भाग खड़ी हुई। कूदने के कारण उसे बच्चा पैदा हो गया पर वह स्वयं मर गई। भरत उस बच्चे को अपने साथ ले गए और अपने आश्रम में उसे पाला-पोसा। उसके बाद से उनका ध्यान सदा उसी पर केन्द्रित रहने लगा। ये उसी की चिन्ता करते, उसी की देख-भाल करते। उस मृग की ही चिन्ता करते हुए अन्त में जब उनका देहान्त हो गया तो वे शीघ्र ही मृग के रूप में पैदा हुए पर उनको पूर्वजन्म का स्मरण बना रहा। इस मृग-योनि में भी वे विष्णु की पूजा, तपस्या आदि करते रहे जिससे अगले जन्म में एक पवित्र ब्राह्मण के पुत्र के रूप में उनका जन्म हुआ। इस तरह उनको सबकी एकता के सिद्धान्त का परम ज्ञान था फिर भी उन्होंने वेद पढ़ने, ब्राह्मण के कर्मों को करने का कष्ट नहीं किया। वे असंबद्ध और अशुद्ध भाषा बोलते, गन्दे और फटे चिथड़े में घूमते। संक्षेप में वे बिलकुल जड़ की तरह व्यवहार करते।[1] सब उनसे घृणा करते ओर दासों जैसा काम उनसे लेते। एक-बार ऐसा हुआ कि राजा सौवीर के एक नौकर ने राजा की पालकी ढोने के लिए उनको पकड़ लिया। इस अवसर पर जड़-जैसे दिखाई देनेवाले भारत और राजा में बात-चीत होने लगी। इस बात-चीत के दौरान में भारत ने अपने आप को ऋषि के रूप में प्रकट किया और राजा को उन्होंने सब की एकता का सिद्धान्त बताया जिससे राजा बड़ा प्रसन्न हुआ। इस प्रसंग में उन्होंने राजा को ऋभु और निदाघ की कथा सुनायी।

---

१. भागवत V, 9, 10 में इस कथा का नाम पुष्पिका में जड़भरतचरित लिखा है। 'पागल न होते हुए भी पागलों—जैसे व्यवहार करने वाले दुर्वासा, ऋभु, निदाघ तथा अन्य परमहंस मुनियों के साथ जडभरत का नाम जाबाल उपनिषद् 6 में दिया गया है। विष्णु-पुराण, I, 9 दुर्वासा ऋषि की एक कथा आती है जिन्होंने 'पागलों का व्रत ले रखा था।' मि० A. Barth, Relgions of India, पृ० 83। मध्ययुग में St. Symeon Salos तथा St. Andreas जैसे कुछ ईसाई संत भी ऐसे ही थे जो मूर्खों की तरह घूमा करते थे और तपस्या के रूप में मजाक और अपमान सहा करते थे। मि० H. Reich, Der Mimus, Berlin, 1903, 1, 2, पृ० 822 आ० तथा J. Horovitz, Spuren griechischer Mimen im Oricht, Berlin, 1905, पृ० 34 आ०।

ब्रह्मा के पुत्र, धर्मात्मा और ज्ञानी ऋभु निदाघ के गुरु थे। एक हजार वर्षों के बाद वे अपने शिष्य के पास गए। शिष्य ने उनका आतिथ्य-सत्कार किया और पूछा कि वे कहाँ रहते हैं, कहाँ से आए हैं और कहाँ जायेंगे। ऋभु ने शिष्य को उत्तर दिया कि ये प्रश्न व्यर्थ हैं क्योंकि आत्मा सर्वत्र है, वह न कहीं जाती है और न आती है। उन्होंने एकता का सिद्धान्त इतने स्पष्ट ढंग से प्रतिपादित किया कि निदाघ आत्म-विभोर होकर उनके पैरों पर गिर पड़ा और पूछा कि वे कौन हैं। इसके बाद ही निदाघ को पता चला कि वे उसके प्राचीन गुरु ऋभु हैं जो फिर से उसे सच्चा ज्ञान सिखाने पधारे हैं। एक हजार वर्ष बीतने के बाद ऋभु फिर उस स्थान पर आए जहाँ निदाघ रहता था। वहाँ उन्होंने लोगों की भीड़ देखी और एक राजा को भी देखा जो बहुत से परिजनों के साथ नगर में प्रवेश कर रहा था। उस भीड़ से काफी दूर पर उनका शिष्य निदाघ खड़ा दिखाई पड़ा। ऋभु उसके पास गए और पूछा कि वह अलग क्यों खड़ा है। इस पर निदाघ ने उत्तर दिया कि "एक राजा नगर में प्रवेश कर रहा है, बड़ी भीड़ है, इसलिए मैं अलग खड़ा हूँ।" ऋभु ने पूछा : "यह राजा कौन है :" निदाघ ने कहा : "वह राजा है जो बड़ी हाथी पर बैठा हुआ है।" ऋभु ने कहा कि "ठीक है। पर हाथी कौन है और राजा कौन है ?" निदाघ ने उत्तर दिया : "हाथी नीचे है और राजा उसके ऊपर।" ऋभु ने पूछा : "पर नीचे का क्या अर्थ है और ऊपर का क्या अर्थ है ?" निदाघ ऋभु की पीठ पर उछल कर चढ़ गया और बोला : "राजा की तरह मैं ऊपर हूँ और आप हाथी की तरह नीचे हैं।" ऋभु ने कहा : "बिलकुल ठीक। पर मुझे यह बताओ, वत्स ! कि इन दोनों में तुम क्या हो और मैं क्या हूँ ?" अब निदाघ ने अपने पुराने गुरु ऋभु को पहचाना क्योंकि उनके जैसा अन्य कोई भी एकता के सिद्धान्त से ओत-प्रोत नहीं था। विश्व की एकता के सिद्धान्त से निदाघ इतना प्रभावित हुआ कि तब से वह सारे प्राणियों को अपने से अभिन्न देखने लगा और पूर्ण मोक्ष को प्राप्त हो गया।

विष्णुपुराण का तीसरा भाग मनुओं तथा उनके मन्वन्तरों के वर्णन से प्रारम्भ होता है।[1] इसके बाद चार वेदों, व्यास और उनके शिष्यों के द्वारा किए गए उनके विभागों तथा अनेक वैदिक सम्प्रदायों की उत्पत्ति की चर्चाएँ की गई हैं। तदनन्तर अठारह पुराणों की गिनती की गई है और सारे शास्त्रों-कलाओं की सूची दी गई है।

कट्टर विष्णु-भक्त के रूप में व्यक्ति को कैसे मुक्ति मिल सकती है यह प्रश्न उठाया गया है तथा उस पर विचार किया गया है। मृत्यु के देवता यम और उनके एक गण के बीच एक सुन्दर संवाद (अध्या० ७) के दौरान बताया गया है कि सात्विक जीवन व्यतीत करने वाला, शुद्ध हृदय का, विष्णु में चित्त लगाने वाला व्यक्ति

---

१. पुराणों के अनुसार मन्वन्तरों की कल्पना के बारे में दे० Jacobi, ERE., I, 200 आ०।

सच्चा विष्णु भक्त है और इसलिए वह यमराज के पाश से मुक्त है। इसके बाद वर्णाश्रम धर्म, पुत्रोत्पत्ति तथा विवाह के उत्सव, पूजन, दैनिक धार्मिक कर्म, आतिथ्य-सत्कार के नियम, भोजन-विधि आदि का विवरण दिया गया है। १३-१७ अध्यायों के एक लंबे प्रकरण में श्राद्ध की विधि दी गई है जिससे वेद-विहित कर्म को ही सच्ची विष्णु-पूजा का प्रकार बतलाया गया है। इस भाग के अन्तिम दो अध्यायों में वेद-विरोधी नास्तिक मतों की उत्पत्ति बतलाई गई है जिनमें से दिगम्बर कहलानेवाले जैनों तथा रक्ताम्बर कहलानेवाले बौद्धों को[1] सब से बड़ा पापी दिखाया गया है। इन नास्तिकों का साथ करना कितना बड़ा पाप है इस बात को बताने के लिए एक प्राचीन राजा शतधनु (अध्याय १८) की कथा दी गई है। वह वैसे तो विष्णु का भक्त था पर एक बार नम्रतावश उसने एक नास्तिक से कुछ बात-चीत कर ली। इसके परिणाम-स्वरूप बाद में क्रम से कुत्ता, गीदड़, भेड़िया, गीध, कौवा और मोर की योनियों में जन्म लेना पड़ा और अन्त में अपनी पत्नी शैब्या की पतिव्रता और धार्मिकता के कारण वह फिर से राजा के रूप में पैदा हुआ।

विष्णु पुराण के चौथे भाग में मुख्य रूप से प्राचीन राजाओं की, सूर्य से प्रारम्भ होने वाले सूर्यवंश तथा चन्द्र से प्रारम्भ होने वाले चन्द्र-वंश की वंशावलियाँ लिखी गई हैं। प्राचीन राजाओं की—जिनमें से कुछ शुद्ध रूप से काल्पनिक और शायद कुछ ऐतिहासिक हैं—लंबी सूचियों के बीच में कहीं-कहीं उनसे सम्बन्धित आख्यान भी दिए गए हैं। इन आख्यानों में अद्‌भुतता का बड़ा महत्वपूर्ण स्थान है। दक्ष ब्रह्म के दाहिने अँगूठे से पैदा हुए, मनु की पुत्री इला पुरुष बन गई, इक्ष्वाकु मनु की छींक से पैदा हुए, राजा रैवत अपनी पुत्री रेवती के साथ स्वर्ग में ब्रह्मा से अपनी पुत्री के अनुरूप वर बताने की प्रार्थना करने गये। राजा युवनाश्व को गर्भ रह गया जिससे उनको एक पुत्र उत्पन्न हुआ। इन्द्र ने उसे अमृत पिलाया—बच्चे ने इन्द्र के मुँह में अंगूठा डाल दिया और फिर उस अंगूठे को वह चूसने लगा। चूँकि इन्द्र ने कहा कि "यह मुझे पीएगा' (माम् धास्यति) इसलिए बच्चे का नाम **मान्धाता** पड़ा। मान्धाता बड़ा बलशाली राजा हुआ। वह तीन पुत्रों तथा पचास पुत्रियों का पिता बना। उसको एक दामाद कैसे मिला इसका वर्णन विशेष हास्य के साथ किया गया है। यह हास्य मुनियों से सम्बद्ध भारतीय आख्यानों में व्याप्त गहरी नीरसता को कभी-कभी कम करता है। धर्मात्मा ऋषि सौभरि पानी में खड़े रह कर बारह वर्षों तक तपस्या करते रहे। एक बार उन्होंने देखा कि एक मत्स्य-राज अपने बच्चों के साथ खेल रहा है। इस दृश्य को देखकर मुनि के मन में भी संतान-सुख की इच्छा जगी।[2]

इस भाग में इतिहास-काव्यों में प्रसिद्ध अनेक आख्यान हमें मिलते हैं, जैसे

---

१. मि० पद्मपुराण के ऊपर लिखे प्रसंग से।

२. IV, 2।

पुरूरवा और ऊर्वशी का[1], ययाति का, आदि-आदि। यहाँ पर राम-कथा का भी संक्षेप दिया गया है। पाण्डवों तथा कृष्ण की उत्पत्ति का वर्णन और महाभारत की कथा की रूप-रेखा भी यहाँ दी गयी है। इस बड़े वंशावली-परक भाग का समापन भविष्य में उत्पन्न होने वाले मगध, शैशुनाग, नन्द, मौर्य, शुङ्ग, काण्वायन और आन्ध्रभृत्य राजाओं के सम्बन्ध में भविष्य-वाणियों के साथ हुआ है। इन राजाओं के बाद आने-वाले विदेशी बर्बर शासकों और उनके भयानक काल—जिस काल में धर्माचरण लुप्त हो जाएगा—के बारे में भी भविष्यवाणी की गई है। कल्कि के रूप में अवतार धारण कर विष्णु इस काल का अन्त करेंगे।

पाँचवाँ भाग अपने-आप में पूरा है। इसमें गोपाल कृष्ण भगवान् की जीवनी विस्तार से कही गई है और करीब-करीब वे ही घटनाएँ उसी क्रम में बताई गई हैं जो जिस क्रम से हरिवंश में मिलती हैं।[2]

छठा भाग काफी छोटा है। इसमें फिर से कृत, त्रेता, द्वापर और कलि इन चार युगों का वर्णन है। कलि के दोष भविष्यवाणी के रूप में बताए गए हैं। इसके साथ ही अनेक प्रकार के प्रलयों का वर्णन भी किया गया है। इसके बाद निराशापूर्ण ढंग से अस्तित्व के दोष, उत्पत्ति, बाल्यावस्था, युवावस्था, वृद्धावस्था तथा मृत्यु के कष्ट, नरक की यातनाएँ, स्वर्ग के सुख की अस्थिरता आदि का वर्णन आता है। इससे यह निष्कर्ष निकाला गया है कि अस्तित्व से मुक्ति, पुनर्जन्म से छुटकारा, एकमात्र परम सुख है। पर इसके लिए ईश्वर का ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक है क्योंकि वही ज्ञान पूर्ण है जिससे ईश्वर का साक्षात्कार होता है, बाकी सब अज्ञान है। इस ज्ञान को पाने का साधन योग, विष्णु का ध्यान है। अन्तिम से पहले के दो अध्याय इस साधन के बारे में हमें ज्ञान कराते हैं। अन्तिम अध्याय में पूरे पुराण का सारांश दिया गया है और विष्णु की स्तुति तथा एक प्रार्थना के बाद यह पुराण समाप्त हो जाता है।

४. वायव अथवा वायुपुराण[3]

कुछ सूचियों में वह पुराण शिव या शैव पुराण के नाम से उल्लिखित है।[4] इसका यह नाम इसलिए पड़ा कि इसमें शिव-भक्ति प्रतिपादित है। "वायु देवता द्वारा

---

१. Schack द्वारा, Vedische studien, I, पृ० 253 आ० में अनूदित।

२. इस अध्याय का जर्मन में अनुवाद A. Paul ने Krischnas Weltengang, Munich, 1905 में किया है।

३. Bibl. Ind. संस्करण, 1880–1889 तथा आनन्दा० संस्क०, ४९, १९०५।

४. विष्णु और भागवत पुराणों के अनुसार। शिवपुराण नाम का एक ग्रन्थ इससे बिल्कुल मिलता है और इसकी गणना उपपुराणों में की गई है। इसमें १२ संहिताएँ हैं जिनमें से एक वायवीय और एक धर्म-संहिता भी है। मि०

प्रोक्त" एक पुराण की चर्चा महाभारत और हरिवंश में आती है और कई स्थानों पर हरिवंश का हमारे वायु पुराण से शब्दशः साम्य है।[1] पहले बतलाया जा चुका है कि कवि बाण (६२५ ई० के आस-पास) ने वायुपुराण की कथा सुनी थी और इस पुराण में ईसा की चौथी शताब्दी में वर्तमान गुप्तशासन का वर्णन है। इस नाम का कोई पुराण अवश्य था और वर्तमान ग्रन्थ में भी प्राचीन पुराण के अंश सुरक्षित हैं जो शायद ईसा की पाँचवीं शताब्दी के बाद के नहीं हो सकते।[2] प्राचीन पुराणों की तरह इसमें भी विष्णु पुराण की भाँति सृष्टि, वंशावली आदि का प्रतिपादन है। सिर्फ इसमें वर्णित आख्यान विष्णु-परक न होकर शिव-भक्ति का प्रतिपादन करते हैं। विष्णुपुराण की तरह वायुपुराण के अन्त में भी प्रलय का वर्णन है, योग का महत्त्व बतलाया गया है और शिव के ध्यान में लीन योगियों द्वारा प्राप्य शिवपुर के वर्णन के साथ यह समाप्त होता है। इस शैव ग्रंथ में भी विष्णु-परक दो अध्याय मिलते हैं।[3] पितरों और श्राद्धों का विस्तृत वर्णन मुख्य रूप से किया गया है।[4] संगीत विद्या के ऊपर एक अध्याय लिखा गया है।[5] छपे संस्करण के अन्त में जोड़ा गया माहात्म्य निश्चय ही बाद की रचना है।[6] अन्य माहात्म्य, स्तोत्र और पूजाविधियाँ भी हैं जो वायुपुराण से अपने को सम्बद्ध बताती हैं।

५. भागवत पुराण

पुराण-साहित्य की यह कृति निर्विवाद रूप से भारत में सर्वाधिक प्रसिद्ध कृति है। आज भी भागवत सम्प्रदाय (विष्णु की भगवान् के नाम से पूजा करने वाले) के

Eggeling, Ind. Off. Cat. VI, पृ० 1311 आ०। ब्रह्माण्डपुराण को भी वायवीय कहा जाता है और Pargiter (ERE. X, 448) का विश्वास है कि वायु और ब्रह्माण्ड शुरू में एक पुराण थे। बाद में उनका विभाग हुआ।

१. मि० Hopkins, Great Epic, पृ० 49। Holtzmann, Das Mahābhārata, IV, पृ० 40 आ०।

२. मि० Bhandarkar, Vaiṣṇavism etc., पृ० 47; Farquhar, Outline, पृ० 145, C. V, Vaidya का तर्क कि वायुपु० आठवीं सदी का है (JBRAS., 1925, 1, पृ० 155 आ०) संतोषजनक नहीं है।

३. अध्याय, ९६, ९७।

४. अध्याय, ७१-८६ : श्राद्धप्रक्रियारम्भ और श्राद्धकल्प।

५. अध्याय, ८७ : गीतालङ्कारनिर्देशः।

६. अध्याय, १०४-११२। कुछ पोथियों में इसका अभाव है और कुछ में इसको स्वतन्त्र रचना मानी गई है और भारत में वैसे ही छापा भी गया है।

आश्रित अनुयायियों के जीवन और विचार पर इसका बड़ा गहरा प्रभाव है। इसके अनेकानेक हस्तलेख हैं, अनेक संस्करण छप चुके हैं, पूरे ग्रन्थ पर तथा इसके अलग-अलग अंशों पर टीकाएँ और व्याख्याएँ लिखी गई हैं।[1] इनके अलावा भारतीय भाषाओं में इसके अनेक अनुवाद भी उपलब्ध हैं।[2] ये सारी बातें भारत में इस पुराण की अत्यधिक लोक-प्रियता और असाधारण प्रसिद्धि के साक्षी हैं। इस विशेषता के अनुरूप ही यूरोप में संस्कृत तथा अनूदित होकर प्रकाशित होने वाला यह पहला पुराण है।[3] फिर भी यह पुराण-साहित्य की परवर्ती रचनाओं में से एक है। विषय-वस्तु की दृष्टि से इसका विष्णु-पुराण के साथ गहरा सम्बन्ध है, कभी-कभी तो इसका विष्णुपुराण से शब्द-साम्य भी मिलता है। निस्सन्देह भागवत विष्णुपुराण पर आधारित है। व्यास द्वारा रचित प्राचीन अठारह पुराणों में से भागवत एक है, इस मान्यता की सत्यता के बारे में भारत में भी सन्देह प्रकट किया गया है। अठारह पुराणों में इस भागवत का स्थान है या देवीभागवत पुराण नामक[4] एक शैव पुराण का इसके बारे में खण्डन-मण्डनात्मक पुस्तकें भी लिखी गई हैं।[5] इस प्रसंग में "वैयाकरण वोपदेव भागवत

---

१. दे॰ Eggeling, Ind. Off. Cat. VI, पृ॰ 1259 आ॰।

२. बंगला में ही इसके ४० अनुवाद हैं, खासकर दशम स्कन्ध के। दे॰ D. Ch. Sen, History of Bengali Language and Literature, कलकत्ता, 1911, पृ॰ २२० आ॰।

३. Le Bhāgavata Purāṇa ou histoire poétique de Krichṇa, traduit et public par M. Eugène Burnouf, t. 1-III, Paris 1840-471 T. IV et V cubliês par M. Hauvette-Besnault ef P. Raussel, Paris, 1884 et 1898। भागवत की कुछ कथाओं का फ्रेंच अनुवाद Roussel ने Legendes Morales de l' Inde, Paris, 1900, I, 1 आ॰ तथा II, 215 आ॰ में किया। अंग्रेजी अनुवाद मन्मथनाथ दत्त ने कलकत्ता से 1895 में प्रकाशित कराया। भागवत के तामिल अनुवाद का फ्रेंच अनुवाद तो 1788 में ही पेरिस से प्रकाशित हो चुका है। इसी का जर्मन अनुवाद Zürich से 1791 में (दे॰ Windisch, Geschichte der Sanskrit-philologie, पृ॰ 47 आ॰) प्रकाशित हुआ।

४. दुर्जनमुखचपेटिका, दुर्जनमुखमहाचपेटिका और दुर्जनमुखपद्मपादुका—इन ग्रन्थों के अनुसार। Burnouf ने इनका अनुवाद वहीं, I, Preface, पृ॰ lix आ॰ में दिया है। ये काफी आधुनिक ग्रन्थ हैं।

५. पोथियों में इसे श्रीभागवतमहापुराण भी कहा गया है। बम्बई से इसका संस्करण निकला और अंग्रेजी अनुवाद SBH में। मि॰ Aufrecht, Bodl.

पुराण के रचयिता हैं या नहीं" यह प्रश्न भी उठाया गया है तथा इस पर विचार किया गया है ।[१] Colebrooke, Burnouf तथा Wilson ने जल्द-बाजी में इस पुराण का रचयिता वोपदेव को मान लिया है और कहा है कि इस पुराण की रचना तेरहवीं शताब्दी में हुई ।[२] जो भी हो पर यह ग्रंथ उतना अर्वाचीन नहीं हो सकता क्योंकि तेरहवीं शताब्दी में इसे पवित्र ग्रन्थ माना जाने लगा था ।[३] इसको दसवीं शताब्दी ई० का मानने के लिए काफी प्रमाण हैं ।[४] रामानुज ने (१२वीं सदी) में भागवत को प्रमाण नहीं माना क्योंकि उन्होंने इसका उद्धरण नहीं दिया । वे विष्णुपुराण की ओर ही संकेत करते हैं । भले ही अपेक्षाकृत अर्वाचीन काल में इसकी रचना हुई हो पर इसमें बहुत प्राचीन सामग्रियों का निश्चित उपयोग किया गया

Cat., पृ० 79 आ०; Eggeling, Ind. Off. Cat. VI, पृ० 1207 आ० । महाभागवतपुराण भी मिलता है जो इससे भिन्न है । Eggeling (वही, पृ० 1280 आ० में) ने इसके बारे में कहा है कि यह "एक धार्मिक पुराण है जिसमें देवी की कथाएँ और चरित वर्णित है और उसकी परमेश्वरी के रूप में पूजा करना कहा गया है ।"

१. वोपदेव भागवत पर आधारित दो ग्रंथों—मुक्ताफल और भागवत की अनुक्रमणी के रूप में हरिलीला—के रचयिता हैं । इसी तथ्य पर उक्त मत आधारित मालूम पड़ता है ।

२. वोपदेव हेमाद्रि के समकालीन थे—उनका समय १२६० से १३०९ के बीच है।

३. भागवत के टीकाकार आनन्दतीर्थ मध्व (११९९-१२७८) इसको महाभारत के समकक्ष मानते हैं ।

४. C. V. Vaidya (JBRAS, 1925, 1, 144 आ०) के अनुसार यह शंकर के (नवीं शताब्दी के प्रारम्भ के) बाद का आर जयदेव के गीतगोविन्द (बारहवीं शताब्दी) के पहले का । भण्डारकर का कहना है कि (Vaisṇavism etc., पृ० 49) "आनन्दतीर्थ से कम-से-कम दो शताब्दियों पूर्व इनकी रचना हुई होगी" । Pargiter (Anc. Ind. Hist. Trad. पृ० 80) इसको "नवीं सदी के आस-पास" का मानते हैं; Farquhar (Outline, पृ० 229 आ०) Eliot (Hinduism and Buddhism, II, पृ० 188 note) का कहना है कि "पुराणों की अन्तिम परम्परा से इसका सम्बन्ध नहीं है क्योंकि इसमें स्मार्त कर्मों को करने का उपदेश है, न कि मंदिर-पूजा का ।" Vaidya (वही, पृ० 157 आ०) इस बात को सिद्ध करने के लिए तर्क उपस्थित करते हैं कि भागवत का लेखक द्रविड-प्रदेश का रहनेवाला था । मि० Grierson, JRAS, 1911, पृ० 800 आ० ।

है। साथ ही यही एक ऐसा पुराण है जो एक-रूपता से युक्त है और भाषा, शैली तथा छन्द की दृष्टि से एक साहित्यिक कृति के रूप में इसका आस्वादन किया जाना चाहिए।[1]

यह पुराण बारह स्कन्धों में विभाजित है और करीब १८,००० श्लोक इसमें है। सृष्टि-सम्बन्धी वर्णन विष्णुपुराण से मिलते हैं लेकिन कुछ वर्णनों में रोचक भेद भी है।[2] विष्णु के अवतारों—विशेषतः वराह अवतार—का विस्तृत वर्णन दिया गया है। ध्यान देने की बात है कि सांख्य दर्शन के प्रवर्तक कपिल की भी विष्णु के अवतारों में गिनती की गई है तथा (तृतीय स्कन्ध के अन्त में) स्वयं कपिल ने योग के बारे में एक लम्बा प्रवचन किया है। बुद्ध भी विष्णु के एक अवतार मान लिए गए हैं।[3] विष्णु का माहात्म्य बताने वाले अनेक आख्यान दिए गए हैं। ध्रुव और प्रह्लाद के आख्यानों जैसे अधिकतर आख्यान विष्णुपुराण में मिलते हैं। महाभारत से भी इस ग्रन्थ की बड़ी समानता है। भगवद्गीता के तो कुछ श्लोक अक्षरशः उद्धृत हैं।[4] शकुन्तला की कथा बड़े संक्षेप में (IX, 20) कही गई है पर शायद इसका आधार बहुत प्राचीन है[5]। दशम स्कन्ध बड़ा ही लोकप्रिय है और इसका पाठ भी बहुत होता है। इसमें कृष्ण की जीवनी दी हुई है जो विष्णुपुराण एवं हरिवंश की तुलना में काफी विस्तृत है। विशेष रूप से गोपियों के साथ कृष्ण की प्रेम-लीला के दृश्य काफी स्थान घेर रखे

---

१. श्लोकों के साथ-साथ अलंकृत काव्य के भी छन्द मिलते हैं। मि० Burnouf, I Preface पृ० cv आ०।

२. दे० A. Roussel, Cosmologie Hindoue d' après le Bhāgavata-Purāṇa, Paris, 1898।

३. यद्यपि बुद्ध का अवतार देवताओं के शत्रुओं को भ्रम में डालने के लिए (I, 3, 24) हुआ। फिर भी अवतारों में उनकी गणना है और सहायता के लिए (नारायणवर्मः VI, 8, 17 में) उनसे प्रार्थना की गई है। विष्णुपुराण (III, 17 आ०) में दैत्यों को भ्रम में डालने के लिए विष्णु अपने शरीर से एक कल्पित व्यक्ति उत्पन्न करते हैं—जो संसार में बुद्ध के नाम से प्रसिद्ध होता है।

४. दे० Holtzmann, Das Mahābhārata, IV, 41-49 और J. E. Abbott, Ind. Ant. 21, 1892, पृ० 94।

५. IX, 20, 16 में 'हाँ' के अर्थ में 'ओम्' का प्रयोग है जो बहुत प्राचीन रूप है। मि० ऐत० ब्रा०, VII, 18; छान्दो० उप० I, 1, 8। कूर्म पु० I, 23 और I, 27 में भी 'ओम्' का प्रयोग 'हां' के अर्थ में हुआ है, यद्यपि कूर्म पु० परवर्ती ग्रंथ है।

हैं।[1] इस स्कन्ध का प्रायः सभी भारतीय भाषाओं में अनुवाद हुआ है और भारतीयों के सभी वर्गों की यह प्रिय रचना है। यादवों का विनाश और कृष्ण की मृत्यु का वर्णन ग्यारहवें स्कन्ध में किया गया है और अन्तिम स्कन्ध में कलियुग के बारे में भविष्यवाणियाँ और प्रलय-वर्णन किया गया है।

८. बृहन्नारदीय-पुराण

नारद और नारदीय उपपुराण से इसका भेद बतलाने के लिए इसको बृहन्नारदीय संज्ञा दी गई है। पर यह सन्देहास्पद है कि क्या इस[2] पुराण की गिनती प्राचीन पुराणों में की जानी चाहिए। क्योंकि यह शुद्ध साम्प्रदायिक ग्रन्थ है। इसमें सूत नारद और सनत्कुमार के बीच हुए एक संवाद को दुहराते हैं। नारद विष्णु-भक्ति के प्रतिपादक के रूप में यहाँ सामने आते हैं। पुराणों के सामान्य विषयों—सृष्टि आदि—का इसमें कोई उल्लेख नहीं है। इसका मुख्य विषय विष्णु से सम्बन्धित व्रतों और उत्सवों का वर्णन है जिनको आख्यानों के द्वारा बतलाया गया है। आख्यानों के बीच में असहिष्णु ब्राह्मण-दृष्टि का प्रतिपादन करनेवाले उपदेशात्मक अंश भी हमें मिलते हैं। इसका बहुत लम्बा चौदहवाँ अध्याय मुख्य मुख्य पापों की एक सूची उपस्थित करता है और उन पापों के दण्ड के रूप में मिलने वाले नरकों का वर्णन करता है। यह अध्याय इस पुराण की विशेषता का उद्‌घाटन कर सकता है।

उदाहरणार्थ निम्नलिखित कुछ पापियों के लिए कोई प्रायश्चित्त नहीं है और उनको नरक भोगना ही पड़ता है। शूद्र या स्त्री के द्वारा पूजित लिंग अथवा विष्णु-प्रतिमा की जो आराधना करता है, जो नास्तिक द्वारा पूजित लिंग को प्रणाम करता है अथवा जो स्वयं नास्तिक हो जाता है। शूद्र, अदीक्षित व्यक्ति, स्त्रियाँ, अन्त्यज यदि विष्णु या शिव की प्रतिमा को छूते हैं तो नरक में जाते हैं। जो ब्राह्मण से घृणा करता है उसको कोई प्रायश्चित्त नरक से नहीं बचा सकता। प्राण-संकट आने पर भी ब्राह्मण को बुद्ध-मन्दिर में नहीं जाना चाहिए। जो ऐसा करता है उसके पाप को हजारों प्रायश्चित्त भी नहीं मिटा सकते। बौद्ध लोग वेदों के निन्दक हैं अतः सच्चा

---

१. पर राधा का नाम नहीं है। इससे Vaidya यह सही निष्कर्ष निकालते हैं कि इस पुराण की रचना गीतगोविन्द के पहले हुई।

२. पं० हृषीकेश शास्त्री द्वारा Bibl. Ind., 1891 में प्रकाशित। वे इसको उपपुराण कहते हैं। मि० Wilson, Works, VI, पृ० li आ०; Eggeling, Ind. Off. Cat. VI, पृ० 1208 आ०। बृहद्-धर्मपुराण में (I, 25, 23) बृहन्नारदीय और नारदीय दोनों की उपपुराणों में गिनती की गई है।

वेदज्ञ ब्राह्मण उनको देखना भी पाप समझता है।[1] जिन पापियों के लिए कोई प्रायश्चित्त नहीं है वे न केवल सैकड़ों-हजारों वर्षों तक नरक में यातना भोगते हैं (पुराण का लेखक बड़ा रस लेकर नरक की यातनाओं का वर्णन करता है) बल्कि बाद में बार-बार उनको कीट-पतंग आदि पशुओं की तथा चाण्डाल, शूद्र, म्लेच्छ की योनियों में भी जन्म लेना पड़ता है। स्त्रियों और शूद्रों के सामने जो वेद का पाठ करता है उसको घोर नरक मिलता है। फिर भी इन दण्डों के विपरीत इसी अध्याय में बतलाया गया है कि विष्णु-भक्ति सारे पापों का नाश कर देती है तथा गंगा का जल भी बुरे-से-बुरे पापों को धो देता है।

कई अध्यायों (२२-२८) में वर्णाश्रम धर्म, श्राद्ध तथा प्रायश्चित्तों का विस्तार से वर्णन दिया गया है। अन्तिम अध्यायों में संसार के कष्टों तथा योग और भक्ति के द्वारा प्राप्य मोक्ष का वर्णन दिया गया है। विष्णु-भक्ति को बार-बार मोक्ष का एकमात्र उपाय बतलाया गया है। यथा—(२८, ११६) "जो विष्णु भक्ति से रहित हैं वेद, शास्त्र, तीर्थ-स्नान, तपस्या और यज्ञ उनकी क्या सहायता कर सकते हैं ?"

नारदीय उपपुराण में एक रुक्मांगदचरित आता है जो स्वतन्त्र ग्रन्थ के रूप में भी मिलता है। राजा रुक्मांगद का उदात्त चरित यहाँ चालीस अध्यायों में वर्णित है। राजा रुक्मांगद ने अपनी पुत्री मोहिनी को वचन दिया था कि उसकी एक इच्छा वे पूरी करेंगे चाहे जो भी हो। उसने यह इच्छा प्रकट की कि राजा या तो एकादशी की तिथि (पक्ष की ११वीं तिथि जो विष्णु को प्रिय है) को अपना व्रत छोड़ें या फिर अपने पुत्र की हत्या करें। राजा ने पुत्र-हत्या करने का ही निश्चय किया क्योंकि यही दोनों में से कम पाप का मार्ग दिखाई पड़ा।

७. मार्कण्डेय पुराण[2]

यह सब से अधिक महत्त्व का, सब से अधिक रोचक तथा शायद पूरे पुराण-साहित्य में सब से अधिक प्राचीन पुराण है। पर तब भी यह पुराण एक-रूपता से युक्त

---

१. इस प्रसंग से पं० हृषीकेश ने निष्कर्ष निकाला कि इस पुराण की रचना उस समय हुई जब "बौद्ध धर्म समाप्त हो गया था और उसको घृणा की दृष्टि से देखा जाता था।" पर, मैं इसके विपरीत यह समझता हूँ कि बौद्धों के विरुद्ध इस तरह के प्रचार का महत्त्व उस समय अधिक हो सकता है जब कि भारत में बौद्धधर्म अब भी जीवित था।

२. K. M. Banerjea द्वारा Bibl. Ind. में 1862 में सम्पादित तथा Pargiter द्वारा Bibl. Ind. में 1888-1905 में अंग्रेजी में अनूदित।

नहीं है। इसके विभिन्न अंशों का मूल्य अलग-अलग है शायद वे अंश विभिन्न समयों में लिखे गए हैं।

इस पुराण का नाम प्राचीन ऋषि मार्कण्डेय के नाम पर पड़ा है जो चिरजीवी थे और महाभारत में एक बड़े अंश के प्रवक्ता के रूप में हम जिनसे परिचित हो चुके हैं। पुराणों के सुपरिचित विषयों—जैसे सृष्टि, मन्वन्तर, वंशावली आदि—के बारे में मार्कण्डेय जिन अंशों में[1] अपने शिष्य क्रौष्टुकि को स्वयं उपदेश देते हैं उन अंशों को हम पुराण का प्राचीनतम अंश मान सकते हैं। उन अंशों की प्राचीनता के बारे में विशेष प्रमाण यह है कि इनमें न तो विष्णु को और न शिव को महत्त्व दिया गया है। दूसरी ओर इन्द्र और ब्रह्मा का महत्त्व अधिक है। अग्नि, सूर्य आदि वेद-प्रसिद्ध प्राचीन वैदिक देवताओं की स्तुति कुछ अध्यायों में की गई है और सूर्य-सम्बन्धी अनेक आख्यान भी दिए गए हैं।[2] इस पुराण का यह सब से प्राचीन भाग, जैसा Pargiter का कहना है, शायद ईसा की तीसरी शताब्दी की रचना हो, पर इससे पहले का भी हो सकता है। इस अंश का एक बड़ा भाग नैतिक और उदात्त वर्णनों का भी है।

उक्त विशेषता इस पुराण के आरम्भिक भागों के बारे में और भी सही है। ये भाग महाभारत के अत्यन्त निकट हैं और महाभारत के बारहवें पर्व से तो इनका अत्यधिक साम्य है। पुराण का प्रारम्भ यों होता है कि व्यास के शिष्य जैमिनि मार्कण्डेय के पास गए और महाभारत की प्रशंसा[3] करने के बाद उनसे चार प्रश्न पूछे—इन

---

१. अध्याय ४५-८१ तथा ९३-१३६। मि० Pargiter, Introd. पृ० IV ४५वें अध्याय के ६४ वें श्लोक को शंकर ने (वेदान्तसूत्र I, 2, 23 तथा III, 3, 16 में) दो बार उद्धृत किया है—दे० P, Deussen, Die Sūtras des Vedānta aus dem Sanskrit übersetzt, Leipzig 1887, पृ० 119 तथा 570। पर यह निश्चित नहीं कि शंकर इस श्लोक को मार्कण्डेय-पुराण का अंग समझते थे क्योंकि उन्होंने यही कहा है: "स्मृति में कहा गया है कि।"

२. ९९-११० अध्याय। इसकी अधिक प्राचीनता का आभास इसमें लिखित दम की उस कथा से मिलता है जिसमें दम अपने पिता की मृत्यु का बदला लेने के लिए वपुष्मत् को क्रूरतापूर्वक मार डालता है और उसके मांस और रुधिर को श्राद्ध-पिण्डों के साथ अपने पिता की आत्मा को समर्पित करता है (अध्याय १३६)। बंगाली पोथियों में इस आख्यान का वर्णन नर-मेध का बिना उल्लेख किए ही हुआ है जिससे सिद्ध होता है कि यह प्रथा बहुत पुरानी है और बाद के समय में यह प्रचलित न रह सकी।

३. यह अंश महाभारत के आरम्भ और अन्त में प्राप्त महाभारत की प्रशंसा से शब्दशः मिलता है।

चार प्रश्नों का महाभारत में उत्तर नहीं दिया गया है। पहला प्रश्न है कि द्रौपदी कैसे पाँच पाण्डवों की समान पत्नी बनी और अन्तिम प्रश्न है कि द्रौपदी के पुत्र किस कारण से युवावस्था में ही मर गए। मार्कण्डेय ने इन प्रश्नों का उत्तर स्वयं न देकर जैमिनि को चार ज्ञानी पक्षियों के पास भेज दिया जो वास्तव में ब्राह्मण थे और किसी शाप के कारण पक्षी बन गए थे।[1] इन पक्षियों ने जैमिनि के प्रश्नों का उत्तर आख्यानों की माला के द्वारा दिया। अन्तिम प्रश्न के उत्तर में कहा गया है कि जब महर्षि विश्वामित्र ने राजा हरिश्चन्द्र के साथ क्रूरतापूर्ण व्यवहार किया तो पाँच विश्वेदेवों ने ऋषि को दोषी ठहराने का साहस कर दिया। इसके लिए ऋषि ने उन्हें मनुष्य की योनि में उत्पन्न होने का शाप दे दिया। शाप के प्रभाव को कम करने के लिए उन्होंने यह भी कहा कि वे विवाह के पहले युवावस्था में ही मर जाएँगे। द्रौपदी के पाँच पुत्र ये ही विश्वेदेव थे। इस प्रसंग में राजा हरिश्चन्द्र की मर्मस्पर्शी कथा कही गई है जो एक सच्ची ब्राह्मण-कथा है। विश्वामित्र के क्रोध और शाप के भय से हरिश्चन्द्र को असीम कष्ट उठाना पड़ा और अपमान सहना पड़ा। अन्त में स्वयं इन्द्र आकर उन्हें मिल गए।[2]

चारों प्रश्नों का उत्तर दे दिये जाने के बाद एक नया प्रकरण (अध्याय १०-४४) शुरू होता है जिसमें एक पिता-पुत्र-संवाद दिया गया है। महाभारत में प्राप्त पिता-पुत्र-संवाद का यह अत्यधिक विस्तृत रूप है। ध्यान देने की बात है कि महाभारत

---

१. यह भी महाभारत में प्राप्त एक कथा (I, 229) की पुनरावृत्ति है। वहाँ एक पक्षी को द्रोण कहा गया है पर मार्कण्डेय पु० में चारों पक्षियों को द्रोण के पुत्र बताया गया है।

२. अध्याय ७-८। इस प्रसिद्ध कथा का अंग्रेजी अनुवाद J. Muir ने Original Sanskrit Texts, I, तृतीय संस्क०, पृ० 379 में तथा B. H. Worthom ने JRAS, 1881, पृ० 355 आ० में किया है। जर्मन अनुवाद F. Rücckert ने ZDMG, 13, 1859, 103 आ० में किया। परवर्ती नाटककारों का यह प्रिय आख्यान था अतः कवि क्षेमीश्वर ने (१०वीं या ११वीं शताब्दी) इसे अपने नाटक चण्डकौशिक का विषय बनाया। यह गीति-नाट्य का भी प्रचलित विषय रहा है और पंजाब में इसे आज भी अभिनीत किया जाता है—दे० R.C. Temple : The Legends of the Panjab, No. 42 (Vol. III, पृ० 53 आ०)। शुनःशेप की कथा, बौद्धों के वेस्सन्तर जातक और हिब्रू की की Book of Job की तुलना हरिश्चन्द्र की कथा से की गई है। मि० Weber, SBA 1891, पृ० 779, आ०, Ind.Stud. 15, पृ० 413 आ०। ब्राह्मणों, पुराणों तथा इतिहासकाव्यों में विश्वामित्र, वसिष्ठ, हरिश्चन्द्र और शुनःशेप की कथाओं के बारे में दे० F. E. Pargiter, JRAS 1917, पृ० 37 आ०।

में पुत्र को 'मेधावी' कहा गया है जब कि इस पुराण में उसका नाम 'जड' बताया गया है।[1] महाभारत की तरह यहाँ भी अपने पिता के द्वारा आदर्श रूप में स्थापित पवित्र ब्राह्मण के जीवन को पुत्र हीन समझता है। वह अपने पिछले जन्मों को याद करता है और उसे संसार से छुटकारा पाने में ही मुक्ति दिखाई देती है। इस प्रसंग में जड संसार के दुःखों का वर्णन करता है, अनेक जन्म में किए गए पापों के परिणाम बताता है और खास कर के पापियों को मिलने वाले नरक तथा उसकी यातनाओं का वर्णन करता है।[2] नरक-वर्णन के बीच में सदाचारी राजा विपश्चित् की एक[3] कथा दी हुई है जो अपने ढंग की अद्भुत कथा है पर उतनी आनन्द-दायक नहीं है। यह भारतीय कथा-साहित्य का एक रत्न है। इस कथा को संक्षेप में यहाँ उपस्थित करना उचित होगा।

परम धर्मात्मा और सदाचारी राजा विपश्चित् को यमदूत मरने के बाद नरक में ले गए। राजा ने आश्चर्य से पूछा कि उन्हें नरक में क्यों ले जाया जा रहा है तो उत्तर में यमदूत ने बताया कि एक बार उन्होंने मासिक धर्म से निवृत्त अपनी पत्नी के साथ सहवास नहीं किया। धर्म के विरुद्ध इस आचरण का हल्का फल तो भोगना ही पड़ेगा भले ही यह फल नरक में क्षणभर रहकर भोगना पड़े। इसके बाद यमदूत ने अच्छे और बुरे कर्मों के बारे में राजा को उपदेश दिया। इन कर्मों का फल अवश्य मिलता है। उसने हर पाप के लिए प्राप्त नरक-यातना का भी वर्णन किया। इन उपदेशों के बाद यमदूत राजा को वहाँ से ले जाने लगा। राजा चलने के लिए मुड़े, तभी उनके कानों में दुःखपूर्ण चीत्कार सुनायी पड़ी। नरक में रहने वालों ने उनसे क्षण-भर और रुक जाने की प्रार्थना की क्योंकि उनके शरीर से सुखद वायु निकल रही थी जो नरकवासियों के कष्ट को कम कर रही थी। आश्चर्य से राजा ने दूत से पूछा कि ऐसा क्यों है ? यमदूत ने बताया कि धर्मात्मा पुरुषों के सत्कर्मों के कारण उनके शरीर से स्फूर्तिदायक वायु निकलती है जो नरक-वासियों तक पहुँच कर उनके कष्ट को कम कर देती है। तब राजा ने कहा : "मैं समझता हूँ कि जितना आनन्द दुःखी लोगों को सुख देने में है उतना आनन्द स्वर्ग या ब्रह्मलोक में भी नहीं मिल सकता। यदि मेरे यहाँ रहने से यातना सहते इन बेचारों का कष्ट कम होता है तो मेरे मित्र ! मैं खम्भे की तरह अचल खड़ा रहूँगा। मैं यहाँ से नहीं हिलूँगा।"

राजा विपश्चित् ने कहा : "नहीं, मैं यहाँ से तब तक नहीं टलूँगा जब तक इन

---

१. जडभरत की तरह मेधावी भी योग का अनुयायी है।

२. पुराणों में मिलनेवाले नरक के वर्णनों में यह सबसे विस्तृत है पर अन्य पुराणों में भी ऐसे वर्णन आते हैं। S. Scherman ने Visionslitteratur, पृ० २३ आ०, 45 आ० में इस पर विचार किया है।

३. अध्याय १५, श्लोक ४७-७९, Rückert द्वारा (ZDMG 12, 1858, पृ० 336 आ०) जर्मन में अनूदित।

नरकवासियों को मेरी उपस्थिति से सुख मिलता रहेगा। उस व्यक्ति का जीवन व्यर्थ है, उसको लज्जा आनी चाहिए, जिसको दुःखी लोगों पर, शरण माँगने वालों पर—भले ही ये शत्रु क्यों न हों—दया नहीं आती। जिस व्यक्ति को कष्ट में पड़े लोगों पर दया नहीं आती यज्ञ, दान और तप न तो उसे इस लोक में काम आते हैं और न ही मोक्ष के लिए परलोक में। बच्चों, बूढ़ों और कमजोर लोगों के प्रति जिसका हृदय कठोर है उसे मैं मनुष्य नहीं मानता। वह राक्षस है। भले ही इन नरक-वासियों के कारण मुझे विष्ठा, दुर्गन्ध आदि का कष्ट सहना पड़ता है, भूख और प्यास की पीड़ा से मेरी इन्द्रियाँ विकल हो रही हैं तथापि दुःखी लोगों की रक्षा करने और सहायता करने को मैं स्वर्ग के सुखों से भी अधिक मधुर समझता हूँ। यदि मेरे कष्ट से अनेक दुःखी लोगों को प्रसन्नता मिलती है तो मुझे और क्या चाहिए? इसलिए हठ मत करो, जाओ और मुझे छोड़ दो।"

यमदूत ने कहा : "देखिए। धर्मराज[1] और शक्र आप को यहाँ से लिवा ले जाने के लिए चले आ रहे हैं। राजन्! आप को यहाँ से दूर ऊपर जाना ही पड़ेगा।"

धर्मराज ने कहा : "आपने अपने कर्मों से स्वर्ग पाया है अतः आप स्वर्ग चलें। आप इस देवरथ पर तुरन्त चढ़ जायँ और यहाँ से चल दें।"

राजा ने कहा : "धर्मराज! यहाँ नरक में लोग हजारों तरह से कष्ट भोग रहे हैं। वे दुःखपूर्ण स्वर में मुझे पुकार कर कह रहे हैं "हमारी रक्षा करें।" मैं यहाँ से नहीं जाऊँगा।"

शक्र ने कहा : "ये पापी अनेक कर्मों का फल नरक में भोग रहे हैं। महाराज! आप अपने पुण्य कर्मों का फल भोगने स्वर्ग में चलें।"

पर राजा की दृष्टि में नरकवासी पापी नहीं बल्कि दुःखी लोग हैं। राजा ने पूछा कि मेरे पुण्य कर्म कितने हैं तो धर्मराज ने स्वयं बताया कि उनके पुण्य कर्म अगणित हैं "जितनी समुद्र में बूँदें हैं, आकाश में तारे हैं :··· गंगा की रेती में जितने बालू के कण हैं।" इस पर राजा ने कहा कि उनकी एकमात्र यही इच्छा है कि उनके इन पुण्य कर्मों के प्रभाव से ये नरकवासी दुःखों से मुक्त हो जाएँ। देवताओं के इन्द्र ने उनकी इच्छा पूरी कर दी। वे स्वर्ग चले गए और सारे नरकवासी अपने कष्टों से मुक्त हो गए।[2]

---

१. सच्चे प्राचीन आख्यानों की शैली में उनका वहाँ आना नहीं वर्णित है बल्कि बातचीत में ही उनके आगमन की सूचना दे दी गई है और तुरन्त वे बोलने लगते हैं।

२. महाभारत के १८ वें पर्व में युधिष्ठिर के नरक जाने और उसके बाद स्वर्ग जाने का वर्णन मुझे विपश्चित् की कथा की भोंडी नकल लगता है। युधिष्ठिर को केवल नरक की माया ही दिखाई पड़ी थी; यह बात ही काफी अवनति की ओर संकेत करती है। पद्मपुराण के पातालखण्ड में (दे० Wilson, Works III,

यह सुन्दर संवाद भाषा और शैली के कारण महाभारत के सावित्री-उपाख्यान की याद दिलाता है। पर जिस तरह महाभारत में पुरोहिती-साहित्य की अनेक भोंड़ी कृतियाँ अत्युत्तम कविताओं के साथ-साथ मिलती हैं यही बात इस पुराण में भी हैं। ऊपर लिखित आख्यान के तुरन्त बाद अनसूया का आख्यान निबद्ध है जो सावित्री-आख्यान की हास्यास्पद नकल मालूम पड़ता है।

अनसूया एक आलसी, कोढ़ी, कठोर और हीन ब्राह्मण की परम पतिव्रता पत्नी थी। ब्राह्मण-सिद्धान्त के अनुसार चूँकि "पत्नी के लिए पति देवता के समान होता है" अतः उसकी पत्नी बड़े प्रेम और सावधानी के साथ अपने पति की सेवा करती थी। एक दिन उसके लंपट पति ने एक वेश्या के पास जाने की इच्छा प्रकट की जिसके सौन्दर्य से वह आकर्षित हो गया था। वह स्वयं तो चलने में असमर्थ था इसलिए उसकी पतिव्रता पत्नी ने उसे अपनी पीठ पर बिठाया और ले चली। संयोग से उस पति का पैर किसी साधु से छू गया और उसने शाप दे दिया कि वह सूर्योदय से पहले ही मर जाय। तब अनसूया ने कहा : "सूर्योदय होगा ही नहीं।" उसकी भक्ति के कारण सूर्य वस्तुतः उदित नहीं हुआ। इससे देवताओं को पूजा न मिल पायी और देवता लोग बड़े परेशान हुए। देवताओं को इसके सिवा और कोई चारा न था कि अनसूया के पति को न मरने दिया जाय।

महाभारत की तरह यहाँ भी आख्यानों के अलावा गृहस्थ धर्म, श्राद्ध, दैनिक-चर्या, नित्य कर्म, व्रत और उत्सव के बारे में शुद्ध उपदेशात्मक अंश भी लिखे गए हैं।[1] योग के बारे में भी एक प्रकरण (अध्या० ३६-४३) है।

अपने आप में पूर्ण एक रचना, जो निस्सन्देह मार्कण्डेयपुराण में बाद में जोड़ी

पृ० 49 आ०, वह आनन्दाश्रम संस्करण में नहीं है) राजा जनक भी नरक में जाते हैं क्योंकि उन्होंने एक गाय को मारा था और इसी तरह उन्होंने भी नारकीय प्राणियों का उद्धार किया था। एक यहूदी परीकथा में भी आता है कि एक निःस्वार्थ व्यक्ति दुःखितों की सेवा किया करता था और वह मरने के बाद स्वर्ग में नहीं जाना चाहता था क्योंकि स्वर्ग में किसी को भी उसकी सेवा की आवश्यकता नहीं होगी। इसके बजाय वह नरक में जाना पसन्द करता जहाँ उसको प्राणियों के साथ सहानुभूति प्रकट करने और उनकी सेवा करने का अवसर मिल सकेगा (I. L. Perez, Volkstümliche Erzählungen, पृ० 24 आ०)। शायद इन सारी कथाओं का मूल महायान बौद्धधर्म के बोधिसत्त्व अवलोकितेश्वर की कथा में हों।

१. अध्याय २९-३५। श्राद्धवाला अध्याय अंशतः शाब्दिक रूप में गौतमस्मृति से मिलता है जैसा कि W, Caland ने Altindischer Ahnenlkult. Leyden 1893, पृ० 112 में बताया है।

गई है, (यद्यपि ईसा की छठी शताब्दी के बाद नहीं) देवीमाहात्म्य है।[1] यह दुर्गादेवी की स्तुति है जिनकी पूजा कुछ दिनों पूर्व तक नरबलि के द्वारा की जाती थी। इस भयानक देवी के मन्दिरों में प्रतिदिन देवीमाहात्म्य का पाठ होता है और बंगाल में दुर्गापूजा[2] के अवसर पर बड़ी धूम-धाम से इसका पाठ होता है।

८. आग्नेय या अग्निपुराण[3]

इसका नाम अग्निपुराण इसलिए पड़ा कि अग्नि ने वसिष्ठ को इसका उपदेश किया। इसमें विष्णु के अवतारों का वर्णन है। विशेषतः राम और कृष्ण के वर्णन में यह पुराण रामायण, महाभारत और हरिवंश का अनुसरण करता है। यद्यपि प्रारम्भ में यहाँ पर विष्णु और विष्णु-पूजा का वर्णन है, विष्णु का एक द्वादशसाहस्री स्तोत्र

---

१. अध्याय ८१-९३। L. Poley ने 1831 में लैटिन में अनुवाद और संपादन किया। अंग्रेजी अनुवाद Pargiter ने अपने मार्कण्डेय पुराण के अनुवाद के अन्तर्गत (पृ० 465-523) किया। फ्रेंच में आंशिक अनुवाद Burnouf ने (JA 4, 1824, पृ० 24 आ०) किया। चंडी, चंडीमाहात्म्य, दुर्गामाहात्म्य तथा सप्तशती नामों से भी यह अनेक हस्तलेखों में प्राप्त होता है और स्वतन्त्र रूप से, बहुधा बंगला अनुवाद के साथ, इसका प्रकाशन हुआ है। बंगला में इसके विभिन्न अनुवादों के बारे में दे० D. Ch. Sen, Bengali Language and Literature, पृ० 225 आ०। इस ग्रन्थ पर कई टीकाएँ भी लिखी गई हैं—दे० Aufrecht, CC, I, पृ० 261 देवीमाहात्म्य का एक हस्तलेख ९९८ ई० का मिला है और इसकी रचना शायद सातवीं सदी के पहले ही हो चुकी थी क्योंकि देवीमाहात्म्य का एक श्लोक ९९८ ई० के एक शिलालेख में उद्धृत मालूम पड़ता है (D. R. Bhandarkar, JBRAS 23, 1909, पृ० 73 आ०)। बाण की कविता चण्डीशतक शायद इसी पर आधारित है। मि० G. P. Quackenbos. The Sanskrit- Poems of Mayūra...together with Text and Translation of Bāṇa's Caṇḍiśataka, New York 1917, पृ० 249 आ०; 297; Farquhar, Outline, पृ० 150; Pargiter, मार्कण्डेय पु० का अनुवाद, पृ० xii, xx।

२. बंगाल के सर्वाधिक लोकप्रिय इस उत्सव के बारे में मि० Shib Chander Bose, The Hindoos as they Are, पृ० 92 आ०।

३. Bibl. Ind. 1873-1879 तथा आनन्दा० सं० सि० No. 41 में प्रकाशित, M. N. Dutt द्वारा कलकत्ता से 1901 में अनुवाद। इसको वह्निपुराण भी कहते हैं। इसी नाम का एक उपपुराण भी है—दे० Eggeling, Ind. Off. Cat. VI, पृ० 1294 आ०।

(अध्याय ४८) दिया गया है तथापि यह मूलतः एक शैव ग्रंथ है और विस्तार से लिंगपूजा तथा दुर्गापूजा की रहस्यात्मक पद्धति का इसमें प्रतिपादन है। इसमें तांत्रिक साधना का उल्लेख है, देवताओं की मूर्तियों के निर्माण और उनकी प्राण-प्रतिष्ठा की विधि तथा कुछ अध्यायों में (३६८-३७०) मृत्यु, पुनर्जन्म एवं योग (३७१-३७९) का वर्णन किया गया है। ३८० वें अध्याय में भगवद्गीता के सिद्धान्तों का तथा ३८१ वें अध्याय में यमगीता का सारांश दिया गया है। फिर भी पुराणों की पद्धति के अनुरूप सृष्टि, वंशानुक्रम तथा भूगोल से सम्बन्धित अंशों का इसमें अभाव नहीं है। पर इस पुराण की मुख्य विशेषता इसकी विश्वकोशात्मकता है। वस्तुतः इसमें सब कुछ एकत्र कर दिया गया है। भूगोल, गणित एवं फलित ज्यौतिष, विवाह और मृत्यु की क्रियाएँ, शकुन विद्या, वास्तु विद्या, दैनिक जीवन की चर्या इन सारे विषयों पर अलग-अलग प्रकरण लिखे गए हैं। नीतिशास्त्र, युद्धविद्या, धर्मशास्त्र (जो याज्ञवल्क्य स्मृति से बहुत मिलता है) आयुर्वेद, छन्दःशास्त्र, काव्य, व्याकरण और कोशनिर्माण कला पर भी इसमें चर्चा की गई है।

यह महत्त्वपूर्ण विश्वकोश या इसके अलग-अलग भाग किस काल के हैं इसके बारे में कुछ कहना असम्भव है। इसमे बहुत अधिक अंश परस्पर भिन्न हैं फिर भी अनेक माहात्म्य और इसी तरह के अन्य ग्रथ अपने को अग्निपुराण से सम्बद्ध बतलाते हैं, यद्यपि इस पुराण की हस्तलिखित पोथियों में ये प्राप्त नहीं होते।

९. भविष्य या भविष्यत् पुराण

इसके नाम से ही मालूम होता है कि इसमें भविष्य के बारे में बातें कही गई हैं। पर इस नाम से हस्तलेखों में मिला ग्रन्थ वह प्राचीन ग्रंथ नहीं है जिसको आपस्तम्बीयधर्म-सूत्र में उद्धृत किया गया है।[१] इसका सृष्टिवर्णन मनुस्मृति से उधार लिया गया है जिसका अन्यत्र भी बहुधा उपयोग हुआ है।[२] इसके अधिकांश में ब्राह्मण धर्म और आचार, वर्णाश्रम धर्म आदि का वर्णन है। कथाएँ बहुत कम हैं। नागों की पूजा के निमित्त किए जानेवाले नागपञ्चमी व्रत के वर्णन के प्रसंग में नाग-असुरों तथा नाग-सम्बन्धी कुछ कथाओं का वर्णन किया गया है। शाकद्वीप (सीथियन लोगों का स्थान) में सूर्य-पूजा की पद्धति के बारे में एक अच्छा-खासा प्रकरण दिया

---

१. बंबई से श्रीवेंकट प्रेस द्वारा Aufrecht ने (ZDMG 57, 1903, पृ० 276 आ० में) "साहित्यिक धोखेबाजी" कहकर इसकी कलई खोल दी है।

२. मि० Wilson, Works VI, पृ० Lxiii; Bühler, SBE, Vol. 25, पृ०; cx आ०; 78 n; W. Jahn, Ueber die kosmogonischen Grundanschāuungen in Mānava-Dharma Śāstram, पृ० 38 आ०।

गया है जिसमें भोजक और मग इन दो सूर्य-पूजकों की भी चर्चा की गई है। निश्चय ही इसका सम्बन्ध पारसियों की सूर्य और अग्नि की पूजा की प्रथाओं से है।[१]

भविष्योत्तरपुराण में यद्यपि कुछ प्राचीन कथाएँ और आख्यान दिए गए हैं, फिर भी यह अधिकतर धार्मिक कृत्यों का लघु-ग्रन्थ है और भविष्यपुराण का ही एक अंग है।

अनेक माहात्म्य और कई आधुनिक ग्रंथ अपने को भविष्यपुराण का और खासकर भविष्योत्तरपुराण का अंग बतलाते हैं।

१०. ब्रह्मवैवर्त या ब्रह्मकैवर्त पुराण[२]

इसका दूसरा नाम (ब्रह्मकैवर्त) दक्षिण भारत में प्रचलित है। इस बृहदाकार ग्रन्थ के चार खण्ड हैं। प्रथम ब्रह्मखण्ड में ब्रह्मा के द्वारा की गई सृष्टि का वर्णन है। यहाँ ब्रह्मा को कृष्ण से अभिन्न बतलाया गया है।[३] इसमें कई आख्यान, खास कर नारद मुनि के बारे में, लिखे गए हैं। एक अध्याय में (१६ वें में) आयुर्वेद का प्रतिपादन है। दूसरा खण्ड प्रकृति खण्ड है जिसमें मूल प्रकृति का वर्णन है। यहाँ प्रकृति का बड़े काल्पनिक ढंग से वर्णन है। कृष्ण की आज्ञा से प्रकृति पाँच देवियों (दुर्गा, लक्ष्मी, सरस्वती, सावित्री और राधा) के रूप में परिवर्तित हो जाती है। तीसरा गणेश खण्ड है। इसमें हाथी के मुख वाले देवता गणेश का वर्णन है। इस देवता को प्राचीन भारत के देवमण्डल में स्थान नहीं दिया गया था पर अपेक्षाकृत आधुनिक भारतीय देवताओं में गणेश सर्वाधिक पूजित हैं।[४] यहाँ विचित्र ढंग से गणेश को कृष्ण का अवतार बतलाया गया है। अन्तिम और सब से बड़ा खण्ड कृष्णजन्म खण्ड है जिसमें न

---

१. सि० Aufrecht, Bodl. Cat., पृ० 31 आ०; Wilson, Works, X, पृ० 381 आ०। ८६१ ई० में लिखे मग मातुर्व के एक शिलालेख से पता चलता है कि मग लोग नवीं शताब्दी में राजपूताना में रहा करते थे। मग शाकद्वीपी ब्राह्मणों का नाम है जो आज भी जोधपुर जिले में रहते हैं। ये अपना इतिहास सूर्यपुराण और भविष्यपुराण से प्रारम्भ मानते हैं। दे० D.R. Bhandarkar, Ep. Ind. IX, पृ० 279।

२. कलकत्ता से १८८७ तथा १८८८ में प्रकाशित। अंग्रेजी अनुवाद SBH में। इसका विस्तृत विवेचन Wilson ने Works, III, पृ० 91 आ० में किया है।

३. इस ग्रन्थ के नाम का अर्थ है "वह पुराण जो ब्रह्म के परिणाम का विवेचन करता है।" दक्षिण भारतीय नाम मेरी समझ में नहीं आता।

४. B. C. Mazumdar का कहना है कि उन्होंने बंगला पत्रिका वंगदर्शन में सिद्ध किया है कि "पार्वती के पुत्र गणेश की पूजा छठीं शताब्दी इसवी के पहले हिन्दुओं को एकदम अज्ञात थी।" (JBRAS 23, 1909, प० 82)

केवल कृष्ण के जन्म का बल्कि कृष्ण के पूरे जीवन का, विशेषतः उनके द्वारा लड़े गए युद्धों और गोपियों के साथ उनकी प्रेम-लीला का, वर्णन है। पूरे पुराण का यह मुख्य अंश है जिसका उद्देश्य कथाओं, आख्यानों और स्तोत्रों के द्वारा कृष्ण और उनकी प्रेयसी राधा की स्तुति करना है। यहाँ राधा कृष्ण की शक्ति है।[1] इस पुराण के अनुसार कृष्ण देवाधिदेव हैं और न केवल ब्रह्मा और शिव बल्कि विष्णु भी कथाओं के माध्यम से कृष्ण के अनुचर दिखाए गए हैं।

बहुत से माहात्म्य अपने को इस पुराण का अंग बतलाते हैं। यह पुराण बिलकुल हीन-कोटि की रचना है।

११. लैङ्ग या लिङ्ग पुराण[2]

इस पुराण का वर्ण्य विषय विभिन्न रूप में शिव की पूजा तथा विशेषकर लिंगोपासना है।[3] लिङ्गपूजा की उत्पत्ति के बारे में एक अस्पष्ट-सा आख्यान दिया गया है। शिव जब वनवास कर रहे थे तो मुनि-पत्नियाँ उनसे प्रेम करने लगीं। इस पर मुनियों ने उन्हें शाप दे दिया।[4] सृष्टि-वर्णन में शिव को वह स्थान दिया गया है जो अन्यथा विष्णु को प्राप्त है। विष्णु के अवतारों के समानान्तर लिङ्ग पुराण में भी शिव के अट्ठाइस अवतारों की कथाएँ दी हुई हैं। कुछ भागों पर तन्त्रों का प्रभाव दिखाई

---

१. निम्बार्क, शायद बारहवीं सदी में, राधा को कृष्ण की नित्य सहचरी मानते हैं। उनके अनुसार कृष्ण विष्णु के अवतार नहीं बल्कि नित्य ब्रह्म हैं (मि० Farquhar, Outline, पृ० 237 आ०)। सोलहवीं शताब्दी में आकर ही राधा की शक्ति के रूप में पूजा करनेवाले राधावल्लभ संप्रदाय का प्रादुर्भाव हुआ। दे० Grierson, ERE, X पृ० 559 आ०; Farquhar, वही, पृ० 318।

२. कलकत्ता, बंबई, पूना और मद्रास से एक टीका के साथ प्रकाशित।

३. साधारणतः लिंग पत्थर का बनता है और शिव में निहित सृष्टि और उत्पादन की शक्ति के प्रतीक के रूप में ही इसकी पूजा होती है। फूल, पत्ती और जल से ही इसकी साधारण ढंग की पूजा होती है। लिंग-पूजा में कोई अश्लीलता नहीं मिलती। मि० Wilson, Works, VI, पृ० lxix; Monier Williams, Brāhmanism and Hinduism, चतुर्थ संस्क०, 1891, पृ० 83, 90 आ०; Eliot, Hinduism and Buddhism, II, 142 आ०। करीब ५५० ई० में ही कंबोडिया तथा चम्पा में लिंग-पूजा प्रचलित थी, दे० Eliot, वही, पृ० 143, note 3।

४. I, 28-33। जर्मन अनुवाद W. Jahn द्वारा ZDMG 69, 1915, पृ० 539 आ० में। यही कथा अन्य पुराणों में भी मिलती है—दे० Jahn, वही, पृ० 529 आ०; 70, 1916, पृ० 301 आ० तथा 71, 1917, 167 आ०।

देता है।[1] इस बात के कारण तथा शिव-पूजकों के निमित्त लिखे गए इस ग्रन्थ की विशेषता के कारण यह मालूम पड़ता है कि प्रस्तुत पुराण अधिक प्राचीन कृति नहीं है।

१२. वाराह या वराहपुराण[2]

इस नाम का कारण यह है कि विष्णु ने वराह अवतार धारण कर के पृथ्वी देवी को इस पुराण का प्रवचन किया। यद्यपि इसमें सृष्टि, वंशावली आदि की अतिसंक्षिप्त चर्चा है तथापि 'पुराण' शब्द के प्राचीन अर्थ में यह पुराण है ही नहीं। यह विष्णुभक्तों के निमित्त लिखा गया स्तोत्रों और पूजा-पद्धतियों का एक संग्रहमात्र है। वैष्णव पुराण होते हुए भी इसमें शिव और दुर्गा से सम्बन्धित कुछ कथाएं दी हुई हैं। कई अध्याय (९०-९५) मातृ-पूजा और देवियों की पूजा के बारे में हैं। हमें गणेश की उत्पत्ति की कथा और उसके बाद एक गणेशस्तोत्र भी मिलता है। इसमें श्राद्ध (१३ आ०), प्रायश्चित्त (अध्याय ११९ आ०), देव-प्रतिमा के निर्माण की विधि (अध्याय १८१ आ०) आदि का भी वर्णन है। अध्याय १५२ से १६८ तक कृष्ण की जन्मभूमि मथुरा का माहात्म्य बतलाया गया है। एक अन्य लम्बे प्रकरण में (अध्याय १९३-२१२) नचिकेता की कथा कही गई है पर लेखक का ध्यान कठोपनिषद्[3] में प्राप्त दार्शनिक विचारों की अपेक्षा स्वर्ग और नरक के वर्णन में अधिक उलझा हुआ है।

१३. स्कान्द या स्कन्दपुराण

इस पुराण का नाम शिव के पुत्र तथा देवताओं के सेनानी स्कन्द के नाम पर पड़ा है। स्कन्द ने इसमें शैव सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है।[4] पर इसी नाम का प्राचीन पुराण शायद एकदम नष्ट हो गया है। अनेक छोटे-बड़े ग्रन्थ स्कन्दपुराण के खण्ड या संहिता के रूप में प्राप्त होते हैं, बहुत बड़ी संख्या में माहात्म्य भी इस पुराण के अंश बताए गए हैं[5] फिर भी बहुत प्राचीन हस्तलेख में एक ग्रन्थ ऐसा मिलता है जो

---

१. मि० Farquhar, Outline, पृ० 195 आ०।

२. हृषीकेश शास्त्री द्वारा Bibl. Ind. 1893 में प्रकाशित। 218, 1 के अनुसार माधवभट्ट और वीरेश्वर ने विक्रम संवत् १६२१ (१५६४ ई०) में बनारस में यह पुराण "लिखा"। पर यह समय इस पुराण की रचना का नहीं हो सकता। यह इसकी प्रतिलिपि का काल है।

३. मि० L. Scherman, Visionslitteratur, पृ० 11 आ०। महाभारत XIII, 71 की तरह यहाँ भी नाचिकेत नाम दिया गया है।

४. मत्स्यपु० 53, 42 आ०। अन्यत्र की तरह यहाँ भी स्कन्दपुराण का परिमाण ८११०० श्लोक बताया गया है। पद्म पु० VI, 263, 81 आ० में भी स्कन्दपुराण की तामस अर्थात् शैव पुराणों में गिनती की गई है।

५. मि० Eggeling, Ind. Off. Cat. VI, पृ० 1319-1389।

"स्कन्दपुराण" कहा गया है।[१] पर यह ग्रन्थ भी शायद ही प्राचीन पुराण हो क्योंकि इसमें शिव-सम्बन्धी सभी प्रकार के आख्यान मिलते हैं—खास कर अंधक तथा अन्य असुरों के साथ उनके युद्धों के आख्यान। कुछ अध्यायों में नरक और संसार के वर्णन हैं, एक प्रकरण योग के बारे में भी है। पर इसमें शायद ही ऐसी कोई बात मिले जो पुराण के पांच लक्षणों से मिलती हो।[२] स्कन्दपुराण के अंग मानेजानेवाले ग्रन्थों से हमें पता चलता है कि[३] इस पुराण में छः संहिताएं—सनत्कुमारीया, सूत, ब्राह्मी, वैष्णवी, शाङ्करी और सौरी संहिताएं—तथा पचास खण्ड हैं। सूतसंहिता काफी बड़ा ग्रन्थ है।[४] इसमें चार खण्ड हैं जिनमें से पहला सिर्फ शिव की पूजा का प्रतिपादन करता है। दूसरा खण्ड (ज्ञानयोगखण्ड) न केवल योग का ही बल्कि वर्णाश्रम धर्म का भी प्रतिपादन करता है। तीसरा खण्ड मोक्षमार्ग का प्रतिपादन करता है। चौथे खण्ड का आरम्भ वैदिक ब्राह्मण कर्मों के प्रतिपादन से होता है, पर बाद में इसमें 'ध्यानयज्ञ', 'ज्ञानयज्ञ', ब्रह्मगीता का तथा वेदान्त प्रतिपादक सूतगीता का उपस्थापन किया गया है। सनत्कुमार संहिता में भी शैव आख्यान, खासकर काशी से सम्बद्ध आख्यान, दिए गए हैं।[५] सौरीसंहिता का उपदेश सूर्य देवता ने याज्ञवल्क्य को किया-ऐसा माना गया है।

---

१. गुप्त लिपि में लिखे इस हस्तलेख को हरप्रसाद शास्त्री ने नेपाल में पाया और लिपि के आधार पर उन्होंने तथा C. Bendall ने इसे ७वीं शताब्दी ईसवी का माना है। दे० हरप्रसाद शास्त्री, Catalogue of Palm Leaf and Selected Paper Mss. belonging to the Durbar Library, Nepal, कलकत्ता 1905 पृ० lii, 141 आ०।

२. ऐसा हरप्रसाद शास्त्री द्वारा दी गई संक्षिप्त सूची के आधार पर है। चूंकि हस्तलेख की पुष्पिका में किसी खंड का नाम नहीं लिखा है इसलिए हरप्रसाद शास्त्री इसे मूल स्कन्द पु० कहते हैं। हरप्रसाद की यह मान्यता (वही, I, पृ० 4) कि यह लेख शायद अम्बिकाखंड का हो, गलत सिद्ध हो गई है। अम्बिकाखंड में (Eggeling, वही, पृ० 1321 आ०) सनत्कुमार द्वारा व्यास को सुनायी गई शिव और दुर्गा की कथाएँ संगृहीत हैं।

३. Eggeling वही, पृ० 1321, 1362।

४. माधवाचार्य की टीका के साथ आनन्दाश्रम No. 25, 1893 में तीन भागों में प्रकाशित।

५. सह्याद्रिखंड (J. G. da Cunha द्वारा बंबई से 1877 में प्रकाशित) सनत्कुमार संहिता से संबंधित है। मि० Eggeling, वही पृ० 1369 आ०। सह्याद्रिखंड के वेंकटेशमाहात्म्य का (इसमें मंजगुनी के मंदिर का माहात्म्य है) अनुवाद G.K. Betham ने Ind. Ant. 24, 1895, पृ० 231 आ० में किया है। इसी खंड में ऋष्यश्रृंग का भी आख्यान शायद संगृहीत है जो शायद स्थानीय आख्यान था और V. N. Narasimmiyangar ने (Ind.Ant. 2, 1873, पृ० 140 में) इसका अनुवाद दिया है।

इसमें मुख्यतः सृष्टि प्रक्रिया के बारे में अनेक सिद्धान्त प्रतिपादित किए गए हैं। शांकरी संहिताको अगस्त्यसंहिता भी कहा गया है क्यों कि स्कन्द ने इसका उपदेश अगस्त्य को दिया था। पर इसमें संदेह है कि यह वही अगस्त्यसंहिता है जिसमें विष्णु की भक्ति का और खासकर रामावतार का वर्णन है।[1] एक काशीखंड[2] भी है जिसमें काशी की पवित्रता और उसके आसपास के शिव मंदिरों का वर्णन दिया गया है। गंगासहस्रनाम इसी खण्ड में आया है। इस पुराण से सम्बन्धित कहे जाने वाले ग्रंथों में से कुछ ही ग्रन्थों का उल्लेख ऊपर किया गया है।

१४. वामनपुराण[3]

यह पुराण भी अपने मूल रूप में हमारे सामने नहीं है क्योंकि सृष्टि आदि पांच विषयों में से किसी का वर्णन शायद ही इसमें हुआ हो। साथ ही इस पुराण के विषय और विस्तार के बारे में जो बातें मत्स्यपुराण में[4] कही गई हैं वे वर्तमान ग्रन्थ में नहीं मिलतीं। ग्रन्थ का प्रारम्भ विष्णु के वामनावतार के वर्णन से होता है और इसी से इसका नाम भी वामन पुराण पड़ा है। कई अध्यायों में विष्णु के अवतारों का सामान्य वर्णन किया गया है।[5] दूसरी ओर एक प्रकरण में लिंगपूजा का वर्णन है तथा तीर्थमाहात्म्य के वर्णन के प्रसंग में शिव और उमा का विवाह, गणेश तथा कार्तिकेय की उत्पत्ति आदि से सम्बन्धित शैव आख्यान कहे गए हैं।

---

१. मि० Eggeling, वही, पृ० 1319 आ०; 1321। शंकरसंहिता के शिवरहस्य खंड में (Eggeling, वही, पृ० 1363 आ०) १८ पुराणों की गिनती की गई है जिनमें से १० (शैव, भविष्य, मार्कण्डेय, लिङ्ग, वाराह, स्कान्द, मात्स्य, कौर्म, वामन और ब्रह्माण्ड) पुराणों को शैव बताया गया है, चार (वैष्णव, भागवत, नारदीय और गारुड) को वैष्णव, ब्राह्म तथा पाद्म को ब्रह्मा से संबंधित, आग्नेय को अग्नि से तथा ब्रह्मवैवर्त को सविता से संबंधित्त कहा गया है। पर साथ ही यह भी कह दिया गया है कि वैष्णव पुराणों में शिव और विष्णु में अभेद, ब्रह्मपुराण में शिव, ब्रह्मा और विष्णु में अभेद प्रतिपादित है।

२. टीकाओं के साथ बनारस से १८६८ में, कलकत्ता से १८७३-८० में तथा बंबई से १८८१ में प्रकाशित।

३. बंगला अनुवाद के साथ कलकत्ता से १८८५ में प्रकाशित।

४. 53, 54 आ०। मि० Wilson, Works, I, पृ० lxxiv आ०।

५. Aufrecht (Bodl. Cat. पृ० 46) के अनुसार ये अध्याय (24-32) मुख्यतः मत्स्य पु० से लिये गए हैं।

१५. कौर्म या कूर्मपुराण

इसी ग्रन्थ में बताया गया है कि इस कूर्मपुराण में चार संहिताएँ है—ब्राह्मी, भागवती, सौरी और वैष्णवी। पर कूर्मपुराण के नाम से हमें आज केवल ब्राह्मी संहिता ही मिलती है।[१] इस पुराण का आरम्भ विष्णु के कूर्मावतार की स्तुति से होता है। जब समुद्रमंथन हुआ था तो विष्णु ने कूर्म (कछुए) का रूप धारण करके मंदराचल को अपनी पीठ पर धारण किया था। उसी समय लक्ष्मी समुद्र से उत्पन्न हुईं और विष्णु की पत्नी बन गईं। जब ऋषियों ने पूछा कि वह देवी कौन है तो विष्णु ने उत्तर दिया कि वह उनकी परम शक्ति है। इसके बाद भूमिका में इन्द्रद्युम्न की कथा कही गई है जो पूर्वजन्म में एक राजा था और विष्णुभक्ति के कारण ब्राह्मणकुल में उत्पन्न हुआ। उसको शिव की महत्ता का ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा हुई। लक्ष्मी ने उसे विष्णु के पास जाने को कहा। उसने स्रष्टा, पालक, विभु देवता के रूप में तो विष्णु की आराधना की ही पर "महादेव", "शिव" और सारे प्राणियों के "माता-पिता" के रूप में भी उसने विष्णु को पूजा। अन्त में कूर्मावतार धारण करके विष्णु ने उस ब्राह्मण को इस पुराण का उपदेश दिया। इस भूमिका की तरह सारे ग्रन्थ में शिव ही परम देवता के रूप में विद्यमान हैं पर बार-बार इस बात पर जोर दिया गया है कि ब्रह्मा, विष्णु और शिव एक ही हैं।[२] देवी के रूप में शक्ति अर्थात् जननी-शक्ति की पूजा पर भी जोर दिया गया है। देवी, परमेश्वरी, शिव की शक्ति और अर्धांगिनी की स्तुति ८००० नामों से की गई है।[३] इसी तरह विष्णु और शिव में अभेद होने के कारण विष्णु की शक्ति, लक्ष्मी देवी से वस्तुतः भिन्न नहीं मानी गई हैं।[४] कार्तवीर्य के कुछ लड़के शिव की और कुछ विष्णु की पूजा करते थे। वे यह निर्णय न कर सके कि कौन देवता सबसे अधिक पूज्य है। तब सप्तर्षियों ने इस विवाद का निपटारा यह कह कर किया कि किसी मनुष्य के लिए वही देवता है जिसकी वह पूजा करता है तथा सारे देवता किसी-न-किसी के आराध्य होते ही हैं।[५] फिर शिव सारे देवों के भी आराध्य देव हैं। यहाँ तक कि साक्षात् विष्णु नारायण श्रीकृष्ण भी घोर तपस्या के द्वारा प्राप्त

---

१. नीलमणि मुखोपाध्याय द्वारा Bibl. Ind. में 1890 में प्रकाशित। इसमें ६००० श्लोक हैं। भागवत, वायु और मत्स्य पुराणों के अनुसार कूर्म पुराण में १७००० या १८००० श्लोक हैं।

२. I, 6 (पृ० 56) में ब्रह्मा की त्रिमूर्ति के रूप में स्तुति है। I, 9 में खास तौर से त्रिदेवों की एकता प्रतिपादित है। मि० I, 26 को भी।

३. 1, 11 और 12। शिव नर और नारी इन दो रूपों में विभक्त होते हैं। नर रूप से रुद्रों की तथा नारी-रूप से शक्तियों की उत्पत्ति होती है। मि० Farquhar, Outline, पृ० 195 आ०।

४. 1, 17। प्रह्लाद विष्णु और उनकी शक्ति लक्ष्मी की स्तुति करते हैं।

५. I, 22।

शिव के वरदान से ही अपनी पत्नी जाम्बवती में पुत्र उत्पन्न कर सके।[1] सारे देवों का आदर करने की सहिष्णुता के बावजूद अनेक स्थानों पर मनुष्यों को गुमराह करने वाले मिथ्या सिद्धान्तों और कलियुग में आगे लिखे जानेवाले असद् ग्रन्थों की ओर भी संकेत किया गया है।[2]

सृष्टि, वंशानुक्रम आदि पाँच पुराण लक्षण भी कूर्मपुराण में बतलाए गए हैं और इस प्रसंग में विष्णु के कुछ अवतारों की भी चर्चा की गई है। पर एक पूरा अध्याय (I, 53) माहात्म्यों के बारे में है। दूसरे खण्ड का काफी बड़ा भाग काशी और प्रयाग के माहात्म्यों के बारे में है जिसमें ध्यान-समाधि के द्वारा शिव का ज्ञान प्राप्त करना वर्णित है। इसके बाद एक व्यासगीता आती है। इस बड़े प्रकरण में व्यास पवित्र कर्मों और अनुष्ठानों के द्वारा परम ज्ञान की प्राप्ति बतलाते हैं अतः गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास आश्रम के कर्तव्यों के बारे में वे एक लम्बा उपदेश देते हैं। कुछ अध्यायों में अनेक प्रकार के पापों का प्रायश्चित्त वर्णित है। यहाँ शुद्धि की भी चर्चा है। इसी प्रसंग में सीता की एक कथा (जो रामायण में नहीं मिलती) वर्णित है कि कैसे अग्नि-देवता ने उन्हें रावण के हाथों से छुड़ाया।'

१६. मात्स्य या मत्स्यपुराण[3]

यह भी पुराण-साहित्य की प्राचीनतर कृतियों में से एक है अथवा कम-से-कम यह उन पुराणों में से है जिनमें अधिकांश अंश प्राचीन हैं और इसलिए पुराण का लक्षण उन पर घटता है। इसका प्रारम्भ प्रलय की उस घटना के वर्णन से होता है जब मत्स्य-रूप धारण कर विष्णु ने एकाकी मनु की रक्षा की। जिस नौका में मनु बचे हुए थे उसको प्रलय के बीच से खींचते हुए मत्स्यरूपधारी विष्णु के साथ मनु का

---

१. I, 25-27। यहाँ पर महायोगी याज्ञवल्क्य द्वारा लिखित योगशास्त्रका निर्देश है जो शायद याज्ञवल्क्यगीता की ओर संकेत है जिसमें योग की शिक्षा दी गई है। मि० Hall, a contribution towards an Index to the Bibliography of the Indian Philosophical Systems, कलकत्ता 1859, पृ० 14। I, 26 में कृष्ण लिंगपूजा का अनुमोदन करते हुए लिंग की उत्पत्ति बतलाते हैं।

२. शैव संप्रदायों और कापाल, भैरव, यामल, वाम, आर्हत, नाकुल (लाकुलीश पाशुपत, मि० Bhandarkar, Vaisnavism etc. पृ० 116 आ०), पाशुपत और वैष्णव पान्चरात्र शास्त्रों के बारे में ऐसा कहा गया है : I, 12; 16; 80। वाम वे शक्ति पूजक हैं जो मद्यादि के द्वारा पूजा करते हैं।

३. आनन्दा० No. 54 में प्रकाशित। SBH, Vol. 17 में अंग्रेजी अनुवाद। संस्करण में २९१ अध्याय हैं पर Aufrecht, Bodl. Cat. पृ० 38 आ० के अनुसार हस्तलेख में सिर्फ २७८ अध्याय हैं।

संवाद इस पुराण का मुख्य विषय है। सृष्टि का विस्तृत वर्णन है, इसके बाद वंशानुक्रम आता है। इसी के बीच में पितरों के बारे में एक प्रकरण घुसाया गया है (अध्याय १४–२२)। भूगोल, ज्योतिष और कालक्रम से सम्बन्धित प्रकरणों का भी अभाव नहीं है। V. A. Smith के अनुसार इस पुराण में प्राप्त राजाओं की सूची आन्ध्रवंश के राजाओं के बारे में अधिक विश्वसनीय है। महाभारत और हरिवंश से इसके अनेक भाग बहुत मिलते-जुलते हैं और प्रायः शब्दसाम्य भी है—यथा ययाति (अध्याय २४–४३), सावित्री (२०८–२१४), विष्णु के अवतार (१६१–१७९, २४४–२४८) आदि की कथाएँ। पर इसमें अनेक क्षेपक भी हैं। उदाहरण के लिए व्रतों के बारे में (अध्याय ५४–१०२) एक प्रकरण, प्रयाग-माहात्म्य (अध्याय १०३–११२), वाराणसी-माहात्म्य (अविमुक्तमाहात्म्य, १८०–१८५), नर्मदामाहात्म्य (१८६–१९४), राजधर्म प्रकरण (२१५–२२७), शकुनविचार (२२८–२३८), गृहप्रवेश प्रकरण (२५२–२५७), देवप्रतिमा, मन्दिर और भवन के निर्माण के बारे में एक प्रकरण (२५८–२७०) सोलह दानों के बारे में एक प्रकरण (२७४–२८९) आदि। जहाँ तक धार्मिक विषयों का सम्बन्ध है, मत्स्यपुराण को उतना ही शैव माना जा सकता है जितना कि वैष्णव। वैष्णवों के धार्मिक उत्सवों के साथ-साथ शैव उत्सव भी वर्णित हैं और शैव तथा वैष्णव दोनों प्रकार के आख्यानों का उल्लेख है। तेरहवें अध्याय में देवी गौरी ने दक्ष को अपने १०८ नाम बताए हैं जिनसे वे प्रसन्न होती हैं। यह स्पष्ट है कि दोनों सम्प्रदायों ने इसका धर्मग्रन्थ के रूप में उपयोग किया।

१७. गारुड या गरुडपुराण[1]

यह एक वैष्णव-पुराण है। इसका नाम एक पौराणिक पक्षी गरुड के नाम पर पड़ा है। स्वयं विष्णु ने इस पुराण का उपदेश गरुड को किया और गरुड ने कश्यप को इसे बताया। पाँच लक्षणों में से कुछ का समावेश इसमें हुआ है यथा सृष्टि, मन्वन्तर, सूर्य और चन्द्र वंशों की वंशावली। पर अधिकतर ध्यान विष्णु-पूजा, वैष्णव व्रत, प्रायश्चित्त तथा तीर्थमाहात्म्यों पर दिया गया है। शक्ति-पूजा का भी वर्णन इसमें है और पंचदेवोपासना (विष्णु, शिव, दुर्गा, सूर्य और गणेश[2]) की विधि भी बताई गई है। फिर अग्निपुराण की तरह यह भी एक विश्वकोश जैसा ग्रंथ है जिसमें नाना प्रकार के विषय वर्णित हैं। उदाहरणार्थ रामायण, महाभारत और हरिवंश की विषय-वस्तु दी गई है। सृष्टि-क्रम, ज्योतिष (गणित और फलित), शकुन-विचार, सामुद्रिक शास्त्र, आयुर्वेद, छन्द, व्याकरण, रत्नपरीक्षा और नीति के बारे में

---

१. जीवानन्द विद्यासागर द्वारा कलकत्ता से 1890 में प्रकाशित। मन्मथनाथ दत्त द्वारा अंग्रेजी अनुवाद कलकत्ता से 1908 में (Wealth of India, Vol. VIII) प्रकाशित।

२. मि० Farquhar, Outline, पृ० 178 आ०।

भी प्रकरण लिखे गए हैं। याज्ञवल्क्य-धर्मशास्त्र का एक बड़ा अंश भी गरुडपुराण में सम्मिलित किया गया है।

गरुडपुराण का उत्तरखंड या दूसरा भाग प्रेतकल्प है जो बृहदाकार होते हुए भी एकदम क्रमहीन कृति है। इसमें मृत्यु, मरनेवाले और मरने के बाद की सारी बातें बताई गई हैं। अनेक पुनरावृत्तियों के साथ और विचित्र तरीके से उलझे रूप में मृत्यु के बाद आत्मा की स्थिति, कर्म, पुनर्जन्म और जन्म से मुक्ति के सिद्धान्त वर्णित हैं। संसार के कारणभूत वासना, मृत्यु की पूर्व सूचना, यम का मार्ग, प्रेतों की स्थिति (अर्थात् वे मृत आत्माएँ जो पृथ्वी के चारों ओर घूमती रहती हैं और जिनको परलोक में स्थान नहीं मिल सका है), नरक की यातनाएँ तथा अपशकुन और स्वप्न उत्पन्न करनेवाले प्रेतों की बातें भी बताई गई हैं। बीच-बीच में, मृत्यु समीप आने पर किए जानेवाले कर्मों का, मरणासन्न प्राणी का तथा शव के संस्कारों का, और्ध्व-देहिक कृत्यों का, पितरों की पूजा का तथा पति के साथ चिता पर जलकर सती हो जानेवाली स्त्री के विशेष और्ध्वदेहिक कर्मों का भी विस्तृत वर्णन किया गया है। यत्र-तत्र हमें ऐसे आख्यान भी मिलते हैं जो बौद्धों के पेतवत्थु की याद दिलाते हैं। इसमें प्रेत लोग अपनी प्रेतावस्था का कारण बताते हैं[1]। इस कृति का एक सारोद्धार नौनिधिराम[2] ने लिखा। पर वैसा नाम होने पर भी यह ग्रन्थ प्रेतकल्प का सिर्फ सार ही नहीं है क्योंकि लेखक ने अन्य पुराणों से भी सहायता ली है और विषय को अधिक क्रम-बद्ध रूप में उपस्थित किया है। अन्य ग्रन्थों के अलावा लेखक ने भागवतपुराण से सहायता ली है जिससे मालूम होता है कि वह भागवत की रचना के बाद हुआ है।

गरुडपुराण से सम्बद्ध माहात्म्यों में से गयामाहात्म्य का उल्लेख विशेष रूप से कर देना चाहिए। गया में श्राद्ध करना विशेष फल देनेवाला माना गया है।

१८. ब्रह्माण्डपुराण[3]

कूर्मपुराण की सूची में अठारहवें पुराण को "वायवीय ब्रह्माण्ड" कहा गया है जिसका अर्थ है "वायु द्वारा कथित ब्रह्म के अण्डे का पुराण।" यह सम्भव है कि

---

१. प्रेतकल्प का विस्तृत विवेचन Abegg ने Der Pretakalpa des Garuḍa Purāṇa (Naunidhirāma's Sâroddhāra), 1921, पृ० 8 में दिया है।

२. बंबई के निर्णयसागर प्रेस से गरुडपुराण शीर्षक से सारोद्धार का प्रकाशन १९०३ में हुआ। अंग्रेजी अनुवाद E. Wood, और S. V. Subrahmaṇyam ने SBH. Vol. IX, 1911 में प्रकाशित कराया। Abegg ने (ऊपर की टिप्पणी में दे०) सुन्दर जर्मन अनुवाद किया है।

३. वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई से १९०६ में प्रका०।

मूल ब्रह्माण्डपुराण वायुपुराण का ही एक प्राचीनतर रूप रहा हो[१]। मत्स्यपुराण (५३, ५५ आ०) के अनुसार ब्रह्मा ने इसका उपदेश दिया और इसमें ब्रह्मा के अंड[२] एवं १२२०० श्लोकों में भविष्य में आनेवाले कल्पों का वर्णन है। पर, ऐसा मालूम होता है कि इस नाम का मूल ग्रन्थ नष्ट हो गया है क्योंकि प्राप्त हस्तलेखों में अधिकतर ब्रह्माण्डपुराण से सम्बद्ध माहात्म्य, स्तोत्र और उपाख्यान ही दिए गए मिलते हैं।

अध्यात्मरामायण[३] (अर्थात् "वह रामायण जिसमें राम परब्रह्म माने गए है") में अद्वैत और रामभक्ति को मोक्ष का मार्ग बताया गया है। यह बहुत प्रसिद्ध ग्रन्थ ब्रह्माण्डपुराण का एक भाग माना गया है। वाल्मीकि के ग्रन्थ की तरह इसमें भी सात काण्ड हैं और प्राचीन इतिहास-काव्य की तरह इन काण्डों के भी वे ही नाम हैं। पर बाहर से देखने में ही यह इतिहास-काव्य लगता है, वस्तुतः यह स्वरूप से तान्त्रिक भक्ति-ग्रंथ है। तन्त्रों की तरह यह शिव और उनकी पत्नी उमा के बीच संवाद के रूप में निबद्ध है। पूरे ग्रन्थ में राम मूलतः विष्णु हैं और रावण द्वारा हरी गई सीता केवल छाया है। लक्ष्मी और प्रकृति से अभिन्न असली सीता पुस्तक की समाप्ति के कुछ पहले के अग्नि-प्रवेश की घटना के वर्णन के पहले सामने नहीं आतीं। रामहृदय (I, 1) तथा रामगीता (VII, 5) राम के भक्त कण्ठ करते हैं। सोलहवीं शताब्दी में वर्तमान मराठी सन्त-कवि एकनाथ इसे आधुनिक ग्रन्थ कहते हैं जिससे सिद्ध होता है कि यह ग्रंथ बहुत प्राचीन नहीं हो सकता[४]।

---

१. मि० Pargiter, Anc. Ind. Hist. Trad. पृ० 77 आ०। H. H. Wilson (Works, VI, पृ० l xxxv आ०) ने ब्रह्माण्डपु० के एक हस्तलेख की चर्चा की है जिसका पहला भाग वायुपु० से करीब बिलकुल मिलता है और दूसरे भाग में तांत्रिक पद्धति के द्वारा दुर्गा के एक रूप ललिता की पूजा वर्णित है। बालि द्वीप में स्थानीय शैवों का एकमात्र धर्मग्रंथ कोई ब्रह्माण्डपु० है। मि० R. Friederich, JRAS., 1876, पृ० 170, आ०; Weber, Ind. Stud. II, पृ० 131 आ०।

२. ब्राह्मणों और उपनिषदों में भी सुवर्ण के अंड की चर्चा आती है जिससे विश्व की उत्पत्ति हुई। मि० शतपथ ब्राह्म० XI, 1, 6 और छान्दोग्य उप० III, 9, 1। पुराणों की सृष्टि-प्रक्रिया के अनुसार ब्रह्मा (या ब्रह्मा के रूप में विष्णु) अंड के भीतर निवास करते हैं जिसमें सारी सृष्टि समाहित है और स्रष्टा की इच्छा से वह सृष्टि व्यक्त हो जाती है। मि० विष्णुपु० I, 2; वायुपु० 4, 75 आ०; मनुस्मृति 1, 9 आ०।

३. कई भारतीय संस्करण और टीकाएँ हैं जिनमें शंकर की भी एक टीका है। लाल बैजनाथ ने SBH, 1913 में अंग्रेजी अनुवाद किया है।

४. मि० Bhandarkar, Vaiṣṇavism etc., पृ० 48; Farquhar, Outline, पृ० 250।

नासिकेतोपाख्यान को भी ब्रह्माण्डपुराण का एक भाग कहा जाता है। यह वस्तुतः नचिकेता के सुन्दर प्राचीन आख्यान का बहुत भोंड़ा, बृहत् और भ्रष्ट रूप है।[१]

उपपुराण

जहाँ तक उपपुराणों का सम्बन्ध है, ये साधारणतः पुराणों से मौलिक रूप में भिन्न नहीं हैं। भेद इतना ही है कि ये उपपुराण स्थानीय सम्प्रदाय और अलग-अलग सम्प्रदायों की धार्मिक आवश्यकताओं पर अधिक ध्यान देते हैं। "महापुराणों" के परिशिष्ट कहे जाने वाले उपपुराणों की चर्चा तो की जा चुकी है। अब हम बाकी के उपपुराणों में से अधिक महत्त्व वाले कुछ उपपुराणों का संक्षिप्त उल्लेख करेंगे।

विष्णुधर्मोत्तर को कभी-कभी गरुडपुराण का भाग कहा जाता है पर सामान्यतः यह एक स्वतन्त्र उपपुराण है। अलबेरुनी ने इसको बार-बार विष्णुधर्म कहकर उद्धृत किया है[२]। तीन भागों में विभाजित यह कश्मीरी वैष्णव ग्रन्थ विश्वकोश—जैसा है। पहले भाग में पुराणों की सामान्य बातों का वर्णन है, जैसे—सृष्टि, सृष्टि-प्रक्रिया, भूगोल ज्योतिष, कालचक्र, वंशानुक्रम, स्तोत्र, व्रतों तथा श्राद्धों के नियम[३]। वंशानुक्रम से सम्बद्ध आख्यानों में पुरूरवा और उर्वशी का आख्यान भी वर्णित है जो कालिदास के नाटक से बहुत-कुछ मिलता है। दूसरे भाग में विधि और राजनीति का वर्णन है पर आयुर्वेद, युद्धविद्या, फलित और गणित ज्योतिष की भी चर्चा की गई है। यहाँ एक गद्यात्मक अंश भी है जिसे अलग से "पितामह-सिद्धान्त" नाम दिया गया है। यदि, जैसा कि सम्भव है, ब्रह्मगुप्त द्वारा ईसवी सन् ६२८ में लिखे गए ब्रह्मस्फुटसिद्धान्त का यह सार हो तो विष्णुधर्मोत्तर की रचना ६२८ से १००० ई० के बीच हुई होगी।[४]

---

१. मि० F. Belloni—Filippi को GSAI 16, 1903 तथा 17, 1904 में; Eggeling, Ind. Off. Cat. VI, पृ० 1252 आ०।

२. वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई से १९१२ में प्रकाशित। कश्मीरी हस्तलेखानुसारी विषयों का विवेचन और अलबेरुनी के उद्धरणों से उसकी तुलना Bühler ने Ind. Ant. 19, 1810, पृ० 382 आ० में की है। Bühler के अनुसार अलबेरुनी ने एक नाम के दो भिन्न ग्रंथों का उपयोग किया और दोनों को मिला दिया। Eggeling एक हस्तलेख का वर्णन (Ind. Off. Cat. VI, पृ० 1308 आ०) करते हैं जिसमें प्रकाशित ग्रंथ से छ अध्याय अधिक हैं। हस्तलेख में ग्रन्थ का नाम विष्णुधर्माः लिखा हुआ है।

३. श्राद्धों के बारे में दे० W. Caland, Altindischer Ahnenkult, 1893, पृ० 68, 112। इसके अनुसार इसका मूल विष्णुस्मृति है। मि० Abegg, Der pretakalpa, पृ० 5 आ०।

४. मि० G. Thibaut, Astronomie etc., पृ० 58। ब्रह्मगुप्त के टीकाकारों का मत है कि इस लेखक ने विष्णुधर्मोत्तर से सहायता ली है। विष्णुधर्म की हस्तलिखित प्रतियों की तिथि १०४७ और १०९० है, दे० हरप्रसाद शास्त्री, Report I, पृ० 5।

तीसरा भाग भी फुटकल रचनाओं का संग्रह है। इसमें व्याकरण, कोश, छन्द और काव्यशास्त्र, नृत्य, संगीत, प्रतिमा-निर्माण,[1] और वास्तुशास्त्र का विवेचन है।

बृहद्धर्मपुराण[2] उपपुराणों की सूची में अठारहवाँ[3] है। इसके पहले और अन्तिम भागों में ही धर्म का वर्णन है और इसी के वर्णन से इसका आरम्भ होता है। प्रथम भाग का अधिकतर अंश देवी और उनकी दो सखियों जया और विजया के बीच संवाद के रूप में है जिससे यह ग्रन्थ तान्त्रिक ग्रन्थ जैसा दिखाई देता है। दूसरे भाग में भी देवी आती है तथा ब्रह्मा, विष्णु और शिव उनकी स्तुति करते हैं। II, 60 में बतलाया गया है कि विश्व और सारे देवता शिव और शक्ति में अवस्थित हैं। पर यह तान्त्रिक ग्रन्थ नहीं है जैसा कि इसके विषयों से स्पष्ट है। इतिहास-काव्य और स्मृति ग्रन्थों से इसका सम्बन्ध होने के नाते यह कुछ रोचक है यद्यपि यह कदापि प्राचीन ग्रंथ नहीं हो सकता।

शुरू के अध्यायों में माता-पिता के प्रति, खास कर माता के प्रति, और गुरु के प्रति व्यक्ति के कर्तव्यों का विस्तृत वर्णन है। इन कर्तव्यों की महत्ता बताने के उद्देश्य से किसी "तुलाधार व्याध" की कथा कही गई है। यद्यपि इस कथा का कुछ सम्बन्ध महाभारत में प्राप्त धर्मव्याध और तुलाधार की कथाओं से है तथापि इस कथा और उन कथाओं में बहुत कम समानता है। इसके बाद तीर्थों का प्रकरण है। विष्णु के रामावतार की, सीता की तथा रामायण की उत्पत्ति की कथाएँ दी गई हैं। रामायण को सारे काव्यों, इतिहासों, पुराणों तथा संहिताओं का मूल कहा गया है। ब्रह्मा के कहने से वाल्मीकि ने रामायण तो लिख दिया पर महाभारत लिखने से इनकार कर दिया तब व्यास ने महाभारत और पुराणों का लेखन हाथ में लिया[4]। वाल्मीकि ने अपने आश्रम में महाभारत लिखने के बारे में व्यास से बातें कीं और तब उन्होंने महाभारत की बड़ी बढ़-चढ़कर प्रशंसा की। एक स्तोत्र में महाभारत के प्रमुख पर्वों का नाम दिया गया है और इसके तावीज या कवच के रूप में धारण करने की बात कही गई है (I, 30, 4, आ०)। दूसरे भाग में मुख्य रूप से गंगा की उत्पत्ति वर्णित है पर दूसरे प्रकार की बहुत-सारी कथाएँ भी इसके साथ गुँथी हुई हैं। विष्णु के अवतारों में से कपिल, वाल्मीकि, व्यास और बुद्ध की भी चर्चा की गई है। शिव विष्णु

---

१. बड़े ही रोचक इस प्रकरण के बारे में दे० Stella Kramrisch, Calcutta Review, Feb. 1924, पृ० 331 आ० तथा Journal of Letters, Calcutta University, Vol XI, 1924।

२. हरप्रसाद शास्त्री द्वारा Bibl. Ind. में १८९७ में संपादित। इसमें प्रथम, मध्यम और अंतिम ये तीन खंड हैं।

३. बृहद्धर्मपु० (I, 25, 26) में ही।

४. यहाँ १८ पुराणों और १८ उपपुराणों की गिनती (I, 25, 18 आ० में) तथा धर्मशास्त्रों की गणना (I, 29, 24 आ०) की गई है।

की एक स्तुति करते हैं[१]। एक काफी लम्बे प्रकरण में (II, 54-58) गंगाधर्मों का वर्णन है। अन्तिम अध्याय में गंगा की उत्पत्ति की अद्‌भुत कथा वर्णित है। तीसरे और अन्तिम भाग में वर्णाश्रमधर्म, स्त्रीधर्म, ग्रहपूजा, वर्षभर में होनेवाले व्रत-उत्सव, संसार में उत्पन्न होनेवाले पाप और बुराइयों का वर्णन है।

शिवपुराण में बारह संहिताएँ बताई गई हैं और यह सबसे बड़ा उपपुराण है[२]। गणेशपुराण[३] तथा चण्डी या चण्डिकापुराण[४] भी शैव उपपुराण हैं। शाम्बपुराण[५] सूर्य-पूजा का प्रतिपादन करता है। कलियुग के समाप्त होने पर विष्णु जो कर्म करेंगे उनका वर्णन कल्किपुराण[६] में हुआ है। कालिकापुराण[७] में अनेकरूपधारिणी काली के कर्मों का वर्णन है। इसमें काली को पशु-बलि और नरबलि देने की चर्चा आती है। आश्चर्य है कि इसमें राजनीति पर भी एक अध्याय दिया गया है[८]।

पुराणों तथा उपपुराणों से सम्बद्ध अधिकांश माहात्म्य सब कुछ मिलाकर हीनकोटि की रचनाएँ हैं। इनमें प्रशंसित तीर्थों के पुरोहितों के निमित्त इनकी रचना हुई। इनमें वर्णित आख्यान अंशतः पारम्परिक और अंशतः काल्पनिक हैं तथा इनका उद्देश्य उन तीर्थों की पवित्रता सिद्ध करना है। यात्रियों को उन तीर्थों में जो कृत्य सम्पादित करना चाहिए तथा ज़िस मार्ग का अनुसरण करना चाहिए उनका भी वर्णन इनमें है। इस कारण से भारत के स्थानों के ज्ञान की दृष्टि से वे ग्रंथ महत्त्वहीन नहीं हैं। विशेषकर नीलमत[९] या कश्मीरमाहात्म्य कश्मीर के इतिहास, अनुश्रुति तथा

---

१. शिवगानम् (II, 44)। पहले गानविद्या में रागों और रागिनियों के महत्त्व पर नारद ने विष्णु को व्याख्यान दिया है।

२. Eggeling, Ind. Off. Cat. VI, पृ० 1311 आ०। बंम्बई से (१८७८, १८८०, १८८४) प्रकाशित।

३. Aufrecht, Bodl. Cat, पृ० 78 आ०; Eggeling, वही. पृ० 1199। पूना से १८७६ में एक संस्करण प्रकाशित। मौद्‌गलपु० (Eggeling, वही, पृ० 1289) में भी गणेश को परमेश्वर माना गया है।

४. Eggeling, वही, पृ० 1202 आ०।

५. Eggeling, वही, पृ० 1316 आ०। एक साम्बपुराण बंबई से १८८५ में प्रकाशित।

६. Eggeling, वही, पृ० 1188 आ०। कलकत्ता से प्रकाशित।

७. Eggeling, वही, पृ० 1189 आ०। बंबई से १८९१ में प्रकाशित।

८. रुधिराध्याय का अनुवाद W. C. Blaquiere ने Asiatick Researches Vol. 5, (4th, ed, लंडन. 1807), पृ० 371 आ० में किया।

९. नीलमतपुराणम् भूमिका आदि के साथ रामलाल कांजिलाल और पंडित जगद्धर जदू ने लाहौर से १९२४ में प्रकाशित किया।

स्थान-परिचय की दृष्टि से महत्त्व का है।[1] नागवंशी राजा नील एक तरह से कश्मीर का सांस्कृतिक नायक है और इस ग्रन्थ में ब्राह्मण चन्द्रदेव[2] को बताए गए उसके मत संगृहीत हैं। आदिकालीन कश्मीर का इतिहास बताते हुए नील द्वारा स्थापित उत्सवों का वर्णन (१–४८१ श्लोकों में) किया गया है। इनमें से अनेक तो ब्राह्मण तथा पौराणिक उत्सव हैं पर कुछ ऐसे हैं जो सिर्फ कश्मीर में मिलते हैं। कार्तिक मास के प्रथम दिन, जब कि कश्मीर की उत्पत्ति मानी गई है, वर्षारम्भ का उत्सव होता था जो बड़े उल्लास से नृत्य, गीत और सुरापान के साथ मनाया जाता था। इसी तरह का उत्सव पहले-पहल बर्फ पड़ने पर भी मनाया जाता था। वैशाख पूर्णिमा को ब्राह्मण लोग विष्णु के अवतार बुद्ध के जन्म का उत्सव मनाते थे। बुद्ध की मूर्ति बनायी जाती थी, बौद्ध-भिक्षुओं की पूजा की जाती थी (श्लोक ८०९ आ०)। इतिहासकार कल्हण (११४८ ई० के आस-पास) ने अपना राजतरंगिणी में कश्मीर के प्राचीन इतिहास से सम्बद्ध सामग्री नीलमत से ली है और इसको आदरणीय पुराण माना है।[3] इसलिए यह पुराण कल्हण के ग्रन्थ से कई शताब्दी पहले का होगा।

पुराण-साहित्य से उत्पन्न ग्रन्थों में नेपाल की वंशावलियों की भी चर्चा कर देनी चाहिए। ये अंशतः ब्राह्मण और अंशत: बौद्ध हैं। नेपालमाहात्म्य और वाग्वती-माहात्म्य पशुपतिपुराण के अंग माने गए हैं[4]।

अन्त में हमें एक ऐसे ग्रन्थ की चर्चा करनी है जो न तो इतिहास-काव्य है और न पुराण, तथापि इसका साम्प्रदायिक स्वरूप पुराणों-जैसा है। यह है जैमिनि-भारत का आश्वमेधिकपर्व[5] (अर्थात् जैमिनिकृत महाभारत-संहिता[6])। अलंकृत शैली

---

१. मि० Bühler, Report, पृ० 37 आ०, L V आ०; M. A. Stein, राजतरंगिणी का अनुवाद, I, पृ० 76 आ०; II पृ० 376 आ०; पंडित आनन्दकौल, JASB 6, 1910, पृ० 195।

२. मि० नीलमत, श्लोक ४२४ आ०; राजतरंगिणी I, 182-184।

३. कल्हण इसे नीलमत (राजतरं० I, 14; 16) वा नीलपुराण (वही, I, 178) कहते हैं। Bhandarkar, Report, 1883-84, पृ० 44 में एक हस्तलेख की चर्चा करते हैं जिसमें इसको नीलमत नामक काश्मीरमाहात्म्य कहा गया है। काश्मीर के पंडित इसे प्रायः नीलमतपुराण कहते हैं।

४. दे० Lévi, Le Nepal, AMG, Paris 1905, I, 193 आ०, 201 आ०, 202 आ०।

५. बंबई, पूना और कलकत्ता में प्रकाशित। अनेक हस्तलेख हैं। मि० Holtzmann, Das Mahābhārata, III, पृ० 37 आ०; Weber, HSS. Verz. I, पृ० 111 आ०; Aufrecht, Bodl. Cat., I, पृ० 4; Eggeling, Ind. Off. Cat. VI, पृ० 1159।

६. महाभारत (I, 63, 89 आ०) में कहा गया है कि व्यास ने अपने पाँच शिष्यों—सुमन्तु, जैमिनि, पैल, शुक और वैशम्पायन—को महाभारत पढ़ाया और इनमें से प्रत्येक ने एक संहिता बनाई। पर क्या जैमिनि की कोई संपूर्ण महा-

में लिखा गया यह ग्रन्थ युधिष्ठिर के अश्वमेध यज्ञ में घोड़े के पीछे चलने वाले अर्जुन, कृष्ण आदि वीरों के कर्मों का तथा उनके द्वारा लड़े गए युद्धों का वर्णन करता है पर इसकी कथा महाभारत से अधिक भिन्न है। इसके साथ ही अश्वमेध का वर्णन ऐसी अनेक कथाओं को इसमें सम्मिलित करने का सीधा उपाय है जो महाभारत में एकदम नहीं मिलतीं। एक लम्बे प्रकरण में (कुशलवोपाख्यान) सम्पूर्ण रामायण का संक्षेप दिया गया है। अन्य स्थानों के साथ ये वीर स्त्री-राज्य में भी जाते हैं और वहाँ किए गए उनके कर्मों का इसमें वर्णन किया गया है। चन्द्रहास और विषया की कथा (चन्द्रहासोपाख्यान) सारे संसार के साहित्य में महत्त्वपूर्ण है।[1] यह कथा भारतीय

भारत-संहिता थी और क्या आश्वमेधिकपर्व मात्र ही इसका अवशिष्ट रह गया है—इन प्रश्नों का उत्तर संदेहास्पद है। Talboys Wheeler ने The History of India, लंडन, 1867, I 977 में 'राजा युधिष्ठिर का अश्वमेध यज्ञ' इस शीर्षक अध्याय के अन्तर्गत बिना सोचे जैमिनि-आश्वमेधिक पर्व का सारांश दे दिया है।

१. Wheeler ने, वही, पृ० 522 आ० में कथा बताई है। पाठ और जर्मन अनुवाद Weber ने (Monatsberichte der preuss, 1869, पृ० 10 आ०, 377 आ०) दिए। पहले-पहल उन्होंने ही पश्चिमी समानान्तर कथाओं की ओर ध्यान आकृष्ट किया और इधर J. Schick ने Corpus Hamleticum I, 1, 1912, पृ० 167 आ० ने भी। इस पुस्तक में Schick ने विस्तार से इस कथा के बौद्ध और जैन रूपों पर, आधुनिक भारतीय रूपों पर तथा पश्चिम एशियाई रूपों पर, जिनके द्वारा यह कथा यूरोप में पहुँची, विचार किया है। यूरोप में यह कथा अन्य पुस्तकों के अलावा लैटिन भाषा की पुस्तक Gesta Romanorum के xx अध्याय में (मि० M. Gaster, JRAS 1919, 449 आ०) तथा Dasent की पुस्तक Norse Tales में (मि० C. H. Tawney को Ind. Ant. 10, 1881, पृ० 190 आ० में), सम्राट Constantine, जिनके नाम पर Constantinople बसा, की फ्रेंच कथा में (मि० J. Jacobs को Old French Romances की भूमिका में, अंग्रेजी रूपान्तर William Morris ने 1896 में किया) तथा Saxo Grammaticus की Amleth की कथा में। सिर्फ पत्र बदल जाने की बात को शेक्सपियर ने अपने Hamlet में लिया है। जर्मन में इस कथा का सर्वाधिक प्रचार Schiller की कविता "Der Gang nach dem Eisenhammer" से हुआ; मि० Th. Benfey, Pantschatantra, I, 321, 340; E. Kuhn, Byzantinische Zeitschrift IV, 242 आ०; E. Cosquin, La légende du page de sainte Elisabeth de Portugal, Paris 1912। अब तक ज्ञात इस कथा के सारे रूपों में प्राचीनतम रूप चीनी त्रिपिटक (सं० Chavannes, cinq unts contes et apologues extraits du Tripitaka Chinois I, No. 45) चीनी अनुवाद Seng-honci ने किया जिसकी मृत्यु 280 ई० में हुई।

(बौद्ध और जैन) तथा पाश्चात्य साहित्य में बार-बार आती है। एक युवक ऐसी शुभ घड़ी में पैदा हुआ था कि उसके शत्रु द्वारा किए गए उसको मारने के सारे प्रयत्न विफल हुए। अन्त में इस युवक को ऐसा पत्र ले जाकर देना पड़ा जिसमें उसी के वध की आज्ञा लिखी हुई थी। पर एक नौकरानी ने उस पत्र को बदल दिया जिससे वह राजकुमारी का पति तथा धनी और शक्तिशाली व्यक्ति बन गया और उसके शत्रु या शत्रु के पुत्र की वही दशा हुई जो इसकी होनेवाली थी। जैमिनीभारत का चन्द्रहास सारे खतरों से इसलिए बचा रहा कि वह विष्णु का परम भक्त था। सर्वदा अपने पास शालग्राम की वटिका रखा करता था।[१] इस कथा का अन्त शालग्राम और तुलसी की लम्बी-चौड़ी स्तुति से होता है जैसी कि पुराणों की शैली है। पूरे ग्रन्थ में कृष्ण न केवल नायक ही हैं, वे साक्षात् विष्णु हैं। जो उनको सहायता के लिए पुकारता है वे उसकी सहायता करते हैं। वे अद्भुत कर्म करते हैं, मरे लड़के को जिलाते हैं, साग की एक पत्ती से ढेर-सारे मुनियों को तृप्त कर देते हैं। जो कोई कृष्ण का दर्शन करता है वह सारे पापों से मुक्त हो जाता है। जैमिनि भारत के आश्वमेधिक-पर्व के रचनाकाल के बारे में कुछ निश्चित नहीं कहा जा सकता। इस ग्रंथ में उल्लिखित विष्णु-भक्ति के स्वरूप को देखते हुए कहा जा सकता है कि सम्भवतः पुराण साहित्य के परवर्ती ग्रन्थों की रचना के पूर्व इसकी रचना नहीं हुई थी। चन्द्रहास की कथा के अन्त में भागवतपुराण का उद्धरण होने के कारण यह ग्रन्थ भागवत के बाद का तो है ही।[२]

---

१. भागवतों में चन्द्रहास वैष्णव भक्त बन गए। नाभादास के भक्तमाल में उनकी कथा जैमिनिभारत की तरह ही वर्णित है। "भगवान् के बयालीस भक्तों" में उनका स्थान इकतीसवाँ है। दे॰ Grierson, JRAS, 1910, पृ॰ 292 आ॰। मि॰ N. B. Godbole, Ind. Ant. 11, 1882, पृ॰ 84 आ॰। काशीराम के महाभारत के बँगला रूपान्तर में भी यह कथा मिलती है (दे॰ Calcutta Review. December 1924, पृ॰ 480 आ॰)। सिर्फ़ पत्र बदल जाने की बात बंगाल, पंजाब और कश्मीर की लोक-कथाओं में मिलती है। मि॰ Hatim's Tales, Kashmiri Stories and Song—Sir Aurel Stein तथा Grierson कृत—लंडन 1923, पृ॰97।

२. 55, 8 में ज्योतिषाचार्य वराहमिहिर (छठीं शताब्दी, ईसवी) का उल्लेख है। चन्द्रहास की कथा की घटना दक्षिण के केरल प्रदेश में घटी बताई गई है। ब्राह्मण लक्ष्मीश-कृत जैमिनि-आश्वमेधिकपर्व का कन्नड़ रूपान्तर कन्नड़-साहित्य में बड़ा लोकप्रिय रहा है। लक्ष्मीश का काल १५८५ के बाद और १७२४ के पहले का है। मि॰ E. P. Rice, Kanarese Literature (Heritage of India Series), 1921, पृ॰ 85 आ॰ तथा H. F. Mögling, ZDMG 24, 1870, 309 आ॰; 25, 22 आ॰; 27, 8173, 364 आ॰।

तन्त्र-साहित्य

संहिताएँ, आगम और तन्त्र

परवर्ती कई पुराणों में तान्त्रिक प्रभाव का हमने दर्शन किया। शक्ति-पूजा, देवी-पूजा, शिव और पार्वती के बीच संवाद के रूप में कई प्रकरण तथा स्थान-स्थान पर मन्त्रों और यन्त्रों के प्रयोग तान्त्रिक प्रभाव के द्योतक हैं। पर जब कि पुराणों का किसी-न-किसी रूप में इतिहास-काव्य के सम्बन्ध बना हुआ है और वे एक तरह से भारतीय आख्यान-काव्य के भाण्डार हैं, तन्त्र तथा संहिताएँ और आगम, जो पुराणों से कुछ ही भिन्न हैं, शुद्ध रूप से धार्मिक ग्रंथ हैं और सम्प्रदाय-विशेषों की बारीकियाँ तथा उनके तत्त्व-सम्बन्धी एवं रहस्यानुभूति-सम्बन्धी सिद्धान्तों का प्रतिपादन करते हैं। ठीक-ठीक कहा जाय तो 'संहिताएँ' वैष्णवों के, 'आगम' शैवों के तथा 'तन्त्र' शाक्तों के पवित्र ग्रन्थ हैं। पर इन शब्दों में कोई स्पष्ट भेद करने वाली रेखा नहीं है और 'तन्त्र' शब्द का प्रयोग बहुधा इस प्रकार के सम्पूर्ण ग्रन्थों के अर्थ में हुआ है।[1]

वस्तुतः इन सारे ग्रन्थों की कुछ सामान्य विशेषताएँ हैं। यद्यपि स्पष्टतः वे वेदों के विरोधी नहीं हैं तथापि उनका कहना है कि वेदविहित कर्म हमारे युग में नहीं चल सकते। इसलिए उन ग्रंथों में अपेक्षाकृत सरल संप्रदायों और सिद्धान्तों का आविष्कार किया गया है। वे पवित्र ग्रन्थ द्विजातियों के लिए ही नहीं बल्कि शूद्रों और स्त्रियों के लिए भी हैं। दूसरी ओर यह भी सही है कि इन ग्रंथों में गुह्य सिद्धान्तों का प्रतिपादन हुआ है और दीक्षा के बाद ही शिष्य गुरु से उन्हें जान सकता है। अदीक्षित व्यक्ति को उनके जानने का अधिकार नहीं है। पूर्ण तन्त्र के चार खण्ड होते हैं जो चार मुख्य विषयों का प्रतिपादन करते हैं। (१) ज्ञानखण्ड में दार्शनिक सिद्धान्त होते हैं जो एकदेववाद या फिर अद्वैतवाद की ओर उन्मुख होते हैं।

---

१. इस तरह वैष्णवों की पाञ्चसंहिता को पाञ्चतन्त्र कहा गया है। भागवतपु० (I, 3, 8,) में निर्दिष्ट "सात्वतं तन्त्रम्" शायद सात्वतसंहिता ही है। लक्ष्मीतन्त्र एक वैष्णव ग्रन्थ है और पाञ्चरात्र आगम और पाञ्चरात्रसंहिताओं का भी जिक्र किया गया है। मि० Eliot, Hinduisn and Buddhism, II, पृ० 188 आ०। 'तन्त्र' शब्द का अर्थ होता है "सिद्धान्तों का समुदाय", "ग्रन्थ"; "आगम" का अर्थ होता है "परम्परा" और 'संहिता' का अर्थ होता है "पवित्र ग्रन्थों का संग्रह"।

पर इनमें एक प्रकार का अस्पष्ट रहस्यात्मक ज्ञान भी प्रतिपादित होता है जो अक्षरों, पदों, मन्त्रों (मंत्रशास्त्र, यंत्रशास्त्र) का ज्ञान होता है। (२) योगखण्ड में विशेष रूप से सिद्धियों की प्राप्ति और माया का वर्णन होता है। (३) क्रियाखण्ड में मूर्ति, मन्दिर आदि के निर्माण की विधि दी होती है। (४) चर्याखण्ड में विभिन्न क्रियाओं, उत्सवों तथा सामाजिक कर्तव्यों का वर्णन किया जाता है। हर तन्त्र में ये चार खण्ड नहीं मिलते फिर भी उनमें दर्शन, रहस्यवाद, माया, क्रिया और धर्माचरण का सम्मिश्रण तो मिलता ही है।[1]

अब तक शैव आगमों के बारे में हमारा ज्ञान स्वल्प है।[2] सृष्टि के आदि में शिव द्वारा उपदिष्ट आगमों की संख्या २८ बताई गई है और हर आगम के कई उपागम भी हैं। चूंकि हमें इनके विषयों का कुछ ज्ञान नहीं है इसलिए हम इनके रचनाकाल का निर्णय नहीं कर सकते।[3]

वैष्णव पाञ्चरात्र सम्प्रदाय की संहिताओं के बारे में हमें कुछ ज्ञात है।[4] यद्यपि परंपरा के अनुसार १०८ पाञ्चरात्र संहिताओं की गणना की गई है पर वास्तव में

---

१. "वेद, शास्त्र, और पुराण सर्वगम्य हैं—वेश्याओं की तरह, पर शैवतंत्र कुलवधुओं की तरह गुप्त है।" (Avalon, Principles of Tantra, 1, IX)। कुलचूडामणितन्त्र, प्रथम अध्याय में, बतलाया गया है कि दीक्षा-विहीन व्यक्ति—भले ही वह ब्रह्मा या विष्णु क्यों न हो—तन्त्रशास्त्र का अधिकारी नहीं है। कुलार्णवतन्त्र (III,4) का कहना है; "वेद, पुराण और शास्त्र का प्रचार किया जा सकता है, पर शैव और शाक्त आगम गुप्त सिद्धान्त हैं।"

२. मि० H. W. Schomerus, Der Śaiva Siddhānta, Leipzig, 1912, पृ० 7 आ०, २८ आगमों की सूची, वही, पृ० 14। सिर्फ २० आगमों के अवशेष बचे हैं। दो उपागमों—मृगेन्द्र और पौष्कर के अंश प्रकाशित हो चुके हैं। मि० Eliot, Hinduism and Buddhism, II पृ० 204 आ०।

३. Schomerus (वही, पृ० II आ०) के अनुसार तिरुमूलार और अन्य तामिल कवियों ने ईसा की पहली या दूसरी शताब्दी में ही आगमों का उपयोग किया था इसलिए ये आगम ईसा के पहले के होंगे। पर अधिक संभव है कि ये कवि नवीं शताब्दी के और आगम ७ वीं या ८ वीं शताब्दी के हों। मि० Farquhar, Outline, पृ० 193 आ०।

४. विशेष रूप से F. O. Schrader के अनुसंधानों ((Introduction to Pāncarātra and Ahirbudhnya Samhitā, मद्रास, 1916) के द्वारा। मि० A. Govindacarya Svamin JRAS 1911, पृ० 935 आ०; Bhandarkar, Vaiṣṇavism etc. पृ० 39 आ०; Eliot, Hinduism and Buddhism, II, पृ० 194 आ०;

२१५ से भी अधिक संहिताओं का उल्लेख मिलता है जिनमें से केवल १२ ही अब तक प्रकाशित हुई हैं।[1] प्राचीन संहिताओं में से एक अहिर्बुध्न्यसंहिता है[2] जो कश्मीरी रचना है और शायद इसकी रचना ईसा की चौथी सदी के बहुत बाद की नहीं है![3]

यह संहिता अहिर्बुध्न्य (शिव) और नारद के बीच संवाद के रूप में है। इसका छोटा भाग दर्शन से सम्बन्धित है और बड़ा भाग रहस्यात्मक क्रियाओं के साथ।[4] कई अध्यायों में सृष्टि का वर्णन किया गया है।[5] नारद ने पूछा कि सृष्टि के बारे में लोगों में मतभेद क्यों है तो अहिर्बुध्न्य ने (अध्याय ८) उत्तर दिया कि इसके अनेक कारण हैं : (१) मनुष्यों की भाषा में परमतत्व का ज्ञान बताया ही नहीं जा सकता, (२) लोग नाम-भेद से विषय में भी भेद समझने लगते हैं, (३) मनुष्यों की बुद्धि में भी भेद है और (४) देवता के अनन्त रूप होते हैं जिनमें से दार्शनिक लोग

Farquhar, Outline, पृ० 182 आ०। 'पञ्चरात्र' इस शब्द की कई व्याख्याएँ की गई हैं, संभव है कि इसका सम्बन्ध पञ्चरात्र सत्र शतपथ ब्राह्मण में उल्लिखित पाँच रातों तक चलने वाले यज्ञ से हो। मि० Schrader वही, पृ० 23 आ०; Govindacarya, वहीं पृ० 940 आ०।

१. Schrader, वही, पृ० 4–13, में सूचियों के लिए देखिए। २५ पाञ्चरात्र "तंत्रों" की एक सूची अग्निपुराण के ३९ वें अध्याय में दी हुई है। कई प्रकाशित पुस्तकें अप्राप्य हैं। सात्वत संहिता के कुछ अंशों का अनुवाद Schrader ने (वही, पृ० 149 आ० में) दिया है। पाद्मसंहिता के बारे में मि० Eggeling, Ind. off. Cat. IV, पृ० 847 आ०; विष्णु-नारायण की शक्ति तथा संसार के चरम कारण के रूप में पूजी जानेवाली लक्ष्मी का प्रतिपादन करनेवाले लक्ष्मीतन्त्र के बारे में मि० Eggeling, वही, पृ० 850 आ।

२. F, Otto Schrader के निर्देशन में M. D. Rāmānujācārya द्वारा अडयार पुस्तकालय के लिए संपादित। किसी संहिता का यह एकमात्र आलोचनात्मक संस्करण है।

३. बौद्ध दर्शन के तीन यानों से यह ग्रन्थ परिचित है तथा होरा—जैसे शब्द इसमें (XI, 28) मिलते हैं इसलिए ईसा की चौथी सदी के पहले इसकी रचना सम्भव नहीं है। षष्टितन्त्रके रूप में सांख्य दर्शन का उपस्थापन (XII, 18 आ०) होने के कारण Schrader का (ZDMG 68, 1914, 102 आ०) निष्कर्ष है कि यह ईश्वरकृष्ण की सांख्यकारिका के पूर्व की रचना है। चूँकि स्वयं ईश्वरकृष्णने सांख्य को षष्टितन्त्र कहा है इसलिए हम यह मान सकते हैं कि अहिर्बुंध्न्य संहिता और सांख्यकारिका करीब एक ही काल की रचनाएँ हैं।

४. मि० Schrader की भूमिका, पृ० 94 आ०, में दी हुई विषय सूची।

५. सृष्टि के सिद्धान्त से सम्बन्धित पाञ्चरात्र-दर्शन के बारे में दे० Schrader, वही, पृ० 29 आ०।

एकाध को ही जान पाते हैं। सृष्टि-वर्णन के प्रसंग में बारहवें तथा तेरहवें अध्यायों में विद्याओं अर्थात् धर्म और दर्शन के विभिन्न प्रस्थानों का बड़ा रोचक वर्णन मिलता है। इसके बाद आश्रम-धर्मों का वर्णन आता है। ऋषियों और मुनियों को (वानप्रस्थ को) ब्रह्मलोक प्राप्त होता है पर संन्यासी "दीपक की तरह बुझ जाता है" (१५, २६ आ०)। १६–१९ अध्यायों में वर्णमाला के अक्षरों का रहस्य बतलाया गया है। बीसवें अध्याय में आदर्श वैष्णव गुरु के वर्णन के साथ दीक्षा का प्रकरण प्रारम्भ होता है। उसे केवल वेद और वेदान्त के सत्य का ज्ञान ही नहीं होना चाहिए और न ही सर्वदा उसे देव-कार्य और पितृ-कार्य में दत्तचित्त होना चाहिए। उसे तो "अशुभ बातों को न बोलने वाला, पाप कर्मों को न करनेवाला, दूसरों की उन्नति पर ईर्ष्या न करनेवाला, दूसरों के दुःख में सहानुभूति रखनेवाला, सारे प्राणियों पर दया करनेवाला, अपने पड़ोसी के सुख में सुखी होनेवाला, सज्जनों की प्रशंसा करनेवाला, दुष्टों को क्षमा करनेवाला, तपस्या, संतोष और सच्चरित्र का धनी तथा योग और स्वाध्याय में निरत" होना चाहिए। पांचरात्र, तंत्र, मंत्र और यंत्रों के ज्ञान के अलावा उसको परमात्मा का ज्ञान होना चाहिए। उसे शांत, वासनारहित, इन्द्रियों पर जय करनेवाला तथा सत्कुल में उत्पन्न भी होना चाहिए। इसके बाद २१-२७ अध्यायों में धारण किए जाने योग्य यंत्रों का वर्णन है। बाद के अध्यायों में योग के सिद्धान्तों तथा चर्या का वर्णन है। इससे "१०२ आयुध" अर्थात् गुह्य शक्तियाँ प्राप्त होती हैं। कुछ अध्यायों में युद्ध के समय भय उत्पन्न होने पर राजा द्वारा किए जाने-वाले कर्मों का वर्णन है जिससे उसकी विजय निश्चित हो जाती है। कई अध्यायों में धनुर्विद्या का उपदेश दिया गया है। परिशिष्ट के रूप में दिव्य सुदर्शन का एक सहस्र-नाम स्तोत्र दिया गया है।

यद्यपि पाञ्चरात्र संहिताओं की उत्पत्ति शायद उत्तर भारत में हुई और उनमें से प्राचीन संहिताओं का काल ईसा की ५-९ सदियों की बीच होगा[१] पर मुख्यतः उनका प्रचार दक्षिण भारत में हुआ। इन दक्षिणी संहिताओं में से एक प्राचीन संहिता ईश्वर-संहिता है जिसका उल्लेख रामानुज के गुरु यामुन ने किया और यामुन की मृत्यु करीब १०४० ई० में हुई। स्वयं रामानुज ने पौष्कर[२], परम और सात्त्वत संहिताओं का उद्धरण दिया है। दूसरी ओर बृहद् ब्रह्म संहिताओं में[३], जो नारद पाञ्चरात्र का ही

---

१. मन्त्रों और यन्त्रों के माध्यम से विष्णु की राम या नृसिंह के रूप में पूजा करने वाले सम्प्रदायों के वैष्णव उपनिषद्—यथा नृसिंहतापनीय उपनिषद् (गौड-पाद की टीका से युक्त) और रामतापनीय उपनिषद्—शायद उसी काल हैं। मि० Farquhar, Outline, पृ० 188 आ०।

२. पौष्करसंहिता के बारे में मि० Eggeling, Ind, Off. Cat. IV 864 आ०।

३. आनन्द० सं० सि० No. 68 में प्रकाशित।

एक भाग मानी जाती है, रामानुज के बारे में भविष्यवाणी की गई है और इसलिए बारहवीं शताब्दी के पहले की रचना वह नहीं हो सकती। ज्ञानामृतसारसंहिता का प्रकाशन नारदपाञ्चरात्र[1] के नाम से हुआ है और इसमें सिर्फ कृष्ण और राधा का वर्णन है। यह बिलकुल आधुनिक रचना है। चूँकि इसमें प्रतिपादित मत वल्लभाचार्य के मत से बिलकुल मिलता है इसलिए इसकी रचना वल्लभाचार्य से कुछ ही पहले, सोलहवीं शताब्दी के आरंभ में, हुई होगी।[2]

पर जब हम तंत्रों की बात करते हैं तो हमारा ध्यान शाक्तों के पवित्र ग्रंथों पर जाता है। ये शाक्त शक्ति की देवी, परम शक्ति, परा प्रकृति, आदि के रूप में पूजा करते हैं और कहते हैं कि दुर्गा, काली, चण्डी आदि अनेक नामों के होते हुए भी यह एक ही परमेश्वरी है। हिन्दू धर्म के अन्य रूपों की अपेक्षा शाक्त संप्रदाय में उच्चतम और हीनतम, सुन्दर और असुन्दर विचारों का काफी अजीब संगम मिलता है। शाक्त संप्रदाय और इसके पवित्र ग्रंथ तंत्रों में हमें देवता के बारे में बड़े ऊँचे विचार और गहरी दार्शनिक चिन्तना प्राप्त होती है पर इनके साथ ही घोर अंधविश्वास और बिलकुल अस्पष्ट रहस्य-चर्या भी मिलती है। निर्दोष सामाजिक आचार के नियमों तथा कठोर तपस्या की बातों के साथ ही ऐसे उन्मुक्त आचरणों का उपदेश भी मिलता है जिनसे इन तंत्रों का स्वरूप विकृत प्रतीत होने लगता है। पहले लोग या तो इस संप्रदाय के बुरे पक्ष पर जोर दिया करते थे या फिर उन्होंने भारतीय धर्म के विकास की इस विधा को काल की उदार चादर में छुप जाने दिया।[3] पर Sir John Woodroffe (Arthur Avalon के छद्मनाम से) ने लेखों की मालाएँ लिख कर तथा प्रमुख तंत्र-ग्रंथों का सम्पादन करके हमें तंत्र और तांत्रिक साहित्य के बारे में यथातथ्य इतिहास-संबंधी स्वतंत्र निर्णयों पर पहुँचने के योग्य बनाया।[4]

---

१. K. M. Banerjea द्वारा Bibl. Ind. 1865 में संपादित। SBH. Vol. 23, 1921 में अनूदित। मि० A. Roussel. Etude du Pañcarātra in Melanges Charles de Harlaz, Leyden, 1896, पृ० 25 आ०।

२. दे० Bhandarkar, Vaisnavism etc. पृ० 40 आ०।

३. मि० H. H. Wilson, Works, Vol. I, पृ० 240-265; Monier Williams, Brāhmanism and Hinduism, 4. th, ed. 1891, पृ० 180 आ०; A. Barth, The Religions of India, 2nd ed. London 1889, पृ० 199 आ०; Bhandarkar, Vaiṣṇavism etc. पृ० 142 आ०।

४. A. Avalon, Principles of Tantra; Sir John Woodroffe, Shakti and Shakta तथा महानिर्वाण तंत्र और "Tantrik Texts" की भूमिकाओं में।

कुछ तंत्र तो स्वयं बतलाते हैं कि तीनों लोकों में से प्रत्येक में या तीनों लोकों में मिलाकर ६४ तन्त्र हैं।[1] पर, हस्तलेखों में सुरक्षित तन्त्रों की संख्या इससे बहुत अधिक है।[2] तन्त्रों का उद्भव बंगाल में हुआ मालूम पड़ता है जहाँ से वे आसाम और नेपाल में गए तथा भारत के बाहर बौद्धधर्म के माध्यम से वे तिब्बत और चीन में भी पहुँचे। वस्तुतः ये तंत्र सारे भारत में ज्ञात हैं—काश्मीर और दक्षिण भारत में भी। यह नियम है कि तंत्र शिव-पार्वती-संवाद के रूप में ही होते हैं। जब पार्वती शिष्य की तरह प्रश्न पूछती हैं और शिव गुरु की तरह उत्तर देते हैं तब उसे "आगम" कहते हैं और जब पार्वती गुरु हैं और वे शिव के प्रश्नों का उत्तर देती हैं तो उस ग्रंथ को "निगम" कहा जाता है।

आगमों की श्रेणी में एक अत्यधिक लोकप्रिय और सुप्रसिद्ध ग्रंथ महानिर्वाण-तन्त्र है[3] जिसमें शाक्त सम्प्रदाय का सर्वोत्तम रूप प्राप्त होता है। यद्यपि यह ग्रंथ प्राचीन

---

१. Avalon, Tantrik Texts, Vol, I, Introduction।

२. हरप्रसाद शास्त्री ने अनेक तान्त्रिक ग्रन्थों को सूची-बद्ध किया है और उनका वर्णन दिया है। दे० Notices of Sanskrit MSS. Second Series I, 1900, पृ० XXIV—XXXVII; Catalogue of Palm Leaf and Selected paper MSS. belonging to the Darbar Library Nepal, Calcutta 1905, पृ० lvii–lxxxi; Report II, 7 आ०, 11 आ०; M. Rangacharya, Descriptive Catalague of Sanskrit MSS. in the Government Oriental MSS. Library, Madras. Vols. XII तथा XIII। मालाबार में तन्त्रों की स्थिति के लिए दे० K. Ramavarma Raja, JRAS., 1910, पृ० 636। मि० Wilson, Works, II, 77 आ०; Aufrecht, Bodl. Cat. I, पृ० 88 आ०; Eggeling, Ind. Off. Cat IV, पृ० 844 आ०; Bhandarkar, Report 1883-84, पृ० 87 आ०।

३. हरप्रसाद शास्त्री का (Notices I, पृ० XXXIVमें) कहना है कि "भवद्गीता के बाद यही महान् रचना शायद सबसे अधिक लोकप्रिय है।" कलकत्ता से कई संस्करण निकले, जिनमें सबसे पहला आदि ब्रह्मसमाज द्वारा १८६७ में निकला। M. N. Dutt ने गद्यात्मक अंग्रेजी अनुवाद कलकत्ता से १९०० ई० में निकाला। Tantra of the Great Liberation (महानिर्वाण-तन्त्र) के नाम से संस्कृत का अंग्रेजी अनुवाद, भूमिका और टिप्पणियों के साथ Avalon ने 1913 में प्रकाशित कराया। यह तन्त्र बंगाल में लिखा गया है क्योंकि VI, 7, 3 में तीन तरह की मछलियों का पूजा में उपयोग बताया गया है और ये मछलियाँ विशेषतः बंगाल में प्राप्त होती हैं (दे० Eliot, Hinduism and Buddhism II, 278 note 4। Farquhar

नहीं है तथापि यह उत्कृष्ट तन्त्र का एक उदाहरण है। इसलिए हम इस पर थोड़ा विस्तार से विचार करेंगे क्योंकि इस तरह के प्राचीनतर ग्रंथों में भी वे ही विचार मिलते हैं और प्राचीनतर तंत्रों से इसमें बहुत कुछ शब्दशः गृहीत है।

इस तंत्र में उपनिषदों की तरह ही ब्रह्म की चर्चा की गई है। शाक्त-दर्शन के अनुसार ब्रह्म नित्य और मूल शक्ति ही है जिससे सृष्टि उत्पन्न हुई है। व्याकरण की दृष्टि से शक्ति स्त्री लिंग तो है ही, अनुभव भी हमें बताता है कि माता के गर्भ से ही सारे जीव उत्पन्न होते हैं। इसलिए इन भारतीय विचारकों का विश्वास था कि परा देवता, सर्वोच्च उत्पादक शक्ति का मानव मस्तिष्क को ठीक-ठीक ज्ञान 'पिता' शब्द की बजाय 'माता' शब्द से सुगमता पूर्वक होगा। कष्ट में पड़ा मनुष्य जिस तरह माँ को पुकारता है उसी तरह विश्व की परा माता ही एकमेव ऐसी शक्ति है जो अस्तित्व के दुःख को दूर कर सकती है।[1] वे सारे दार्शनिक तत्त्व जिन्हें भाषा स्त्रीलिंग में निर्देश करती है—परा प्रकृति, मूल प्रकृति, मूल प्रकृति जो शक्ति से अभिन्न है, तथा वे सारे पौराणिक देव जो स्त्री के रूप में उपस्थित किए गए हैं—शिव की पत्नी पार्वती, उमा, दुर्गा, काली आदि और विष्णु की पत्नी लक्ष्मी, कृष्ण की प्रेयसी राधा आदि—ये सब माताएँ मानी गई हैं। वस्तुतः ये सब एकमात्र जगत्-माता के नाम हैं। भारतीय बुद्धि बहुत पहले से अनेक दिखाई देनेवाले तत्त्वों में एकता ढूँढ़ने की आदी रही है। जैसे एक चन्द्रमा अनेक पानी-भरे बर्तनों में दिखाई देता है उसी तरह हम देवी को चाहे जितने नामों से पुकारें, वह सारे देवों की शक्तियों का ही एक रूप है। स्रष्टा ब्रह्मा और उनकी शक्ति, पालक विष्णु और उनकी शक्ति तथा महाकाल संहारक शिव उसी में स्थित हैं। जब वह देवी स्वयं महाकाल को भी आत्मसात् कर लेती है तो उसे आद्या काली कहते हैं। महायोगिनी के रूप में वही जगत् की सृष्टि, पालन और संहार करती है। वह महाकाल की माता है और मधूक (महुवा) के पुष्पों की मदिरा पीकर वह देवी के सामने नृत्य करता है।[2] चूँकि परा देवी स्त्री है अतः सारी स्त्रियों में वही देवी विद्यमान है। यह वह धारणा है जिससे एक स्त्री-संप्रदाय का जन्म हुआ। कुछ क्षेत्रों में इससे विकृतियाँ उत्पन्न हुईं पर अन्य क्षेत्रों में शुद्धतर और उत्कृष्ट विचार का भी प्रादुर्भाव हुआ।

आनन्द पूर्ण सृष्टि-शक्ति देवी से संबद्ध संप्रदाय में पंचतत्त्वों की स्वीकृति हुई है जिनके सेवन से मनुष्य आनन्द का अनुभव करता है, दीर्घ जीवन प्राप्त करता है और उसे सन्तान की प्राप्ति होती है। ये तत्त्व हैं **मद्य**—मानव जाति के लिए महौषधि-

---

(Outline, पृ० 354 आ०) इसको काफी आधुनिक ग्रन्थ मानते हैं—अर्थात् यह ग्रन्थ अठारहवीं सदी के पहले का नहीं है (?) विष्णु-पत्नी राधा की पूजा करने वाला निर्वाणतन्त्र बिलकुल भिन्न रचना है, दे० हरप्रसाद, वही।

१. Avalon, Principles of Tantra, I, पृ० 8।

२. महानिर्वाणतन्त्र IV, 29-31; V, 141।

स्वरूप, जिसके सेवन से दुःख भूल जाता है और आनन्द की प्राप्ति होती है। ग्राम में, या जंगल में होने वाले जीवों का **माँस** जिसके सेवन से शक्ति मिलती है और बल तथा बुद्धि बढ़ती है। **मत्स्य** जो "चित्त को प्रसन्न करने वाला और स्वादु होता है और मनुष्य की प्रजनन-शक्ति को बढ़ाता है। **मुद्रा** (कठोर भोज्य पदार्थ) "जो पृथ्वी से उत्पन्न होता है और आसानी से प्राप्त हो जाता है; यह तीनों लोकों के जीवन का मूल है"। **मैथुन**[1] जो "सारे प्राणियों को अत्यन्त आनन्द देनेवाला, सारे प्राणियों का मूल कारण और अनादि तथा अनंत संसार का उद्गम है।[2] पर इन पाँच तत्वों का प्रयोग दीक्षितों के चक्र में ही हो सकता है और वहाँ भी इनका प्रयोग तभी हो सकता है जब पवित्र मंत्रों और क्रियाओं से लोग 'पवित्र' हो चुके हैं। दीक्षित पुरुषों और स्त्रियों के इन चक्रों में हर व्यक्ति के वाम भाग में उसकी 'शक्ति' बैठी होती है।[3] इसमें जाति का भेद नहीं होता, पर पापी और अविश्वासी लोगों का इस चक्र में प्रवेश नहीं हो सकता। पाँच तत्वों का दुरुपयोग भी नहीं किया जा सकता है। जो अत्यधिक मद्य का पान करता है वह देवी का सच्चा भक्त नहीं है। घोर कलियुग में व्यक्ति शक्ति के रूप में अपनी ही पत्नी का उपयोग कर सकता है। यदि कोई गृहस्थ अपनी इन्द्रियों को वश में नहीं कर सकता तो मद्य की जगह मीठी वस्तुओं (दूध, चीनी, शहद) का प्रयोग किया जा सकता है और मैथुन के स्थान पर देवी के चरण-कमल की पूजा की जा सकती है[4]। यह सत्य है कि वीर (अर्थात् गुप्त शक्तियों से युक्त तथा साधक होने के योग्य) चक्र में ऐसी शक्ति के साथ साधना कर सकता है जो उसकी अपनी पत्नी नहीं है। इस कार्य के लिए उसे केवल विशेष पूजा (जो इसके लिए निर्धारित की गई है) करनी पड़ती है। सांसारिक वस्तुओं से पूर्ण विरक्त, दिव्य भाव में स्थित साधक के लिए ही पाँच तत्त्वों के स्थान पर शुद्ध प्रतीकात्मक वस्तुओं का प्रयोग विहित है।

देवी-पूजा में मन्त्रों, ऐं, क्लीं, ह्रीं आदि बीजों, धातु-पत्रों, कागज या अन्य पदार्थों पर लिखे यन्त्रों, हाथों और उँगलियों के माध्यम से बनाई गई मुद्राओं तथा न्यासों का विशेष महत्व है। उँगली के अग्रभाग और दाहिने हाथ की हथेली को शरीर के विभिन्न भागों पर रख कर मन्त्र पढ़ना न्यास कहलाता है। इससे शरीर देवी की शक्ति से भर जाता है।[5] इन माध्यमों के प्रयोग से साधक देवी को प्रसन्न करता

---

१. हर तत्त्व का नाम 'म' से शुरू होता है अतः पञ्चतत्त्वों को "पञ्चमकार" भी कहते हैं।

२. महानिर्वाण, VII, 103 आ०। पञ्चतत्त्वों का विस्तृत विवरण VI, 1 आ० में।

३. शतपथ ब्राह्मण (VIII, 4, 4, 11) में भी कहा गया था कि "स्त्री का स्थान पुरुष के वाम भाग में है।" शायद इसीलिए चक्रपूजा को "वामाचार" कहा गया है।

४. महानिर्वाण XIV, 180। मि० मज्झिमनिकाय 28 (शुरू में)।

५. तारानाथ विद्यारत्न द्वारा सम्पादित—Tantrik Texts, Vol. V, 1917।

है, देवी को अपनी सहायता करने के लिए विवश कर देता है। साधक के लिए देवी की पूजा का लक्ष्य अंतिम नहीं है, साधना उसके मुख्य उद्देश्यों में से एक है।[१]

सारे भारतीय सम्प्रदायों और धर्मों का अंतिम लक्ष्य मोक्ष है और महानिर्वाण में इसको देवी के साथ एकाकारता प्राप्त करना कहा गया है। कौल या पूर्ण संत सब में ब्रह्म को और ब्रह्म में सबको देखता है। चाहे वह तान्त्रिक क्रियाओं को सम्पादित करता हो या नहीं, पर वह इसी जीवन में जीता हुआ भी मुक्त (जीवन्मुक्त) हो जाता है।[२] पर मुक्ति (निर्वाण) का मार्ग तन्त्रों के द्वारा ही मिल सकता है क्योंकि वेद, स्मृति, पुराण और इतिहास ये सब बीते युगों की रचनाएँ हैं, जब कि मानव के कल्याण की दृष्टि से कलियुग के लिए शिव ने इन तन्त्रों को प्रकाशित किया है (I, 20 आ०)। इस प्रकार तन्त्र स्वयं को ही आधुनिक घोषित करते हैं। इस युग में वैदिक कर्म और प्रार्थनाएँ व्यर्थ हैं, केवल मन्त्र और तन्त्रों में प्रतिपादित कर्म ही सार्थक हैं (II, 1 आ०)। जिस प्रकार देवीपूजा साधना के द्वारा स्थूल वस्तुओं और सर्वोच्च पद निर्वाण को सिद्ध करती है उसी प्रकार ऐन्द्रिय और आध्यात्मिक तत्त्व भी इस पूजा में वर्तमान हैं।

ऊपर लिखित बातों के अनुरूप ही एक देवी-ध्यान भी [इस ग्रंथ में] आता है। यह इस प्रकार बतलाया गया है : पहले साधक अपने हृदय कमल को देवी को आसनार्थ समर्पित करता है, हृदय-कमल की पंखुड़ियों से झरते मधु को पाद्य (पैर धोने का जल) कल्पित करता है, अपने मन को नैवेद्य रूप में उपस्थित करता है, इन्द्रियों और विचारों की अस्थिरता को नृत्य के रूप में तथा निस्स्वार्थता और निष्कामता आदि को पुष्प के रूप में देवी को चढ़ा देता है। पर इसके बाद वही व्यक्ति देवी को मद्य का समुद्र, मांस और तले मत्स्यों का पर्वत, शर्करा और घृत से निर्मित पायस (खीर), स्त्री-पुष्प और शक्ति के स्नान के लिए प्रयोग में लाया गया जल भेंट करता है।[३] तञ्चतत्त्वों तथा पूर्ण ऐन्द्रिय-पूजा के तत्त्वों के साथ एक ऐसी पूजा भी होती है जिसका प्रयोजन इन्द्रियों को प्रमत्त कर देना है। इस पूजा में घंटा, धूप, पुष्प, दीप, मालाएँ आदि समर्पित की जाती हैं। पर इनके अलावा देवी का पूर्ण शान्त होकर

---

१. ये हैं वेदाचार, वैष्णवाचार, शैवाचार, दक्षिणाचार, वामाचार, सिद्धान्ताचार (या योगाचार) मि० Avalon, Tantra of the Great Liberation, Introduction।

२. सुरा-पान की बहुत बड़ाई की गई है, (V, 38 आ०) पर अन्य पानों की भी चर्चा है (V, 30) कुल पूजा में मांस-भक्षण अहिंसा के नियम का अपवाद माना गया है।

३. यह उक्ति तन्त्रों में बहुधा मिलती है। Avalon के अनुसार ये श्लोक वास्तविक सुरापान का अनुमोदन न करके योग-सम्बन्धी पान का अनुमोदन करते हैं। पर इस पर विश्वास करना कठिन है।

ध्यान करना भी पूजा का अंग है। इसी तरह अर्थहीन मन्त्रों के अलावा हमें ऐसी सुन्दर पंक्तियाँ भी प्राप्त होती हैं जैसी एक पंक्ति V, 156 में है: "हे आद्ये कालि! सबकी अन्तरात्मा में निवास करनेवाली, अन्तर को प्रकाशित करनेवाली, हे मातः! मेरे हृदय की यह प्रार्थना स्वीकार करो। मैं तुम्हें नमस्कार करता हूँ।"[१]

तान्त्रिक साधना के अलावा महानिर्वाणतन्त्र में दर्शन भी प्रतिपादित है जो सांख्य और वेदान्त के आस्तिक दर्शन-प्रस्थानों से भिन्न नहीं है[२]। निरर्थक बकवास के बीच में भी इस दर्शन को पहचाना जा सकता है। जहाँ तक नीति का सम्बन्ध है महानिर्वाण का आठवाँ अध्याय मनुस्मृति, भगवद्गीता और बौद्ध ग्रन्थों की याद दिलाता है। शाक्त साधना में यद्यपि वर्ण-भेद नहीं माना जाता क्योंकि सारे वर्ण और लिंग समान हैं फिर भी ब्राह्मणधर्म के अनुसार वर्णों को स्वीकार किया गया है। भेद इतना ही है कि चार वर्णों के अलावा सामान्यवर्ण नामक एक पंचम वर्ण भी माना गया है जो चारो वर्णों के सांकर्य से उत्पन्न हुआ। मनु के अनुसार चार आश्रम हैं पर इस तन्त्र के अनुसार कलियुग में गृहस्थ और सन्यास ये दो ही आश्रम विहित हैं। पिता-माता के प्रति, पत्नी तथा बच्चों के प्रति, सम्बन्धियों के प्रति और सामान्यतः मनुष्यमात्र के प्रति व्यक्ति के धर्म की सारी बातें वैसी ही हैं जैसी धर्मशास्त्र के ग्रन्थों में प्राप्त होती हैं। उदाहरण के तौर पर हम यहाँ आठवें अध्याय से कुछ श्लोकों का भाव उद्धृत करते हैं:

गृहस्थ को ब्रह्म का ध्यान करना चाहिए और ब्रह्मज्ञानी होना चाहिए। जो कुछ वह करे उसे ब्रह्म को समर्पित कर दे। (२३)

असत्य न बोले, धोखा न दे, देवताओं और अतिथियों की नित्य सेवा करता रहे। (२४)

माता और पिता को प्रत्यक्ष देवता मानता हुआ वह सर्वतोभावेन सारी शक्ति के साथ उनकी सेवा करे। (२५)

प्राण कंठ में भले आ जाय पर गृहस्थ माता, पिता, पुत्र, पत्नी अतिथि और भाई को पहले खिलाये बिना भोजन न करे। (३३)

गृहस्थ पत्नी को कभी दंड न दे बल्कि माँ की तरह उससे प्रेम करे। यदि वह गुणी और पतिव्रता हो तो भयंकर विपत्ति आ जाने पर भी उसे न त्यागे। (३९)

पिता पुत्र को पहले चार वर्षों तक खिलाए और फिर सोलह वर्षों तक उसको शिक्षा दे। (४५) बीसवें वर्ष तक उनको गृहस्थी में लगाये रखे और उसके बाद

---

१. **महानिर्वाण**, V, 139-151।

२. **तन्त्रों के दर्शन के बारे में दे०** S. Das Gupta **को** Sir Asutosh Mookerjee Silver Julilee Vol III, 1, 1922, **पृ०** 253 **आ० में।**

उसको अपनी बराबरी का मानकर उसके साथ प्रेम-व्यवहार करे। (४६) इसी तरह पुत्री को भी पालना और सावधानी पूर्वक पढ़ाना चाहिए और बाद में धन और आभूषणों के साथ उसे किसी विद्वान् को दान दे देना चाहिए। (४७)

जो तालाब खुदवाता है, पेड़ लगवाता है, सड़क के किनारे धर्मशाला या पुल बनवाता है वह तीनों लोकों को जीत लेता है। (६३) जो व्यक्ति अपने माता-पिता का सुख है, जिसके मित्र उसकी बात मानते हैं और लोग जिसका गुण गाते हैं वह तीनों लोकों का विजेता है। (६४) जो सत्यसंध है, जिसका दान दीनों के लिए है तथा जिसने काम और क्रोध को जीत लिया है वह तीनों लोकों को जीत लेता है।[१] (६५)

अलग-अलग वर्णों का धर्म तथा राजधर्म जैसा यहाँ वर्णित है वह मनुस्मृति द्वारा प्रतिपादित धर्म से विशेष भिन्न नहीं है। गृहस्थ जीवन के मूल्य को बहुत ऊँचा बताया गया है। इस बात का बड़ा कठोर विधान किया गया है कि जिस व्यक्ति को बच्चे, पत्नी और अन्य सगे सम्बन्धी की देख-भाल करनी हो उसे सन्यास नहीं ग्रहण करना चाहिए[२]। ब्राह्मण ग्रन्थों के साथ बिलकुल एकमत होकर नवें अध्याय में गर्भाधान से लेकर विवाह-पर्यन्त के संस्कारों का वर्णन किया गया है। इसी तरह दसवें अध्याय में मृतक के कर्म और श्राद्धों का वर्णन है। विवाह के सम्बन्ध में शाक्तों की खास बात यह है कि ब्राह्मण-विधान के अनुसार सम्पादित ब्राह्म-विवाह के अलावा एक शैव-विवाह भी करना पड़ता है जो कुछ काल के लिए ही होता है और चक्र के दीक्षित सदस्य ही इस विवाह के अधिकारी हैं। पर इस विवाह से उत्पन्न सन्तान वैध नहीं होती और उन्हें दायभाग का अधिकार नहीं प्राप्त है। इससे पता चलता है कि शाक्तों के लिए भी ब्राह्मण-विधान किस हद तक मान्य है। इसी प्रकार ग्यारहवें तथा बारहवें अध्यायों में प्रतिपादित दीवानी और फौजदारी के कानून भी मूलतः मनु से मिलते हैं।

फिर भी इस तन्त्र में प्रतिपादित कौलधर्म को बहुत बढ़ा चढ़ा कर सारे धर्मों में श्रेष्ठ कहा गया है और कुलाचारी का आदर करना परम पुण्य का जनक माना गया है। एक प्रसिद्ध बौद्ध ग्रन्थ की तरह के शब्दों में इस तन्त्र में भी कहा गया है कि "हाथी के पैर के निशान में अन्य पशुओं के पैर के निशान छिप जाते हैं, इसी तरह सारे धर्म कुलधर्म में विलीन हो जाते हैं।"[३]

शाक्तों के सर्वश्रेष्ठ सम्प्रदाय, कौल सम्प्रदाय, का एक प्रमुख ग्रंथ कुलार्णवतन्त्र

---

१. Avalon द्वारा अनूदित, पृ० 161 अ, 163, 165 आ०।

२. कौटिलीय अर्थशास्त्र II, 1, 19 में पत्नी और बच्चों की व्यवस्था किए बिना जो व्यक्ति सन्यासी हो जाता है उसे दण्ड का भागी बताया गया है।

३. XXXVI, 35-47।

है।[१] इस में छः आचारों[२] का प्रतिपादन किया है और ये कुलाचार की भूमिकाएँ हैं। दुःख से मुक्ति और परममुक्ति कुलाचार या कुलधर्म से ही प्राप्त हो सकती है।

जब देवी ने पूछा कि "दुःख से मुक्ति कैसे मिल सकती है" तो शिव ने उत्तर दिया कि केवल तादात्म्य-ज्ञान से ही मुक्ति मिल सकती है। माया के पाश में आबद्ध पशु ब्रह्म-रूपी अग्नि से निकली चिनगारियों के सदृश हैं। कुछ लोग ऐसे हैं जो ब्रह्म-ज्ञान की डींग हाँका करते हैं, शरीर पर भस्म लगाते हैं, तपस्या करते हैं पर तिस पर भी वे इन्द्रियों के सुख में लिप्त रहते हैं। "गधे और अन्य पशु भी नंगे होकर निर्लज्जतापूर्वक घूमा करते हैं—चाहे वे घर में रहें चाहे जंगल में : तो क्या इस से वे योगी बन जाते हैं?" (I, 79)। कौल बनने के लिए व्यक्ति को सारी बाह्य वस्तुएँ त्यागनी होंगी और सच्चा ज्ञान प्राप्त करने के लिए प्रयत्न करना होगा। क्रिया और तपस्या का मूल्य तभी तक है जब तक मनुष्य को सत्य का ज्ञान नहीं होता। कौल धर्म **योग और भोग** दोनों है, पर ऐसा उसी व्यक्ति के लिए है जिसका मन शुद्ध है। इन्द्रियाँ जिसके वश में हैं। इस तन्त्र में बहुधा दुहराए गए इस वचन को समझना आसान है कि तलवार की धार पर चलना सरल है पर सच्चा कौल बनना कठिन है। पर इसी पुस्तक में न केवल ब्रह्म और योग के सिद्धान्त ही प्रतिपादित किए गए हैं बल्कि बारह प्रकार के मद्यों के निर्माण की विधि और पञ्चतत्त्वों से सम्बन्धित सारी बातें बड़े विस्तार से बताई गई हैं जिन के द्वारा मुक्ति और भुक्ति दोनों एक साथ प्राप्त होती हैं। कहा गया है कि "ब्राह्मण को सर्वदा सुरा-पान करना चाहिए, क्षत्रिय को युद्ध के प्रारम्भ में, वैश्य को गायें खरीदते समय और शूद्र को और्ध्वदेहिक कर्म करते समय सुरा का पान करना चाहिए" (V, 85)। दूसरी ओर, इस प्रकार के नियमों का उपस्थापन कर लेने बाद यह भी कहा गया है कि सच्चा सुरा-पान तो कुण्डलिनी शक्ति और चिच्चन्द्र (चेतनारूपी चन्द्रमा) का संयोग है, अन्य पान केवल नशा है। सच्चा मांस-भक्षी वह है जिसने अपने विचारों को पर-तत्व में लीन कर दिया है। सच्चा मत्स्य-भोजी वह है जिसने इन्द्रियों को वश में कर के उनको आत्मा में अवस्थित कर दिया है—अन्य लोग तो केवल प्राणि-हिंसा करने वाले हैं। सच्चा मैथुन परा शक्ति कुण्डलिनी को आत्मा के साथ संयुक्त करा देने में है—अन्य लोग केवल स्त्रियों के दास हैं। ये बातें पाचवें अध्याय के अन्त में कही गई हैं। पर सातवें अध्याय में शक्ति-पूजा में मद्य-पान की आवश्यकता पर फिर जोर दिया गया है। यह सही है कि मद्य-पान सीमित होना चाहिए, पर यह सीमा भी काफी खुली हुई है। "जब तक आँखें, चेतना, वाणी और

---

१. **केवल यही भाग** M, Lakṣmaṇa Śāstrï **द्वारा** Tantrik Texts, Vol. VIII **में प्रकाशित हुआ है।**

२. **पार्वतीचरण तर्कतीर्थ द्वारा** Tantrik Texts Vol. VI, 1917 **में संपादित। एक मन्त्र असमिया और पूर्वी बंगला भाषाओं के मिलेजुले रूप में है और एक अन्य मन्त्र में शब्दों को उल्टा लिखा गया है।**

शरीर अस्थिर नहीं हो जाते तब तक व्यक्ति मद्य-पान करता रहे। पर, जब इस सीमा का अतिक्रमण हो जाता है तो वह पान पशुओं का पान है।" (VII, 97)। यद्यपि दीक्षा-प्राप्त लोगों को ही पान का अधिकार है तथापि उन के बारे में ही बहुधा यह उक्ति कही जाती है कि "पीता जाय, पीता जाय, बार-बार पीता जाय--जब तक वह धरती पर न गिर पड़े। उठ कर फिर पीये—इस से उसका पुनर्जन्म छूट जाता है।" (VII, 100)[१]।

शाक्तों के कौल सम्प्रदाय का एक अन्य ग्रन्थ कुलचूड़ामणि[१] है। यह एक निगम है जिसमें देवी सिद्धान्तों का प्रतिपादन करती हैं और शिव शिष्य की तरह सुनते हैं। वास्तव में शिव और देवी एक हैं और देवी ने पुस्तक के अन्त में कहा भी है:

"आप कभी पिता और कभी गुरु के रूप में प्रकट होते हैं। कभी पुत्र बन जाते हैं और कभी शिष्य...जो कुछ संसार में है वह शिव और शक्ति है। हे देवाधिदेव! आप सब हैं और मैं भी सर्वदा सब हूँ। जब मैं शिष्य होती हूँ तो आप गुरु बनते हैं। पर यह भेद नहीं होगा। अतः हे देव! आप गुरु रहें और हे महादेव! मैं आपकी शिष्य बनूँगी।"

कुल सुन्दरियों या देवियों के वर्णन से इस ग्रंथ का आरम्भ होता है। इसके बाद यन्त्रों और मातेश्वरी के साथ तादात्म्य के ध्यान के द्वारा शक्तियों की पूजा का वर्णन किया गया है। अपनी पत्नी के अलावा अन्य शक्ति की पूजा का भी विधान दिया गया है। जो चक्र-पूजा में प्रविष्ट हो उसे पहले वैष्णवों का भक्तिमार्ग अपनाना चाहिए। उसे सदाचारी और दूसरों के प्रति सहनशील होना चाहिए। अन्त के तीन अध्यायों में सिर्फ इन्द्रजाल का वर्णन है।

तन्त्रों में एक अधिक महत्त्व का तन्त्र प्रपञ्चसारतन्त्र[२] है। इसे शंकर द्वारा लिखित या शंकराचार्य के अवतार के रूप में स्वयं शिव द्वारा लिखित माना जाता है। यद्यपि तन्त्र साहित्य में शंकर का नाम बहुधा आता है, पर यह निश्चित नहीं कि उनके कहे जानेवाले ग्रन्थ वास्तव में उन्हीं के द्वारा लिखे गए हैं। प्रपञ्च का अर्थ होता है "विस्तार", "विस्तृत जगत्" इसलिए प्रपञ्चसार का अर्थ है "जगत् का सार"।

---

१. गिरीशचन्द्र वेदान्ततीर्थ द्वारा सम्पादित, A. K. Mitra की भूमिका से युक्त Tantrik Texts, Vol. IV 1915। कौल-पूजा नित्याषोडशी तन्त्र में भी वर्णित है जो वामकेश्वर तन्त्र (आनन्दा० सं० सि० No. 56 में प्रकाशित) तथा आदीश्वरचरित्र (L. Suali ने SIFI, Vol. 7 में जिसका विवेचन किया है) का एक भाग है।

२. तारानाथ विद्यारत्न द्वारा Tantrik Texts, Vol. III, 1914 में प्रकाशित। यहाँ मूल-लेखक शंकर को नृसिंहपूर्वतापनीय उपनिषद् के भाष्यकार से अभिन्न माना गया है। मि० विधुशेखर भट्टाचार्य, Ind, Hist. Qu. I, 1925, पृ० 120।

सृष्टि के वर्णन से इस ग्रन्थ का आरम्भ होता है।[१] वंशानुक्रम, गर्भ-विज्ञान, शरीर रचना, शरीर-क्रिया-विज्ञान और मनोविज्ञान की जो चर्चा इसमें की गई है वह उतनी ही वैज्ञानिक है जितनी परवर्ती भागों में वर्णित कुण्डलिनी-विद्या और संस्कृत वर्णमाला तथा बीजों के तत्वज्ञान की विद्या। तन्त्रों के सामान्य सिद्धान्तों के अनुसार मानव शरीर छोटे में सारा ब्रह्माण्ड लिये हुए है। इसमें अनन्त नाड़ियाँ हैं जिनमें होकर गुह्य शक्ति सारे शरीर में प्रवाहित होती रहती है। इन नाड़ियों से सम्बद्ध छः चक्र हैं जो एक के ऊपर एक स्थित हैं तथा रहस्यात्मक शक्ति से पूर्ण हैं। सबसे महत्त्व-पूर्ण चक्र में, जो सबसे नीचे स्थित है, लिंग-रूप में ब्रह्म निवास करते हैं और लिंग के चारो ओर सर्प के समान शक्ति लिपटी हुई है, जिसे कुण्डलिनी कहा गया है।[२] साधना और योग के द्वारा कुण्डलिनी को सबसे ऊपर वाले चक्र में चढ़ाया जाता है और तब मुक्ति प्राप्त होती है। बीजों और मन्त्रों में[३] शरीर और विश्व को प्रभावित करने की शक्ति निहित होती है। इस तरह के एक सिद्धान्त की झलक ब्राह्मणों और उपनिषदों[४] में भी मिलती है। इन मन्त्रों आदि के द्वारा पूर्ण सिद्धि का लाभ होता है।

दीक्षा-विधि, मातृका-पूजन और देवी के ध्यान के ऊपर लिखे गए अध्याय धर्म के इतिहास की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं। इस सम्प्रदाय में काम-तत्त्व ने जो हिस्सा लिया है उसका उदाहरण IX, २३ आ० में मिलता है। इसमें बतलाया गया है कि मन्त्र के प्रभाव से आकर्षित होकर देव, असुर, किन्नर, यक्ष आदि की पत्नियाँ "प्रेम में विह्वल होकर अपने आभूषणों को बिखराती, सिल्क के वस्त्रों को अस्त-व्यस्त धारण किए हुए, काम के असहनीय वेग के कारण काँपते अंगोंवाली, उड़ते हुए केशों में मुख छिपाए, जंघा, उर और कुक्षि पर मोती के दानों की तरह पसीने की बूदें धारण किए····, काम के बाण से विद्ध, प्रेम के समुद्र में गोते लगाती, गहरी साँस लेने के

---

१. तन्त्र में प्राप्त सृष्टि-सम्बन्धी सिद्धान्तों के बारे में दे० Woodroffe, Creation as explained in the Tantra (कलकत्ता के चैतन्य पुस्तकालय के रजतजयन्ती के अवसर पर सन् १९१५ में पढ़ा गया निबन्ध)।

२. कुण्डलिनी का अर्थ है "कुण्डली मार कर बैठी हुई।" नाडी और चक्र का सिद्धान्त वराह उपनिषद् V, 22 आ० तथा शाण्डिल्योपनिषद् (योग-उपनिषद्, पृ० 505 आ, 518 आ० में, महादेव शास्त्री द्वारा संपादित) में भी प्राप्त होता है।

३. ह्रीं, श्रीं, क्लीं, फट् जैसे एकोच्चारणात्मक शब्दों को इसलिए बीज कहते हैं कि उनसे सिद्धि का फल उत्पन्न होता है और वे मन्त्रों के भी बीज हैं। मि० Avalon, The Tantra of the Great Liberation, भूमिका।

४. B. L. Mukherji के इस कथन में काफी सत्यता है कि ब्राह्मण ग्रन्थों में तन्त्र सिद्धान्त की झलक मिलने लगती है और ब्राह्मण-ग्रन्थों तथा तन्त्रों के प्रतीक-विधानों में मैथुन का निर्देश महत्त्वपूर्ण है।

कारण काँपते होठोंवाली" साधक के पास दौड़ी चली आती हैं। अठारहवें अध्याय में कामदेव और उसकी शक्ति के ध्यान और मन्त्र दिए गए हैं। स्त्री और पुरुष के संयोग को अहंकार का बुद्धि के साथ रहस्यात्मक योग और क्रिया के रूप में वर्णित किया गया है। यदि पुरुष अपनी प्रिय पत्नी के साथ इस तरह आचरण करता है तब काम के बाण से विद्ध होकर वह छाया की तरह परलोक में भी उसका अनुगमन करती है (XVIII, 33)। अर्धनारीश्वर अर्थात् वह देवता जिसका दाहिना भाग शिव है, जिसे भयानक दिखाई देनेवाले पुरुष के रूप में दिखाया गया है—और बायाँ भाग उसकी शक्ति है जिसको कामासक्त नारी के रूप में दिखाया गया है—का वर्णन अट्ठाईसवें अध्याय में किया गया है। तैंतीसवें अध्याय में, जहाँ कि मूलतः यह ग्रंथ समाप्त होता दिखाई देता है, पूर्वार्ध में देवता की पूजा में प्रमाद और पत्नी के निरादर से जन्य पुत्रहीनता को दूर करने के उपाय बताए गए हैं। उत्तरार्ध में गुरु-शिष्य सम्बन्ध की व्याख्या है जो शाक्त सम्प्रदाय में बहुत महत्त्व रखती है।

तंत्रों में वर्णित चर्या और मन्त्र केवल शिव और देवी से ही नहीं संबद्ध हैं, विष्णु और उनके अवतारों के साथ भी बहुधा उनका संबंध है। छत्तीसवें अध्याय में त्रैलोक्य मोहन विष्णु का एक ध्यान दिया गया है। यह वर्णन वासना की अग्नि से पूर्ण है : सहस्रों सूर्यों की तरह विष्णु देदीप्यमान हैं और पूर्ण सौन्दर्य से युक्त हैं। दयापूर्ण नेत्रों से वे अपनी प्रिया श्री को देख रहे हैं—जो प्रेमपूर्वक उनसे लिपटी हुई हैं। श्री भी अतुलनीय सौन्दर्य से युक्त हैं। सारे देव, दानव और उनकी पत्नियाँ उस उदात्त देवता-युगल की पूजा कर रही हैं; पर देव-पत्नियाँ काम से अभिभूत होकर विष्णु को घेरे हुए हैं और कह रही हैं कि : "हे परम देव! आप हमारे पति हो जाइए, हम आपकी शरण हैं।"[१]

तन्त्रराजतन्त्र का पहला भाग[२] तन्त्रराज कहलाता है और इसमें श्रीयन्त्र का विवरण है।[३] इस यन्त्र में नौ त्रिकोण और नौ वृत्त हैं जो एक के बीच एक करके लिखे जाते हैं और उनमें से प्रत्येक का अपना रहस्य है। श्रीयन्त्र के द्वारा पूजा करने से व्यक्ति को एकाकारता का अर्थात् संसार की सारी वस्तुएँ देवी ही हैं इस बात का

---

१. महानिर्वाण, VI, 14 आ०; 186 आ०; VIII, 171 आ०; 190 आ०।

२. मनुष्यों के तीन भेदों—पशु, वीर और दिव्य—की चर्चा सारे तन्त्रों में बहुधा आती है। पर, पशु का क्या अर्थ है यह स्पष्ट नहीं है क्योंकि पशु का बुरा या मूर्ख अर्थ यहाँ अभिमत नहीं है। यह शब्द, लगता है कि उस व्यक्ति के लिए प्रयोग में आता है जो गुह्य बातों को नहीं समझ सकता। मि० Avalon, Tantra of the Great Liberation, Introduction, पृ० LXV आ०।

३. Eliot, Hinduism and Buddhism II, पृ० 275, में न्यास की तुलना ईसाई Cross से करते हैं और तान्त्रिक तथा ईसाई क्रियाओं में अन्य समानताएँ भी दर्शाते हैं।

ज्ञान हो जाता है। कालीविलास[1] तन्त्र एक निषिद्ध तन्त्र है अर्थात् यह वर्तमान युग के लिए न होकर बीते युगों के लिए उपयोगी माना गया है। यह परवर्ती काल की रचना है। पञ्चतत्त्वों के बारे में अपनाया गया दृष्टिकोण वस्तुतः बड़ा अस्पष्ट है। इस ग्रन्थ से हमें इतना ही पता चल पाया है कि शाक्तों के दो भिन्न सम्प्रदाय हैं। एक तो इस चर्या को हेय कहता है और दूसरा इसको अनिवार्य मानता है। कुछ अध्यायों में राधा के प्रेमी के रूप में कृष्ण की चर्चा है और राधा को काली से अभिन्न माना गया है। ज्ञानार्णवतन्त्र[2] में अनेक तान्त्रिक चर्याओं तथा देवी के अनेक रूपों के ध्यानों का वर्णन है। कुमारी-पूजन को सबसे बड़ी चर्या बताया गया है। ग्यारहवीं शताब्दी में लक्ष्मणदेशिक द्वारा रचित शारदातिलक तन्त्र[3] का प्रारम्भ सृष्टि के वर्णन से होता है और इसमें वाणी की उत्पत्ति का वर्णन है। साथ ही प्रधान रूप से मन्त्रों, यन्त्रों और सिद्धियों का भी इसमें प्रतिपादन हुआ है।

देवता द्वारा "प्रकाशित" तन्त्रों के अलावा विभिन्न तान्त्रिक चर्चाओं के बारे में भी अगणित ग्रन्थ लिखे गए हैं[4] और विभिन्न तन्त्रों से संग्रह करके कई बड़े-बड़े

१. महानिर्वाण, X, 209 आ०। कौल या कौलिक "वह है जो देवी काली के कुल से संबद्ध है।" मि० हरप्रसाद शास्त्री, Notices. I, पृ० XXVI, XXXIII। एक भिन्न व्याख्या के लिए दे० Avalon, Tantrik Texts, Vol. IV, Introduction, वहाँ कौल का संबंध कुल से बताया गया है और कुल का अर्थ है "संबंध" या "आत्मा, ज्ञान और संसार का संबंध।" कभी-कभी तन्त्र में कौल को सर्वोच्च मुनि कहा गया है और कभी कहा गया है कि वह पञ्चतत्त्वों का यथेच्छ उपयोग करने के लिए स्वतन्त्र होता है। ज्ञानतन्त्र के दसवें अध्याय के अंतिम श्लोक में बताया गया है कि चतुर्थाश्रम (सन्यासाश्रम) के ब्राह्मणों को ही वामाचार में अधिकार है, गृहस्थों को दक्षिणाचार का ही अधिकार है (हरप्रसाद शास्त्री, वही, पृ० XXXI, 126)।

२. आनन्दा० सं० सि० No. 69 में 1912 में प्रकाशित।

३. A. H. Ewing ने JAOS 23, 1902, पृ० 65 में इसके विषय का विवेचन किया है। मि० Farquhar, Outline, पृ० 267।

४. अक्षरों, बीजों और मन्त्रों का तथा योग के साथ मुद्राओं का रहस्य बतलाने के लिए टीकाएँ और कोष लिखे गए हैं। इनमें से कुछ ग्रन्थों को (यथा—रुद्रयामल का मन्त्राभिधान, पुरुषोत्तमदेव कृत एकाक्षरकोष, भैरव कृत बीजनिघण्टु, महीधर कृत मातृकानिघण्टु, वामकेश्वर तन्त्र का मुद्रानिघण्टु) Avalon ने Tantrik Texts, Vol. I, 1913 में प्रकाशित किया है। मि० The Zachariae, Die indischen Wörterbücher (Grundriss I, 3B, 1897), para 27 तथा Leumann, Oc VI, Leyden, Vol, III, पृ० 589 आ०। षट्चक्रों और कुण्डलिनी का वर्णन पूर्णानन्द स्वामी कृत श्रीतत्त्वचिन्तामणि के षट्चक्रनिरूपण में तथा पादुकापञ्चक में भी हुआ है।

संग्रह ग्रन्थ भी लिखे गए हैं।[१]

तन्त्रों के प्राचीनतम नेपाली हस्तलेख सातवीं से लेकर नवीं सदी के बीच के हैं[२] और बहुत सम्भव है कि पाँचवीं या छठीं सदी के पहले ही तन्त्र साहित्य की उत्पत्ति हो चुकी हो। महाभारत के आधुनिकतम भागों में इतिहास और पुराणों के साथ तन्त्रों का बिल्कुल उल्लेख नहीं किया गया है तथा अमरकोश में तन्त्र शब्द के अनेक अर्थों में "धार्मिक पुस्तक" यह अर्थ नहीं दिया गया है[३]। चीनी यात्रियों ने भी तन्त्र का उल्लेख नहीं किया है। सातवीं और आठवीं शताब्दियों में तन्त्र ने बौद्धधर्म में प्रवेश करना शुरू किया और आठवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में चीनी भाषा में[४], तथा नवीं सदी में तिब्बत भाषा में तन्त्रों का अनुवाद हुआ। दुर्गा की पूजा का तन्त्रों में

इन दोनों का सम्पादन तारानाथ ने Tantrik Texts, Vol. II में किया तथा Avalon ने The Serpent Power में इनका अनुवाद भी दिया है।

१. ऐसा एक ग्रन्थ तन्त्रसमुच्चय है जिसे जयन्तमङ्गल कुल के नारायण ने १४२६ ई० के करीब त्रावङ्कोर में संगृहीत किया और यह मलाबार में बहुत प्रसिद्ध है। T. Ganapati Sastri ने TSS. Nos 67 तथा 71 में इसका संपादन किया।

२. कुब्जिकामततन्त्र सातवीं सदी का कहा जाता है और निश्वासतत्त्वसंहिता को आठवीं सदी का माना गया है। परमेश्वरमततन्त्र सन् ८५८ में लिखा गया था। मि० हरप्रसाद शास्त्री, Report I, पृ० 4।

३. अमरकोष III, 182 में तन्त्र का अर्थ सिद्धान्त बताया गया है जो सामान्य सिद्धान्त के अर्थ में, न कि ग्रन्थ-विशेष के अर्थ में आता है। मि० Wilson, Works, I, 250। अन्य कोषों में भी तन्त्र के कई अर्थ दिए गए हैं पर सम्प्रदाय-विशेष की पुस्तक यह अर्थ वहाँ भी नहीं है। जब मन्त्र और तन्त्र को एक साथ उल्लिखित किया जाता है (जैसे अहिर्बुध्न्य, XX, 5; पाञ्चरात्र, I, V. 70; दशकुमारचरित, निर्णयसागर संस्करण II, पृ० ८२—मुद्रातन्त्रमन्त्रध्यानादिभिः) तो मन्त्र का अर्थ उच्चारित वर्ण और तन्त्रका रहस्यात्मक चर्या होता है। दशकुमारचरित का उद्धरण तन्त्र से परिचित जैसा लगता है। पर दण्डी ७ वीं सदी के पहले शायद नहीं थे। भागवत पुराण (IV, 25, 62; XI, 3, 47 आ, 5, 28; 31) ऐसी पहली रचना है जिसमें वेदों से अलग तन्त्र का ग्रन्थ-समुदाय के रूप में उल्लेख है।

४. L. Wieger (Histoire des croyances religienses et des opinions philosophiques en chine, Paris, 1917) के अनुसार सातवीं सदी में ही चीनी अनुवाद हुए। ललितविस्तर XII में निगम के साथ निर्घण्टु का उल्लेख शायद निगम कहे जाने वाले तन्त्रों की ओर इशारा नहीं है—जैसा Avalon का Principles of Tantra I, पृ० Xli में कहना है। मनुस्मृति IV, 14; IX, 14 में निगम का अर्थ निस्सन्देह वेदाङ्गों से है।

बहुत बड़ा स्थान है और यह परवर्ती वैदिक काल की देवी है[1]। पर इस तथ्य से यह सिद्ध नहीं होता कि तन्त्र और तान्त्रिक सम्प्रदाय भी दुर्गा-जितने ही प्राचीन हैं। इसमें सन्देह नहीं कि दुर्गा और दुर्गापूजा में आर्य और अनार्य देवताओं की विशेषताएँ एकत्र मिलती हैं। यह भी सम्भव है कि तन्त्र-सम्प्रदाय में अनार्य और अब्राह्मण सम्प्रदायों की बातें भी ली गई हों[2]। दूसरी ओर तन्त्रों की कुछ खास बातें अथर्ववेद, ब्राह्मण ग्रन्थों और उपनिषदों में भी प्राप्त होती हैं। तन्त्रसम्प्रदाय बंगाल में बारहवीं से लेकर सोलहवीं शताब्दी के बीच (विशेषतः अभिजात वर्ग में) प्रचलित था और आज भी इसके अनुयायी निम्नवर्ग में न मिलकर शिक्षितों में ही मिलते हैं[3]। सब कुछ मिलाकर तन्त्र और उनमें प्राप्त होनेवाले धर्म की अवनति के रूप न तो भारत के मूल निवासियों की लोकप्रचलित परम्पराओं या विश्वासों की देन हैं और न ही आगन्तुक आर्यों की। बल्कि वे धर्माचार्यों की अर्ध-वैज्ञानिक करतूतें हैं जिनमें योग के सिद्धान्तों और आचारों को तथा अद्वैत दर्शन को प्रतीक-विद्या और रहस्यानुभूति के साथ मिलाकर उपस्थित किया गया है।

पुराणों और तन्त्रों का अध्ययन कोई आनन्ददायक कार्य नहीं है। यह बात तन्त्रों के बारे में अधिक सही है। ये सारे के सारे हीन कोटि के लेखकों की कृतियाँ हैं और प्रायः असंस्कृत और व्याकरण के नियमों से अछूती भाषा में लिखे गए हैं। दूसरी ओर साहित्य के इतिहासकार और धर्म के अध्येता इनको चुपचाप छोड़ भी नहीं सकते। शताब्दियों के दौरान और आज भी यह साहित्य लाखों भारतीयों के मस्तिष्क का भोजन रहा है। एक शिक्षित हिन्दू ने कहा है[4] कि "पुराण हिन्दुओं के धार्मिक साहित्य के मुख्य अंग हैं और धर्मशास्त्र तथा तन्त्रों के साथ आज ये पुराण उनके आचार तथा धार्मिक क्रियाओं का अनुशासन करते हैं। वेदों को प्राचीनता के पुजारी पढ़ते है, उपनिषदों को दार्शनिक पढ़ते हैं, पर हर सनातनी हिन्दू को अपने चरित्र का निर्माण करने के लिए तथा सांसारिक एवं आध्यात्मिक कल्याण के लिए, आवश्यक धार्मिक कृत्यों का सम्पादन करने के लिए साक्षात् या परम्परया पुराणों का अध्ययन करना आवश्यक है।" तन्त्रों के धार्मिक, साहित्यिक और नैतिक मूल्यों के बारे में हमारा जो भी मत हो पर भारतीय धर्म और संस्कृति का इतिहास लिखनेवाला उनको भूल नहीं सकता। तुलनात्मक धर्म की दृष्टि से भी उनमें मूल्यवान् सामग्री प्राप्त होती है।

---

१. Jacobi, ERE V, 117 आ०।

२. जयद्रथयामल में कहा गया है कि परमेश्वरी की पूजा कुम्हार या तेली (नीच वर्ण) के घर में करनी चाहिए। मि० हरप्रसाद, Report I पृ० 16।

३. आज के अधिकांश शाक्त पञ्चतत्त्वोंका प्रयोग ही नहीं करते। जो भी हो कश्मीर में मुझे विश्वास दिलाया गया कि वहाँ के शाक्त इस प्रकार की चर्या से दूर रहते हैं।

४. N. Mukhopādhāya, अपने कूर्मपुराण के संस्करण की भूमिका में (Bibl Ind. पृ० XV)।

सूची क (नागरी)

न

प

य

र

ल

व

श

सूची ख (रोमन)